बृहदारण्यकोपनिषद्

सटीक।

अनुवादक,

रायबहादुर बाबू जालिमसिंह

केसरीदास सेठ द्वारा

नवलकिशोर प्रेस में मुद्रित और प्रकाशित

लखनऊ

सन् १९२३ ई०

द्वितीयबार १०००] [मूल्य ३)

रायबहादुर बाबू ज़ालिमसिंह.

भूमिका ।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदुच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्त्तिं
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तन्नमामि ॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुस्साक्षात्परंब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्त्तिः पूजामूलं गुरोः पदम् ।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा ॥

जब मैं हरिद्वारको संवत् १९७१ में गया, तब वहां पर कई एक साधु जान पहिचान के मुझ से मिले, और कहा कि जैसे आपने ईश, केनादि आठ उपनिषदों पर भाषा टीका किया है यदि उसी श्रेणी पर बृहदारण्य की टीका भी मध्यदेशी भाषा में कर दें तो लोगों का बड़ा कल्याण हो, मैंने उनसे कहा कि वाक्यदान का प्रदान तो नहीं करता हूं, पर यदि अन्तःकरण प्रविष्ट परमात्मा की प्रेरणा होगी और मैं जीता रहूंगा और अवकाश मिलेगा तो प्रयत्न करूंगा; जब मैं हरिद्वार से वापस आया तब पण्डित गंगाधर शास्त्री और अंग्रेजी में अनुवाद किये हुये ग्रंथों की सहायता करके बृहदारण्य की टीका का आरम्भ किया गया, और ईश्वर की कृपा करके आज उसकी निर्विघ्न समाप्ति हुई ।

मेरा धन्यवाद प्रथम पण्डित सूर्यदीन शुक्ल नवलकिशोर प्रेस को है जो इस उपनिषद् के छपाने के लिये मेरे उत्साह को बढ़ाते रहे, उन के पुरुषार्थ और प्रयत्न करके यह उपनिषद् विद्वानों के अवलोकनार्थ छपकर तैयार है. पण्डित शक्तिभर शर्मा शुक्ल और पण्डित खूबचन्द शर्मा गौड़ ने इस उपनिष का संशोधन किया है. मैं उनके इस अनुग्रह पर उन को भी धन्यवाद देता हूं.

हे पाठकजनो ! शंकराचार्यजी ने उपनिषद् का अर्थ इस प्रकार किया है, उप + नि + पद् उप=समीप, नि=अत्यन्त, पद्=नाश, अतः संपूर्ण उपनिषद् शब्द का अर्थ यह हुआ कि जो जिज्ञासु श्रद्धा और भक्ति के साथ उपनिषदों के अत्यन्त समीप जाता है, यानी उनका विचार करता है वह आवागमन के क्लेशों से निवृत्त होजाता है, और किसी किसी आचार्य ने इसका अर्थ ऐसा भी किया है, उप=समीप, नि=अत्यन्त, पद्=बैठना, यानी जो जिज्ञासु को अध्ययन अध्यापन के द्वारा ब्रह्म के अति समीप बैठने के योग्य बना देता है वह उपनिषद् कहा जाता है ।

हे पाठकजनो ! जैसे छान्दोग्यउपनिषद् के दो खण्ड हैं पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध, वैसेही इस बृहदारण्य के भी दो खण्ड हैं, पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध. पूर्वार्द्ध में निष्काम कर्म यागादि का निरूपण है, और उत्तरार्द्ध में आत्मज्ञान का निरूपण है, जो मुमुक्षु आवागमन से रहित होना चाहता है, उसको चाहिये कि वह प्रथम निष्काम कर्म करके अन्तःकरण को शुद्ध करे, और फिर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य के समीप शिष्यभाव से जाकर श्रद्धा और भक्ति के साथ सेवा करके प्रसन्न करे, तत्पश्चात् अपनी इच्छानुसार प्रश्नों को करे और कहे हुये उपदेश को श्रवण मनन करके अपने आत्मा का साक्षात् करे ॥

हे पाठकजनो ! इस टीका में पहिले मूल मन्त्र दिया है, फिर पद-

च्छेद, फिर वामअंग की ओर संस्कृत अन्वय, और दाहिने अंग की ओर पदार्थ, यदि वाम अंग की ओर का लिखा हुआ ऊपरसे नीचे तक पढ़ाजावे तो संस्कृत अन्वय मिलेगा, यदि दाहिने अंग का लिखा हुआ ऊपर से नीचे तक पढ़ाजावे तो पूरा अर्थ मन्त्र का भाषा में मिलेगा, और यदि वांये तरफ़ से दहिने तरफ़ को पढ़ाजावे तो हर एक संस्कृतपद का अर्थ अथवा शब्द का अर्थ भाषा में मिलेगा. जहां तक होसका है हर एक संस्कृतपद का अर्थ विभक्ति के अनुसार लिखा गया है, इस टीकाके पढ़ने से संस्कृतविद्या की उन्नति उनको होगी जिनको संस्कृत की योग्यता न्यून है, मन्त्रका पूरा पूरा अर्थ उसी के शब्दों से ही सिद्ध किया गया है, अपनी कोई कल्पना नहीं की गई है, हां कहीं कहीं संस्कृतपद मन्त्र के अर्थ स्पष्ट करने के लिये ऊपर से लिखा गया है, और उसके प्रथम यह + चिह्न लगा दिया गया है ताकि पाठकजनों को विदित हो जावे कि यह पद मूल का नहीं है ॥

विद्वान् सज्जनों की सेवा में प्रार्थना है कि यदि कहीं अशुद्धि हो अथवा अर्थ स्पष्ट न हो तो कृपा करके उसको ठीक करलें, और मेरे भूल चूक को क्षमा करें, और शुद्ध अन्तःकरण से आशीर्वाद दें कि यह मुझ करके रचित टीका मुमुक्षुजनों को यथोचित फलदायक हो, और इसकी स्थिति चिरकाल पर्यन्त बनी रहे ॥

जालिमसिंह रायबहादुर

[आत्मज लाला शिवदयालुसिंह, ग्राम अकबरपुर,
जिला फ़ैज़ाबाद (अवध) निवासी ।]

पोस्टमास्टर जनरल रियासत ग्वालियर
लश्कर (ग्वालियर)

बृहदारण्यकोपनिषद् सटीक का सूचीपत्र ।

पहिला अध्याय ।

दूसरा अध्याय ।

तीसरा अध्याय ।

चौथा अध्याय।

पाँचवाँ अध्याय ।

छठवाँ अध्याय ।

इति ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥

बृहदारण्यकोपनिषद् सटीक ॥

अथ प्रथमोऽध्यायः ।

अथ प्रथमं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

मूलम् ।

उषा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरः सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणो व्यात्तमग्निर्वैश्वानरः संवत्सरः आत्माश्वस्य मेध्यस्य द्यौः पृष्ठमन्तरिक्षमुदरं पृथिवीपाजस्यं दिशः पार्श्वे अवान्तरदिशः पर्शवः ऋतवोङ्गानि मासाश्चार्द्धमासाश्च पर्वाण्यहोरात्राणि प्रतिष्ठा नक्षत्राण्यस्थीनि नभो मांसानि ऊवध्यं सिकताः सिन्धवो गुदा यकृच्च क्लोमानश्च पर्वता ओषधयश्च वनस्पतयश्च लोमान्युद्यन्पूर्वार्धो निम्लोचञ्जघनार्धो यद्विजृम्भते तद्विद्योतते यद्विधूनते तत् स्तनयति यन्मेहति तद्वर्षति वागेवास्य वाक् ॥

पदच्छेदः ।

उषा, वा, अश्वस्य, मेध्यस्य, शिरः, सूर्यः, चक्षुः, वातः, प्राणः, व्यात्तम्, अग्निः, वैश्वानरः, संवत्सरः, आत्मा, अश्वस्य, मेध्यस्य, द्यौः, पृष्ठम्, अन्तरिक्षम्, उदरम्, पृथिवी, पाजस्यम्, दिशः, पार्श्वे, अवान्तरदिशः, पर्शवः, ऋतवः, अङ्गानि, मासाः, च, अर्द्धमासाः, च, पर्वाणि, अहोरात्राणि, प्रतिष्ठा, नक्षत्राणि, अस्थीनि, नभः, मांसानि, ऊवध्यम्, सिकताः, सिन्धवः, गुदाः, यकृत्, च, क्लोमानः, च, पर्वताः, ओषधयः, च, वनस्पतयः, च, लोमानि, उद्यन्, पूर्वार्धः, निम्लोचन्, जघनार्धः, यत्, विजृम्भते, तत्, विद्योतते, यत्, विधूनते, तत्, स्तनयति, यत्, मेहति, तत्, वर्षति, वाग्, एव, अस्य, वाक् ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
मेध्यस्य=यज्ञिय		च=और	
अश्वस्य=अश्वका		अर्धमासाः=पक्ष हैं	
शिरः=शिर		प्रतिष्ठा=पाद	
वै=निश्चय करके		अहोरात्राणि=दिन और रात हैं	
उषा=उषाकाल है		अस्थीनि=हड्डियां	
चक्षुः=उसका नेत्र		नक्षत्राणि=नक्षत्र हैं	
सूर्यः=सूर्य है		मांसानि=मांस	
प्राणः=उसका प्राण		नभः=आकाशस्थ मेघ हैं	
वातः=बाह्यवायु है		ऊवध्यम्=उसका आधा पचा हुआ अन्न	
व्यात्तम्=उसका विवृतमुख		सिकताः=बालू है	
वैश्वानरः=वैश्वानर नामक		गुदाः=उसकी अंतरी	
अग्निः=अग्नि है		सिन्धवः=नदी हैं	
+ तस्य=उसी		च= और	
मेध्यस्य=यज्ञिय		यत्=जो	
अश्वस्य=घोड़े का		यकृत्=जिगर है	
आत्मा=आत्मा		च=और	
संवत्सरः=संवत्सर है		क्लोमानः=फेफड़ा है	
पृष्ठम्=उसकी पीठ		+ ते=वे	
द्यौः=स्वर्ग है		पर्वताः=पर्वत हैं	
उदरम्=पेट		लोमानि=लोम	
अन्तरिक्षम्=अन्तरिक्ष है		ओषधयः=औषधि	
पाजस्यम्=पाद		च=और	
पृथिवी=पृथ्वी है		वनस्पतयः=वनस्पति हैं	
पार्श्वे=बगलें		च=और	
दिशः=दिशायें हैं		पूर्वार्धः=उस घोड़ेका पूर्वार्ध	
पर्शवः=बगलों की हड्डियां		उद्यन्=निकलता हुआ सूर्य है	
अवान्तरदिशः=उपदिशायें हैं		जघनार्धः=उसके पिछे का भाग	
अङ्गानि=अंग		निम्लोचन्=अस्त होनेवाला सूर्य है	
ऋतवः=ऋतु हैं		च=और	
पर्वाणि=अंगों के जोड़		यत्=जो	
मासाः=मास			

+ सः=वह
विजृम्भते=जमहाई लेता है
तत्=वही
विद्योतते=विद्युत् की तरह चमकता है
यत्=जो
+ सः=वह
विधूनते=अंगको झारता है
तत्=वही
स्तनयति=बादलकी तरह गरजता है
यत्=जो
+ सः=वह
मेहति=मूत्र करता है
तत्=वही
वर्षति=बरसता है
अस्य=इसका
वाक्=हिनहिनाना
वाक्=शब्द
एव=ही है यानी इसके शब्द में आरोप किसी का नहीं है

भावार्थ ।

यज्ञकर्ता यज्ञ करते समय ऐसी दृष्टि रक्खे कि यज्ञिय घोड़ा प्रजापति है उसका शिर प्रातःकाल है, क्योंकि दिन और रातभरमें उषाकाल जो तीन बजेसें पांच बजे तक रहता है, अतिश्रेष्ठ है, यह वेला देवताओं का है, इस काल में जो कार्य किया जाता है वह अवश्य सिद्ध होता है, यज्ञ कर्म में काल की श्रेष्ठता की आवश्यकता कही है, विना पवित्र-काल के यज्ञकी सिद्धि नहीं होती है, इसकारण उषाकाल की एकता यज्ञिय अश्व के शिरसे की है, ऐसे घोड़ेका नेत्र सूर्य है, जैसे सूर्य से सब कार्य सिद्ध होता है, वैसेही नेत्र से सब कार्य की सिद्धि होती है, और जैसे शिरके निकट नेत्र होते हैं, वैसे ही उषाकाल के पश्चात् सूर्य उदय होता है, यानी उषाकाल के पीछे थोड़ी देर में सूर्य निकलता है, इस प्रकार इन दोनों की ऐकता है, घोड़ेका प्राण बाह्य वायु है, जैसे प्राण विना शरीर नहीं रहसकता है, वैसे ही वायु विना कोई जीव नहीं रहसकता है, उसका खुला हुआ मुख वैश्वानरनामक अग्नि है, अग्नि की उपमा मुखसे देते हैं, और अग्नि मुखका देवता भी है, और जैसे वैश्वानर अग्नि करके सब जीव जीते हैं वैसे मुखद्वारा भोजन करके सब जीव जीते हैं, उसका आत्मा संवत्सर है, जैसे घोड़े के

मुखादि अंग बारह होते हैं, यानी ५ कर्मेन्द्रियां ५ ज्ञानेन्द्रियां मन और बुद्धि वैसे ही संवत्सर में बारह महीने होते हैं, इसकारण ऐसा कहा गया है, उस घोड़े की पीठ स्वर्ग है, जैसे सब लोकों में स्वर्ग ऊपर होता है, वैसे ही घोड़े की पीठ भी ऊपर होती है, उस घोड़े का पेट अंतरिक्ष है, जैसे अंतरिक्ष में सब चीजें भरी पड़ी हैं, और जैसे अंतरिक्ष गहरा है वैसेही पेट में सब चीजें भरी हैं, और वह गहरा भी है, उसका पाद पृथिवी है, जैसे पृथिवी नीचे है, वैसे ही पाद भी नीचे हैं, उसकी बगलें दिशायें हैं, यानी जैसे मुख्य दो दिशायें हैं वैसेही उस घोड़े की दो बगलें हैं, उसके बगलों की हड्डियां उपदिशायें हैं, जैसे बगलों की हड्डियां बगल से मिली होती हैं, वैसेही दिशाओं से उपदिशायें मिली रहती हैं, उसके शरीर के पृथक् पृथक् भाग ऋतु हैं, क्योंकि दोनों में सादृश्यता है, और उसके अंगों के जोड़ मास और पक्ष हैं, क्योंकि दोनों में सादृश्यता है, इसके पैर दिन और रात हैं, क्योंकि जैसे शरीर के साथ पैर बढ़ता है वैसे ही दिन रात काल के भी बढ़ते हैं, उसकी हड्डियां नक्षत्र हैं, क्योंकि दोनों में श्वेत रंग के कारण सादृश्यता है, उसका आधा पचा हुआ अन्न बालू है, क्योंकि अन्न के दानों में और बालू के रेतों में सादृश्यता है, और उसके अँतरी और नस नदी हैं, क्योंकि जैसे नदी में से जल निकलता है वैसे ही अँतरी और नसमें से रक्तादि निकलते हैं, उसका जिगर और फेफड़ा पर्वत हैं, क्योंकि जैसे पहाड़ लंबा और ऊंचा होता है वैसे ही फेफड़ा और जिगर फैला होता है, इस कारण दोनों में सादृश्यता है, उसके शरीर के रोम औषधी और वनस्पति हैं, क्योंकि इन दोनों में सादृश्यता है, उसका अगला भाग यानी गर्दन निकला हुआ सूर्य है, क्योंकि जैसे घोड़े का गर्दन ऊपर उठा रहताहै, वैसे ही सूर्य भी ऊपर को उठा रहता है, उसके पीछे का भाग अस्त होनेवाला सूर्य है, जैसे पीछे का हिस्सा नीचे की तरफ़ झुका रहता

है वैसे सूर्य का रथ बाद दोपहर के पश्चिम के तरफ झुका रहता है, यह दोनों में सादृश्यता है, उसका जमहाई विद्युत् तुल्य है, क्योंकि बिजुली की सादृश्यता मुखके साथ है, जब वह एकाएक खुल उठता है, और उसके शरीर का झाड़ना मानो बादल का गर्जना है, दोनों में शब्द की सादृश्यता है, उसका मूत्र करना वृष्टिका वर्षना है, क्योंकि दोनों एकही प्रकार के छिड़काव करते हैं, यही दोनों की सादृश्यता है, उसका हिनहिनाना जो शब्द है इसमें आरोप किसीका नहीं है ऐसा ध्यान करने से यज्ञ की सफलता होती है, क्योंकि अध्यात्म और अधिदेव एकही हैं, जो विश्व है वही विराट् है, जो व्यष्टि है वही समष्टि है, भेद केवल छोटे बड़े का है, वास्तव में दोनों एकही हैं ॥ १ ॥

मन्त्रः २

अहर्वा अश्वं पुरस्तान्महिमान्वजायत तस्य पूर्वे समुद्रे योनी रात्रिरेनं पश्चान्महिमान्वजायत तस्यापरे समुद्रे योनिरेतौ वा अश्वं महिमानावभितः संबभूवतुः हयो भूत्वा देवानवहद्वाजी गंधर्वानर्वासुरानश्वो मनुष्यान्समुद्र एवास्य बन्धुः समुद्रो योनिः॥

इति प्रथमं ब्राह्मणम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अहः, वा, अश्वम्, पुरस्तात्, महिमा, अन्वजायत, तस्य, पूर्वे, समुद्रे, योनिः, रात्रिः, एनम्, पश्चात्, महिमा, अन्वजायत, तस्य, अपरे, समुद्रे, योनिः, एतौ, वा, अश्वम्, महिमानौ, अभितः, संबभूवतुः, हयः, भूत्वा, देवान्, अवहत्, वाजी, गंधर्वान्, अर्वा, असुरान्, अश्वः, मनुष्यान्, समुद्रः, एव, अस्य, बन्धुः, समुद्रः, योनिः ॥

अन्वयः पदार्थाः	अन्वयः पदार्थाः
अहः=दिनही	महिमा=महिमा यानी सोने का कटोरा
वा=निश्चय करके	अन्वजायत=होता भया
अश्वम् पुरस्तात्=घोड़े के आगे का	+ च=और

रात्रिः=रात्रि

एनम् पश्चात् }=इस घोड़े के पीछे के तरफका

महिमा=महिमा नामक चांदी का कटोरा

अन्वजायत=होता भया

तस्य=तिस पहिले महिमा के

योनिः=उत्पत्ति का स्थान

पूर्वे समुद्रे=पूरब का समुद्र है

तस्य=तिस दूसरे महिमा के

योनिः=उत्पत्ति की जगह

अपरे समुद्रे=पश्चिम का समुद्र है

वा=और

एतौ=ये दोनों

महिमानौ=महिमा नामक कटोरे

अश्वम्=घोड़े के

अभितः=आगे पीछे

संबभूवतुः=रक्खे गये

+ सः=वह घोड़ा

हयः=हय होकर

देवान्=देवों को

अवहत्=ले जाता भया यानी उन का वाहन हुआ

वाजी=वाजी

भूत्वा=होकर

गंधर्वान्=गंधर्वों को

+ अवहत्=ले जाता भया यानी उन का वाहन हुआ

अर्वा=अर्वा

+ भूत्वा=होकर

असुरान्=असुरों को

+ अवहत्=ले जाता भया यानी उनका वाहन हुआ

अश्वः=अश्व

+ भूत्वा=होकर

मनुष्यान्=मनुष्यों को

+ अवहत्=ले जाता भया यानी उनका वाहन हुआ

अस्य=इस घोड़े का

बन्धुः=रहने का स्थान

समुद्रः=समुद्र है

+ च=और

योनिः=उत्पत्ति स्थान

एव=भी

समुद्रः=समुद्र है

भावार्थ ।

यज्ञिय घोड़े के आगे और पीछे दो २ कटोरे रक्खे जाते हैं, आगे वाला सोने का होता है, और पीछे वाला चांदी का होता है, इसीको महिमा कहते हैं, सोने वाले कटोरे की सादृश्यता आदित्य के साथ है, क्योंकि हिरण्यगर्भ प्रजापति का प्रतिनिधि आदित्य है, जो दिन के नाम करके प्रसिद्ध है, घोड़े के पीछे का हिस्सा जिसके सामने चांदी का कटोरा रक्खा जाता है उसकी सादृश्यता रात्रि

यानी चंद्रमा से दी गई है, पहिले महिमा के उत्पत्ति का स्थान पूर्व का समुद्र है, वह जगह जहां सुवर्ण का कटोरा रक्खा है उसी को पूर्व का समुद्र माना है, क्योंकि वह कटोरा पूर्व के तरफ रक्खा जाता है, और सूर्य भी पूर्व की तरफ से निकलता है, घोड़े के पीछे का कटोरारूपी महिमा का स्थान पश्चिम का समुद्र माना है, क्योंकि यज्ञिय घोड़े का पिछला भाग पश्चिम तरफ होता है जहां कटोरा रक्खा गया है, वह जगह दूसरे कटोरारूपी महिमा की जगह है, जो समुद्र माना गया है क्योंकि चंद्रमा पश्चिम दिशा में निकलता है, कटोरों का नाम महिमा रखने का कारण यह है कि ऐसा गौरव को पाया हुआ घोड़ा और घोड़ों से अति श्रेष्ठ होता है, जिस घोड़े पर देवता सवार होते हैं उसका नाम हय है, जिस घोड़े पर गंधर्व सवार होते हैं उसका नाम वाजी है, जिसपर असुर सवार होते हैं उसका नाम अर्वा है, और जिस पर मनुष्य सवार होते हैं उसका नाम अश्व है, और जो घोड़े के रहने और उत्पत्ति की जगह समुद्र कहा है उस से यह प्रकट किया गया है कि सब के उत्पत्ति का कारण जलही है, यानी जल ही करके सबकी सृष्टि होती है, सो जल हिरण्यगर्भ से उत्पन्न हुआ है, इसी कारण उसकी श्रेष्ठता है ॥ २ ॥

इति प्रथमं ब्राह्मणम् ॥ १ ॥

अथ द्वितीयं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

नैवेह किंचनाग्र आसीन्मृत्युनैवेदमावृतमासीत् अशनायया-शनायाहि मृत्युस्तन्मनोकुरुतात्मन्वी स्यामिति सोर्चन्नचरत्तस्यार्चत आपोजायन्तार्चते वै मे कमभूदिति तदेवार्कस्यार्कत्वं कं ह वा अस्मै भवति य एवमेतदर्कस्यार्कत्वं वेद ॥

पदच्छेदः ।

न, एव, इह, किंचन, अग्रे, आसीत्, मृत्युना, एव, इदम्, आवृतम्, आसीत्, अशनायया, अशनाया, हि, मृत्युः, तत्, मनः, अकुरुत,

आत्मन्वी, स्याम्, इति, सः, अर्चन्, अचरत्, तस्य, अर्चतः, आपः, अजायन्त, अर्चते, वै, मे, कम्, अभूत्, इति, तत्, एव, अर्कस्य, अर्कत्वम्, कम्, ह, वा, अस्मै, भवति, यः, एवम्, एतत्, अर्कस्य, अर्कत्वम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थाः
अग्रे=सृष्टि के पहिले	
इह=यहां	
किंचन एव=कुछ भी	
न=नहीं	
आसीत्=था	
इदम्=यह ब्रह्मांड	
अशनायया=बुभुक्षारूप	
मृत्युना=मृत्यु यानी हिरण्यगर्भ ईश्वर करके	
एव=ही	
आवृतम्=आवृत था	
हि=क्योंकि	
अशनाया=बुभुक्षारूपी	
मृत्युः=मृत्युही यानी हिरण्यगर्भ	
+ इति=ऐसी	
+ ऐच्छत=इच्छा करता भया कि	
+ अहम्=मैं	
आत्मन्वी=मनवाला	
स्याम्=होऊं	
तत्=तिसके पीछे	
सः=वह	
मनः=मनको	
अकुरुत=उत्पन्न करता भया	
सः=फिर वही हिरण्यगर्भ	
अर्चन्=ध्यान करते हुये	
अचरत्=प्रकृति के परमाणु को संचालन करता भया	

अन्वयः	पदार्थाः
+ तदा=तब	
तस्य=तिस	
अर्चतः=ध्यानकरनेवाले हिरण्यगर्भ से	
आपः=जल	
अजायन्त=उत्पन्न होता भया	
+ तदा=तब	
+ सः=वह हिरण्यगर्भ	
इति=ऐसा	
+ अमन्यत=मानता भया कि	
कम्=जलादि	
मे=मुझ	
अर्चते=तपरूप विचार करनेवाले के लिये ही	
अभूत्=उत्पन्न हुआ है यानी मेरे रहने का स्थान हुआ है	
तत् एव=वही	
अर्कस्य=पूजनीय देव हिरण्यगर्भ ईश्वर का	
एतत्=यह	
अर्कत्वम्=अर्कत्व यानी ईश्वरत्व है अथवा स्वभाव है	
यः=जो	
एवम्=इस प्रकार	
अर्कस्य=हिरण्यगर्भ ईश्वर के	
अर्कत्वम्=ईश्वरत्व को	
वा=और	

कम्=जल को	ह=अवश्य
वेद=जानता है	वै=अभीष्ट
अस्मै=उसके लिये	भवति=फल की सिद्धि होती है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! इस वक्ष्यमाण सृष्टिक्रम के पहिले कुछ भी नहीं था, यह विश्व बुभुक्षारूप मृत्यु यानी हिरण्यगर्भ ईश्वर करके आवृत था; पहिले कुछ नहीं था यह जो कहा गया है इससे मतलब यह है कि जो इस काल में नाम रूप करके जगत् दृश्यमान होरहा है वह ऐसी सूरत में नहीं था, परंतु प्रलय होने पर प्रकृति के कार्य परमाणुरूप में और जीव अदृष्टरूप में स्थित थे, तिन्हीं को हिरण्यगर्भ ईश्वर आच्छादित किये था, यानी उनमें व्याप्त था, ऐसे होते संते हिरण्यगर्भ ईश्वर ने इच्छा की कि मैं मनवाला होऊं, तब उसी क्षण मनवाला हुआ, और मन को उत्पन्न किया, और उसके आश्रित हुये प्रकृति के परमाणु आदि में संचालन शक्ति उत्पन्न होआई, तिसके पीछे तिस स्मरण करनेवाले हिरण्यगर्भ ईश्वर में परिश्रम के कारण उष्णता होआई जो उस यज्ञिय अश्वरूप हिरण्यगर्भ की अग्नि के तुल्य है, तिस उष्णता से जल उत्पन्न होआया, तब हिरण्यगर्भ ईश्वर ने समझा कि मुझ विचार करनेवाले के लिये जल आदि उत्पन्न हुये हैं, जो मेरे रहने की जगह है, यही उस परम पूजनीय ईश्वर की ईश्वरता है. जो उपासक इस प्रकार हिरण्यगर्भ ईश्वर की ईश्वरता को और जल के जलत्व को जानता है वह अपने अभीष्ट फल को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

मन्त्रः २

आपो वा अर्कस्तद्यदपां शर आसीत्तत्समहन्यत सा पृथिव्यभवत्तस्यामश्राम्यत्तस्य श्रान्तस्य तप्तस्य तेजोरसो निरवर्त्तताग्निः ॥

पदच्छेदः ।

आपः, वा, अर्कः, तत्, यत्, अपाम्, शरः, आसीत्, तत्,

समहन्यत, सा, पृथिवी, अभवत्, तत्, तस्याम्, अश्राम्यत्, तस्य, श्रान्तस्य, तप्तस्य, तेजोरसः, निरवर्त्तत, अग्निः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
अर्कः	अर्कही
वै	निश्चय करके
आपः	जल है
तत्	वह
यत्	जो
अपाम्	जल का
शरः	फेन
+ दध्नः	दही के
+ मण्डम्	मांडकी
+ इव	तरह
आसीत्	उत्पन्न हुआ
तत्	वही
समहन्यत	तेज करके कठोर होता भया
+ पुनः	फिर
सा	वही
पृथिवी	पृथ्वी
अभवत्	होतीभई यानी अंडे के आकार में दिखाई दी
तस्याम्	तिस पृथ्वी के
+ उत्पादितायाम्	उत्पन्न होनेपर
+ हिरण्यगर्भः	हिरण्यगर्भ ईश्वर
अश्राम्यत्	श्रमित होताभया
श्रान्तस्य	तिस श्रमित हुये
तप्तस्य	खेदयुक्त
तस्य	उस हिरण्यगर्भ ईश्वर के
+ शरीरात्	शरीर से
तेजोरसः	तेजरस
अग्निः	अग्नि
निरवर्त्तत	निकलता भया यानी अंडे के भीतर प्रथम शरीर रखनेवाला हिरण्यगर्भ होता भया

भावार्थ ।

हे सौम्य ! अर्कही जल है, अर्क को सूर्य भी कहते हैं, और अग्नि भी कहते हैं, सृष्टिक्रम में जल के बाद अग्नि होता भया, चूंकि कारण कार्य में भेद नहीं होता है, इसलिये यहां अग्नि और जल की एकता है, जल में चलन होने के कारण फेन या झाग उठ आया, वह दही की तरह जम गया, वही फिर अग्नि की उष्णता पाकर कठोर होकर पृथ्वी होगई, वह पृथ्वी अंडे के आकार में दिखलाई पड़ी, इस पृथ्वी के उत्पन्न होने पर हिरण्यगर्भ ईश्वर जिसका दूसरा नाम विराट्

और प्रजापति भी है श्रमित होता भया, तिस श्रमित खेदयुक्त हिरण्यगर्भ ईश्वर के शरीर से तेजरस अग्नि उत्पन्न होता भया, यानी उस अंडे के भीतर प्रथम शरीर का रखनेवाला हिरण्यगर्भ हुआ ॥२॥

मन्त्रः ३

स त्रेधात्मानं व्यकुरुतादित्यं तृतीयं वायुं तृतीयं स एष प्राणस्त्रेधा विहितः तस्य प्राची दिक् शिरोऽसौ चासौ चेर्मौ अथास्य प्रतीची दिक् पुच्छमसौ चासौ च सक्थ्यौ दक्षिणा चोदीची च पार्श्वे द्यौः पृष्ठमन्तरिक्षमुदरमियमुरः स एषोऽप्सु प्रतिष्ठितो यत्र क्व चैति तदेव प्रतितिष्ठत्येवं विद्वान् ॥

पदच्छेदः ।

सः, त्रेधा, आत्मानम्, व्यकुरुत, आदित्यम्, तृतीयम्, वायुम्, तृतीयम्, सः, एषः, प्राणः, त्रेधा, विहितः, तस्य, प्राची, दिक्, शिरः, असौ, च, असौ, च, ईर्मौ, अथ, अस्य, प्रतीची, दिक्, पुच्छम्, असौ, च, असौ, च, सक्थ्यौ, दक्षिणा, च, उदीची, च, पार्श्वे, द्यौः, पृष्ठम्, अन्तरिक्षम्, उदरम्, इयम्, उरः, सः, एषः, अप्सु, प्रतिष्ठितः, यत्र, क्व, च, एति, तत्, एव, प्रतितिष्ठति, एवम्, विद्वान् ॥

अन्वयः	पदार्थाः
सः	वह विराट्
आत्मानम्	अपने को
त्रेधा	तीन
व्यकुरुत	भागों में विभाग करता भया
+ कथम्	कैसे तीन प्रकार किया सो कहते हैं
आदित्यम् आत्मानम् तृतीयम्	अलावा अग्नि वायु के सूर्य को अपना तीसरा स्वरूप
+ अकुरुत	करता भया
वायुम् आत्मानम् तृतीयम्	अलावा अग्नि और सूर्य के वायु को तीसरा स्वरूप
+ अकुरुत	करता भया
+ तथा	तैसेही
+ अग्निम् आत्मानम् + तृतीयम्	अलावा वायु और सूर्य के अग्नि को अपनातीसरा स्वरूप

+ अकुरुत=करता भया
स:=सोई
एष:=यह
प्राण:=सर्वभूतांत:स्थ विराट्
त्रेधा=अग्नि वायु सूर्य करके तीन प्रकार का
विहित:=विभाग किया हुआ है
तस्य + एव=ऐसे तिस घोड़े का
शिर:=शिर
प्राचीदिक्=पूर्वदिशा है
असौ=यह यानी ईशानी दिशा
च=और
असौ=यह यानी आग्नेयी दिशा
ईर्मौ=बाहु हैं
अथ=और
अस्य=उसका
प्रतीची=पश्चिम
दिक्=दिशा
पुच्छम्=पिछला भाग है
असौ=वायु दिशा
च=और
असौ=नैर्ऋति दिशा
सक्थ्यौ=जंघा हैं
दक्षिणा=दक्षिण
च=और
उदीची=उत्तर दिशा
पार्श्वे=उसकी बगलें हैं
द्यौ:=स्वर्ग
पृष्ठम्=पीठ है
अन्तरिक्षम्=आकाश
उदरम्=पेट है
इयम्=यह पृथ्वी
उर:=हृदय है
स:=वही
एष:=यह प्रजापति रूप अश्वमेधाग्नि
अप्सु=जल में
प्रतिष्ठित:=स्थित है
यत्र=जहां
क्व=कहीं
एवम्=ऐसा
विद्वान्=ज्ञाता
एति=जाता है
तदेव=वहां
प्रतितिष्ठति=प्रतिष्ठा पाता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! वह विराट् अपने को तीन भागों में विभाग करता भया, कैसे उसने तीन भागों में विभाग किया सो कहते हैं, तुम सावधान होकर सुनो, अलावा वायु और अग्नि के उसने सूर्य को अपना तीसरा स्वरूप रचा, इसी प्रकार अलावा अग्नि और सूर्य के वायु को अपना तीसरा स्वरूप रचा, तैसेही अलावा वायु और सूर्य के अग्नि को अपना तीसरा स्वरूप रचा, सोई यह सर्वभूतांत:स्थ विराट् अग्नि

वायु सूर्य करके तीन प्रकार का विभाग किया हुआ अश्वमेध अग्नि में आरोपित किया हुआ घोड़ा है, यानी ऐसी जो अश्वमेध अग्नि है वही मानो एक घोड़ा है, उसका शिर पूर्व दिशा है, उसके बाहु ईशानी और आग्नेयी दिशा हैं, उसका पिछला भाग पश्चिम दिशा है, उसके दोनों जांघ वायु दिशा और नैर्ऋति दिशा हैं, उसकी बगलें दक्षिण और उत्तर दिशा हैं, उसकी पीठ स्वर्ग है, उसका पेट आकाश है, उसका हृदय पृथिवी है, सोई यह प्रजापतिरूप अश्वमेध अग्नि जल में स्थित है, ऐसा उपासक जहां कहीं जाता है वहां प्रतिष्ठा को प्राप्त होताहै ॥ ३ ॥

मन्त्रः ४

सोऽकामयत द्वितीयो म आत्मा जायेतेति स मनसा वाचं मिथुनं समभवदशनाया मृत्युस्तद्यद्रेत आसीत्स संवत्सरोऽभवत् न ह पुरा ततः संवत्सर आस तमेतावन्तं कालमबिभः यावान्संवत्सरस्तमेतावतः कालस्य परस्तादसृजत तं जातमभिव्याददात्स भाणकरोत्सैव वागभवत् ॥

पदच्छेदः ।

सः, अकामयत, द्वितीयः, मे, आत्मा, जायेत, इति, सः, मनसा, वाचम, मिथुनम, समभवत्, अशनाया, मृत्युः, तत्, यत्, रेतः, आसीत्, सः, संवत्सरः, अभवत्, न, ह, पुरा, ततः, संवत्सरः, आस, तम्, एतावन्तम्, कालम्, अबिभः, यावान्, संवत्सरः, तम, एतावतः, कालस्य, परस्तात, असृजत, तम्, जातम्, अभिव्याददात्, सः, भाण्, अकरोत्, सा, एव, वाक्, अभवत् ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
सः=वह		मे=मेरा	
अशनाया=भूखरूप		द्वितीयः=दूसरा	
मृत्युः=मृत्यु		आत्मा=शरीर	
अकामयत=इच्छा करता भया कि		जायेत=हो	

इति=इसलिये
सः=वह प्रजापति मृत्यु ने
मनसा=मनके
+ सह=साथ
वाचम् मिथुनम् समभवत्=वाणी को संयोजित करता भया
+ पुनः=फिर
तत्र=तिस वाणी और मनके संबन्ध में
यत्=जो
रेतः=ज्ञानरूप बीज
आसीत्=था
सः=वही
संवत्सरः=संवत्सर कालरूप
+ प्रजापतिः=प्रजापति
अभवत्=होता भया
ततः=तिससे
पुरा=पहिले
संवत्सरः=काल
न=न
आस ह=था
तम्=उस गर्भ विषे आयेहुये प्रजापति को
एतावन्तम्=इतने
कालम्=कालपर्यन्त
+ मृत्युः= मृत्यु
अबिभः=धारण करता भया
यावान्=जितने कालतक
संवत्सरः=संवत्सर
+ प्रसिद्धः=प्रसिद्ध है
एतावतः=इस
कालस्य=कालके
परस्तात्=पीछे
तम्असृजत=उसको यानी वह अपने को अंडे में भे उत्पन्न करता भया
+ च=और
सः=वह
+ मृत्युः=मृत्यु
तम्=उस
जातम्=उत्पन्न हुये कुमार के
+ अत्तुम्=खाने के लिये
अभिव्याददात्=मुख खोलता भया
तदा=तब
सः=वह कुमार
+ भीतः=डरता
+ सन्=हुआ
भाण्=भाण्
+ इति=ऐसा शब्द
अकरोत्=करता भया
सा एव=वही भाण्
वाक्=वाक्
अभवत्=होता भया

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब उस भूखरूप मृत्यु ने इच्छा किया कि मेरा दूसरा शरीर उत्पन्न हो तब उसने वाणी को मनके साथ संयोजित किया,

तिस मन और वाणी के मेल से ज्ञानरूपी वीर्य जो शरीर की उत्पत्ति का कारण था सोई संवत्सर कालरूप प्रजापति होता भया, तिसकी उत्पत्ति के पहिले काल नहीं था, हे सौम्य ! उस गर्भ में आये हुये प्रजापति को उतने कालतक मृत्यु धारण करता रहा जितने काल तक कल्प होता है, तिस कालके पीछे वह अपने को ही अंडे में से दूसरे स्वरूप में उत्पन्न करता भया, तिस उत्पन्न किये हुये कुमार को वह मृत्यु खाने के लिये दौड़ा, तब वह डरा हुआ कुमार " भाण् " ऐसा शब्द करता भया, फिर वही शब्द भाण् वाणी होती भई, जो आजतक विख्यात है, यानी बोली जाती है ॥ ४ ॥

मन्त्रः ५

स ऐक्षत यदि वा इममभिमंस्ये कनीयोऽन्नं करिष्यइति स तया वाचा तेनात्मनेदं सर्वमसृजत यदिदं किंचर्चो यजूंषि सामानि छन्दांसि यज्ञान् प्रजाः पशून् स यद्यदेवासृजत तत्तदत्तुमध्रियत सर्वं वा अत्तीति तददितेरदितित्वं सर्वस्यैतस्यात्ता भवति सर्वमस्यान्नं भवति य एवमेतददितेरदितित्वं वेद ॥

पदच्छेदः ।

सः, ऐक्षत, यदि, वा, इमम्, अभिमंस्ये, कनीयः, अन्नम्, करिष्ये, इति, सः, तया, वाचा, तेन, आत्मना, इदम्, सर्वम्, असृजत, यत्, इदम्, किंच, ऋचः, यजूंषि, सामानि, छन्दांसि, यज्ञान्, प्रजाः, पशून्, सः, यत्, यत्, एव, असृजत, तत्, तत्, अत्तुम्, अध्रियत, सर्वम्, वा, अत्ति, इति, तत्, अदितेः, अदितित्वम्, सर्वस्य, एतस्य, अत्ता, भवति, सर्वम्, अस्य, अन्नम्, भवति, यः, एवम्, एतत्, अदितेः, अदितित्वम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
सः=वह मृत्यु		+ दृष्ट्वा=देखकर	
तम्=उस भयभीत कुमार को		ऐक्षत=विचार करता भया कि	

यदि=अगर
+ बुभुक्षया=खाने के ख्याल से
इमम्=इस कुमार को
अभिमंस्ये=मारूं तो
कनीयः=थोड़ा
अन्नम्=आहार
करिष्ये=मिलेगा
इति=इसलिये
सः=वह मृत्यु
तया=उस
वाचा=वाणी
च=और
तेन=उस
आत्मना=मन करके
यत्=जो
किंच=कुछ
इदम्=यह दृश्यमान
इदम्=ब्रह्माण्ड है
सर्वम्=उस सबको
असृजत=उत्पन्न करता भया
पुनः=फिर
ऋचः=ऋग्वेद
यजूंषि=यजुर्वेद
सामानि=सामवेद
छन्दांसि=गायत्र्यादि छन्दों को
यज्ञान्=यज्ञों को
प्रजाः=प्रजाओं को
पशून्=पशुओं को
+ असृजत=उत्पन्न करता भया
सः=वह प्रजापति
यत्=जिस
यत्=जिसको
असृजत=उत्पन्न करता भया
तत्=उसी
तत्=उसी को
अत्तुम्=खाने के लिये
अध्रियत=इच्छा करता भया
+ यत्=चूंकि
+ मृत्युः=मृत्यु
वै एव=अवश्य
सर्वम्=सबको
अत्ति=खाता है
तत्=इसलिये
अदितेः=अदितिनामक मृत्यु का
अदितित्वम्=अदितित्व
+ प्रसिद्धम्=प्रसिद्ध है
यः=जो
एवम्=इस प्रकार
अदितेः=अदिति के
अदितित्वम्=अदितित्व को
वेद=जानता है
सः=वह
सर्वस्य=सब
एतस्य=इस जगत् का
अत्ता=अत्ता यानी भक्षण करनेवाला होता है
+ च=और
सर्वम् अस्यान्नं भवति=सब अन्नादि उसका भोग होता है

+ हि=क्योंकि + सर्वमात्मा=सब का पृथक् पृथक् आत्मा	+ तस्य एकः + आत्मा + भवति } =उसका एक आत्मा होता है

भावार्थ।

हे सौम्य ! तत्पश्चात् उस भयभीत कुमार को देखकर मृत्यु यानी प्रजापति ने विचार किया कि अगर मैं खाने के ख्याल से इस कुमार को मार डालूं तो बहुत थोड़ा सा आहार पाऊंगा, इसलिये वह मृत्यु-रूप प्रजापति वाणी और मन करके जो कुछ दृश्यमान यह जगत् है उसको उत्पन्न करता भया, और फिर ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, गायत्री छंदादिकों को, यज्ञों को, प्रजाओं को, पशुओं को उत्पन्न करता भया, और जिस जिसको उत्पन्न करता भया, उस उसको वह प्रजापति खाने की इच्छा करता भया, कारण इसका यह है कि मृत्यु सबको अवश्य खा जाता है, और इसीलिये इस मृत्यु का नाम अदिति है, क्योंकि अत्ति धातु से निकला है, जिसका अर्थ खाना है, इस प्रकार जो मृत्यु नामक अदिति के अदितित्व को जानता है यानी यह समझता है कि नाम रूपवाली चीजें भोग हैं और नाशवान् हैं और भोगनेवाला चेतन आत्मा है वह सब जगत् का अत्ता यानी भक्षणकर्त्ता होता है, क्योंकि हर एक व्यष्टिरूप पृथक् पृथक् आत्मा उसका समष्टिरूप एक आत्मा होता है, इसलिये जिस जिसको हर एक जीव खाते हैं वह सब इस मृत्युरूप प्रजापति का भोग होता है ॥ ५ ॥

मन्त्रः ६

सोऽकामयत भूयसा यज्ञेन भूयो यजेयेति सोऽश्राम्यत्स तपोऽतप्यत तस्य श्रान्तस्य तप्तस्य यशोवीर्यमुदक्रामत् । प्राणा वै यशोवीर्यम् तत्प्राणेषूत्क्रान्तेषु शरीरं श्वयितुमध्रियत तस्य शरीर एव मन आसीत् ॥

पदच्छेदः ।

सः, अकामयत, भूयसा, यज्ञेन, भूयः, यजेय, इति, सः, अश्रा-

च्यत्, सः, तपः, अतप्यत, तस्य, श्रान्तस्य, तप्तस्य, यशः, वीर्यम्, उदक्रामत्, प्राणाः, वै, यशः, वीर्यम्, तत्, प्राणेषु, उत्क्रान्तेषु, शरीरम्, श्वयितुम्, अध्रियत, तस्य, शरीरे, एव, मनः, आसीत् ॥

अन्वयः	पदार्थाः
भूयसा	बड़े प्रयत्न
यज्ञेन	यज्ञ विधि करके
भूयः	फिर
यजेय	यज्ञ करूं
इति	ऐसी
सः	वह प्रजापति
अकामयत	इच्छा करता भया
तदा	तब
+ लोकवत्	साधारण मनुष्य की तरह
सः	वह प्रजापति
अश्राम्यत्	थक गया
+ च	और
सः	वह
तपः अतप्यत	दुःखित होता भया
+ ततः	तत्पश्चात्
श्रान्तस्य	थके हुये
तप्तस्य	क्लेशित
तस्य	उस प्रजापति का
यशः	यश यानी प्राण
+ च	और
वीर्यम्	बल
उदक्रामत्	उसके शरीरसे निकलता भया
प्राणाः	प्राणही
वै	निस्संदेह
+ शरीरे	इस शरीर में
यशः	यश
+ च	और
वीर्यम्	बल है
+ तेषु	तिस
प्राणेषु	प्राण के
उत्क्रान्तेषु	निकल जाने पर
तत्	प्रजापति का वह शरीर
श्वयितुम् अध्रियत	फूलगया
+ परन्तु	परन्तु
तस्य	तिस प्रजापति का
मनः	मन
शरीरे एव	उसी मृतक शरीर में
आसीत्	लगा था

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब बड़े भारी यज्ञ करने की प्रजापति ने इच्छा किया तो उसके सामग्री के एकत्र करने में और विधान के सोचने में बहुत श्रमित हुआ, यानी उसको परिश्रम करना पड़ा, और दुःखित भी हुआ,

तत्पश्चात् उस थके हुये क्लेशित खेद को प्राप्त हुये प्रजापति के शरीर से जश और बल दोनों निकल गये, जशही निःसन्देह प्राण है, और बल इन्द्रिय है, इन्द्रियबल से मतलब कर्म इन्द्रिय, और ज्ञान इन्द्रिय हैं, शरीर में यही दो यानी प्राण और इन्द्रिय मुख्य हैं, जब ये दोनों निकल गये प्रजापति का मृतक शरीर फूल आया, परन्तु उसका चित्त अथवा मन उसी मृतक शरीर में लगारहा ॥ ६ ॥

मन्त्रः ७

सोऽकामयत मेध्यं म इदं स्यादात्मन्व्यनेन स्यामिति ततोऽश्वः समभवद्यदश्वत्तन्मेध्यमभूदिति तदेवाश्वमेधस्याश्वमेधत्वम् एष हवा अश्वमेधं वेद य एनमेवं वेद तमनवरुध्यैवामन्यत तं संवत्सरस्य परस्तादात्मन आलभत पशून् देवताभ्यः प्रत्यौहत् तस्मात्सर्वदेवत्यं प्रोक्षितं प्राजापत्यमालभन्त एष हवा अश्वमेधो य एष तपति तस्य संवत्सर आत्मायमग्निरर्कस्तस्येमे लोका आत्मानस्तावेतावर्काश्वमेधौ सो पुनरेकैव देवता भवति मृत्युरेवाप पुनर्मृत्युं जयति नैनं मृत्यु-राप्नोति मृत्युरस्याऽऽत्मा भवत्येतासां देवतानामेको भवति ॥

इति द्वितीयं ब्राह्मणम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

सः, अकामयत, मेध्यम्, मे, इदम्, स्यात्, आत्मन्वी, अनेन, स्याम्, इति, ततः, अश्वः, समभवत्, यत्, अश्वत, तत्, मेध्यम्, अभूत्, इति, तत्, एव, अश्वमेधस्य, अश्वमेधत्वम्, एषः, ह, वा, अश्वमेधम्, वेद, यः, एनम्, एवम्, वेद, तम्, अनवरुध्य, एव, अमन्यत, तम्, संवत्सरस्य, परस्तात्, आत्मने, आलभत, पशून्, देवताभ्यः, प्रत्यौहत्, तस्मात्, सर्वदेवत्यम्, प्रोक्षितम्, प्राजापत्यम्, आलभन्ते, एषः, ह, वा, अश्वमेधः, यः, एषः, तपति, तस्य, संवत्सरः, आत्मा, अयम्, अग्निः, अर्कः, तस्य, इमे, लोकाः, आत्मानः, तौ, एतौ, अर्काश्वमेधौ, सा, उ,

पुनः, एका, एव, देवता, भवति, मृत्युः, एव, अप, पुनः, मृत्युम् , जयति, न, एनम्, मृत्युः, आप्नोति, मृत्युः, अस्य, आत्मा, भवति, एतासाम्, देवतानाम्, एकः, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
सः	वह प्रजापति
+ इति	ऐसी
अकामयत	इच्छा करता भया कि
मे	मेरा
इदम्	यह शरीर
मेध्यम्	यज्ञ के योग्य
स्यात्	हो
+च	और
अनेन	इसी शरीर करके
आत्मन्वी	दूसरा शरीर वाला मैं
स्याम्	होऊं
इति	इस सोचने पर
यत्	जो
तत्	वह
अश्वत्	शरीर प्रजापति का फूल गया था
+ तत्प्रवेशात्	उसी में प्रजापति के प्रवेश करने से
तत्	वह शरीर
मेध्यम्	पवित्र
अभूत् इति	होगया
ततः	तिसके पीछे
सः	वह प्रजापति स्वयंही
अश्वः	घोड़ा
अभवत्	होगया
+ तत् एव	वही
अश्वमेधस्य	अश्वमेध का
अश्वमेधत्वम्	अश्वमेधत्व है यानी जो पहिले शरीरफूला और अपवित्र था वही पीछे से प्रजापति के प्रवेश करने से पवित्र हुआ इसलिये उसका नाम अश्वमेध पड़ा
यः	जो उपासक
एवम्	कहे हुये प्रकार
अश्वमेधम्	अश्वमेध को
वेद	जानता है
एषः	वह
वा ह	अवश्य
+ ज्ञाता	अश्वमेध का ज्ञाता
+ भवति	होता है
+ च	और
यः	जो
एवम्	इसप्रकार
एनम्	इस प्रजापतिरूप अश्व को
वेद	जानता है
एषः	यही
+ अश्वमेधम्	अश्वमेध को भी
वेद	जानता है
+ पुनः	फिर
+ सः	वह प्रजापति
अमन्यत	इच्छा करता भया कि

तम्=उस छूटे हुये घोड़े को
अननुरुध्य एव=विना किसी रुकावट के
+संवत्सरम् भ्रामयामास=एक वर्ष तक फिराता भया
+ च=और
संवत्सरस्य परस्तात्=एक वर्ष के पीछे
आत्मने=अपने लिये
तम्=उसी घोड़े को
आलभत=अग्नि में समर्पण करता भया
पशून्=और बहुतेरे पशुओं को भी
देवताभ्यः=देवताओं के लिये
प्रत्यौहत्=संप्रदान करता भया
+ तस्मात्=इसलिये
सर्वदेवत्यम्=सब देवताओं को आवाहन किया गया है जिसमें ऐसे
प्रोक्षितम्=पवित्र किये हुये
प्राजापत्यम्=प्रजापति देवता वाले घोड़े को
+ याज्ञिकाः=इदानींकाल के यज्ञकर्ता
आलभन्ते=यज्ञ विषे संप्रदान करते हैं
यः=जो सूर्य
तपति=प्रकाशित होता है
एषः=वही
ह वा=निश्चय करके
अश्वमेधः=अश्वमेध है
तस्य=उसी सूर्य का
एषः=यह
आत्मा=शरीर
संवत्सरः=संवत्सर है
अयम्=यह
अग्निः=अश्वमेधाग्नि ही
अर्कः=सूर्य है
तस्य=उसी के
आत्मानः=अंग
इमे=ये
लोकाः=तीनोंलोक हैं
तौ=अग्नि और सूर्य
एतौ=ये दोनों अग्नि और सूर्य हैं
अर्काश्वमेधौ=यानी अश्व सूर्य और सूर्य अश्वमेध है
उ=और
पुनः=फिर
+ तौ=वे दोनों देवता यानी अग्नि और सूर्य
एका=मिलाकर
सा=वह
एव=ही
+ देवता मृत्युः भवति=प्रजापति देवता है सोई मृत्यु है
+ यः=जो उपासक
+ एवम्=इसप्रकार
+ वेद=जानता है
+ सः=वह
पुनः=आनेवाली
मृत्युम्=मृत्यु को

अपजयति=जीत लेता है	भवति=होजाता है
एनम्=ऐसे ज्ञाता को	+ किंच=और
मृत्युः=मौत	+ सः=वह ज्ञाता
न=नहीं	एतासाम्=इन
आप्नोति=प्राप्त होती है	देवतानाम्=देवताओं का
+ हि=क्योंकि	एकः=एकस्वरूप
मृत्युः=मृत्युही	भवति=होताहै यानी तदाकार होजाता है
अस्य=इस ज्ञाता का	
आत्मा=आत्मा	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! प्रजापति ने ऐसी इच्छा की कि यह मेरा मृतक शरीर यज्ञ के योग्य फिर होजाय, इसी करके मैं दूसरा शरीरवाला होऊं, उसके इस प्रकार सोचने पर वह जो मृतक शरीर प्रजापति का फूला था, उसमें वह प्रवेश कर गया, उसके प्रवेश करने से शरीर अचेत से सचेत होगया, उसी शरीर विषे गया हुआ प्रजापति घोड़ा होगया, यही अश्वमेध का अश्वमेधत्व है, यानी जो पहिले शरीर फूला हुआ और अपवित्र था, वही पीछे को प्रजापति के प्रवेश करने से पवित्र होगया, इसलिये उसका नाम अश्वमेध पड़ा, क्योंकि प्रजापति अति श्रेष्ठ और अतिपवित्र है, जो उपासक इस प्रकार अश्वमेधरूपी प्रजापति को जानता है, वही अवश्य अश्वमेधयज्ञ का ज्ञाता होता है, जो इस प्रकार उस प्रजापतिरूप अश्व को जानता है, वही अश्वमेध यज्ञ को जानता है, यहां द्वितीय वार कहने से गुरु शिष्य को निश्चय कराता है कि वही अश्वमेधयज्ञ का ज्ञाता होता है जो भली प्रकार अश्वमेधरूप प्रजापति को जानता है, और दूसरा कोई नहीं होसकता है, पुनः वह प्रजापति ऐसी इच्छा करता भया कि जो छूटा हुआ घोड़ा है वह विना किसी रुकावट के एक वर्ष पर्यन्त चारो दिशाओं में घूमता रहै, ऐसा ही किया भी गया, जब घोड़ा वापिस

लाया गया तब उसने अग्नि में अपने लिये समर्पण किया, और उसके साथ बहुतेरे पशुओं को भी अन्य देवताओं के लिये यानी इन्द्रियादि देवताओं के लिये संप्रदान किया, इसलिये सब देवताओं का आवाहन किया गया है जिसमें ऐसे पवित्र किये हुये प्रजापति-रूप घोड़े को इदानींकाल के यज्ञकर्त्ता पुरुष भी यज्ञ विषे संप्रदान करते हैं, हे शिष्य ! जो प्रकाशमान सूर्य दिखाई देता है, वही निश्चय करके अश्वमेध है, इस सूर्य का शरीर संवत्सर है, यह अश्वमेध अग्नि निश्चय करके सूर्य है, इसके अंग भूर्, भुवः, स्वः, ये तीन लोक हैं, और अग्नि सूर्य है, सूर्य अश्वमेध है, और ये दोनों देवता यानी अग्नि और सूर्य दोनों मिला कर एक प्रजापति देवता है, जो उपासक इस प्रकार जानता है, वह आनेवाले मृत्यु को जीत लेता है, क्योंकि ऐसे ज्ञाता के पास मृत्यु नहीं आता है, क्योंकि वह मृत्यु उस ज्ञाता का आत्मा होता है, और वह इस प्रकार का जानने वाला पुरुष देवतारूप होजाता है यानी प्रजापति होजाता है ॥ ७ ॥

इति द्वितीयं ब्राह्मणम् ॥ २ ॥

अथ तृतीयं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

द्वया ह प्राजापत्या देवाश्चासुराश्च ततः कानीयसा एव देवा ज्यायसा असुरास्त एषु लोकेष्वस्पर्धन्त तेह देवा ऊचुर्हन्तासुरान्यज्ञ उद्गीथेनात्ययामेति ॥

पदच्छेदः ।

द्वयाः, ह, प्राजापत्याः, देवाः, च, असुराः, च, ततः, कानीयसाः, एव, देवाः, ज्यायसाः, असुराः, ते, एषु, लोकेषु, अस्पर्धन्त, ते, ह, देवाः, ऊचुः, हन्त, असुरान्, यज्ञे, उद्गीथेन, अत्ययाम, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
ह=यह कहा गया है कि		द्वयाः=दो प्रकार के थे	
प्राजापत्याः=प्रजापति के सन्तान		देवाः=एक देवता	

च=दूसरे
असुराः च=असुर
ततः=उनमें से
देवाः=देवता
कानीय-सा: एव = असुरों की अपेक्षा कम थे
+ च=और
असुराः=असुर
ज्यायसाः=देवताओं से ज्यादा थे
ते=वे दोनों
एषु=इन
लोकेषु=लोकों या शरीरों में
अस्पर्धन्त=एक दूसरे के दबाने के लिये इच्छा करते भये
ह=तत्पश्चात्
ते=वे
देवाः=देवता
ऊचुः=विचार करते भये कि
हन्त=यदि सबकी अनुमति हो तो
+ वयम्=हम
यज्ञे=ज्योतिष्टोम नामक यज्ञ में
उद्गीथेन=उद्गीथ की सहायता करके
असुरान्=असुरों के ऊपर
अत्ययाम इति =अतिक्रमण करें

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ऐसा सुना गया है कि प्रजापति के संतान दो प्रकार के हुये, इनमें से एक देवता थे, दूसरे असुर थे, असुर देवताओं की अपेक्षा संख्या में ज्यादा थे, और देवता असुरों की अपेक्षा संख्या में कम थे, वे दोनों लोकों या शरीरों में एक दूसरे के दबाने के लिये इच्छा करते भये, तिसके पीछे देवताओं को मालूम हुआ कि असुर हमको दबालेंगे तब वे आपुस में एक दूसरे से कहने लगे कि यदि सब की अनुमति हो तो ज्योतिष्टोम नामक यज्ञ में उद्गीथ की सहायता करके असुरों पर अतिक्रमण करें ॥ १ ॥

मन्त्रः २

ते ह वाचमूचुस्त्वं न उद्गायेति तथेति तेभ्यो वागुदगायत् यो वाचि भोगस्तं देवेभ्य आगायद्यत्कल्याणं वदति तदात्मने ते विदुरनेन वैन उद्गात्राऽत्येष्यन्तीति तमभिद्रुत्य पाप्मनाऽविध्यन्स यः स पाप्मा यदेवेदमप्रतिरूपं वदति स एव स पाप्मा ॥

पदच्छेदः ।

ते, ह, वाचम्, ऊचुः, त्वम्, नः, उद्गाय, इति, तथा, इति, तेभ्यः, वाक्, उद्गायत्, यः, वाचि, भोगः, तम्, देवेभ्यः, आगायत, यत्, कल्याणम्, वदति, तत्, आत्मने, ते, विदुः, अनेन, वै, नः, उद्गात्रा, अत्येष्यन्ति, इति, तम्, अभिद्रुत्य, पाप्मना, अविध्यन्, सः, यः, सः, पाप्मा, यत्, एव, इदम्, अप्रतिरूपम्, वदति, सः, एव, सः, पाप्मा ॥

अन्वयः	पदार्थाः
ते	वे देवता
ह	निश्चय के साथ
वाचम्	वाग् देवी से
ऊचुः	कहते भये कि
+ देवि	हे देवी !
त्वम्	तू
नः	हमारे कल्याणार्थ
उद्गाय	उद्गाता बनकर उद्गीथ का गानकर
तथा इति	बहुत अच्छा
इति	ऐसा
+ उक्त्वा	कहकर
वाक्	वाग् देवी
तेभ्यः	उन देवताओं के कल्याण के लिये
उद्गायत्	उद्गीत का गान करती भई
+ तदा	तिसके पीछे
वाचि	वाणी में
यः	जो
भोगः	फल है
तम्	उसको
+ त्रिभिः + पवमानैः	तीन पवमान स्तोत्र करके
देवेभ्यः	देवतों के हित के लिये
आगायत्	वह वाणी देवी भली प्रकार गाती भई
+ च	और
यत्	जो
कल्याणम्	मंगलदायक वस्तु है
+ अवशिष्ट-नवस्तोत्रैः	बचे हुये पवमान नौ स्तोत्रों करके
तत्	उसको
आत्मने	अपने हित के लिये
वदति	गाती भई
+ तदा	तब
ते	वे असुर
विदुः	जानते भये कि
अनेन	इस
उद्गात्रा	उद्गाता की सहायता करके
नः	हम लोगों के ऊपर
अत्येष्यन्ति	देवता आक्रमण करेंगे
इति	इसलिये
तम्	वाणीरूप
अभिद्रुत्य	उस उद्गाता के सामने जाकर उसको

+स्वेन=अपने
पाप्मना=पापरूप अस्त्र करके
अविध्यन्=वेधित करते भये
यत्=जिस कारण
एव=निश्चय करके
सः=वही
सः=यह प्रसिद्ध
एव=निस्संदेह
पाप्मा=पाप है
यः=जो
सः=वह वाणी में स्थित हुआ।
सः=यह प्रसिद्ध
पाप्मा=पाप
इदम्=इस
अप्रतिरूपम्=झूठ आदिक को
वदति=बोलता है.

भावार्थ।

हे सौम्य ! देवताओंने पूर्व कहे हुये विचार को निश्चय करके वाग्देवी से कहा हे देवी ! तू उद्गात्री बनकर हमारे कल्याणार्थ उद्गीथ का गायन कर, उसने कहा बहुत अच्छा, ऐसाही करूंगी, यह कहकर वाग्देवी उन देवताओं के कल्याण के लिये गान करती भई, तिसके पीछे वाक् में जो भोग है अथवा वाक् इन्द्रियद्वारा जो भोग प्राप्त होता है, उसको तीन पवमान स्तोत्रों करके देवताओं के लिये वाग्देवी भलीप्रकार गान करती भई, और जो मंगलदायक वस्तु वाणी करके प्राप्त होने योग्य है, उसको अपने लिये नौ पवनमान स्तोत्रों करके गाती भई, तब असुरों को मालूम हुआ कि देवता इस उद्गाता की सहायता करके हमारे ऊपर आक्रमण करेंगे इसलिये इस वाणीरूप उद्गाता के सामने जाकर उसको अपने पास अस्त्र करके वेधित कर दिया, तिसी कारण जो वह पाप है वही यह प्रत्यक्ष पाप है, जिस करके वाणी अयोग्य वचनों को बोलती है ॥ २ ॥

मन्त्रः ३

अथ ह प्राणमूचुस्त्वं न उद्गायेति तथेति तेभ्यः प्राण उदगायद्यः प्राणे भोगस्तं देवेभ्य आगायद्यत्कल्याणं जिघ्रति तदात्मने ते विदुरनेन वै न उद्गात्रात्येष्यन्तीति तमभिद्रुत्य पाप्मनाविध्यन्स यः स पाप्मा यदेवेदमप्रतिरूपं जिघ्रति स एव स पाप्मा ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, प्राणम्, ऊचुः, त्वम्, नः, उद्गाय, इति, तथा, इति, तेभ्यः, प्राणः, उदगायत्, यः, प्राणे, भोगः, तम्, देवेभ्यः, आगायत्, यत्, कल्याणम्, जिघ्रति, तत्, आत्मने, ते, विदुः अनेन, वै, नः, उद्गात्रा, अत्येष्यन्ति, इति, तम्, अभिद्रुत्य, पाप्मना, अविध्यन्, सः, यः, सः, पाप्मा, यत्, एव, इदम्, अप्रतिरूपम्, जिघ्रति, सः, एव, सः, पाप्मा ॥

अन्वयः	पदार्थाः
अथ ह	इसके बाद
प्राणम्	प्राणदेव से
+ ते	वे देवता
ऊचुः	कहते भये कि
देव	हे देव
त्वम्	तू
नः	हमारे लिये
उद्गाय	उद्गीथ का गानकर
इति तथा	बहुत अच्छा
इति	ऐसा
+ उक्त्वा	कहकर
प्राणः	प्राणदेव
तेभ्यः	उन देवताओं के लिये
उदगायत्	उद्गान करता भया
च	और
यः	जो
प्राणे	प्राण में
भोगः	भोग है
तम्	उसको
देवेभ्यः	देवताओं के लिये
उदगायत्	वह प्राण देवता गान करता भया

अन्वयः	पदार्थाः
+ च	और
यत्	जो
कल्याणम् जिघ्रति	मंगल सुगन्धी वस्तु है और जिसको उद्गाता सूंघता है
तत्	उसको
आत्मने	अपने लिये
प्राणः	प्राण देवता
उद्गाता	गाता भया
+ तदा	तब
+ ते	वे असुर
विदुः	जानगये कि
अनेन	इस
उद्गात्रा	उद्गाता करके
नः	हमको
अत्येष्यन्ति	देवता जीत लेंगे
इति	इसलिये
तम्	उस उद्गाता के
अभिद्रुत्य	सामने जाकर
तम्	उस उद्गाता को
+ स्वेन	अपने
पाप्मना	पापअस्त्र करके

अविध्यन्=वेध करते भये
यत्=जिस कारण
एव=निश्चय करके
सः=वही
सः=यह प्रसिद्ध
एव=निःसंदेह
पाप्मा=पाप है
यः=जो
सः=वह घ्राण में स्थित हुआ
सः=प्रसिद्ध
पाप्मा=पाप
इदम्=इस
अप्रतिरूपम्=दुर्गन्धी को
जिघ्रति=सूंघता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! तिसके पीछे घ्राणदेव से सब देवता कहने लगे कि हे देव ! तू हम लोगों के लिये उद्गाता होकर उद्गीथ का गान कर, उसने कहा बहुत अच्छा, ऐसा कहकर वह घ्राणदेव उन देवताओं के लिये उद्गीथ का गान करता भया, और जो घ्राण में भोग है यानी जो भोग घ्राणेन्द्रिय करके प्राप्त होता है उसको देवताओं के लिये वह घ्राण देवता गान करता भया, और जो सुगंधि वस्तु घ्राणेन्द्रिय करके प्राप्त होने योग्य है, उसको अपने लिये वह गान करता भया, तब वे असुर जान गये कि उद्गाता की सहायता करके देवता हमको जीत लेंगे, तब वे घ्राणदेव उद्गाता के सामने जाकर अपने पापरूप अस्त्र से वेधित कर दिया, इसलिये वह यही पाप है जिस करके घ्राण इन्द्रिय दुर्गंधी को सूंघता है ॥ ३ ॥

मन्त्रः ४

अथ ह चक्षुरूचुस्त्वं न उद्गायेति तथेति तेभ्यश्चक्षुरुदगायत् यश्चक्षुषि भोगस्तं देवेभ्य आगायद्यत्कल्याणं पश्यति तदात्मने ते विदुरनेन वै न उद्गात्राऽत्येष्यन्तीति तमभिद्रुत्य पाप्मनाऽविध्यन्स यः स पाप्मा यदेवेदमप्रतिरूपं पश्यति स एव स पाप्मा ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, चक्षुः, ऊचुः, त्वम्, नः, उद्गाय, इति, तथा, इति, तेभ्यः, चक्षुः, उदगायत्, यः, चक्षुषि, भोगः, तम्, देवेभ्यः, आगायत्, यत्,

कल्याणम्, पश्यति, तत्, आत्मने, ते, विदुः, अनेन, वै, नः, उद्गात्रा, अत्येष्यन्ति, इति, तम्, अभिद्रुत्य, पाप्मना, अविध्यन्, सः, यः, सः, पाप्मा, यत्, एव, इदम्, अप्रतिरूपम्, पश्यति, सः, एव, सः, पाप्मा ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
अथ ह	इसके पीछे	+तदा	तब
ते	वे देवता	ते	वे असुर
चक्षुः	चक्षु अभिमानी देवतासे	विदुः	जान गये कि
ऊचुः	कहते भये कि	अनेन	इस
त्वम्	तू	उद्गात्रा	उद्गाता करके
नः	हमारे लिये	नः	हमारे ऊपर
उद्गाय	उद्गाता बनकर उद्गीथ का गान कर	अत्येष्यन्ति	वे देवता आक्रमण करेंगे
तथा	बहुत अच्छा	इति	इसलिये
इति	ऐसा	तम्	उस उद्गाता के
+ उक्त्वा	कहकर	अभिद्रुत्य	सामने जाकर
चक्षुः	चक्षु अभिमानी देवता	+ स्वेन	अपने
तेभ्यः	उन देवताओं के लिये	पाप्मना	पाप अस्त्र से
उद्गायत्	उद्गान करता भया	तम्	उसको
च	और	अविध्यन्	वेधते भये
चक्षुषि	नेत्र में	यत्	जिसी कारण
यः	जो	एव	निश्चय करके
भोगः	भोग है	सः	वही
तम्	उसको	सः	यह प्रसिद्ध
देवेभ्यः	देवताओं के लिये	एव	निस्सन्देह
आगायत्	उद्गान करता भया	पाप्मा	पाप है
+ च	और	यः	जो
यत्	जो	सः	वह नेत्र में स्थित हुआ
कल्याणम् पश्यति	मंगलदायक रूपहै और जिसको वह देखता है	सः	प्रसिद्ध
तत्	उसको	पाप्मा	पाप
आत्मने	अपने लिये	इदम्	इस
+उद्गायत्	गाता भया	अप्रतिरूपम्	अयोग्य रूप को
		पश्यति	देखता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! फिर वे देवता चक्षुअभिमानी देवता से कहने लगे कि हे चक्षुदेव ! तू हमारे लिये उद्गाता बनकर उद्गीथ का गान कर, उसने कहा बहुत अच्छा, ऐसा कह कर चक्षुदेवता उन देवताओं के लिये उद्गीथ का गान करता भया, और फिर चक्षु करके जो भोग प्राप्त होने योग्य है उसको देवताओं के लिये उद्गान करता भया, और जो मंगल-दायक स्वरूप है उसको अपने लिये उद्गान करता भया तब वे असुर जान गये कि उद्गाता करके देवता हमारे ऊपर आक्रमण करेंगे, इसलिये वे असुर उस उद्गाता के सामने जाकर उसको अपने पाप अस्त्र करके वेधित करदिया, इसलिये वह पाप यही है जिस करके चक्षुदेवता अयोग्य रूपों को देखता है ॥ ४ ॥

मन्त्रः ५

अथ ह श्रोत्रमूचुस्त्वं न उद्गायेति तथेति तेभ्यः श्रोत्रमुदगायत् यः श्रोत्रे भोगस्तं देवेभ्य आगायद्यत्कल्याणं शृणोति तदात्मने ते विदुरनेन वै न उद्गात्राऽत्येष्यन्तीति तमभिद्रुत्य पाप्मनाऽवि-ध्यन्स यः स पाप्मा यदेवेदमप्रतिरूपं शृणोति स एव स पाप्मा ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, श्रोत्रम, ऊचुः, त्वम्, नः, उद्गाय, इति, तथा, इति, तेभ्यः, श्रोत्रम्, उदगायत्, यः, श्रोत्रे, भोगः, तम्, देवेभ्यः, आगायत्, यत्, कल्याणम्, शृणोति, तत्, आत्मने, ते, विदुः, अनेन, वै, नः, उद्गात्रा, अत्येष्यन्ति, इति, तम्, अभिद्रुत्य, पाप्मना, अविध्यन्, सः, यः, सः, पाप्मा, यत्, एव, इदम्, अप्रतिरूपम्, शृणोति, सः, एव, सः, पाप्मा ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
अथ ह	इसके पीछे	ऊचुः	बोले कि
+ देवाः	देवता	त्वम्	तू
श्रोत्रम्	कर्ण अभिमानी देवता से	नः	हमारे लिये

उद्गाय इति=उद्गाता बनकर उद्गीथ का गान कर
तथा=बहुत अच्छा
इति=ऐसा
+ उक्त्वा=कहकर
श्रोत्रम्=श्रोत्रअभिमानी देवता
तेभ्यः=उन देवताओं के लिये
उद्गायत्=उद्गीथ का गान करता भया
+ च=और
यः=जो
श्रोत्रे=श्रोत्र इन्द्रिय में
भोगः=आनन्दादिक हैं
तम्=उसको
देवेभ्यः=देवताओं के लिये
आगायत्=गान करता भया
+ च=और
यत्=जो
कल्याणम् श्रृणोति=मंगलदायक वस्तुहैं और जिसको वह सुनता है
तत्=उसको
आत्मने=अपने लिये
+ आगायत्=गान करता भया
+ तदा=तब
ते=वे असुर
विदुः=जान गये कि
अनेन=इस

उद्गात्रा=उद्गाता करके
वै=निस्सन्देह
+ ते=वे देवता
नः=हमारे ऊपर
अत्येष्यन्ति=अतिक्रमण करेंगे
इति=इसी से
तम्=उस श्रोत्राभिमानी देवता के
अभिद्रुत्य=सामने जाकर
+ तम्=उसको
पाप्मना=पाप के अस्त्र करके
अविध्यन्=वेध कर दिया
तस्मात्=इसलिये
यत्=जिस कारण
एव=निश्चय करके
सः=वही
सः=यह प्रसिद्ध
एव=निस्सन्देह
पाप्मा=पाप है
यः=जो
सः=वह श्रोत्रमें स्थित हुआ
सः=प्रसिद्ध
पाप्मा=पाप
इदम्=इस
अप्रतिरूपम्=अनुचित वाक्यको
श्रृणोति=सुनता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! तिसके पीछे कर्णाभिमानी देवतासे सब देवता बोले कि हे देवेश ! तू हमारे लिये उद्गाता बनकर उद्गीथ का गान कर, उसने कहा बहुत अच्छा, ऐसा कहकर वह श्रोत्रअभिमानी देवता उन देव-

ताओं के लिये उद्गीथ का गान करता भया, और दूसरी वार भी श्रोत्रेन्द्रिय बिषे जो आनन्दादिक फल है, उसका गान देवताओं के लिये करता भया, और जो मंगलादि वस्तु उससे प्राप्त होने योग्य है उसको अपने लिये गाता भया, तब असुरों को मालूम होगया कि इस उद्गाता की सहायता करके ये सब देवता हमारे ऊपर अतिक्रमण करेंगे, ऐसा सोच कर वे असुर उस श्रोत्रअभिमानी देव उद्गाता के सामने जाकर उसको अपने पापअस्त्र करके वेध करदिया, इसकारण यह वही पाप है जिस करके वह श्रोत्रदेव अनुचित वाक्यको सुनताहै ॥ ५ ॥

मन्त्रः ६

अथ ह मन ऊचुस्त्वं न उद्गायेति तथेति तेभ्यो मन उदगायद्यो मनसि भोगस्तं देवेभ्य आगायद्यत्कल्याणं सङ्कल्पयति तदात्मने ते विदुरनेन वै न उद्गात्राऽत्येष्यन्तीति तमभिद्रुत्य पाप्मनाऽविध्यन्स यः स पाप्मा यदेवेदमप्रतिरूपं सङ्कल्पयति स एव स पाप्मैवमु खल्वेता देवताः पाप्मभिरुपासृजन्नेवमेनाः पाप्मनाविध्यन् ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, मनः, ऊचुः, त्वम्, नः, उद्गाय, इति, तथा, इति, तेभ्यः, मनः, उदगायत्, यः, मनसि, भोगः, तम्, देवेभ्यः, आगायत्, यत्, कल्याणम्, संकल्पयति, तत्, आत्मने, ते, विदुः, अनेन, वै, नः, उद्गात्रा, अत्येष्यन्ति, इति, तम्, अभिद्रुत्य, पाप्मना, अविध्यन्, सः, यः, सः, पाप्मा, यत्, एव, इदम्, अप्रतिरूपम्, संकल्पयति, सः, एव, सः, पाप्मा, एवम्, उ, खलु, एताः, देवताः, पाप्मभिः, उपासृजन्, एवम्, एनाः, पाप्मना, अविध्यन् ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
अथ ह	इसके पीछे	ऊचुः	कहते भये कि
ते	वे देवता	त्वम्	तू
मनः	मन अभिमानी देवतासे	नः	हमारे लिये

उद्गाय=उद्गाता बन करके उद्गीथ का गान कर
तथा इति=बहुत अच्छा
इति=ऐसा
+ उक्त्वा=कहकर
मनः=मन अभिमानी देवता
तेभ्यः=उन देवताओं के लिये
उद्गायत्=गान करता भया
+ च=और
यः=जो
मनसि=मनमें
भोगः=आनंदादिक फल है
तम्=उसको
देवेभ्यः=देवताओं के लिये
आगायत्=गान करता भया
+ च=और
यत्=जो
कल्याणम्=मंगलदायक वस्तु है और जिसको वह
संकल्पयति=संकल्प करता है
तत्=उसको
आत्मने=अपने लिये
+ आगायत्=गान करता भया
तदा=तब
ते=वे असुर
विदुः=जानगये कि
वै=अवश्य ही
अनेन=इस
उद्गात्रा=मनोदेव उद्गाता की सहायता करके
नः=हमारे ऊपर
अत्येष्यन्ति=देवता अतिक्रमण करेंगे
इति=इसलिये
+ ते=वे असुर
तम्=उस मनोदेव उद्गाताके
अभिद्रुत्य=सामने जाकर
तम्=उसको
पाप्मना=पाप अस्त्र करके
अविध्यन्=वेध करते भये
यत्=जिसी कारण
एव=निश्चय करके
सः=वही
सः=यह प्रसिद्ध
एव=निस्सन्देह
पाप्मा=पाप है
यः=जो
सः=वह मन में स्थित हुआ
सः=प्रसिद्ध
पाप्मा=पाप
इदम्=इस
अप्रतिरूपम्=अयोग्य वस्तुको
सङ्कल्पयति=संकल्प करता है
उ=इसी प्रकार
खलु=निश्चय करके
एताः=इन वाणी
देवताः=त्वचाआदि इन्द्रियाभिमानी देवताओंको भी
पाप्मभिः=पाप करके
ते=वे असुर
अविध्यन्=वेध करते भये
एवम्=इसीप्रकार
एताः=इन त्वचादि देवताओंको
पाप्मभिः=पापों करके
उपासृजन्=संसर्ग करते भये

भावार्थ ।

हे सौम्य ! तदनन्तर वे सब देवता मनोदेव से कहते भये कि हे मन ! तू उद्गाता बनकर हमारे लिये उद्गीथ का गान कर, उसने कहा बहुत अच्छा, ऐसाही करूंगा, और फिर वह मनोदेव उन देवताओं के लिये गान करता भया, और मन विषे जो आनन्दादि फल हैं, उसको देवताओं के लिये मन देवता तीन पवमान स्तोत्रों करके गान करता भया, और जो जो उसमें मंगलदायक वस्तु है, उसको नव पवमान स्तोत्रों करके अपने लिये गाता भया, तब असुरों ने देखा कि वे सब देवता इस मनोदेव उद्गाता की सहायता करके हमारे ऊपर आक्रमण करेंगे, इसलिये वह असुर उस मनोदेव उद्गाता के सामने जाकर उसको अपने पापअस्त्र करके वेधित करते भये, इसलिये वही यह पाप है जिस करके वह मनोदेव इस अयोग्य वस्तुको संकल्प करता है, यानी अयोग्य वस्तु की इच्छा करता है, और इसी प्रकार त्वचा आदि इन्द्रियाभिमानी देवताओं को भी अपने पाप करके वे असुर वेधते भये ॥ ६ ॥

मन्त्रः ७

अथ हेममासन्यं प्राणमूचुस्त्वं न उद्गायेति तथेति तेभ्य एष प्राण उदगायत्ते विदुरनेन वै न उद्गात्राऽत्येष्यन्तीति तदभिद्रुत्य पाप्मनाऽविव्यत्सन्स यथाऽश्मानमृत्वा लोष्टो विध्वंसेतैवं हैव विध्वंसमाना विष्वंचो विनेशुस्ततो देवा अभवन्पराऽसुरा भवत्यात्मना पराऽस्य द्विषन्भ्रातृव्यो भवति य एवं वेद ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, इमम्, आसन्यम्, प्राणम्, ऊचुः, त्वम्, नः, उद्गाय, इति, तथा, इति, तेभ्यः, एषः, प्राणः, उदगायत्, ते, विदुः, अनेन, वै, नः, उद्गात्रा, अत्येष्यन्ति, इति, तत्, अभिद्रुत्य, पाप्मना, अविव्यत्सन्, सः, यथा, अश्मानम्, ऋत्वा, लोष्टः, विध्वं-

सेत, एवम्, ह, एव, विध्वंसमानाः, विष्वंचः, विनेशुः, ततः, देवाः, अभवन्, परा, असुराः, भवति, आत्मना, परा, अस्य, द्विषन्, भ्रातृव्यः, भवति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थाः
अथ ह=इसके पीछे	
+ ते=वे देवता	
इमम्=इस	
आसन्यम्=मुख्य	
प्राणम्=प्राण से	
ऊचुः=कहते भये कि	
त्वम्=तू	
नः=हमारे कल्याणार्थ	
उद्गाय=उद्गाता बनकर उद्गीथ का गान कर	
तथा इति=बहुत अच्छा	
इति=ऐसा	
+ उक्त्वा=कहकर	
एषः=यही	
प्राणः=मुख्य प्राण	
तेभ्यः=उन देवताओं के लिये	
उद्गायत्=गान करता भया	
+ तदा=तब	
ते=वे असुर	
विदुः=जानते भये कि	
अनेन=इस	
उद्गात्रा=प्राणदेव उद्गाता की सहायता करके	
नः=हमारे ऊपर	
वै=अवश्यही	
अत्येष्यन्ति=अति क्रमणकरेंगे	
इति=इसलिये	

अन्वयः	पदार्थाः
तम्=उस प्राणदेव उद्गाता के	
अभिद्रुत्य=सामने जाकर	
+ स्वेन=अपने	
पाप्मना=पाप अस्त्र करके	
+ तम्=उसको	
अविव्यत्सन्=वेधने की इच्छा करते भये	
+ तदा=तब	
यथा=जैसे	
सः=वह	
लोष्टः=मट्टी का ढेला	
अश्मानम्=पत्थर पर	
ऋत्वा=गिरकर	
विध्वंसेत=नष्ट होजाता है	
एवम् ह एव=तिसीप्रकार	
+ असुराः=असुर	
विष्वंचः=इधर उधर भागते हुये	
विध्वंसमानाः=पृथक् पृथक् होकर	
विनेशुः=नष्ट होते भये	
ततः=तिसी कारण	
+ ते=वे	
देवताः=देवता	
अभवन्=पहिले की तरह प्रकाशमान होतेभये यानी जीतते भये	
+ किंच=और	

असुराः=असुर
परा=परास्त
अभवन्=होते भये
यः=जो उपासक
एवम्=ऐसा
वेद=जानता है
अस्य=उसका
द्विषन्=द्वेष करनेवाला
भ्रातृव्यः=शत्रु
आत्मना=उस प्रजापति करके जो उसका स्वरूप होगया है
परा भवति=नष्ट होजाता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! तदनन्तर वे सब देवता मुख्य प्राण से कहने लगे कि हे प्राण ! तू हमारे कल्याणार्थ उद्गाता बनकर उद्गीथ का गानकर, उसने कहा बहुत अच्छा, ऐसा कहकर वह मुख्य प्राण देवताओं के लिये उद्गीथ का गान करता भया, तब वे असुर जान गये कि इस प्राणदेव उद्गाता की सहायता करके यह सब देवता हमारे ऊपर अवश्य अतिक्रमण करेंगे, इसलिये उस प्राणदेव उद्गाता के सामने जाकर असुर उसको वेधने की इच्छा करते भये, तब जैसे मिट्टी का ढेला पत्थर पर गिरने से चूर चूर होकर इधर उधर छितर वितर होजाता है, उसी प्रकार असुर इधर उधर भागते हुये पृथक् पृथक् होकर नष्ट होगये, यानी ऐसे भागे कि उनका पता न लगा, तिस कारण सब देवता पहिले जैसे जैसे प्रकाशमान थे वैसे ही प्रकाशमान होते भये, यानी असुरों के ऊपर विजयी हुये, और असुर परास्त होगये, हे सौम्य ! जो उपासक इस प्रकार जानता है उसका द्वेष करनेवाला शत्रु नष्ट होजाता है ॥ ७ ॥

मन्त्रः ८

ते होचुः क नु सोऽभूद्यो न इत्थमसक्तेत्ययमास्येऽन्तरिति सोऽयास्य आङ्गिरसोऽङ्गानां हि रसः ॥

पदच्छेदः ।

ते, ह, ऊचुः, क, नु, सः, अभूत्, यः, नः, इत्थम्, असक्त, इति, अयम्, आस्ये, अतः, इति, सः, अयास्यः, आङ्गिरसः, अङ्गानाम्, हि, रसः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ तत्पश्चात्	तिस के पीछे
ते	वे देवता
ऊचुः ह	कहते भये कि
यः	जिसने
नः	हमारी
इत्थम्	इसतरह
असक्त	साथ दिया है
सः	वह
क्व	कहां
अभूत्	है
नु इति	इस प्रश्नपर
+ उत्तरम्	उत्तर मिला कि
सः	वही
अयम्	यही प्राण है
यः	जो
आस्ये अंतः	मुख के अंतर
+ भवति	रहता है
+ च	और
इति	इसीलिये
सः	वह प्राण
अयास्यः	मुखसे उत्पन्न हुआ
+ कथ्यते	कहा जाता है
+ सः	वही मुख्य प्राण
आंगिरसः	आंगिरस भी
+ कथ्यते	कहा जाता है
हि	क्योंकि
+ सः	वह
अंगानाम्	अंगों का
रसः	आत्मा है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! तब वे देवता आपस में कहने लगे कि वह जिसने हमारी इस प्रकार रक्षा की है कहां है, इस प्रश्न के उत्तर में उनमें से किसी ने कहा कि जिस ने हमारी ऐसी रक्षा की है वही प्राण है, वही मुख के अन्तर सदा निवास करता है, इसीलिये वह मुख्य प्राण मुख से उत्पन्न हुआ कहा जाता है, और आङ्गिरस भी कहा जाता है, क्योंकि वह अंगों का आत्मा है ॥ ८ ॥

मन्त्रः ९

सा वा एषा देवता दूर्नाम दूर ँ ह्यस्या मृत्युर्दूर ँ ह वा अस्मान्मृत्युर्भवति य एवं वेद ॥

पदच्छेदः ।

सा, वा, एषा, देवता, दूः, नाम, दूरम्, हि, अस्याः, मृत्युः, दूरम्, ह, वा, अस्मात्, मृत्युः, भवति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
सा	वही	दूरम्	दूर रहता है
वा	निश्चय करके	यः	जो उपासक
एषा	यह	एवम्	इस तरह
देवता	देवता	वेद	जानता है
दूः	दूर	अस्मात्	उस उपासक से
नाम	नाम करके प्रसिद्ध है	ह वा	अवश्य
हि	क्योंकि	मृत्युः	पापरूप मृत्यु
अस्याः	इसप्राणदेवताकेपाससे	दूरम्	दूर
मृत्युः	पापसंसृष्ट मृत्यु	भवति	रहता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! यह मुख्य प्राणदेव "दूर" नाम करके भी प्रसिद्ध है, क्योंकि इस प्राणदेवता के पास से पापसंसृष्ट मृत्यु दूर रहता है, जो उपासक इस तरह से जानता है, उस उपासक से भी पापरूप मृत्यु अवश्य दूर रहता है ॥ ९ ॥

मन्त्रः १०

सा वा एषा देवतैतासां देवतानां पाप्मानं मृत्युमपहत्य यत्राऽऽसां दिशामंतस्तद्गमयाञ्चकार तदासां पाप्मनो विन्यदधात्तस्मान्न जनमियान्नान्तमियान्नेत्पाप्मानं मृत्युमन्ववयानीति ॥

पदच्छेदः ।

सा, वा, एषा, देवता, एतासाम्, देवतानाम्, पाप्मानम, मृत्युम्, अपहत्य, यत्र, आसाम्, दिशाम्, अंतः, तत्, गमयाञ्चकार, तत्, आसाम्, पाप्मनः, विन्यदधात्, तस्मात्, न, जनम्, इयात्, न, अन्तम, इयात, नेत्, पाप्मानम्, मृत्युम्, अन्ववयानि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
सा वै	वही	पाप्मानम्	पापरूप
एषा देवता	यह प्राणदेवता	मृत्युम्	मृत्युको
एतासाम्	इन	अपहत्य	छीन करके
देवतानाम्	वागादि इन्द्रियों के	+ तत्	वहाँ

गमयाञ्चकार=लेगया
यत्र=जहां
आसाम्=इन
दिशाम्=दिशाओं का
अन्तः=अन्त है यानी भारत-वर्ष देशका अन्त है
+च=और
तत्=वहांही
आसाम्=इन देवताओं के
पाप्मनः=पापों को
विन्यदधात्=स्थापित कर दिया
तस्मात्=इसलिये
+ तत्=वहांके
जनम्=लोगों के पास कोई
न=न
इयात्=जाय
+च=और
अन्तम्=उस दिशा के अंत को भी
न=न
इयात्=जाय
+ च=और
इति=ऐसा
नेत्=डर रहै कि
+ यदि=अगर
+जगम=मैं गया तो
पाप्मानम्=पापरूप
मृत्युम्=मृत्यु को
अन्चवयानि=प्राप्तहूंगा

भावार्थ।

हे सौम्य ! वह प्राणदेवता इन वागादि इन्द्रियों के पापरूप मृत्यु को पकड़ करके वहां लेगया, जहां इन दिशाओं का अंत होता है, यानी जहां भारतवर्ष देशका अंत है, और वहांही इन देवताओं के पापों को छोड़दिया है, इसलिये वहांके लोगों के पास कोई न जावे, और उस दिशाके अंत को यानी भारतवर्ष के बाहर न जावे, ऐसा डरता रहे कि अगर मैं भारतवर्ष के बाहर गया तो पापरूप मृत्यु को प्राप्त हो जाऊंगा ॥ १० ॥

मन्त्रः ११

सा वा एषा देवतैतासां देवतानां पाप्मानं मृत्युमपहत्याथैना मृत्युमत्यवहत् ॥

पदच्छेदः।

सा, वा, एषा, देवता, एतासाम्, देवतानाम्, पाप्मानम्, मृत्युम्, अपहत्य, अथ, एनाः, मृत्युम्, अति, अवहत् ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
सा वै	वही	अपहृत्य	उन से छीनकर
एषा	यह मुख्य प्राण	अथ	और
देवता	देवता	मृत्युम्	मृत्युको
एतासाम्	इन	अति	अतिक्रमण करके
देवतानाम्	वागादि देवताओं के	एनाः	वागादि देवताओंको
पाप्मानम्	पापरूप	अवहत्	उत्तम पदवी को प्राप्त करता भया
मृत्युम्	मृत्यु को		

भावार्थ ।

हे सौम्य ! यही मुख्य प्राणदेवता वागादि देवताओं के पापरूप मृत्यु को उनसे पृथक् करके और उसको पकड़कर और स्वतः मृत्यु को आक्रमण करके उन्हीं वागादि देवताओं को उत्तम पदवी पर प्राप्त करता भया और तभी से वे निष्पाप और अमर हैं ॥ ११ ॥

मन्त्रः १२

स वै वाचमेव प्रथमामत्यवहत्सा यदा मृत्युमत्यमुच्यत सोऽग्निरभवत्सोयमग्निःपरेण मृत्युमतिक्रान्तो दीप्यते ॥

पदच्छेदः ।

सः, वै, वाचम्, एव, प्रथमाम्, अति, अवहत्, सा, यदा, मृत्युम्, अति, अमुच्यत, सः, अग्निः, अभवत्, सः, अयम्, अग्निः, परेण, मृत्युम्, अतिक्रान्तः, दीप्यते ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
सः	वह प्राणदेव	यदा	जब
वै	निश्चय करके	सा	वह वाणी
+मृत्युम्	पापरूप मृत्युको	मृत्युम्	मृत्युको
+अतीत्य	अतिक्रमण कर	अति	अतिक्रमण करके
प्रथमाम्	सबों में श्रेष्ठ	अमुच्यत	स्वयंपापसे मुक्त होगई
वाचम्	वाणी को	+ तदा	तब
एव	ही	+ सा	वह वाणी
अवहत्	मृत्यु से परे लेगया	सःअग्निः	वह अग्नि

अभवत्=होगई	मृत्युम्=मृत्युको
सः=वही	अतिक्रान्तः=उल्लंघन करके
अयम्=यह	परेण=मृत्यु से परे
अग्निः=अग्नि	दीप्यते=दीप्तिमान् होरही है

भावार्थ ।

हे प्रियदर्शन ! प्राणदेव पापरूप मृत्यु को अतिक्रमण करके सब देवताओं में श्रेष्ठ वाणीदेव को मृत्युसे बहुत दूर लेगया, और जब वह वाणी मृत्यु को अतिक्रमण करके पापसे मुक्त होगई, तब वह वाणी अग्नि होगई, वही यह अग्नि मृत्यु को उल्लंघन करके मृत्युसे परे दीप्तिमान् होरही है ॥ १२ ॥

मन्त्रः १३

अथ ह प्राणमत्यवहत्स यदा मृत्युमत्यमुच्यत स वायुरभवत्सोयं वायुः परेण मृत्युमतिक्रान्तः पवते ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, प्राणम्, अति, अवहत्, सः, यदा, मृत्युम्, अति, अमुच्यत, सः, वायुः, अभवत, सः, अयम्, वायुः, परेण, मृत्युम्, अतिक्रान्तः, पवते ॥

अन्वयः पदार्थाः	अन्वयः पदार्थाः
अथ=इसके पीछे	सः=वही
ह=निश्चय करके	वायुः=प्राणवायु
+ प्राणः=प्राणदेव	अभवत्=होता भया
प्राणम्=प्राणदेव को	सः=वही
+ मृत्युम्=पापरूप मृत्यु से	अयम्=यह
अति अवहत्=दूर लेगया	वायुः=वायु
यदा=जब	मृत्युम्=मृत्यु के
प्राणः=वह प्राणदेव	परेण=परे
मृत्युम्=मृत्यु से	अतिक्रान्तः=पापसे मुक्त होता, हुआ
अति अमुच्यत=छूट गया	पवते =बहता है
+ तदा=तब	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! इसके पीछे प्राणदेव घ्राणदेव को पापरूप मृत्यु से दूर लेगया, और जब वह घ्राणदेव पापरूप मृत्यु से छूटगया, तब वही बाह्य वायु होता भया, वही यह वायु मृत्यु के परे पापसे मुक्त हो कर बहता है ॥ १३ ॥

मन्त्रः १४

अथ चक्षुरत्यवहत्तद्यदा मृत्युमत्यमुच्यत स आदित्योऽभवत्सोऽसावादित्यः परेण मृत्युमतिक्रान्तस्तपति ॥

पदच्छेदः ।

अथ, चक्षुः, अत्यवहत्, तत्, यदा, मृत्युम्, अत्यमुच्यत, सः, आदित्यः, अभवत्, सः, असौ, आदित्यः, परेण, मृत्युम, अतिक्रान्तः, तपति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
अथ=इसके पीछे		सः=वही नेत्रस्थ प्राण	
+ प्राणः=प्राणदेव		आदित्यः=सूर्य	
चक्षुः=नेत्रेन्द्रिय देवको		अभवत्=होता भया	
+ मृत्युम्=मृत्यु से		सः=वही	
अत्यवहत्=दूर लेगया		असौ=यह	
यदा=जब		आदित्यः=सूर्य	
तत्=वह		मृत्युम्=मृत्यु के	
मृत्युम्=मृत्युको		परेण=परे	
अतिक्रान्तः=अतिक्रमण करके		अतिक्रान्तः=अतिक्रमण करके	
अत्यमुच्यत=छूट गया		तपति=प्रकाशता है	
+ तदा=तब			

भावार्थ ।

हे सौम्य ! इसके पीछे प्राणदेव नेत्र इन्द्रियदेव को मृत्यु से दूर लेगया, और जब नेत्रदेव मृत्युको अतिक्रमण करके छूट गया, तब वही नेत्रदेव सूर्य होगया, वही यह सूर्य मृत्युको अतिक्रमण करके मृत्यु से परे प्रकाशित हो रहा है ॥ १४ ॥

मन्त्रः १५

अथ ह श्रोत्रमत्यवहत्तद्यदा मृत्युमत्यमुच्यत ता दिशोभवंस्ता इमा दिशः परेण मृत्युमतिक्रान्ताः ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, श्रोत्रम्, अति, अवहत्, तत्, यदा, मृत्युम्, अति, अमुच्यत, ताः, दिशः, अभवन्, ताः, इमाः, दिशः, परेण, मृत्युम्, अतिक्रान्ताः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
अथ	इस के पीछे	+ श्रोत्रम्	कर्णइन्द्रिय
ह	निश्चय करके	ताः	प्रसिद्ध
प्राणः	वह प्राणदेव	दिशः	दिशायें
श्रोत्रम्	श्रोत्रेन्द्रिय को	अभवन्	होतीभईं
मृत्युम्	मृत्यु से	ताः	वही
अत्यवहत्	दूर लेगया	इमाः	यह
यदा	जब	दिशः	दिशायें
तत्	वह श्रोत्रदेव	मृत्युम्	मृत्यु के
मृत्युम्	मृत्यु से	परेण	परे
अत्यमुच्यत	छूट गया	अतिक्रान्ताः	पापसे मुक्त होगईं
+ तदा	तब		

भावार्थ ।

हे प्रियदर्शन ! इसके पीछे वह प्राणदेव श्रोत्रेन्द्रिय को पापरूप मृत्यु से दूर लेगया, और जब वह श्रोत्रदेव मृत्यु से छूट गया, तब वही श्रोत्रइन्द्रिय दिशा होती भई, वही यह दिशायें मृत्यु से परे मुक्त होगईं ॥ १५ ॥

मन्त्रः १६

अथ मनोत्यवहत्तद्यदा मृत्युमत्यमुच्यत स चन्द्रमा अभवत्सोसौ चन्द्रः परेण मृत्युमतिक्रान्तो भात्येवं ह वा एनमेषा देवता मृत्युमति वहति य एवं वेद ॥

पदच्छेदः ।

अथ, मनः, अति, अवहत्, तत्, यदा, मृत्युम्, अति, अमुच्यत, सः, चन्द्रमा, अभवत्, सः, असौ, चन्द्रः, परेण, मृत्युम्, अतिक्रान्तः, भाति, एवम्, ह, वा, एनम्, एषा, देवता, मृत्युम्, अति, वहति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
अथ	इसके पीछे	असौ	यह
ह	निश्चय करके	चन्द्रः	चन्द्रमा
प्राणः	वह प्राणदेव	मृत्युम्	मृत्यु से
मनः	मनको	परेण	परे
मृत्युम्	मृत्यु से	अतिक्रान्तः	अतिक्रमण करके
अत्यवहत्	दूर लेगया	भाति	प्रकाशित होता है
यदा	जब	यः	जो
तत्	वह मनदेव	एवम्	इस प्रकार
मृत्युम्	मृत्यु से	वेद	जानता है
अत्यमुच्यत	छूट गया	एनम्	उस विज्ञानी को
+ तदा	तब	एषा	यह
सः	वह मन	देवता	प्राण देवता
चन्द्रमाः	चन्द्रमा	एवम् ह वा	उसी प्रकार
अभवत्	होता भया	मृत्युम्	मृत्यु के
सः	वही	अतिवहति	पार पहुँचाता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! इसके पीछे वह प्राणदेव मन को मृत्यु से दूर लेगया, और जब वह मनदेव मृत्यु से छूट गया तब वही मन चन्द्रमा होगया, वही यह चंद्रमा मृत्यु के परे मृत्युको अतिक्रमण करके प्रकाशित हो रहा है, जो उपासक इस प्रकार जानता है, उसको यह प्राणदेव मृत्यु के पार वैसाही पहुँचा देता है, जैसे उसने मनादिकों को मृत्यु के पार पहुँचा दिया है ॥ १६ ॥

मन्त्रः १७

अथात्मनेऽन्नाद्यमागायद्यद्धि किञ्चान्नमद्यतेऽनेनैव तदद्यतइह प्रति-तिष्ठति ॥

पदच्छेदः ।

अथ, आत्मने, अन्नाद्यम्, आगायत्, यत्, हि, किञ्च, अन्नम्, अद्यते, अनेन, एव, तत्, अद्यते, इह, प्रतितिष्ठति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
अथ=तदनन्तर		अद्यते=खाया जाता है	
+ प्राणः=मुख्य प्राण		तत्=वह	
आत्मने=अपने लिये		अनेन=प्राण करके	
अन्नाद्यम्=भोज्य अन्नका		एव=ही	
आगायत्=गान करता भया		अद्यते=खाया जाता है	
हि=क्योंकि		+ च=और	
यत्=जो		+ प्राणः=वही प्राण	
किंच=कुछ		इह=इस देह में	
अन्नम्=अन्न		प्रतितिष्ठति=रहता है	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! तिसके पीछे मुख्य प्राण अपने लिये भोज्य अन्नका गान करता भया, क्योंकि जो कुछ अन्न खाया जाता है वह प्राण करके ही खाया जाता है, और वही प्राण जीवों के देहों में रहताहै ॥ १७ ॥

मन्त्रः १८

ते देवा अब्रुवन्नेतावद्वा इदꣳ सर्वं यदन्नं तदात्मन आगासीरनु-नोऽस्मिन्नन्न आभजस्वेति ते वै माभिसंविशतेति तथेति तं समन्तं परिण्यविशन्त तस्माद्यदनेनान्नमत्ति तेनैतास्तृप्यन्त्येवꣳ ह वा एनं स्वा अभिसंविशन्ति भर्त्ता स्वानां श्रेष्ठः पुर एता भवत्यन्नादोऽधिपति-र्य एवं वेद य उहैवंविदं स्वेषु प्रति प्रतिर्बुभूषति न हैवालं भार्येभ्यो भवत्यथ ह य एवैतमनु भवति यो वैतमनु भार्यान्बुभूर्षति स हैवालं भार्येभ्यो भवति ॥

पदच्छेदः ।

ते, देवाः, अब्रुवन्, एतावत्, वा, इदम्, सर्वम्, यत्, अन्नम्, तत्, आत्मने, आगासीः, अनु, नः, अस्मिन्, अन्ने, आभजस्व, इति, ते, वै, मा, अभिसंविशत, इति, तथा, इति, तम्, समन्तम्, परि, न्यविशन्त, तस्मात्, यत्, अनेन, अन्नम्, अत्ति, तेन, एताः, तृप्यन्ति, एवम्, ह, वा, एनम्, स्वाः, अभिसंविशन्ति, भर्त्ता, स्वानाम्, श्रेष्ठः, पुरः, एताः, भवति, अन्नादः, अधिपतिः, यः, एवम्, वेद, यः, उ, ह, एवंविदम्, स्वेषु, प्रति, प्रतिः, बुभूषति, न, ह, एव, अलम्, भार्येभ्यः, भवति, अथ, ह, यः, एव, एतम्, अनु, भवति, यः, वा, एतम्, अनु, भार्यान्, बुभूर्षति, सः, ह, एव, अलम्, भार्येभ्यः, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
ते	वे
देवाः	वागादि देवता
+ मुख्यप्राणम्	मुख्य प्राण से
अब्रुवन्	कहते भये कि
एतावत्	इतनाही
इदम्	यह
अन्नम्	अन्न है
यत्	जिस
तत्	उस
सर्वम्	सबको
आत्मने	अपने लिये
+ त्वम्	तुम
आगासीः	गान करते भये हो
अनु	अब
नः	हमें सबको
अस्मिन्	इस
अन्ने	अन्नमें
आभजस्व	भाग लेने दो
इति	इसपर
+ प्राणः	मुख्य प्राण
+ आह	कहता भया कि
+ ते	वे
+ यूयम्	तुम सब
वै	अवश्य
मा	मेरेमें
अभिसंविशत	भली प्रकार प्रवेश करो
तथा	बहुत अच्छा
इति	ऐसा
+ उक्त्वा	कहकर
+ ते	वे सब देवता
तम्	उस प्राण के
परिसमन्तम्	चारो तरफ
न्यविशन्त	भली प्रकार प्रवेश करते भये
तस्मात्	इसीलिये

यत्=जो
अन्नम्=अन्नको
अनेन=प्राण करके
+ लोकः=पुरुष
अत्ति=खाता है
तेन=उसी अन्न करके
एताः=ये वागादि देवता
तृप्यन्ति=तृप्त होते हैं
एवम् ह वा=उसी प्रकार यानी जैसे वागादिक इन्द्रियां प्राण के आश्रय रहती हैं वैसे ही
एनम्=इस प्राणवित् पुरुष के
स्वाः अभिसंविशन्ति=चारों तरफ उसके ज्ञाति के लोग स्थित हो जाते हैं यानी उसके आश्रयणीय होते हैं
+ च=और
स्वाः=वह
स्वानाम्=अपने ज्ञाति का
भर्त्ता=पालक
+ भवति=होता है
+ च=और
श्रेष्ठः=पूज्य होकर
पुरः=सबके अगाड़ी
एताः=चलने वाला
भवति=होता है
+ च=और
अन्नादः=अन्नका भोक्ता
अधिपतिः=अधिपति
+ भवति=होता है
+ इदम्=यह
+ फलम्=फल
+ तस्य=उसको
+ भवति=होता है
यः=जो
एवम्=कहेहुये प्रकार
वेद=प्राणको जानता है
उ ह=और
स्वेषु=अपने यानी उसके ज्ञातियों में से
यः=जो
एवंविदम् प्रति=इस प्रकार जानने वाले प्राणके उपासक के प्रति
प्रतिः=प्रतिकूल
बुभूषति=होने की इच्छा करता है तो
+ सः=वह
भार्येभ्यः=भरण पोषण योग्य ज्ञातियों के भरणार्थ
न एव=कभी नहीं
अलम्=समर्थ
भवति=होता है
ह एव=यह निश्चय है
अथ=और
यः=जो कोई
एतम् एव=इसी प्राणवेत्ता पुरुष के
अनु=अनुकूल

भवति=होता है
वा=अथवा
यः=जो कोई
एतम्=इसीप्राणवित्पुरुषके
अनु=अनुकूल बरतताहुआ
भार्यान्=भरणीय पुरुषों को
बुभूर्षति=पालनकरनाचाहताहै
सः=वह
एव=अवश्य
भार्येभ्यः=पालने योग्य लोगों के लिये
अलम्=समर्थ
भवति=होता है

भावार्थ ।

तदनन्तर वागादि इन्द्रियदेवता मुख्य प्राण से कहने लगे कि जो कुछ भोजन करने योग्य अन्न है उसको आपने अपने लिये गान किया है, आप हम सबको उस अन्न में भाग दीजिये, उस पर मुख्य प्राणने कहा कि तुम सब मेरेमें प्रवेश कर जाव, जो कुछ मैं खाऊंगा वह सब तुमको भी मिलेगा, बहुत अच्छा, ऐसा कह कर वे सब देवता उस प्राण में प्रवेश करते भये, इसलिये जो अन्न प्राण करके खाया जाता है उसी अन्न करके वागादि देवता भी तृप्त होते हैं, और जैसे वागादि इन्द्रियां प्राण के आश्रय रहती हैं, वैसे ही उस प्राण-वित् पुरुष के आश्रय उसके जाति के लोग भी रहते हैं, और वह अपने जातियों का पालन पोषण करता है, और उनका पूज्य होकर उनके सबके अगाड़ी जानेवाला होता है, यानी उनको अच्छे मार्ग पर चलाता है, और वही नीरोग होकर अन्न का भोक्ता और अधिपति होताहै, ऐसा फल उसी पुरुषको मिलता है जो ऊपर कहे हुए प्राणकी उपासना करता है, और उसके ज्ञातियों में से जो कोई उसके प्रति-कूल चलने की इच्छा करता है वह भरण पोषण करने योग्य जातियों के भरणार्थ कभी समर्थ नहीं होता है, और जो कोई उसके अनु-कूल चलने की इच्छा करता है, अथवा जो कोई उसके अनुकूल वर्त्तता है और भरणीय पुरुषको पालन करना चाहता है वह अवश्य पालन पोषण करने योग्य लोगों के लिये समर्थ होता है ॥ १८ ॥

मन्त्रः १६

सोयास्य आङ्गिरसोङ्गानां हि रसः प्राणो वा अङ्गानां रसः प्राणो हि वा अङ्गानां रसस्तस्माद्यस्मात्कस्माच्चाङ्गात्प्राण उत्क्रामति तदेव तच्छुष्यत्येष हि वा अङ्गानां रसः ॥

पदच्छेदः ।

सः, अयास्यः, आङ्गिरसः, अङ्गानाम्, हि, रसः, प्राणः, वा, अङ्गानाम्, रसः, प्राणः, हि, वा, अङ्गानाम्, रसः, तस्मात्, यस्मात्, कस्मात्, च, अङ्गात्, प्राणः, उत्क्रामति, तत्, एव, तत्, शुष्यति, एषः, हि, वा, अङ्गानाम्, रसः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
सः=वह		वा=ही	
हि=निश्चय करके		अङ्गानाम्=सब अङ्गों का	
अयास्यः=मुख में रहनेवाला		रसः=सार है	
प्राण		तस्मात्=तिसी कारण	
आङ्गिरसः=आङ्गिरस है		यस्मात्=जिस	
हि=क्योंकि		कस्मात्=किसी	
सः=वह मुख्य प्राण		अङ्गात्=अंगों से	
वा=ही		प्राणः=प्राण	
अङ्गानाम्=सब अंगों का		उत्क्रामति=निकल जाता है	
रसः=सार है		तत् एव=वहां का ही	
प्राणः=प्राण		तत्=वह अंग	
वा=ही		शुष्यति=सूख जाता है	
अङ्गानाम्=सब अंगों का		+ तस्मात्=इसलिये	
रसः=सार है		एषः ह=यही मुख्य प्राण	
हि=जिस कारण		अङ्गानाम्=सब अंगों का	
प्राणः=प्राण		रसः=सार है	

भावार्थ ।

वह मुख्यप्राण आङ्गिरस भी है, क्योंकि वह अंगों का सार है, इसी कारण जिस अंगसे प्राण निकल जाता है वह अंग सूख जाता है ॥ १६ ॥

मन्त्रः २०

एष उ एव बृहस्पतिर्वाग् वै बृहती तस्या एष पतिस्तस्मादु बृहस्पतिः ॥

पदच्छेदः ।

एषः, उ, एव, बृहस्पतिः, वाक्, वै, बृहती, तस्याः, एषः, पतिः, तस्मात्, उ, बृहस्पतिः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
उ=और		तस्याः=उसी वाणी का	
एषः एव=यही मुख्य प्राण		एषः=यह मुख्य प्राण	
बृहस्पतिः=बृहस्पति है		पतिः=अधिपति है	
+ हि=क्योंकि		उ=और	
वाक्=वाणी		तस्मात्=तिसी कारण	
वै=निश्चय करके		+ एषः=यह प्राण	
बृहती=बृहती है यानी वाणी का नाम बृहती है		बृहस्पतिः=बृहस्पति कहलाता है	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! यही मुख्य प्राण बृहस्पति भी है, क्योंकि वाणी बृहती कहलाती है, यानी वाणी का नाम बृहती है, बृहती का अर्थ बड़े के है, यानी व्यापक है, क्योंकि सबकी सिद्धि वाणी करके होती है, इस वाणी का प्राण अधिपति है, यानी वाणी प्राणके आश्रय है, बिना प्राण के वाणी कुछ कार्य नहीं कर सकती है, और यही कारण है कि प्राण बृहस्पति कहलाता है, जैसे सब देवताओं में बृहस्पति श्रेष्ठ है, वैसे ही सब इन्द्रियदेवताओं में प्राण श्रेष्ठ है ॥ २० ॥

मन्त्रः २१

एष उ एव ब्रह्मणस्पतिर्वाग् वै ब्रह्म तस्या एष पतिस्तस्मादु ब्रह्मणस्पतिः ॥

पदच्छेदः ।

एषः, उ, एव, ब्रह्मणस्पतिः, वाक्, वै, ब्रह्म, तस्याः, एषः, पतिः, तस्मात, उ, ब्रह्मणस्पतिः ॥

अन्वयः पदार्थाः	अन्वयः पदार्थाः
उ=और	तस्याः=उस वाणी का
एषः एव=यही मुख्य प्राण	एषः=यह प्राण
ब्रह्मणस्पतिः=ब्रह्मणस्पति है	पतिः=पति है
+ हि=क्योंकि	तस्मात् उ=और इसीलिये
वाक्=वाणी	ब्रह्मणस्पतिः=यह ब्रह्मणस्पति प्राण
वै=निश्चय करके	+ यजुषाम्=यजुर्वेद का
ब्रह्म=यजुर्वेद है	+ प्राणः=आत्मा है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! यही प्राण ब्रह्मका पति भी कहलाता है, वाणी यजुर्वेद है, उसका यह प्राण पति है, इस कारण इसका नाम ब्रह्मणस्पति है ॥ २१ ॥

मन्त्रः २२

एष उ एव साम वाग् वै सामैष सा चामश्चेति तत्साम्नः सामत्वं यद्वेव समः प्लुषिणा समो मशकेन समो नागेन सम एभिस्त्रिभिर्लोकैः समोनेन सर्वेण तस्माद्वेव सामाश्नुते साम्नः सायुज्यं सलोकतां य एवमेतत्साम वेद ॥

पदच्छेदः ।

एषः, उ, एव, साम, वाक्, वै, साम, एषः, सा, च, अमः, च, इति, तत्, साम्नः, सामत्वम्, यत्, उ, एव, समः, प्लुषिणा, समः, मशकेन, समः, नागेन, समः, एभिः, त्रिभिः, लोकैः, समः, अनेन, सर्वेण, तस्मात्, वा, एव, साम, अश्नुते, साम्नः, सायुज्यम्, सलोकताम्, यः, एवम्, एतत्, साम, वेद ॥

अन्वयः पदार्थाः	अन्वयः पदार्थाः
उ=और	वाक् वै=वाणी निश्चय करके
एषः=यही मुख्यप्राण	साम=साम
एव=निश्चय करके	+ भवति=हो सकता है
साम=साम है	+ उत्तरम्=उत्तर क्योंकि
+ प्रश्नः=प्रश्न	सा=स्त्रीलिंगमात्र
+ कथम्=कैसे	च=और

अमः=पुल्लिंग मात्र
+ एतौ=ये दोनों
एषः=यह मुख्य प्राण
इति
+ कथ्यते={ करके कहे जाते हैं यानी दोनों लिंगों में प्राण की स्थिति समान रूप से है
तत्=सोई
साम्नः=सामका
सामत्वम्=सामत्व है यानी साम शब्द का अर्थ है
उ=और
यत्=जिस कारण
एव=निश्चय करके
+ सः=वह प्राण
प्लुषिणा=कीट के आकार के
समः=बराबर है
मशकेन=मच्छरके शरीर के
समः=बराबर है
नागेन समः=हाथी के शरीर के बराबर है
+ च=और
एभिः=इन
त्रिभिर्लोकैः=तीनों लोकों के
समः=बराबर है
तस्मात्=तिसी कारण
अनेन=इनही
सर्वेण=सब कहे हुये के
समः=बराबर
साम=साम है
यः=जो उपासक
एतत्=इस
साम=साम को
एवम्=इस प्रकार
वेद=जानता है यानी उपासना करता है
+ सः=वह
साम्नः=साम की
सायुज्यम्=सायुज्यता को
सलोकताम्=सालोक्यताको
वा एव=अवश्य
अश्नुते=प्राप्त होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! यही मुख्य प्राण सामवेद भी है, प्रश्न होता है कि कैसे वाणी सामवेद हो सकती है, इसका उत्तर यह है कि सा स्त्री-लिंगमात्र, और अमः पुल्लिंगमात्र ये दोनों मिलकर मुख्य प्राण कहे जाते हैं, यानी स्त्रीजाति और पुरुषजाति भरमें प्राण समानरूप से स्थित है, और जिस कारण यह प्राण छोटे कीट के शरीर के अंदर होने से कीट के बराबर और मच्छर के शरीर के अंदर होने से मच्छर के शरीर के बराबर, हाथी के शरीर के अंदर होने से हाथी के शरीर के बराबर और तीनों लोकों के अन्दर रहने से तीनों लोकों

के बराबर समझा जाता है इसी कारण वह प्राण सब छोटे बड़े शरीरों के तुल्य समझा जाता है, और इन्हीं सबके बराबर साम भी है, क्योंकि साम और प्राण एकही हैं, जो उपासक इस सामकी इसप्रकार उपासना करता है वह साम के सायुज्यताको और सालोकताको प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

मन्त्रः २३

एष उ वा उद्गीथः प्राणो वा उत्प्राणेन हीदꣳ सर्वमुत्तब्धं वागेव गीथोच्च गीथा चेति स उद्गीथः ॥

पदच्छेदः ।

एषः, उ, वा, उद्गीथः, प्राणः, वा, उत्, प्राणेन, हि, इदम्, सर्वम्, उत्तब्धम्, वाक्, एव, गीथा, उत, च, गीथा, च, इति, सः, उद्गीथः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
उ=और		इदम्=यह	
एषः=यही		सर्वम्=सब वस्तु	
वा=मुख्यप्राण		उत्तब्धम्=ग्रथित है	
उद्गीथः=उद्गीथ भी है		च=और	
च=और		वाक् एव=वाणी ही	
वै=निश्चय करके		गीथा=गीथा है यानी गीथा शब्दका अर्थ वाणी है	
उत्=उत् शब्दका अर्थ		उत्+गीथाइति=यह दोनों मिला करके	
प्राणः=प्राण है		सः=वह	
हि=क्योंकि		उद्गीथः=उद्गीथ शब्द होता है	
प्राणेन=प्राण करके ही			

भावार्थ ।

हे सौम्य ! यही प्राण उद्गीथ भी है, उद्गीथ दो शब्द यानी उत् और गीथ करके बना है, उत्शब्द का अर्थ प्राण है, और गीथशब्द का अर्थ वाणी है, प्राण ही करके वाणी बोली जाती है, और प्राणहीं करके यावत् वस्तु संसार में हैं सब ग्रथित हैं, इसलिये प्राण और वाणी दोनों मिलकर उद्गीथ कहलाता है, इसी उद्गीथ की सहायता करके उद्गाता यजमान अभीष्ट फलको प्राप्त होता है ॥ २३ ॥

मन्त्रः २४

तद्धापि ब्रह्मदत्तश्चैकितायनेयो राजानं भक्षयन्नुवाचायं त्यस्य राजा मूर्धानम् विपातयाद्यदितोयास्य आङ्गिरसोन्येनोदगायदिति वाचा च ह्येव स प्राणेन चोदगायदिति ॥

पदच्छेदः ।

तत्, ह, अपि, ब्रह्मदत्तः, चैकितायनेयः, राजानम्, भक्षयन्, उवाच, अयम्, त्यस्य, राजा, मूर्धानम्, विपातयात्, यत्, इतः, अयास्यः, आङ्गिरसः, अन्येन, उद्गायत्, इति, वाचा, च, हि, एव, सः, प्राणेन, च, उदगायत्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
तत्	तिस विषय में
+ आख्यायिका ह अपि	एक आख्यायिका भी है
+ समये	एक समय
चैकितायनेयः	चिकितायन का पुत्र
ब्रह्मदत्तः	ब्रह्मदत्त
राजानम्	यज्ञ में सोमलता के रस को
भक्षयन्	पीता हुआ
+ इति	ऐसा
उवाच	बोला कि
+ अहम्	मैं
+ अनृतवादी	असत्यवादी
+ स्याम्	होऊं
+ च	और
अयम् राजा	यह राजा सोम
त्यस्य	उस
+ मे	मेरे
मूर्धानम्	मस्तक को
विपातयात्	काट के गिरा देवे
यत्	यदि
इतः	इस वाणीयुत प्राण के सिवाय
अन्येन	और किसी देवताकी सहायता करके
+ एषः	यह
+ अहम्	मैं
अयास्यः	अयास्य
आङ्गिरसः	अङ्गिरस
+ ऋषीणाम्	किसी ऋषि के
+ सत्रे	यज्ञ में
उद्गायत्	गान किया हो
च	इस कहने के पीछे
सः	वही अयास्य अङ्गिरस
वाचा	वाणी करके
च	और
प्राणेन	प्राण करके
एव हि इति	निस्सन्देह इस प्रकार
उद्गायत्	गान करता भया

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जो कुछ ऊपर कहागया है उसके विषय में एक आख्यायिका इसप्रकार कही जाती है, एक समय चिकितायन का पुत्र ब्रह्मदत्त यज्ञ में सोमलता के रसको पीता हुआ बोलता भया कि यदि मैं अयास्य आङ्गिरस ऋषि किसी यज्ञ विषे सिवाय वाणी और प्राण के उद्गीथ के गान में और किसी देवताकी सहायता ली हो तो मैं असत्यवादी होऊं, और मेरा मस्तक कटकर गिरपड़े, ऐसा कह करके वह अयास्य आङ्गिरस प्राणरूप उद्गाता वाणी और प्राण की सहायता करके उद्गीथ का गान करता भया, और श्रुतिभी कहती है कि उसने इस यज्ञ में भी वाणी और प्राणकी सहायता करके उस उद्गीथ का गान किया ॥ २४ ॥

मन्त्रः २५

तस्य हैतस्य साम्नो यः स्वं वेद भवति हास्य स्वं तस्य वै स्वर एव स्वं तस्मादार्त्विज्यं करिष्यन् वाचि स्वरमिच्छेत तया वाचा स्वरसंपन्नयार्त्विज्यं कुर्यात्तस्माद्यज्ञे स्वरवन्तं दिदृक्षंत एव । अथो यस्य स्वं भवति हास्य स्वं य एवमेतत्साम्नः स्वं वेद ॥

पदच्छेदः ।

तस्य, ह, एतस्य, साम्नः, यः, स्वम्, वेद, भवति, ह, अस्य, स्वम्, तस्य, वै, स्वरः, एव, स्वम्, तस्मात्, आर्त्विज्यम्, करिष्यन्, वाचि, स्वरम्, इच्छेत, तया, वाचा, स्वरसम्पन्नया, आर्त्विज्यम्, कुर्यात्, तस्मात्, यज्ञे, स्वरवन्तम्, दिदृक्षन्ते, एव, अथो, यस्य, स्वम्, भवति, ह, अस्य, स्वम्, यः, एवम्, एतत्, साम्नः, स्वम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
यः=जो उद्गाता		स्वम्=स्वररूपी धनको	
तस्य=उसी		वेद=जानता है	
एतस्य=इस		अस्य ह=उसको	
साम्नः=साम के		स्वम्=लौकिक धन	

भवति=प्राप्त होता है
तस्य=उस उद्गाताका
स्वरः एव=स्वरही
स्वम्=धन है
तस्मात्=इसलिये
आर्त्विज्यम्=ऋत्विज कर्म
करिष्यन्=करने की इच्छा करता हुआ
वाचि=अपनी वाणी में
स्वरम्=यथाशास्त्रविधि स्वर पाने की
इच्छेत=इच्छा करै
+ च=और
तया=उसी
स्वरसंपन्नया=संस्कार की हुई
वाचा=वाणी करके
आर्त्विज्यम्=उद्गाता के कर्मको
कुर्यात्=करै
तस्मात्=इसी कारण
यज्ञे=यज्ञ में
स्वरवन्तम्=उत्तम स्वरवाले
+ उद्गातारम्=उद्गाता को
+ जनाः=लोग
एव=अवश्य
दिदृक्षन्ते=देखने की इच्छा करते हैं
अथो=अब फलको दिखलाते हैं
यः=जो
साम्नः=साम के
एतत्=इस
स्वम्=स्वररूपी धनको
एवम्=इस प्रकार
वेद=जानता है
+ च=और
यस्य=जिसको
स्वम्=स्वररूपी धन
भवति=प्राप्त होता है
अस्य=उसको
इदम्=यह
स्वम्=लौकिक धन
अपि=भी
भवति=प्राप्त होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जो उद्गाता साम के स्वररूपी धन को जानता है, उस को दुनियासंबन्धी धन अवश्य प्राप्त होता है, उद्गाता का धन उसका स्वर है, इसलिये ऋत्विज कर्म करने की इच्छा करता हुआ अपनी वाणी में यथाशास्त्रविधि उत्तम स्वर पाने की इच्छा करै, और उसी ऐसी संस्कार की हुई उत्तम वाणी करके यज्ञकर्म को करै, और यही कारण है कि यज्ञ विषे उत्तम स्वरवाले उद्गाता नियत किये जाते हैं । हे प्रियदर्शन ! अब आगे इसके फलको दिखाते हैं, जो

उपासक साम के स्वररूपी धनको अच्छे प्रकार जानता है, और जिसको स्वररूपी धन प्राप्त है, उसीको यह संसारी धन भी प्राप्त होता है ॥ २५ ॥

मन्त्रः २६

तस्य हैतस्य साम्नो यः सुवर्णं वेद भवति हास्य सुवर्णं तस्य वै स्वर एव सुवर्णं भवति हास्य सुवर्णं य एवमेतत्साम्नः सुवर्णं वेद ॥

पदच्छेदः ।

तस्य, ह, एतस्य, साम्नः, यः, सुवर्णम्, वेद, भवति, ह, अस्य, सुवर्णम्, तस्य, वै, स्वरः, एव, सुवर्णम्, भवति, ह, अस्य, सुवर्णम्, यः, एवम, एतत्, साम्नः, सुवर्णम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
यः=जो		स्वरः=उत्तम स्वर उच्चारण करना	
एतस्य=इस		एव=ही	
साम्नः=साम के		सुवर्णम्=श्रेष्ठ धन है	
सुवर्णम्=कंठादिस्थानसंबन्धी वर्णों को		+ च=और	
ह=भली प्रकार		यः=जो	
वेद=जानता है		साम्नः=साम के	
अस्य=उसीको		एवम्=कहेहुये प्रकार	
सुवर्णम्=संसारी धन		एतत्=इस	
भवति=मिलता है		सुवर्णम्=सुस्वर उच्चारण को	
+ च=और		वेद=जानता है	
तस्य=उस उद्गाता का		अस्य ह=उसको ही	
वै=निश्चय करके		सुवर्णम्=यह लौकिक धन	
		भवति=मिलता है	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जो इस साम के कंठादि स्थान संबन्धी वर्णों को जानता है उसीको संसारी धन प्राप्त होता है, उद्गाताको उत्तम स्वर से

वाणी का उच्चारण करनाही श्रेष्ठ धन है, जो सामके, ऊपर कहे हुये प्रकार सुस्वर के उच्चारण करने को जानता है, उसीको यह लौकिक धन मिलता है ॥ २६ ॥

मन्त्रः २७

तस्य हैतस्य साम्नो यः प्रतिष्ठां वेद प्रति ह तिष्ठति तस्य वै वागेव प्रतिष्ठा वाचि हि खल्वेष एतत्प्राणः प्रतिष्ठितो गीयतेऽन्न इत्युहैक आहुः ॥

पदच्छेदः ।

तस्य, ह, एतस्य, साम्नः, यः, प्रतिष्ठाम्, वेद, प्रति, ह, तिष्ठति, तस्य, वै, वाग्, एव, प्रतिष्ठा, वाचि, हि, खलु, एषः, एतत्, प्राणः, प्रतिष्ठितः, गीयते, अन्ने, इति, उ, ह, एके, आहुः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
यः	जो
तस्य ह	उसी
एतस्य साम्नः	इस सामके
प्रतिष्ठाम्	गुणको
वेद	जानता है
+ सः	वह उपासक
ह	भी
प्रतितिष्ठति	प्रतिष्ठावाला होता है
तस्य	उस सामकी
प्रतिष्ठा	प्रतिष्ठा
एव	ही
वै	निश्चय करके
वाग्	वाणी है
हि	क्योंकि
एषः	यह
प्राणः	प्राणरूप साम

अन्वयः	पदार्थाः
खलु	निश्चय करके
वाचि	मुख के भीतर आठ जगहों में
प्रतिष्ठितः + सन्	रहता हुआ
एतत् गीयते	गाया जाता है
उ	और
एके	कोई आचार्य
इति ह	ऐसा भी
आहुः	कहते हैं कि
प्राणः	प्राण
अन्ने	अन्नमें
प्रतिष्ठितः	प्रतिष्ठित रहता है क्योंकि बिना अन्न के प्राण अपना कार्य नहीं कर सक्ता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जो इस सामके प्रतिष्ठाको जानता है, वह प्रतिष्ठावाला

होता है, साम की प्रतिष्ठा वाणी है, क्योंकि यह प्राणरूप साम मुख के भीतर आठ जगहों में रहता है, और उन्हीं के द्वारा गाया जाता है, और कोई कोई आचार्य ऐसा भी कहते हैं कि प्राण अन्नमें रहता है, क्योंकि विना अन्न के प्राण अपना कार्य नहीं करसक्ता है, और न शरीर विषे स्थित रहसक्ता है ॥ २७ ॥

मन्त्रः २८

अथातः पवमानानामेवाभ्यारोहः स वै खलु प्रस्तोता साम प्रस्तौति स यत्र प्रस्तुयात्तदेतानि जपेत् असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्माऽमृतं गमयेति स यदाहासतो मा सद्गमयेति मृत्युर्वा असत् सदमृतं मृत्योर्माऽमृतं गमयामृतं मा कुर्वित्येवैतदाह तमसो मा ज्योतिर्गमयेति मृत्युर्वै तमो ज्योतिरमृतं मृत्योर्माऽमृतं गमयामृतं माकुर्वित्येवैतदाह मृत्योर्माऽमृतं गमयेति नात्र तिरोहितमिवास्ति अथ यानीतराणि स्तोत्राणि तेष्वात्मनेऽन्नाद्यमागायेत्तस्मादुतेषु वरं वृणीत यं कामं कामयेत तꣳ स एष एवंविदुद्गातात्मने वा यजमानाय वा यं कामं कामयते तमागायति तद्धैतल्लोकजिदेव न हैवालोक्यताया आशास्ति य एवमेतत्साम वेद ॥

इति तृतीयं ब्राह्मणम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, अतः, पवमानानाम्, एव, अभ्यारोहः, सः, वै, खलु, प्रस्तोता, साम, प्रस्तौति, सः, यत्र, प्रस्तुयात, तत्, एतानि, जपेत्, असतः, मा, सत्, गमय, तमसः, मा, ज्योतिः, गमय, मृत्योः, मा, अमृतम्, गमय, इति, सः, यत्, आह, असतः, मा, सत्, गमय, इति, मृत्युः, वा, असत्, सत्, अमृतम्, मृत्योः, मा, अमृतम्, गमय, अमृतम्, मा, कुरु, इति, एव, एतत्, आह, तमसः, मा, ज्योतिः, गमय, इति, मृत्युः, वै, तमः, ज्योतिः, अमृतम्, मृत्योः, मा, अमृतम्, गमय, अमृतम्, मा, कुरु, इति, एव, एतत्, आह, मृत्योः, मा, अमृतम्, गमय, इति, न, अत्र, तिरोहितम्, इव, अस्ति, अथ, यानि, इतराणि,

स्तोत्राणि, तेषु, आत्मने, अन्नाद्यम्, आगायेत्, तस्मात्, उ, तेषु, वरम्, वृणीत, यम्, कामम्, कामयेत, तम्, सः, एषः, एवंवित्, उद्गाता, आत्मने, वा, यजमानाय, वा, यम्, कामम्, कामयते, तम्, आगायति, तत्, ह, एतत्, लोकजित्, एव, न, ह, एव, आलोक्यतायाः, आशा, अस्ति, यः, एवम्, एतत्, साम, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थाः
अथ	अब
अतः	इहां से
पवमानानाम् एव	पवमान स्तोत्रों कीही
अभ्यारोहः	श्रेष्ठता
कथ्यते	कही जाती है
वै खलु	निस्सन्देह
यत्र	जिस समय
सः	वह यज्ञ प्रसिद्ध
प्रस्तोता	प्रस्तोता ऋत्विज
साम	सामका
प्रस्तौति	आरम्भ करता है
तत्र	तब पहिले
सः	वह प्रस्तोता
प्रस्तुयात्	सामका आरंभ करै
च	और
एतानि	यजुर्वेदके तीन मंत्रों को
उद्गाता	उद्गाता
+ इति	इस प्रकार
जपेत्	जपै
असतः	असत् से
मा	मुझे
सत्	सत्को
गमय	पहुँचादे
तमसः	तम से
मा	मुझे
ज्योतिः	ज्योति को
गमय	पहुँचादे
मृत्योः	मृत्यु से
मा	मुझे
अमृतम्	अमृतको
गमय इति	पहुँचा दे इसप्रकार
+ एषाम्	इन तीन मंत्रों को
+ अर्थे	अर्थ के विषय में
यत्	जो कुछ
+ कथितम्	कहा गया है
+ तत्	उसी को
+ ब्राह्मणम्	यह ब्राह्मण ग्रंथभी
+ निम्नप्रकारेण	निम्नप्रकार
+ व्याचष्टे	व्याख्या करता है
असत्	असत् पदार्थ
वै	निश्चय करके
मृत्युः	मृत्युहै यानी व्यवहारिक कर्म और व्यवहारिक ज्ञानहै
+ च	और
सत्	सत् "परमार्थिक कर्म परमार्थिक ज्ञान है"
+ तस्मात्	उस

मृत्योः=व्यवहारिककर्म और व्यवहारिक ज्ञानसे
मा=मुझे
अमृतम्=परमार्थिक कर्मको और परमार्थिक ज्ञानको
गमय=प्राप्त कर
इति=इसी प्रकार
एतत् एव=इस बातको भी
+ मंत्रः=मंत्र
आह=कहता है कि उद्गाता ऐसा कहे
मा=मुझे
अमृतम्=सब कर्मों से मुक्त
कुरु=कर
च=और
तमसः=तमसे
मा=मुझे
ज्योतिः=ज्योति को
गमय इति=प्राप्त कर
तमः=तम पदार्थ
वै=निश्चय करके
मृत्युः=अज्ञान है क्योंकि अज्ञान मरण का हेतु होता है
च=और
ज्योतिः=प्रकाश
अमृतम्=अमर होने का कारण है
तस्मात्=उसी
तमसः=मरण हेतु अज्ञान से
मा=मुझे
अमृतम्=दैव स्वरूपको
गमय=प्राप्तकर
इति=इसी प्रकार
एतत् एव=इस बातको भी
+ मंत्रः=मंत्र
आह=कहता है कि उद्गाता ऐसा कहे
मा=मुझको
अमृतम्=दैवस्वरूप
कुरु=बनादे
मृत्योः=मृत्यु से
मा=मुझे
अमृतम्=अमरत्व को
गमय इति=प्राप्त कर दे
अत्र=इसमें
तिरोहितम् इव=पहिले दो मंत्रों की तरह छिपाहुआ अर्थ
न=नहीं
अस्ति=है अर्थात् मंत्रका अर्थ स्पष्ट है
अथ=अब इसके पीछे
इतराणि=और
यानि=जो
+ अवशिष्टानि=बचे हुये
+ नव=नौ
स्तोत्राणि=पवमान स्तोत्र हैं
तेषु, + प्रयुक्तेषु, + सत्सु=उनके पढ़ने पर
+ उद्गाता=उद्गाता
आत्मने=अपने लिये
अन्नाद्यम्=भोज्य अन्नका
आगायेत्=गान करे

उ=और
तस्मात्=इसलिये
सः=वही
एषः=यह
एवंवित्=प्राणवेत्ता
उद्गाता=उद्गाता
यम्=जिस
कामम्=पदार्थ की
कामयेत=इच्छा करे
तम्=उसी
वरम्=पदार्थ को
तेषु + प्रयुक्तेषु + सत्सु=उन्हीं पवमान स्तोत्रों को पढ़ते हुये
वृणीत=वरदान मांगे
+ हि=क्योंकि
+ उद्गाता=उद्गाता
आत्मने=अपने लिये
वा=और
यजमानाय वा=यजमान के लिये
यम्=जिस
कामम्=पदार्थ को
कामयते=चाहता है
तम्=उसको
आगायति=गान करके प्राप्त करता है
च=और
तत् ह=वही
एतत्=यह प्राण ज्ञानयानी समयानुसार स्वरों का ऊपर नीचे ले जाना आदिक ज्ञान
लोकजित्=लोक के विजय का साधन
एव=अवश्य
+ अस्ति=है
यः=जो
एतत्=इस
साम=साम को
एवम्=इस प्रकार
वेद=जानता है
तस्य=उसको
एव ह=निश्चय करके
आलोक्यतायाः=मुक्तिके लिये
आशा=प्रार्थना
न=नहीं
अस्ति=है यानी वह अवश्य मुक्त होजाता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! अब पवमान नाम स्तोत्रों की श्रेष्ठता कही जाती है, जब प्रस्तोता ऋत्विज साम का गान आरम्भ करता है तब उद्गाता यजुर्वेद के तीन मंत्रों का जप निम्नप्रकार करता है । हे मंत्र ! तू मुझे असत् से सत्को पहुँचादे, हे मंत्र ! तू मुझे तमसे प्रकाशको पहुँचा दे, हे मंत्र ! तू मुझे मृत्यु से अमरत्वको पहुँचादे इन तीनों मंत्रोंमें जो कुछ अर्थ कहा गया है उसी को यह ब्राह्मण ग्रंथ भी नीचे लिखे

हुये प्रकार कहताहै, असत् पदार्थ निश्चय करके मृत्यु है यानी व्यवहारिक कर्म और व्यवहारिक ज्ञान है, और सत् पदार्थ परमार्थिक कर्म और परमार्थिक ज्ञान है, हे मंत्र! तिस व्यवहारिक कर्म और व्यवहारिक ज्ञान से मुझे परमार्थिक कर्म और परमार्थिक ज्ञान को प्राप्त कर, और मंत्र ऐसा भी कहता है कि उद्गाता सब कर्मों से मुक्त होजाता है और तमरूपी अज्ञान से प्रकाशरूपी ज्ञानको प्राप्त होता है, मंत्रकी ओर अभिमुख होकर उद्गाता कहता है कि तू मरण हेतु अज्ञान से मुझे देवस्वरूप को प्राप्त कर और देवस्वरूप मुझे बनादे, मृत्यु से अमरत्वको प्राप्तकर, अब आगे जो नौ बचे हुये पवमान स्तोत्र हैं उनके पढ़ने पर उद्गाता अपने लिये अन्न का गान करे, और वही यह प्राणवेत्ता उद्गाता जिस पदार्थ की इच्छा करे उसी पदार्थ को उन्हीं नौ पवमान स्तोत्रों को पढ़ते हुये वर मांगे, हे सौम्य! उद्गाता अपने लिये और यजमान के लिये जिस पदार्थ को चाहता है उस पदार्थ का गान करके प्राप्त करसक्ता है, उसका यह प्राण ज्ञानसमयानुसार सुरों का ऊपर नीचे लेजाना लोकों के विजय करने का साधन है, जो सामको इस प्रकार जानता है वह अवश्य मुक्त होजाता है ॥ २८ ॥

इति तृतीयं ब्राह्मणम् ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

आत्मैवेदमग्र आसीत्पुरुषविधः सोनुवीक्ष्य नान्यदात्मनोपश्यत्सोहमस्मीत्यग्रे व्याहरत्ततोहं नामाभवत्तस्मादप्येतर्ह्यामन्त्रितोहमयमित्येवाग्रे उक्त्वाथान्यन्नाम प्रब्रूते यदस्य भवति स यत्पूर्वोस्मात्सर्वस्मात्सर्वान्पाप्मन औषत्तस्मात्पुरुष ओषति ह वै स तं योस्मात्पूर्वो बुभूषति य एवं वेद ॥

पदच्छेदः ।

आत्मा, एव, इदम्, अग्रे, आसीत्, पुरुषविधः, सः, अनुवीक्ष्य, न, अन्यत्, आत्मनः, अपश्यत्, सः, अहम्, अस्मि, इति, अग्रे,

व्याहरत्, ततः, अहम्, नाम, अभवत्, तस्मात्, अपि, एतर्हि, आमन्त्रितः, अहम्, अयम्, इति, एव, अग्रे, उक्त्वा, अथ, अन्यत्, नाम, प्रब्रूते, यत्, अस्य, भवति, सः, यत्, पूर्वः, अस्मात्, सर्वस्मात्, सर्वान्, पाप्मनः, औषत्, तस्मात्, पुरुषः, ओषति, ह, वै, सः, तम्, यः, अस्मात्, पूर्वः, बुभूषति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थाः
इदम्=यह जगत्	
अग्रे=उत्पत्तिसे पहिले	
आत्मा एव=आत्मा ही	
आसीत्=था	
+ पुनः=फिर	
*सः पुरुषविधः=वही आत्मा हिरण्यगर्भ	
+ अभूत्=हुआ	
+ सः=वह प्रथमपुरुष	
अनुवीक्ष्य=चारों तरफ देखकर	
आत्मनः=अपने से	
अन्यत्=भिन्न कुछ	
न=नहीं	
अपश्यत्=देखता भया	
+ तदा=तब	
अहम्=मैंही	
+ सर्वात्मा=सब का आत्मा	
अस्मि=हूं	
इति=ऐसा	
सः=उसने	
अग्रे=प्रथम	
व्याहरत्=कहा	
ततः=तिसी कारण	
+ सः=हिरण्यगर्भ	

अन्वयः	पदार्थाः
अहम् नाम=अहंनामवाला	
अभवत्=होता भया	
+ यतः=जिस कारण	
सः=उसने	
अहमस्मि="अहमस्मि"	
आह=कहा	
तस्मात्=तिसी कारण	
अपि एतर्हि=अब भी	
आमन्त्रितः=बुलाया हुआ पुरुष	
+ आह=कहता है कि	
अहम्=मैं	
अयम्=यह हूं	
इति एव=ऐसा ही	
अग्रे=पहिले	
उक्त्वा=कहकर	
अथ=पीछे	
अन्यत्=और	
नाम=नाम	
यत्=जो	
अस्य=इस आदमी का	
भवति=होता है	
प्रब्रूते=कहता है	
यत्=जिस कारण	
+ सः=यह प्रजापति	

सर्वान्=सब
पाप्मनः=पापोंको
औषत्=जलाता भया
अस्मात्=तिसी कारण
सर्वस्मात्=प्रजापति पद पाने वालों में से
+ सः=वह
पूर्वः=प्रथम
+ अभवत्=होता भया
तस्मात्=इसलिये
यः=जो पुरुष
अस्मात्=प्रजापति होनेवालों में से
+ प्रथमः=प्रथम
बुभूषति=होना चाहता है
सः पुरुषः ह वै=वह पुरुष अवश्य
तम्=उस पुरुषको
ओषति=नाश करडालता है यानी तेजहीन कर देता है
यः=जो
एवम्=इस प्रकार
वेद=अपने में उस पदवी पानेकी इच्छा करता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जगत् उत्पत्ति के पहिले केवल एक आत्माही था, वही पीछे से हिरण्यगर्भ होता भया. और वही प्रथम पुरुष चारों तरफ देखकर और अपने से पृथक् कोई भिन्न वस्तु न पाकर कहने लगा, मैं ही सबका आत्मा हूं और यही कारण है कि वह हिरण्यगर्भ अहं नामवाला होता भया, जिस कारण उसने प्रथम कहा तिसी कारण अब भी लोग पुकारे जाने पर कहते हैं कि यह मैं हूं और इसके पीछे अपना दूसरा नाम देवदत्त आदि लगाकर कहते हैं और जिस कारण उस प्रजापति ने सब पापों को जला दिया उसी कारण वह सब प्रजापतिपद पानेकी इच्छा करनेवालों में से प्रथम होता भया, इसलिये जो पुरुष प्रजापति होनेवालोंमें से प्रथम होना चाहता है वह पुरुष अवश्य उस पुरुषको नाश करडालता है यानी तेजहीन कर देता है जो इस प्रकार अपने में उस पदवी पाने की इच्छा करता है ॥ १ ॥

मन्त्रः २

सोऽबिभेत्तस्मादेकाकी बिभेति स हायमीक्षांचक्रे यन्मदन्यन्नास्ति कस्मान्नु बिभेमीति तत एवास्य भयं वीयाय कस्माद्ध्यभेष्यद्द्वितीयाद्वै भयं भवति ॥

पदच्छेदः ।

सः, अबिभेत्, तस्मात्, एकाकी, बिभेति, सः, ह, अयम्, ईक्षांचक्रे, यत्, मत्, अन्यत्, न, अस्ति, कस्मात्, नु, बिभेमि, इति, ततः, एव, अस्य, भयम्, वीयाय, कस्मात्, हि, अभेष्यत्, द्वितीयात्, वै, भयम्, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
सः=	वह प्रजापति
+ अस्मदादिवत्=	हम लोगों की तरह
अबिभेत्=	डरता भया
तस्मात्=	तिसी कारण
+ अद्य=	आजकल
एकाकी=	अकेला पुरुष
बिभेति=	डरता है
+ पुनः=	फिर
सः ह=	वही
अयम्=	यह प्रजापति
ईक्षांचक्रे=	विचार करने लगा कि
यत्=	जब
मत्=	मुझ से
अन्यत्=	दूसरा और कोई
न=	नहीं
अस्ति=	है
+ तत्=	तो
कस्मात् नु=	किससे
+ अहम्=	मैं
बिभेमि इति=	डरूं
ततः एव=	ऐसे विचार से ही
अस्य=	उस प्रजापति का
भयम्=	भय
वीयाय=	दूर होगया
भयम्=	भय
हि=	अवश्य
द्वितीयात्=	दूसरे से
भवति=	होता है
+ यदा + अन्यत् + नास्ति=	जब दूसरा रहा नहीं
+ तदा=	तब
कस्मात्=	कैसे
अभेष्यत्=	भय होगा

भावार्थ ।

हे सौम्य ! वह प्रजापति अकेला होने के कारण डरता भया और यही कारण है कि आजकल अकेला पुरुष डरता है फिर वही प्रजापति विचार करने लगा कि जब मुझसे दूसरा कोई नहीं है तो मैं क्यों डरूं ऐसे विचार से उस प्रजापति का डर दूर होगया क्योंकि भय दूसरे से होता है अपने से नहीं जब दूसरा नहीं रहा तब भय कैसे होगा ॥ २ ॥

मन्त्रः ३

स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत् स हैतावानास यथा स्त्रीपुमांसौ संपरिष्वक्तौ स इममेवात्मानं द्वेधापातयत्ततः पतिश्च पत्नी चाभवतां तस्मादिदमर्धबृगलमिव स्व इति ह स्माह याज्ञवल्क्यस्तस्मादयमाकाशः स्त्रिया पूर्यत एव तां समभवत्ततो मनुष्या अजायन्त ॥

पदच्छेदः ।

सः, वै, न, एव, रेमे, तस्मात्, एकाकी, न, रमते, सः, द्वितीयम्, ऐच्छत्, सः, ह, एतावान्, आस, यथा, स्त्रीपुमांसौ, संपरिष्वक्तौ, सः, इमम्, एव, आत्मानम्, द्वेधा, अपातयत्, ततः, पतिः, च, पत्नी, च, अभवताम्, तस्मात्, इदम्, अर्द्धबृगलम्, इव, स्वः, इति, ह, स्म, आह, याज्ञवल्क्यः, तस्मात्, अयम्, आकाशः, स्त्रिया, पूर्यते, एव, ताम्, समभवत्, ततः, मनुष्याः, अजायन्त ॥

अन्वयः	पदार्थाः
सः	वह प्रजापति
वै	निश्चय करके
न एव रेमे	अकेला होनेके कारण आनंदित नहीं हुआ
तस्मात्	इसीलिये
+इदानीम् + अपि	अब भी
एकाकी	अकेला कोई पुरुष
न	नहीं
रमते	आनन्द को प्राप्त होता है
+ अतः	इसलिये
सः	वह प्रजापति
द्वितीयम्	दूसरे की
ऐच्छत्	इच्छा करता भया
+ च पुनः	और फिर
सः	वही
एतावान्	इतने परिमाणवाला
आस	हुआ कि
यथा	जितना
स्त्रीपुमांसौ	स्त्री पुरुष दोनों मिल कर
संपरिष्वक्तौ	होते हैं
+ च	और
+ पुनः	फिर
सः	वही प्रजापति
इमम्	इसी
एव	ही
आत्मानम्	अपने शरीर को

द्वेधा=दो भाग में यानी स्त्री और पुरुष के रूप में
अपातयत्=विभाग किया
ततः=तिस शरीर के विभाग होने पर
पतिः=पति
च=और
पत्नी च=पत्नी दो
अभवत्=होते भये
तस्मात्=इसलिये
स्वः=आत्मा का
इदम्=यह शरीर
अर्द्धवृगलम् इव=अर्द्धभाग दाल के समान है
इति ह=ऐसा
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
आह स्म=कहा है
तस्मात्=इसी कारण
अयम्=यह
आकाशः=पुरुष का अर्द्ध भाग आकाश
स्त्रिया एव=विवाहिता स्त्री करके ही
पूर्यते=पूर्ण किया जाता है
+ च=और
+ पुनः=फिर
सः=वही प्रजापति यानी स्वायंभू मनु
ताम्=उस शतरूपा नाम की स्त्री से
समभवत्=मैथुन करता भया
ततः=तिस मैथुन से
मनुष्याः=मनुष्य
अजायन्त=उत्पन्न होते भये

भावार्थ।

हे सौम्य ! वह प्रजापति अकेला होने के कारण आनंदित नहीं रहा करता था, और यही कारण है कि आजकल कोई पुरुष अकेला आनंदित नहीं होता है, जब प्रजापति ने देखा कि अकेले रहने में दुःख है तब दूसरे के प्राप्ति की इच्छा करता भया, और फिर अपने को इतना बड़ा परिमाणवाला बनाया जितना कि स्त्री पुरुष दोनों मिलकर होते हैं, और फिर उसी प्रजापति ने उस अपने शरीर को दो भागों में यानी स्त्री और पुरुष के रूपमें विभाग कर दिया, तिसी शरीर के विभाग होने पर पति और पत्नी दो होते भये, इसलिये शरीर का अर्द्धभाग दाल के समान है, ऐसा याज्ञवल्क्य ने कहा है, इसी कारण इस पुरुष का अर्द्धभाग जो आकाश की तरह खाली है, वह विवाहिता स्त्री करके ही पूरण कियाजाता है, और फिर वही

प्रजापति यानी स्वायंभू मनु उसी स्त्री यानी शतरूपा से मैथुन करता भया तिसी मैथुन से मनुष्य की सृष्टि उत्पन्न होती भई ॥ ३ ॥

मन्त्रः ४

सो हेयमीक्षांचक्रे कथं नु मात्मन एव जनयित्वा संभवति हन्त तिरोसानीति सा गौरभवदृषभ इतरस्तां समेवाभवत्ततो गावोजायन्त वडवेतराभवदश्ववृषभ इतरो गर्दभीतरा गर्दभ इतरस्तां समेवाभवत्तत एकशफमजायताजेतराभवद् बस्त इतरोविरितरा मेष इतरस्तां समेवाभवत्ततोजावयोजायन्तैवमेव यदिदं किंच मिथुनमापिपीलिकाभ्यस्तत्सर्वमसृजत ॥

पदच्छेदः ।

सा, उ, ह, इयम्, ईक्षांचक्रे, कथम्, नु, मा, आत्मनः, एव, जनयित्वा, संभवति, हन्त, तिरः, असानि, इति, सा, गौः, अभवत, वृषभः, इतरः, ताम्, सम्, एव, अभवत्, ततः, गावः, अजायन्त, वडवा, इतरा, अभवत्, अश्ववृषभः, इतरः, गर्दभी, इतरा, गर्दभः, इतरः, ताम्, सम्, एव, अभवत्, ततः, एकशफम्, अजायत, अजा, इतरा, अभवत्, बस्तः, इतरः, अविः, इतरा, मेषः, इतरः, ताम्, सम्, एव, अभवत, ततः, अजावयः, अजायन्त, एवम्, एव, यत्, इदम्, किंच, मिथुनम्, आपिपीलिकाभ्यः, तत्, सर्वम्, असृजत ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
उ=और		आत्मनः=अपने से	
सा ह=वही		एव=ही	
इयम्=यह शतरूपा		मा=मुझे	
ईक्षांचक्रे=विचार करती भई कि		जनयित्वा=पैदा कर	
कथम् नु=कैसे		+ कथम्=कैसे	
+ इदम्=यह		संभवति=मुझसे मैथुन करता है	
+ अकृत्यम्=बात		हंत=खेद है	
+ अयम्=यह		अहम्=मैं	
पुरुषः=पुरुष		तिरः=छिपकर	

असानि=दूसरी जाति में होऊं
इति=इसलिये
सा=वह शतरूपा
गौः=गाय
अभवत्=होती भई
+ तदा=तब
इतरः=मनु
वृषभः=बैल
अभवत्=होताभया
+ च=और
ताम् एव=उसी गाय से
समभवत्=मिथुन करता भया
ततः=उस मिथुन से
गावः=गौ बैल
अजायन्त=उत्पन्न होते भये
+ च=फिर
इतरा=शतरूपा
वडवा=घोड़ी होती भई
इतरः=मनु
अश्ववृषः=घोड़ा
अभवत्=होताभया
इतरा=शतरूपा
गर्दभी=गदही
इतरः=मनु
गर्दभः=गदहा
+ अभवत्=होता भया
+ पुनः=फिर
ताम् एव=उसी शतरूपा से
समभवत्=मनु मिथुन करता भया

ततः=उस मिथुन से
एकशफम्=एक खुरकी सृष्टि
अजायत=होती भई
इतरा=शतरूपा
अजा=बकरी
इतरः=मनु
वस्तः=बकरा
अभवत्=होताभया
इतरा=शतरूपा
अविः=भेड़ी होगई
इतरः=मनु
मेषः=भेड़ा
+ अभवत्=होताभया
ताम्=उस भेड़ी के
एव=साथ
समभवत्=वह बकरा व भेड़ा मैथुन करता भया
ततः=तिसी कारण
अजावयः=बकरी भेड़
अजायन्त=होते भये
एवम् एव=इसीतरह
यत्=जो
किंच=कुछ
इदम्=यह सृष्टि
आपिपीलिकाभ्यः=चींटी तक
+ अस्ति=है
तत् सर्वम्=उस सबको
मिथुनम्=मिथुन
असृजत=पैदा करता भया

भावार्थ ।

हे सौम्य ! वही यह शतरूपा स्त्री विचार करती भई कि जब इस पुरुषने मुझको अपने ही से उत्पन्न किया है तब फिर मेरे साथ यह कैसे भोग करता है, इस प्रकार पश्चात्ताप करके दूसरी योनिको प्राप्त होगई, जब वह गाय भई तब मनु बैल होगया और उससे मैथुन किया, तिस मैथुन से गाय और बैल उत्पन्न हुए, फिर जब वह शतरूपा स्त्री घोड़ी होगई तब मनु घोड़ा होगया, जब शतरूपा गदही हुई तब मनु गदहा होगया, फिर उसी शतरूपा से मैथुन किया तिस मैथुन से एक खुरवाली सृष्टि उत्पन्न होती भई, फिर शतरूपा बकरी होगई तब मनु बकरा होगया, जब शतरूपा भेड़ी होगई तब मनु भेड़ा होगया, और तब उसी भेड़ी के साथ भेड़ा मैथुन करता भया, तिस मैथुन से बकरी और भेड़की सृष्टि होती भई, इसप्रकार जो कुछ सृष्टि ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत देखने में आती है सबको मैथुनने ही उत्पन्न किया है ॥ ४ ॥

मन्त्रः ५

सोवेदहं वाव सृष्टिरस्म्यहं हीदं सर्वमसृक्षीति ततः सृष्टिरभवत्सृष्ट्यां हास्यैतस्यां भवति य एवं वेद ॥

पदच्छेदः ।

सः, अवेत्, अहम्, वाव, सृष्टिः, अस्मि, अहम्, हि, इदम्, सर्वम्, असृक्षि, इति, ततः, सृष्टिः, अभवत्, सृष्ट्याम्, ह, अस्य, एतस्याम्, भवति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थाः
सः	वह प्रजापति
अवेत्	जानता भया कि
अहम्	मैं
वाव	ही
सृष्टिः	यह सृष्टिरूप
अस्मि	हूं
हि	क्योंकि
अहम्	मैंने ही
इदम्	इस
सर्वम्	सब जगत् को
असृक्षि इति	पैदा किया है
ततः	इसी कारण

+ सः=वह
सृष्टिः=सृष्टिरूप
अभवत्=होता भया
यः=जो पुरुष
एवम्=इस कहे हुये प्रकार
वेद=जानता है
+ सः=वह
ह=अवश्य
अस्य=इस प्रजापति की
एतस्याम्=इस
सृष्ट्याम्=सृष्टि में
+ प्रजापतिः=सृष्टिकर्त्ता
भवति=होता है

भावार्थ।

हे सौम्य ! वह प्रजापति जानता भया कि मैं सृष्टिरूप हूं, क्योंकि मैंने ही इस सब सृष्टिको रचा है, जो पुरुष इसप्रकार जानता है वह प्रजापति की सृष्टि में सृष्टिकर्त्ता अवश्य होता है ॥ ५ ॥

मन्त्रः ६

अथेत्यभ्यमन्थत्स मुखाच्च योनेर्हस्ताभ्यां चाग्निमसृजत तस्मादेतदुभयमलोमकमन्तरतोलोमका हि योनिरन्तरतः तद्यदिदमाहुरमुं यजामुं यजेत्येकैकं देवमेतस्यैव सा विसृष्टिरेष उ ह्येव सर्वे देवाः अथ यत्किंचेदमार्द्रं तद्रेतसोऽसृजत तदु सोम एतावद्वा इदं सर्वमन्नं चैवान्नादश्च सोम एवान्नमग्निरन्नादः सैषा ब्रह्मणोतिसृष्टिः यच्छ्रेयसो देवानसृजताथ यन्मर्त्यः सन्नमृतानसृजत तस्मादतिसृष्टिरतिसृष्ट्यां हास्यैतस्यां भवति य एवं वेद ॥

पदच्छेदः।

अथ, इति, अभ्यमन्थत्, सः, मुखात्, च, योनेः, हस्ताभ्याम्, च, अग्निम्, असृजत, तस्मात्, एतत्, उभयम्, अलोमकम्, अन्तरतः, अलोमका, हि, योनिः, अन्तरतः, तत्, यत्, इदम्, आहुः, अमुम्, यज, अमुम्, यज, इति, एकैकम्, देवम्, एतस्य, एव, सा, विसृष्टिः, एषः, उ, हि, एव, सर्वे, देवाः, अथ, यत्, किंच, इदम्, आर्द्रम्, तत्, रेतसः, असृजत, तत्, उ, सोमः, एतावत्, वा, इदम्, सर्वम्, अन्नम्, च, एव, अन्नादः, च, सोमः, एव, अन्नम्, अग्निः, अन्नादः, सा, एषा,

ब्रह्मणः, अतिसृष्टिः, यत्, श्रेयसः, देवान्, असृजत, अथ, यत्, मर्त्यः, सन्, अमृतान्, असृजत, तस्मात्, अतिसृष्टिः, अतिसृष्ट्याम्, ह, अस्य, एतस्याम्, भवति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थाः
अथ इति	इसके पीछे
सः	वह प्रजापति
अभ्यमन्थत्	मंथन करता भया
+ तदा	तब
मुखात् च	मुखरूप
योनेः	योनि यानी निकलने की जगह से
+ च	और
हस्ताभ्याम्	हस्तरूप योनि यानी निकलनेकी जगह से
अग्निम्	अग्निको
असृजत	उत्पन्न करता भया
तस्मात्	इसलिये
एतत्	यह
उभयम् अन्तरतः	दोनों यानी मुख और हाथ का अभ्यंतरी भाग
अलोमकम्	रोम रहित है
हि	क्योंकि
योनिः	आग के उत्पत्ति का स्थान
अन्तरतः	भीतरसे
अलोमका	लोम रहित होता है
तत्	इसी कारण कोई कोई
+ याज्ञिकाः	याज्ञिक
यत्	जो

अन्वयः	पदार्थाः
इदम्	यह
आहुः	कहते हैं कि
अमुम्	इस
एकैकम्	एक एक देव को
यज	यजन करो
ते	वे
न	नहीं
विजानन्ति	जानते हैं कि
एतस्य एव	इसी प्रजापति की
सा	वह
विसृष्टिः	अग्न्यादि देवसृष्टि है
उ	और
सर्वे	ये सब
देवाः	अग्न्यादि देवता
एषः	यही प्रजापति है
अथ	और
यत्	जो
किंच	कुछ
इदम्	यह
आर्द्रम्	गीली वस्तु है यानी अन्नादि है
तत्	उसको
रेतसः	अपने वीर्य से
+ सः	वह
असृजत	पैदा करता भया
उ	और
तत्	वही

सोमः=सोम है
च=और
यावत्=जितना
अन्नम्=अन्न है
च=और
अन्नादः=अन्न का भोक्ता है
एतावत्=उतनाही
इदम् सर्वम्=यह सब जगत् है
अन्नम् एव=अन्नही
सोमः=सोम है
च=और
अग्निः=अग्नि
अन्नादः=अन्नका भोक्ता है
सा=वही
एषा=यह
ब्रह्मणः=प्रजापति की
अतिसृष्टिः=श्रेष्ठ सृष्टि है
यत्=जो
श्रेयसः=श्रेष्ठ
देवान्=देवों को
असृजत=वह उत्पन्न करता भया
अथ=और
यत्=जिस कारण
प्रजापतिः=प्रजापति
मर्त्यः सन्=मरणधर्मी होता हुआभी
अमृतान्=अजर अमर देवोंको
असृजत=पैदा करता भया
तस्मात्=तिसी कारण
अतिसृष्टिः=देवों की सृष्टि प्रजापति से अतिश्रेष्ठ है
अतः=इसलिये
यः=जो उपासक
एवम्=इस प्रकार
वेद=जानता है
सः=वह
अस्य=इस प्रजापति की
एतस्याम्=इस
अतिसृष्ट्याम्=अतिसृष्टि में
+ स्रष्टा=सृष्टिकर्त्ता
भवति=होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! हे प्रियदर्शन ! इसके पीछे जब वह प्रजापति अग्नि को मंथन करता भया तब उसके मुख और हाथरूप योनि से अग्नि उत्पन्न होता भया, और चूंकि अग्नि के निकलने का स्थान लोमरहित है इसलिये यह मुख और हाथ जहां से अग्नि निकला है रोमरहित है, और जो कोई याज्ञिक ऐसा कहते हैं कि एक एक देवताको पृथक् पृथक् पूजन करो तो वह ठीक नहीं कहते हैं, शायद वह नहीं जानते हैं कि इसी प्रजापति के वे अग्नि आदि देव सृष्टि हैं, और यह सब अग्नि आदि देवता प्रजापतिरूपही हैं, और जो कुछ ये गीली वस्तु

देखने में आती है उस सबको प्रजापति ने अपने वीर्य से पैदा किया है, और जो अन्न है वही सोम है, और जितना अन्न है और अन्न का भोक्ता है उतनाही यह सब जगत् है, हे सौम्य ! वास्तव में अन्न ही सोम है, और अग्नि ही अन्नका भोक्ता है, और जिस कारण प्रजापति मरणधर्मी होता हुआ भी अजर अमर देवताओं को पैदा किया है तिसी कारण देवों की सृष्टि प्रजापतिकी सृष्टि से अतिश्रेष्ठ है, इसलिये जो उपासक प्रजापति की अतिसृष्टि में इस प्रकार जानता है वह प्रजापतिकी सृष्टि में सृष्टिकर्त्ता होता है ॥ ६ ॥

मन्त्रः ७

तद्धेदन्तर्ह्यव्याकृतमासीत्तन्नामरूपाभ्यामेव व्याक्रियतासौनामायमिदं रूप इति तदिदमप्येतर्हि नामरूपाभ्यामेव व्याक्रियतेसौ नामायमिदं रूप इति स एष इह प्रविष्टः आनखाग्रेभ्यो यथा क्षुरः क्षुरधानेवहितः स्याद्विश्वम्भरो वा विश्वम्भरकुलाये तन्न पश्यन्ति अकृत्स्नो हि स प्राणन्नेव प्राणो भवति वदन्वाक्पश्यंश्चक्षुः शृणुवन् श्रोत्रं मन्वानो मनस्तान्यस्यैतानि कर्मनामान्येव स योत एकैकमुपास्ते न स वेदाकृत्स्नो ह्येषोत एकैकेन भवत्यात्मेत्येवोपासीतात्र ह्येते सर्व एकं भवन्ति तदेतत्पदनीयमस्य सर्वस्य यदयमात्मानेन ह्येतत्सर्वं वेद यथा ह वै पदेनानुविन्देदेवं कीर्त्तिं श्लोकं विन्दते स य एवं वेद ॥

पदच्छेदः ।

तत्, ह, इदम्, तर्हि, अव्याकृतम्, आसीत्, तत्, नामरूपाभ्याम्, एव, व्याक्रियत, असौनामा, अयम्, इदम्, रूपः, इति, तत्, इदम्, अपि, एतर्हि, नामरूपाभ्याम्, एव, व्याक्रियते, असौनामा, अयम्, इदम्, रूपः, इति, सः, एषः, इह, प्रविष्टः, आ, नखाग्रेभ्यः; यथा, क्षुरः, क्षुरधाने, अवहितः, स्यात्, विश्वंभरः, वा, विश्वंभरकुलाये, तम्, न, पश्यन्ति, अकृत्स्नः, हि, सः, प्राणन्, एव, प्राणः, भवति, वदन्, वाक्, पश्यन्,

चक्षुः, शृण्वन्, श्रोत्रम्, मन्वानः, मनः, तानि, अस्य, एतानि, कर्मनामानि, एव, सः, यः, अतः, एकैकम्, उपास्ते, न, सः, वेद, अकृत्स्नः, हि, एषः, अतः, एकैकेन, भवति, आत्मा, इति, एव, उपासीत, अत्र, हि, एते, सर्वे, एकम्, भवन्ति, तत्, एतत्, पदनीयम्, अस्य, सर्वस्य, यत्, अयम्, आत्मा, अनेन, हि, एतत्, सर्वम्, वेद, यथा, ह, वै, पदेन, अनुविन्देत्, एवम्, कीर्त्तिम्, श्लोकम्, विन्दते, सः, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थाः
तत् ह	वही
इदम्	यह जगत्
तर्हि	सृष्टि के आदि में
अव्याकृतम्	अव्याकृत यानी नाम रूपकी उपाधिसे रहित
आसीत्	था
तत् एव	सोई
नामरूपाभ्याम्	नाम रूप करके
व्याक्रियत	व्याकृत यानी नामरूप वाला होता भया
+ च पुनः	और फिर
अयम्	वही जीवात्मा
असौनामा	उस नामवाला
च	और
इदंरूपः	इस रूपवाला
इति	ऐसे होकर
व्याक्रियते	विकृति को प्राप्त होता भया
तत्	तिसी कारण
इदम्	इस जगत् में
एतर्हि	अब
अपि	भी

अन्वयः	पदार्थाः
एव	अवश्य
नामरूपाभ्याम्	नाम रूप करके
अयम्	यह जीवात्मा
असौनामा इदंरूपः इति	इस नामवाला और उस रूपवाला होकर
+ व्याक्रियते	विकार को प्राप्त होता है
+ च	और
सः	वही
एषः	यह जीवात्मा
इह	इस देह में
आनखाग्रेभ्यः	नख से लेकर शिर तक
प्रविष्टः	प्रविष्ट है
यथा	जैसे
क्षुरः	छुरा
क्षुरधाने	नाई की पेटी में
अवहितः	प्रविष्ट
स्यात्	रहता है
वा	अथवा
+ यथा	जैसे
विश्वम्भरः	अग्नि

विश्वम्भर-कुलाये = काष्ठादिक में
+ अवहितः=प्रविष्ट
स्यात्=रहती है
परन्तु तौ=परन्तु उस छुरे और अग्नि को
+ जनाः=लोग
न=नहीं
पश्यन्ति=देखते हैं
सः=वह जीवात्मा
हि=निश्चय करके
अकृत्स्नः=अपूर्ण है
+ यः=जो
+ एकाङ्गे=एक अङ्ग में
+ वसति=वास करता है
+ सः=वह जीवात्मा
+ यदा=जब
प्राणन् एव=प्राणकाही व्यापार करनेवाला
+ भवति=होता है
+ तदा=तब
प्राणः=प्राण के
नाम=नाम से
भवति=कहलाता है
+ यदा=जब
वदन्=बोलनेवाला
+ भवति=होता है
+ तदा=तब
वाक्=वाक् के नाम से
+ प्रसिद्धः=प्रसिद्ध
+ भवति=होता है
+ यदा=जब
पश्यन्=द्रष्टा
भवति=होता है
+ तदा=तब
चक्षुः=चक्षु के नाम से
+ प्रसिद्धः=प्रसिद्ध
+ भवति=होता है
+ यदा=जब
शृण्वन्=सुनने वाला
+ भवति=होता है
+ तदा=तब
श्रोत्रम्=श्रोत्र के नाम से
+ प्रसिद्धः=प्रसिद्ध
+ भवति=होता है
+ यदा=जब
मन्वानः=मनन करनेवाला
+ भवति=होता है
+ तदा=तब
मनः=मनके नाम से
+ प्रसिद्धः=प्रसिद्ध
+ भवति=होता है
अस्य=इसके
तानि=वे
एतानि=ये
कर्मनामान्येव=सब कर्मजन्य नाम हैं
अतः=इस कारण
सः=वह
यः=जो
एकैकम्=एक अंग का
उपास्ते=आत्मा समझकर उपासना करता है
सः=वह पूर्ण आत्माको
न वै=नहीं

वेद=जानता है
हि=क्योंकि
अतः=इसलिये
एषः=यह जीवात्मा
एकैकेन=एक एक अंग करके
अकृत्स्नः=अपूर्णही रहता है
+ सर्वम्=सबको
आत्मा=आत्मा
+ मत्वा इति=मान करके
एव=ही
उपासीत=उपासना करे
हि=क्योंकि
अत्र=इसी में
एते=ये
सर्वे=सब
एकम्=एक
भवन्ति=होजाते हैं
तत्=तिसी कारण
एतत्=यह जीवात्मा
पदनीयम्=खोजने योग्य है
यत्=जिस कारण
अस्य=इस
सर्वस्य=सब वस्तु में
अयम्=यह
आत्मा=आत्मा
+ विद्यमानः=विद्यमान है
+ ततः=तिसी कारण
अनेन हि=इसी आत्मा करके ही
+ सः=वह उपासक
एतत्=इस
सर्वम्=सबको
वेद=जान लेता है
यथा=जिसप्रकार
पदेन=पाद के चिह्न करके निस्सन्देह
अनुविन्देत्=खोयेहुये पशुको पुरुष तलाश कर लेता है
एवम्=तिसी प्रकार
यः=जो कोई
आत्मानम्=आत्मा को
वेद=खोज करलेता है
सः=वह
कीर्तिम्=कीर्ति
+ च=और
श्लोकम्=यशको
ह=अवश्य
विन्दते=प्राप्त होजाता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! यह जगत् जो दिखाई दे रहा है सृष्टिके आदि में अव्याकृत था, यानी नामरूप से रहित था, पीछे से यही जगत् व्याकृत यानी नामरूपवाला होता भया, और फिर उसी नामरूपवाले विकृति में जीवात्मा प्रवेश करता भया, और तिसी कारण यही विकृतिवाला यानी नामरूपवाला कहलाता है, सोई आत्मा इस देहमें नखसे शिख

तक प्रविष्ट है, जैसे छुरा नाई की पेटी में प्रविष्ट रहता है, अथवा जैसे अग्नि काष्ठ में लीन रहता है, और उस छुरे और अग्नि को कोई नहीं देखता है तद्वत्, जो जीवात्मा एक अंग में वास करता है वह अपूर्ण होता है, ऐसा जीवात्मा जब प्राण का व्यापार करने वाला होता है तब प्राण के नाम से पुकारा जाता है, जब बोलने का व्यापार करनेवाला होता है तब वाक्य के नाम से पुकारा जाता है, जब द्रष्टा होता है तब चक्षुके नाम से प्रसिद्ध होता है, जब श्रवण व्यापार करनेवाला होता है तब श्रोत्र नामसे प्रसिद्ध होता है, जब मनन करनेवाला होता है तब मन के नामसे प्रसिद्ध होता है, यह जीवात्मा के उपाधिजन्य नाम हैं, इस कारण जो पुरुष जीवात्मा के एक अंगकी उपासना करता है वह पूर्ण आत्मा को नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि यह जीवात्मा एक अंग करके अपूर्ण ही रहता है, इस लिये उपासक को चाहिये कि सब अंगोंको एक आत्मा मानकर उपासना करे, क्योंकि उसी आत्मा में ये सब एक होते हैं, ऐसा यह जीवात्मा खोजने योग्य है, और जिस कारण यह जीवात्मा सब वस्तुओं में विद्यमान है तिसी कारण सबको वह उपासक जानलेता है, और जिसप्रकार पादके खुरके चिह्न करके खोये हुये पशुको पुरुष तलाश करलेता है उसी प्रकार जो कोई आत्मा को खोज करलेता है वह कीर्ति और यशको प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

मन्त्रः ८

तदेतत्प्रेयो पुत्रात्प्रेयो वित्तात्प्रेयोऽन्यस्मात्सर्वस्मादन्तरतरं यदयमात्मा स योऽन्यमात्मनः प्रियं ब्रुवाणं ब्रूयात्प्रियं रोत्स्यतीश्वरो ह तथैव स्यादात्मानमेव प्रियमुपासीत स य आत्मानमेव प्रियमुपास्ते न हास्यप्रियंप्रमायुकं भवति ॥

पदच्छेदः ।

तत्, एतत्, प्रेयः, पुत्रात्, प्रेयः, वित्तात्, प्रेयः, अन्यस्मात्, सर्व-

स्मात्, अन्तरतरम्, यत्, अयम्, आत्मा, सः, यः, अन्यम्, आत्मनः, प्रियम्, ब्रुवाणम्, ब्रूयात्, प्रियम्, रोत्स्यति, इति, ईश्वरः, ह, तथा, एव, स्यात्, आत्मानम्, एव, प्रियम्, उपासीत, सः, यः, आत्मानम्, एवं, प्रियम्, उपास्ते, न, ह, अस्य, प्रियम्, प्रमायुकम्, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
तत्	वही
एतत्	यह आत्मा
पुत्रात्	पुत्र से
प्रेयः	प्यारा है
वित्तात्	धन से भी
प्रेयः	प्यारा है
यत्	जो
अयम्	यह
आत्मा	आत्मा है
+ तत्	वही
अन्यस्मात्	और
सर्वस्मात्	सब वस्तुओं से भी
प्रेयः	प्यारा है
+ हि	क्योंकि
अन्तरतरम्	अति निकट है
सः	सो
यः	जो कोई आत्मज्ञानी
अन्यम्	अपने से पृथक् पुत्रादिक को
आत्मनः	अपने आत्मा से
प्रियम्	प्रियतम
ब्रुवाणम्	माननेवाले से
ब्रूयात्	कहे कि
+ ते	तेरा
प्रियम्	पुत्रादि पदार्थ
रोत्स्यति	नष्ट होजायगा
+ सः	वह आत्मज्ञानी तो
ह	अवश्य
तथा एव	ऐसा कहने को
ईश्वरः	समर्थ
स्यात्	है
अतः	इसलिये
प्रियम् आत्मानम्	अपने प्रिय आत्माकी
एव	ही
उपासीत	उपासना करे
सः	वह
यः	जो
प्रियम्	प्रिय
आत्मानम्	आत्माकी
उपास्ते	उपासना करता है
अस्य ह	उसका ही
प्रियम्	प्रिय पुत्रादिक
प्रमायुकम्	मरणवाला
एव न	कभी नहीं
भवति	होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! यह अन्तःकरणविशिष्ट चैतन्य आत्मा सब वस्तुओं

से प्यारा है, यह पुत्र से प्यारा है, धन से प्यारा है, क्योंकि अति निकट है, और जो कोई आत्मज्ञानी अनात्मज्ञानी से जो अपने से अपने पुत्रादिकों को प्रिय मानता है कहे कि तेरा प्रिय पुत्रादि पदार्थ नष्ट होजायगा तो उस आत्मज्ञानी का ऐसा कहा हुआ सत् होता है इसलिये पुरुष अपने आत्मा की ही सदा उपासना करता रहे, जो अपने प्रिय आत्मा की उपासना करता है उसका प्रिय पुत्रादिक मरण धर्मवाला कभी नहीं होता है ॥ ८ ॥

मन्त्रः ९

तदाहुर्यद् ब्रह्मविद्यया सर्वं भविष्यन्तो मनुष्या मन्यन्ते किमु तद्ब्रह्मावेद्यस्मात्तत्सर्वमभवदिति ॥

पदच्छेदः ।

तत्, आहुः, यत्, ब्रह्मविद्यया, सर्वम्, भविष्यन्तः, मनुष्याः, मन्यन्ते, किमु, तत्, ब्रह्म, अवेत्, यस्मात्, तत्, सर्वम्, अभवत्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
तत्=यहां		किमु=क्या संभव है कि	
आहुः=कोई ज्ञानी कहते हैं कि		+ सः=वह	
ब्रह्मविद्यया=ब्रह्मविद्या करके ही		तत्=उस	
सर्वम्=सब वस्तुको		ब्रह्म=ब्रह्म को	
भविष्यन्तः=हम प्राप्त होंगे अथवा तद्रूप होंगे		इति=ऐसा	
+ इति=इस प्रकार		अवेत्=जानसके	
मनुष्याः=मनुष्य		यस्मात्=जिस ज्ञान से	
यत्=जो		तत्=यह	
मन्यन्ते=मानते हैं तो		सर्वम्=सब जगत्	
		+ ब्रह्म=ब्रह्मरूप	
		अभवत्=होताभया है	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! यहां कोई ज्ञानी ऐसा कहते हैं कि ब्रह्मविद्या करके ही सब वस्तु को हम प्राप्त होंगे अथवा हम इन के तद्रूप होजायँगे इस

प्रकार जो मनुष्य मानते हैं तो क्या संभव है कि वह उस ब्रह्मको ऐसा जानसके जिससे यह सब जगत् ब्रह्मरूप होता भया है ॥ ६ ॥

मन्त्रः १०

ब्रह्म वाइदमग्र आसीत्तदात्मानमेवावेत् । अहं ब्रह्मास्मीति तस्मात्तत्सर्वमभवत्तद्यो यो देवानां प्रत्यबुध्यत स एव तदभवत्तथर्षीणां तथा मनुष्याणां तद्धैतत्पश्यन्नृषिर्वामदेवः प्रतिपेदेऽहं मनुरभवं सूर्यश्चेति । तदिदमप्येतर्हि य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति स इदं सर्वं भवति तस्य ह न देवाश्च नाभूत्या ईशते आत्मा ह्येषां स भवति अथ योन्यां देवतामुपास्तेन्योसावन्योहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेवं स देवानाम् यथा ह वै बहवः पशवो मनुष्यं भुञ्ज्युरेवमेकैकः पुरुषो देवान्भुनक्त्येकस्मिन्नेव पशावादीयमानेऽप्रियं भवति किमु बहुषु तस्मादेषां तन्न प्रियं यदेतन्मनुष्या विद्युः ॥

पदच्छेदः ।

ब्रह्म, वै, इदम्, अग्रे, आसीत्, तत्, आत्मानम्, एव, अवेत्, अहम्, ब्रह्म, अस्मि, इति, तस्मात्, तत्, सर्वम्, अभवत्, तत्, यः, यः, देवानाम्, प्रत्यबुध्यत, सः, एव, तत्, अभवत्, तथा, ऋषीणाम्, तथा, मनुष्याणाम्, तत्, ह, एतत्, पश्यन्, ऋषिः, वामदेवः, प्रतिपेदे, अहम्, मनुः, अभवम्, सूर्यः, च, इति, तत्, इदम्, अपि, एतर्हि, यः, एवम्, वेद, अहम्, ब्रह्म, अस्मि, इति, सः, इदम्, सर्वम्, भवति, तस्य, ह, न, देवाः, च, न, अभूत्यै, ईशते, आत्मा, हि, एषाम्, सः, भवति, अथ, यः, अन्याम्, देवताम्, उपास्ते, अन्यः, असौ, अन्यः, अहम्, अस्मि, इति, न, सः, वेद, यथा, पशुः, एवम्, सः, देवानाम्, यथा, ह, वै, बहवः, पशवः, मनुष्यम्, भुञ्ज्युः, एवम्, एकैकः, पुरुषः, देवान्, भुनक्ति, एकस्मिन्, एव, पशौ, आदीयमाने, अप्रियम्, भवति, किमु, बहुषु, तस्मात्, एषाम्, तत्, न, प्रियम्, यत्, एतत्, मनुष्याः, विद्युः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
इदम्	यह एक
ब्रह्म	ब्रह्म
वै	ही
अग्रे	सृष्टि के आदि में
आसीत्	था
तत् एव	सोऽहं
आत्मानम्	अपने को
अहम्	मैं
ब्रह्म	ब्रह्म
अस्मि	हूं
इति	ऐसा
अवेत्	जानता भया
तस्मात्	इसलिये
तत्	वह ब्रह्म
सर्वम्	सब रूप यानी व्यापक
अभवत्	होताभया
तत्	तिसी कारण
देवानाम्	देवताओं में
तथा	अथवा
ऋषीणाम्	ऋषियों में
तथा मनुष्याणाम्	अथवा मनुष्यों में
यः	जो
यः	जो
प्रत्यबुध्यत	ज्ञानवान् हुये
सः एव	वही वही
तत्	वह ब्रह्म
अभवत्	होते भये
तत् ह	उसी ही
एतत्	इस ब्रह्मज्ञान को

अन्वयः	पदार्थाः
पश्यन्	जानता हुआ
वामदेवः	वामदेव
ऋषिः	ऋषिने
आह	कहा कि
अहम्	"मैंही
मनुः	मनु
अभवम्	होता भया
च	और
+ अहम्	मैंही
सूर्यः	सूर्य
+ अभवम्	होताभया"
इति	ऐसे
प्रतिपेदे	ज्ञानको वह प्राप्त हुआ
तत्	तिसी कारण
यः	जो
एतर्हि	आजकल
अपि	भी
तत्	उस
इदम्	इस प्रसिद्ध ज्ञानको
वेद	जानता है
सः	वह भी
इति	ऐसा
+ आह	कहता है कि
अहम्	"मैं
ब्रह्म	ब्रह्म
अस्मि	हूं"
+ च	और
सः	वही
इदम्	यह
सर्वम्	सब रूप

भवति=होता है
तस्य=उस ब्रह्मवेत्ता के
अभूत्यै=अकल्याणार्थ
+ कश्चित्=कोई भी
देवाः=देवता
न ह न=कभी नहीं
ईशते=समर्थ होते हैं
हि=क्योंकि
सः=वह ज्ञानी
एषाम्=उन देवताओं का
आत्मा=आत्मा
भवति=होता है
अथ=और
असौ=यह
अन्यः=और है
+ अहम्=मैं
अन्यःअस्मि=और हूं
इति=इस प्रकार
+ ज्ञात्वा=जान करके
यः=जो
अन्याम्=अन्य
देवताम्=देवताओं की
उपास्ते=उपासना करता है
सः=वह
न=नहीं
वेद=जानता है कि
सः=वह अज्ञानी
एव=निश्चय करके
देवानाम् पशुः=देवताओं का पशु है
यथा=जैसे
बहवः=बहुत
पशवः=पशु

ह वै=निश्चय करके
मनुष्यम्=मनुष्यको
भुञ्ज्युः=पोषण करते हैं
एवम्=उसी प्रकार
एकैकः=एक एक
पुरुषः=अज्ञानी पुरुष
देवान्=देवताओं को
भुनक्ति=पोषण करता है
एकस्मिन् एव पशौ आदीयमाने = किसी एक पशु के चुरालिये जाने पर
अप्रियम्=दुःख
+ स्वामिनः=उस के स्वामी को
भवति=होता है
बहुषु=बहुतेरे पशुके चुरा जाने पर
किम्+तस्य दशा भविष्यति = क्या उसकी दशा होगी
इदम् अनुभवार्हम् = यही अनुभव करने योग्य है
तस्मात्=इसलिये
एषाम्=इन देवताओं को
तत्=ब्रह्मज्ञान
न=नहीं
प्रियम्=प्रिय लगता है
+ अतः=इस ख्याल से कि
यत्=शायद
+ ब्रह्मज्ञानेन=ब्रह्मज्ञान करके
मनुष्याः=मनुष्य
एतत्=इस ब्रह्मको
विदुः=कहीं जानजायँ

भावार्थ ।

हे सौम्य ! सृष्टि के आदि में केवल एक ब्रह्मही था, वही ब्रह्म जब अपने को जानता भया कि मैं ब्रह्म हूं, तब वही सबरूप यानी व्यापक होता भया, तिसी कारण देवताओं में, ऋषियों में, मनुष्यों में, जो जो ज्ञानवान् हुये वेही वेही, ब्रह्मस्वरूप होते भये, तिसी ब्रह्मको जान करके वामदेव ऋषिभी ब्रह्मरूप होता भया, और कहने लगा कि सूर्य मैंही हूं, मनु मैंही हूं, और तिसीकारण आजकल के लोग जो इस प्रसिद्ध ब्रह्मज्ञान को जानते हैं वह भी ऐसा कहते हैं कि मैं ब्रह्म हूं, और वही सबरूप होते भी हैं; ऐसे ब्रह्मवेत्ता को कोई देवता एक बाल भी टेढ़ा नहीं करसक्ता है, और जो पुरुष यह जानता है कि मैं और हूं और देवता और हैं, और फिर उनकी उपासना करता है वह अज्ञानी निश्चय करके देवताओं का पशु है, और जैसे पशु मनुष्योंका पोषण करता है, उसी प्रकार एक एक अज्ञानी देवताओं का पोषण करता है, जब एक पशुके चुराजाने पर उसके स्वामी को दुःख होता है तो यदि उसके बहुत से पशु चुरा लिये जायँ तो उसके दुःख की क्या दशा होगी ? हे सौम्य ! तुम अनुभव करसक्ते हो, और यही कारण है कि देवताओं को ब्रह्मज्ञान प्रिय नहीं लगता है, और वे इस ख्याल से डरा करते हैं कि कहीं मेरे सेवक ब्रह्मज्ञान करके ब्रह्म को न प्राप्त होजायँ और मेरी सेवा न छोड़दें ॥ १० ॥

मन्त्रः ११

ब्रह्म वाइदमग्र आसीदेकमेव तदेकं सन्न व्यभवत् तच्छ्रेयोरूपमत्यसृजत क्षत्रं यान्येतानि देवत्रा क्षत्राणीन्द्रो वरुणः सोमो रुद्रः पर्जन्यो यमो मृत्युरीशान इति । तस्मात्क्षत्रात्परं नास्ति तस्माद्ब्राह्मणः क्षत्रियमधस्तादुपास्ते राजसूये क्षत्र एव तद्यशो दधाति सैषा क्षत्रस्य योनिर्यद्ब्रह्म तस्माद्यद्यपि राजा परमतां गच्छति ब्रह्मैवा-

न्तत उपनिश्रयति स्वां योनिं य उ एनं हिनस्ति स्वां स योनिमृच्छति स पापीयान् भवति यथा श्रेयांसं हिंसित्वा ॥

पदच्छेदः ।

ब्रह्म, वै, इदम्, अग्रे, आसीत्, एकम्, एव, तत्, एकम्, सत्, न, व्यभवत्, तत्, श्रेयोरूपम्, अत्यसृजत, क्षत्रम्, यानि, एतानि, देवत्रा, क्षत्राणि, इन्द्रः, वरुणः, सोमः, रुद्रः, पर्जन्यः, यमः, मृत्युः, ईशानः, इति, तस्मात्, क्षत्रात्, परम्, न, अस्ति, तस्मात्, ब्राह्मणः, क्षत्रियम्, अधस्तात्, उपास्ते, राजसूये, क्षत्रे, एव, तत्, यशः, दधाति, सा, एषा, क्षत्रस्य, योनिः, यत्, ब्रह्म, तस्मात्, यदि, अपि, राजा, परमताम्, गच्छति, ब्रह्म, एव, अन्ततः, उपनिश्रयति, स्वाम्, योनिम्, यः, उ, एनम्, हिनस्ति, स्वाम्, सः, योनिम्, ऋच्छति, सः, पापीयान्, भवति, यथा, श्रेयांसम्, हिंसित्वा ॥

अन्वयः	पदार्थाः
वै	अवश्य
इदम् एकम्	यह एक
ब्रह्म एव	ब्राह्मणवर्ण
अग्रे	सृष्टि के आदि में
आसीत्	था
तत्	वही ब्राह्मणवर्ण
एकम्	एक
सत्	होने के कारण
न व्यभवत्	विशेष वृद्धिको नहीं प्राप्त हुआ
तत्	तब
+ तत्	उस ब्राह्मणवर्णने
श्रेयोरूपम्	प्रशंसनीय
क्षत्रम्	क्षत्रिय जातिको
अत्यसृजत	उत्पन्न किया
यानि	जिन
एतानि	इन
देवत्रा	देव
क्षत्राणि	क्षत्रियों में
इन्द्रः	गरुड़
वरुणः	वरुण
सोमः	चन्द्रमा
रुद्रः	रुद्र
पर्जन्यः	इन्द्र
यमः	यमराज
मृत्युः	मृत्यु
ईशानः	वायु
इति	करके प्रसिद्ध हुये हैं
तस्मात्	इसलिये
क्षत्रात्	क्षत्रिय से
परम्	श्रेष्ठ
न अस्ति	कोई वर्ण नहीं है

तस्मात्=इसी कारण
राजसूये=राजसूय यज्ञ में
ब्राह्मणः=ब्राह्मण
अधस्तात्+सन्=क्षत्रिय से नीचे बैठा हुआ
क्षत्रियम्=क्षत्रिय की
उपास्ते=सेवा करता है
+ च=और
क्षत्रे=क्षत्रिय विषे
एव=ही
तत् यशः=उस यानी अपने यशको
दधाति=स्थापित करता है
यत्=जो
ब्रह्म=ब्राह्मण है
सा=वही
एषा=यह
क्षत्रस्य=क्षत्रिय के
योनिः=उत्पत्ति का स्थान है
तस्मात्=तिसी कारण
यदिअपि=यद्यपि
राजा=राजा
+ राजसूये=राजसूय यज्ञमें
परमताम्=श्रेष्ठ पदवी को
गच्छति=प्राप्त होता है
+ परन्तु=परन्तु
अन्ततः=यज्ञ के अन्तमें
स्वाम्=अपने
योनिम्=उत्पत्तिके स्थान यानी
ब्रह्म एव=ब्राह्मण के निकट
उपनिश्रयति=बैठता है
उ=और
यः=जो क्षत्रिय
एनम्=ब्राह्मणको
हिनस्ति=तिरस्कृत करता है
सः=वह
स्वाम्=अपने
योनिम्=उत्पत्तिके स्थान को
ऋच्छति=नाश करता है
+ च=और
सः=वह
+ तथा=वैसेही
पापीयान्=अति पातकी
भवति=होता है
यथा=जैसे कोई
श्रेयांसम्=अपने से बड़े का
हिंसित्वा=तिरस्कार करके
+ पापतरः=पातकी
+ भवति=होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! सृष्टि के आदिमें केवल एक ब्राह्मण वर्णथा, वह ब्राह्मण वर्ण एक होने के कारण विशेष वृद्धि को नहीं प्राप्त हुआ, यानी अपनी रक्षा नहीं करसका इसलिये उस ब्राह्मण वर्णने एक प्रशंसनीय क्षत्रिय जातिको उत्पन्न किया, और उन्हीं क्षत्रियों में बड़े बड़े महान पुरुष

जैसे गरुड़, वरुण, चन्द्रमा, रुद्र, इन्द्र, मृत्यु, वायु, यमराज आदि के नाम से विख्यात हैं, इसलिये क्षत्रिय जातिसे और कोई श्रेष्ठ नहीं है, और यही कारणहै कि राजसूययज्ञ मे ब्राह्मण जो क्षत्रियों के उत्पत्ति का कारण है क्षत्रिय राजा के नीचे बैठता है, और उसकी सेवा करता है, और क्षत्रियविषे वह ब्राह्मण अपने यशको स्थापित करता है, ब्राह्मण ही क्षत्रिय के उत्पत्ति का स्थान है, इसी कारण यद्यपि राजा राजसूय यज्ञ में श्रेष्ठ पदवी को प्राप्त होता है परन्तु यज्ञके समाप्त होनेपर वह ब्राह्मणके निकटही बैठता है, और जो क्षत्रिय ब्राह्मणको तिरस्कार करता है, वह अपने उत्पत्तिके स्थान को नाश करता है, और वह वैसे ही अतिपातकी समझा जाता है, जैसे कोई अपने से बड़े को तिरस्कार करके पातकी होता है ॥ ११ ॥

मन्त्रः १२

स नैव व्यभवत्स विशमसृजत यान्येतानि देवजातानि गणश आख्यायन्ते वसवो रुद्रा आदित्या विश्वेदेवा मरुत इति ॥

पदच्छेदः ।

सः, न, एव, व्यभवत्, सः, विशम्, असृजत, यानि, एतानि, देवजातानि, गणशः, आख्यायन्ते, वसवः, रुद्राः, आदित्याः, विश्वेदेवाः, मरुतः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ यदा=जब	
सः=वह ब्राह्मण	
+ कर्मणे=द्रव्य उपार्जन के लिये	
न एव=नहीं	
व्यभवत्=समर्थ हुआ	
+ तदा=तब	
सः=वह	
विशम्=वैश्यजाति को	

अन्वयः	पदार्थाः
असृजत=उत्पन्न करता भया	
यानि=जो	
एतानि=ये	
देवजातानि=देव वैश्य	
गणशः=गण	
+ इति=करके	
आख्यायन्ते=कहे जाते हैं	
+ ते=वे	
वसवः=आठ वसु	

रुद्राः=ग्यारह रुद्र	इति + वैश्यजातिः + प्रसिद्धः } = वैश्यजाति करके प्रसिद्ध हैं
आदित्याः=बारह सूर्य	
विश्वेदेवाः=तेरह विश्वेदेव	
मरुतः=सात वायु	

भावार्थ।

हे सौम्य ! जब वह ब्रह्मा (ब्राह्मण) द्रव्य उपार्जन के करने में असमर्थ हुआ, तब वह वैश्यजाति की सृष्टिको रचता भया, हे सौम्य ! जो यह सब देवगण कहे जाते हैं उनमें आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह सूर्य, तेरह विश्वेदेव, सात वायुदेव वैश्यजाति करके प्रसिद्ध हैं ॥ १२ ॥

मन्त्रः १३

स नैव व्यभवत्स शौद्रं वर्णमसृजत पूषणमियं वै पूषेयं हीदं सर्वं पुष्यति यदिदं किंच ॥

पदच्छेदः।

सः, न, एव, व्यभवत्, सः, शौद्रम्, वर्णम्, असृजत, पूषणम्, इयम्, वै, पूषा, इयम्, हि, इदम्, सर्वम्, पुष्यति, यत्, इदम्, किंच ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
+ यदा=जब		इयम् हि=यही शूद्रजाति	
सः=वह पुरुष		वै=निश्चय करके	
+ सर्वार्थम्=सब के पोषण के लिये		पूषा=पुष्टिकर्त्री है	
न एव=नहीं		+ यथा=जैसे	
व्यभवत्=समर्थ होता भया		इयम्=यह पृथ्वी	
+तदा=तब		इदम्=उस	
सः=वह		सर्वम्=सबको	
पूषणम्=पोषण करने वाले		पुष्यति=पुष्ट करती है	
शौद्रम्=शूद्र		यत्=जो	
वर्णम्=वर्णको		किंच=कुछ	
असृजत=उत्पन्न करता भया		इदम्=यह है यानी इस के आधेय है	

भावार्थ।

हे सौम्य ! जब वह ब्राह्मण सब की सेवा करने को समर्थ नहीं

भया, तब उसने पोषण करनेवाले शूद्रवर्णको उत्पन्न किया, यही शूद्र जाति निश्चय करके सबको पुष्ट करती है जैसे यह पृथ्वी सबको पुष्ट करती है ॥ १३ ॥

मन्त्रः १४

स नैव व्यभवत्तच्छ्रेयोरूपमत्यसृजत धर्मं तदेतत्क्षत्रस्य क्षत्रं यद्धर्म-स्तस्माद्धर्मात्परं नास्त्यथो अबलीयान्बलीयांसमाशंसते धर्मेण यथा राज्ञैवं यो वै स धर्मः सत्यं वै तत्तस्मात्सत्यं वदन्तमाहुर्धर्मं वदतीति धर्मं वा वदन्तं सत्यं वदतीत्येतद्ध्येवैतदुभयं भवति ॥

पदच्छेदः ।

सः, न, एव, व्यभवत्, तत्, श्रेयोरूपम्, अत्यसृजत, धर्मम्, तत्, एतत्, क्षत्रस्य, क्षत्रम्, यत्, धर्मः, तस्मात्, धर्मात्, परम्, न, अस्ति, अथो, अबलीयान्, बलीयांसम्, आशंसते, धर्मेण, यथा, राज्ञा, एवम्, यः, वै, सः, धर्मः, सत्यम्, वै, तत्, तस्मात्, सत्यम्, वदन्तम्, आहुः, धर्मम्, वदति, इति, धर्मम्, वा, वदन्तम्, सत्यम्, वदति, इति, एतत्, हि, एव, एतत्, उभयम्, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ यदा	जब
सः	वह ब्रह्मत्वाभिमानी पुरुष
+वृद्धिम् कर्तुम्	वृद्धि करने में
नैव	नहीं
व्यभवत्	समर्थ हुआ
तत्	तब
श्रेयोरूपम्	कल्याणरूप
धर्मम्	धर्म को
अत्यसृजत	उत्पन्न करता भया
तस्मात्	इसलिये
यत्	जो
एतत्	यह
धर्मः	धर्म है
तत्	वही
क्षत्रस्य	क्षत्रका
क्षत्रम्	क्षत्र है यानी वह शासन करनेवाले क्षत्रियों का भी शासक है
तस्मात्	तिसी कारण
धर्मात्	धर्म से
परम्	श्रेष्ठ
नास्ति	कोई नहीं है

अथो=और
अबलीयान्=निर्बल
बलीयांसम्=बली के
+जेतुम्=जीतने को
धर्मेण=धर्म करके ही
आशंसते=इच्छा करता है
यथा=जैसे
राज्ञा=राजा के साथ
स्पर्द्धमानः=झगड़ा करनेवाला पुरुष
धर्मेण=धर्म करके ही
जीयते=जीता जाता है
वै=निश्चय करके
यः=जो
सः=वह
धर्मः=धर्म है
तत्=वही
सत्यम्=सत्य है
तस्मात्=इसीलिये
सत्यम्=सत्य
वदन्तम्=बोलनेवाले को
इति=ऐसा
आहुः=लोग कहते हैं कि
सः=वह
धर्मम्=धर्म की बात
वदति=कहता है
वा=और
धर्मम्=धर्म के
वदन्तम्=कहने वाले को
इति=ऐसा
+ आहुः=कहते हैं कि
+ सः=वह
सत्यम्=सत्य
वदति=कहता है
हि=क्योंकि
एतत्=यह सत्य और धर्म
उभयम्=दोनों
एतत्=यही है यानी एकही है

भावार्थ।

हे सौम्य! जब वह ब्राह्मण वृद्धिके करने में असमर्थ हुआ, तब वह कल्याणरूप धर्म को उत्पन्न करता भया, इसलिये जो कुछ यह धर्म है वह क्षत्रका क्षत्र है यानी वह शासन करनेवाले क्षत्रियों का भी शासक है, तिसी कारण धर्म से श्रेष्ठ और कोई वस्तु नहीं है, क्योंकि इसी धर्म करके निर्बली बली के जीतने की इच्छा करता है, और जैसे राजा, चोर, डांकू, दुष्ट पुरुषों को धर्म करके जीत लेता है, वैसे ही राजा भी धर्मही करके जीता जाता है, जो धर्म है वही सत्य है और यही कारण है कि सत्य बोलनेवाले को लोग कहते हैं कि वह धर्म की बात कहता है, और धर्म के कहनेवाले को लोग कहते हैं कि वह सत्य कहता है, क्योंकि सत्य और धर्म दोनों एकही हैं ॥ १४ ॥

मन्त्रः १५

तदेतद्ब्रह्म क्षत्रं विट् शूद्रस्तदग्निनैव देवेषु ब्रह्माभवद्ब्राह्मणो मनुष्येषु क्षत्रियेण क्षत्रियो वैश्येन वैश्यः शूद्रेण शूद्रस्तस्मादग्नावेव देवेषु लोकमिच्छन्ते ब्राह्मणो मनुष्येष्वेताभ्यां हि रूपाभ्यां ब्रह्माभवदथ यो ह वा अस्माल्लोकात्स्वं लोकमदृष्ट्वा प्रैति स एनमविदितो न भुनक्ति यथा वेदो वाननुक्तोऽन्यद्वा कर्माकृतं यदिह वा अप्यनेवंविन्महत्पुण्यं कर्म करोति तद्धास्यान्ततः क्षीयत एवात्मानमेव लोकमुपासीत स य आत्मानमेव लोकमुपास्ते न हास्य कर्म क्षीयते अस्माद्ध्येवात्मनो यद्यत्कामयते तत्तत्सृजते ॥

पदच्छेदः ।

तत्, एतत्, ब्रह्म, क्षत्रम्, विट्, शूद्रः, तत्, अग्निना, एव, देवेषु, ब्रह्म, अभवत्, ब्राह्मणः, मनुष्येषु, क्षत्रियेण, क्षत्रियः, वैश्येन, वैश्यः, शूद्रेण, शूद्रः, तस्मात्, अग्नौ, एव, देवेषु, लोकम्, इच्छन्ते, ब्राह्मणः, मनुष्येषु, एताभ्याम्, हि, रूपाभ्याम्, ब्रह्म, अभवत्, अथ, यः, ह, वै, अस्मात्, लोकात्, स्वम्, लोकम्, अदृष्ट्वा, प्रैति, सः, एनम्, अविदितः, न, भुनक्ति, यथा, वेदः, वा, अननुक्तः, अन्यत्, वा, कर्म, अकृतम्, यत्, इह, वा, अपि, अनेवंवित्, महत्, पुण्यम्, कर्म, करोति, तत्, ह, अस्य, अन्ततः, क्षीयते, एव, आत्मानम्, एव, लोकम्, उपासीत, सः, यः, आत्मानम्, एव, लोकम्, उपास्ते, न, ह, अस्य, कर्म, क्षीयते; अस्मात्, हि, एव, आत्मनः, यत्, यत्, कामयते, तत्, तत्, सृजते ॥

अन्वयः	पदार्थाः
तत्=वही	
एतत्=यह	
ब्रह्म=ब्राह्मण	
क्षत्रम्=क्षत्रिय	
विट्=वैश्य	
शूद्रः=शूद्र	
+ चातुर्वर्ण्यम्=चारवर्ण हैं	
तत्=वही ब्रह्म	
देवेषु=देवताओं में	
अग्निना एव=अग्निरूप करके	

ब्रह्म=ब्रह्मा
अभवत्=होताभया
+सः=वही
मनुष्येषु=मनुष्यों में
+ ब्राह्मणः=ब्राह्मण
+ अभवत्=होताभया
+एवम्=इसीतरह
क्षत्रियेण=क्षत्रिय करके
क्षत्रियः=क्षत्रिय
वैश्येन=वैश्य करके
वैश्यः=वैश्य
शूद्रेण=शूद्र करके
शूद्रः=शूद्र
+ अभवत्=होताभया
तस्मात्=इसलिये
देवेषु=देवताओं के मध्य
अग्नौ=अग्नि विषे
एव=ही
+ याज्ञिकाः=यज्ञ करने वाले
लोकम्=कर्मफलकी
इच्छन्ते=इच्छा करते हैं
हि=क्योंकि
मनुष्येषु=मनुष्यों के मध्य
ब्रह्म=ब्रह्म
एताभ्याम्=इनहीं यानी
रूपाभ्याम्={ यज्ञकर्मकाकर्ता और यज्ञकर्मका अधिकरणरूप अग्नि करकेही
ब्राह्मणः=ब्राह्मण
अभवत्=होताभया
अथ=और
यः=जो
ह वै=निश्चय करके
स्वम्=अपने
लोकम्=आत्माको
अदृष्ट्वा=न जानकर
अस्मात्=इस
लोकात्=लोक से
प्रैति=कूंच करजाता है
सः=वह
अविदितः=अज्ञानी
एनम्=अपने आत्मानन्दको
न=नहीं
भुनक्ति=प्राप्त होता है
यथा वा=जैसे
अननुक्तः=गुरुसे न पढ़ाहुआ
वेदः=वेद
+ न + भुनक्ति=कर्म के फलको नहीं देता है
वा=अथवा
+यथा=जैसे
अकृतम्=नहीं की हुई
कर्म=खेती
+ न + फलम्=नहीं फलको
+भुनक्ति=देती है
यत्=जिसकारण
इह=इस लोक में
अनेवंवित्=अपने आत्मा का न जानने वाला
अपि=भी
महत्=बड़े
पुण्यम्=पुण्य
कर्म=कर्म को
करोति=करता है

+ परन्तु=परन्तु
अस्य=उसका
तत्=वह फल
ह एव=अवश्य
अन्ततः=भोगने के पीछे
क्षीयते=नष्ट होजाता है
+ अतः=तिस कारण
आत्मानम् लोकम् एव=अपने आत्माकी ही
उपासीत=उपासना करे यानी अपने आत्माको जाने
सः=वह
यः=जो
आत्मानम् एव लोकम्=अपने ही आत्मा की
उपास्ते=उपासना करता है
अस्य ह=उसकाही
कर्म=कर्म फल
न ह=कभी नहीं
क्षीयते=क्षीण होता है
हि=क्योंकि
अस्मात् हि एव=इसही
आत्मनः=आत्मा से
यत्=जो
यत्=जो
+ सः=वह
कामयते=चाहता है
तत् तत्=उस उसको
सृजते=प्राप्त करता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रवर्णों में ब्राह्मण अग्निरूप ब्रह्म होता भया, वही मनुष्यों में ब्राह्मण होता भया, क्षत्रियों के मध्य देवक्षत्रिय होता भया, वैश्यों के मध्य देववैश्य होता भया, शूद्रों के मध्य शूद्र होता भया, इसलिये देवताओं के मध्य अग्नि विषे यज्ञ करनेवाले कर्मफल की इच्छा करते हैं, क्योंकि मनुष्यों के मध्य ब्राह्मण में यज्ञकर्म का कर्ता और यज्ञकर्म का अधिकरण अग्निरूप ब्राह्मण ही होता भया है और जो अपने आत्माको न जानकर इसलोक से कूंच करजाता है, वह अज्ञानी अपने आत्मानन्द को नहीं प्राप्त होता है, जैसे गुरु से न पढ़ाहुआ वेद कर्म के फलको नहीं देता है, अथवा जैसे नहीं की हुई खेती फलको नहीं देती है, और जिस कारण इस लोक में अपने आत्माको न जाननेवाला बड़े पुण्य कर्म को करता हुआ भी कर्म फलके भोगने के पीछे नष्ट होजाता है, तिसी कारण

पुरुष अपने आत्मा की उपासना करे यानी अपने आत्माको जाने जो पुरुष अपने आत्मा की उपासना करता है उसका कर्मफल कभी नष्ट नहीं होता है, क्योंकि उपासक जो जो वस्तु आत्मासे चाहता है उस उस वस्तु को वह प्राप्त होता है ॥ १५ ॥

मन्त्रः १६

अथो अयं वा आत्मा सर्वेषां भूतानां लोकः स यज्जुहोति यद्यजते तेन देवानां लोकोथ यदनुब्रूते तेन ऋषीणामथ यत्पितृभ्यो निपृणाति यत्प्रजामिच्छते तेन पितॄणामथ यन्मनुष्यान्वासयते यदेभ्योऽशनं ददाति तेन मनुष्याणामथ यत्पशुभ्यस्तृणोदकं विन्दति तेन पशूनां यदस्य गृहेषु श्वापदा वयांस्यापिपीलिकाभ्य उपजीवन्ति तेन तेषां लोको यथा ह वै स्वाय लोकायारिष्टिमिच्छेदेवं हैवंविदे सर्वाणि भूतान्यरिष्टिमिच्छन्ति तद्वाएतद्विदितं मीमांसितम् ॥

पदच्छेदः ।

अथो, अयम्, वै, आत्मा, सर्वेषाम्, भूतानाम्, लोकः, सः, यत्, जुहोति, यत्, यजते, तेन, देवानाम्, लोकः, अथ, यत्, अनुब्रूते, तेन, ऋषीणाम्, अथ, यत्, पितृभ्यः, निपृणाति, यत्, प्रजाम्, इच्छते, तेन, पितॄणाम्, अथ, यत्, मनुष्यान, वासयते, यत, एभ्यः, अशनम, ददाति, तेन, मनुष्याणाम्, अथ, यत्, पशुभ्यः, तृणोदकम, विन्दति, तेन, पशूनाम्, यत्, अस्य, गृहेषु, श्वापदाः, वयांसि, आ, पिपीलिकाभ्यः, उपजीवन्ति, तेन, तेषाम, लोकः, यथा, ह, वै, स्वाय, लोकाय, अरिष्टिम, इच्छेत्, एवम्, ह, एवंविदे, सर्वाणि, भूतानि, अरिष्टिम्, इच्छन्ति, तत्, वै, एतत्, विदितम्, मीमांसितम् ॥

अन्वयः पदार्थाः	अन्वयः पदार्थाः
अथो=तत्पश्चात्	आत्मा=पुरुष
वै=निश्चय करके	सर्वेषाम्=सब
अयम्=यह गृहस्थाश्रमी	भूतानाम्=प्राणियों का

लोकः=आश्रय है
सः=वह पुरुष
यत्=जो
जुहोति=होम करता है
यत्=जो
यजते=प्रतिदिन यज्ञ करता है
तेन=उसी कर्म करके
+ सः=वह
देवानाम्=देवोंका
लोकः=आश्रय
+ भवति=होता है
अथ=और
यत्=जो
अनुब्रूते=पठन पाठन करता है
तेन=उसकरके
+ सः=वह
ऋषीणाम्=ऋषियों का
+ लोकः=आश्रय
+ भवति=होता है
अथ=और
यत्=जो
पितृभ्यः=पितरों के लिये
निपृणाति=पिंडा और पानी देता है
+ च=और
यत्=जो
प्रजाम्=संतान की
इच्छते=इच्छा करता है
तेन=उस पिंडदान और संतान करके
पितृणाम्=पितरों का
+ सः=वह
+ लोकः=आश्रय
+ भवति=होता है
अथ=और
यत्=जो
मनुष्यान्=मनुष्यों को
वासयते=अपने घरमें जगह जलादि देकर वास कराता है
+ च=और
यत्=जो
एभ्यः=उनके लिये
अशनम्=भोजन
ददाति=देता है
तेन=उस जल वस्त्र अन्न करके
मनुष्याणाम्=मनुष्यों का
+ सः=वह
+ लोकः=आश्रय
+ भवति=होता है
अथ=और
यत्=जो
पशुभ्यः=पशुओं के लिये
तृणोदकम्=घास फूस और जल
विन्दति=देता है
तेन=उस करके
पशूनाम्=पशुओं का
+ सः=वह
+ लोकः=आश्रय
+ भवति=होता है
यत्=जो
अस्य=इसी गृहस्थी के
गृहेषु=घरों में
श्वापदाः=चौपाये

वयांसि=पक्षी
आपिपीलिकाभ्यः=और चींटी तक
उपजीवन्ति=अन्न पाकर जीते हैं
तेन=उसी करके
+ सः=वह
तेषाम्=चौपायों आदिकों का
लोकः=आश्रय
+ भवति=होता है
+ अथ ह वै=और अवश्य ही
यथा=जैसे
+ प्रत्येकः=हरएक पुरुष
स्वाय=अपने
लोकाय=देहप्रविष्ट जीवात्मा के लिये
अरिष्टिम्=अविनाशित्व को
इच्छेत्=इच्छा करता है
एवम् ह=वैसेही
एवंविदे=ऐसे जानने वाले के लिये भी
सर्वाणि=सब
भूतानि=प्राणी देवतादि
+ तस्य=उसके
अरिष्टिम्=अविनाशित्व को
इच्छन्ति=चाहते हैं
+ च=और,
तत्=सोई
एतत्=यह यज्ञादिकर्म
विदितम्=पंचमहायज्ञादि प्रकरण में कहा गया है
+ च=और
+ तत् एव=वही
+ इह=यहां पर भी
मीमांसितम्=कर्त्तव्यरूप से विचार का विषय हुआ है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! गृहस्थाश्रमी पुरुष सब प्राणियों का आश्रय है, वह पुरुष जो होम करता है, और जो नित्यप्रति यज्ञ करता है, वह उसी कर्म करके देवोंका आश्रय होता है, और जो पठन पाठन करता है वह उस करके ऋषियों का आश्रय होता है, और जो पितरों के लिये पिंडा पानी देता है और जो संतान की इच्छा करता है तो वह उस पिंडदान और संतान करके पितरों का आश्रय होता है, और जो अभ्यागतों को अपने घर में ठहरा कर जल भोजनादि देता है उस जल वस्त्र अन्न करके वह मनुष्यों का आश्रय होता है, और जो पशुओं को घास फूस देता है, वह उस करके पशुओं का आश्रय होता है, हे सौम्य ! उसी गृहस्थाश्रमी पुरुष के घर में पशु, पक्षी

चींटी तक सब अन्न पाकर जीते हैं, उसी करके वह पुरुष पशु पक्षी आदिकों का आश्रय होता है, और जैसे हर एक पुरुष अपने देह प्रविष्ट जीवात्मा के अविनाशित्व को इच्छा करता है वैसेही ऐसे उपासक के लिये भी सब प्राणी देवता आदिक उसके अविनाशित्व को भी चाहते हैं, और सोई यह यज्ञादिकर्म वेद के पंचमहायज्ञ प्रकरण में कहा गया है, और वही यहां पर भी कर्तव्यरूप से विचार का विषय हुआ है ॥ १६ ॥

मन्त्रः १७

आत्मैवेदमग्र आसीदेक एव सोऽकामयत जाया मे स्यादथ प्रजायेयाथ वित्तं मे स्यादथ कर्म कुर्वीयेत्येतावान्वै कामो नेच्छंश्च नातो भूयो विन्देत्तस्मादप्येतर्ह्येकाकी कामयते जाया मे स्यादथ प्रजायेयाथ वित्तं मे स्यादथ कर्म कुर्वीयेति स यावदप्येतेषामेकैकं न प्राप्नोत्यकृत्स्न एव तावन्मन्यते तस्योऽकृत्स्नता मन एवास्याऽऽत्मा वाग्जाया प्राणः प्रजा चक्षुर्मानुषं वित्तं चक्षुषा हि तद्विन्दते श्रोत्रं दैवꣳश्रोत्रेण हि तच्छृणोत्यात्मैवास्य कर्माऽऽत्मना हि कर्म करोति स एष पांक्तो यज्ञः पांक्तः पशुः पांक्तः पुरुषः पांक्तमिदꣳ सर्वं यदिदं किंच तदिदꣳ सर्वमाप्नोति य एवं वेद ॥ इति चतुर्थं ब्राह्मणम् ॥

पदच्छेदः ।

आत्मा, एव, इदम्, अग्रे, आसीत्, एकः, एव, सः, अकामयत, जाया, मे, स्यात्, अथ, प्रजायेय, अथ, वित्तम्, मे, स्यात्, अथ, कर्म, कुर्वीय, इति, एतावान्, वै, कामः, न, इच्छन्, च, न, अतः, भूयः, विन्देत्, तस्मात्, अपि, एतर्हि, एकाकी, कामयते, जाया, मे, स्यात्, अथ, प्रजायेय, अथ, वित्तम्, मे, स्यात्, अथ, कर्म, कुर्वीय, इति, सः, यावत्, अपि, एतेषाम्, एकैकम्, न, प्राप्नोति, अकृत्स्नः, एव, तावत्, मन्यते, तस्य, उ, अकृत्स्नता, मनः, एव, अस्य, आत्मा, वाक्, जाया, प्राणः, प्रजा, चक्षुः, मानुषम्, वित्तम्, चक्षुषा,

हि, तत्, विन्दते, श्रोत्रम्, दैवम्, श्रोत्रेण, हि, तत्, शृणोति, आत्मा, एव, अस्य, कर्म, आत्मना, हि, कर्म, करोति, सः, एषः, पाङ्क्तः, यज्ञः, पाङ्क्तः, पशुः, पाङ्क्तः, पुरुषः, पाङ्क्तम्, इदम्, सर्वम्, यत्, इदम्, किंच, तत्, इदम्, सर्वम्, आप्नोति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः — पदार्थाः

अग्रे=विवाहविधि से पहिले
इदम्=यह प्रत्यक्ष
एकः=एक
आत्मा=पुरुष
एव=ही
आसीत्=था
\+ पुनः=फिर
सः एव=वही पुरुष
अकामयत=इच्छा करता भया कि
\+कर्माधिकार-सम्पत्तये=यज्ञ कर्म के लिये
जाया=स्त्री
मे=मेरे को
स्यात्=प्राप्त होवे
अथ=और
\+ अहम्=मैं
प्रजायेय=इस जाया से संतानके स्वरूपमें उत्पन्न होऊं
अथ=इस के पीछे
मे=मेरेलिये
वित्तम्=गौ आदिक धन
स्यात्=प्राप्त होवे
अथ=फिर
\+ अहम्=मैं

अन्वयः — पदार्थाः

कर्म=वेदविहित कर्म को
कुर्वीय=करूं
एतावान् वै=इतनी ही
कामः=मेरी कामना है
इति=इस प्रकार
इच्छन्=इच्छा करता हुआ
च=और
न + इच्छन्=नहीं इच्छा करता हुआ
\+ पुरुषः=पुरुष
अतः=इससे
भूयः=अधिक धन
न=नहीं
विन्देत्=पासक्ता है
तस्मात् अपि=इसी कारण
एतर्हि=आजकल भी
एकाकी=अनब्याहा पुरुष
कामयते=चाहता है कि
जाया=स्त्री
मे=मेरे लिये
स्यात्=प्राप्त होवे
अथ=तत् पश्चात्
\+ अहम्=मैं
प्रजायेय=पुत्ररूप से उसमें उत्पन्न होऊं

अथ=फिर
मे=मेरे लिये
वित्तम्=गौ आदिक कर्म साधन द्रव्य
स्यात्=प्राप्त होवे
अथ=तत् पश्चात्
+ अहम्=मैं
कर्म=मुक्ति के साधन कर्म को
कुर्वीय=करूं
इति=इस प्रकार
सः=वह पुरुष
यावत् अपि=जब तक
एतेषाम्=इन कहे हुये पदार्थों में से
एकैकम्=एक एकको
न=नहीं
प्राप्नोति=पालेता है
तावत्=तब तक
+ सः=वह
मन्यते=मानता है कि
+ अहम्=मैं
एव=निश्चय करके
अकृत्स्नः=अपूर्ण
+ अस्मि=हूं
उ=और
तस्य=उसकी
कृत्स्नता=पूर्णता
+ तदा=तब
+ भवति=होती है
+ यदा=जब
+ सः=वह
+ प्राप्नोति=मनोगत अभिलाषा को प्राप्त होता है
+ उ=पर
+ तस्य=उस की
+ पूर्णता=पूर्णता
+ यदा=जब
भविष्यति=होगी
यदा=जब
+ तस्य=उसका
+ विचारः
+ इति } =ऐसा विचार होगा कि
मनः=मन
एव=ही
आत्मा=उसका आत्मा है
वाक्=वाणी ही
जाया=उसकी स्त्री है
प्राणः=प्राणही
प्रजा=उसका पुत्र है
चक्षुः=नेत्रही
मानुषम्=उसका मनुष्य सम्बन्धी
वित्तम्=धन है
हि=क्योंकि
चक्षुषा=नेत्र करके ही
तत्=उस मनुष्य सम्बन्धी धन को
विन्दते=प्राप्त होता है
+ च=और
दैवम्=देवता सम्बन्धी धन यानी विज्ञान
श्रोत्रम्=श्रोत्र है
हि=क्योंकि

श्रोत्रेण=श्रोत्र करके ही
तत्=उस ज्ञानको
शृणोति=सुनता है
अस्य=उस साधनयुक्त पुरुष का
आत्मा एव=शरीर ही
कर्म=कर्म है
हि=क्योंकि
आत्मना=शरीर करके ही
कर्म=कर्म को
करोति=वह करता है
+तस्मात्=इसलिये
सः=वही
एषः=यह
यज्ञः=यज्ञ
पांक्तः=पांच पदार्थों से सिद्ध हुआ
पशुः पांक्तः=यज्ञपशु है
+ सः=वही
+ एषः=यह
पांक्तः=पांचतत्त्वसे बनाहुआ
पुरुषः=पुरुष है
इदम्=यह जगत्
सर्वम्=सब
पांक्तम्=पांच तत्त्ववाला है
यः=जो
एवम्=इस प्रकार
वेद=जानता है
यत्=जो
किंच=कुछ
इदम्=यह है
तत्=उस
इदम्=इस
सर्वम्=सबको
आप्नोति=प्राप्त होता है

भावार्थ ।

हे प्रियदर्शन ! विवाहविधि से पहिले केवल एक पुरुष था, वही ऐसी इच्छा करता भया कि कर्म करने के लिये मुझको स्त्री प्राप्त होवे, और मैं उस स्त्री से संतान की सूरत में उत्पन्न होऊं, और फिर मेरे को गौ आदिक धन प्राप्त होवें, तिनकी सहायता करके मैं वेदविहित कर्मको करूं. इन सबकी प्राप्ति होने से मेरी कामना पूर्ण हो जायगी. इस प्रकार इच्छा करता हुआ और नहीं इच्छा करता हुआ भी पुरुष इससे अधिक धनको नहीं पा सकता है, और यही कारण है कि आजकल भी बे व्याहा पुरुष चाहता है कि मेरे को स्त्री प्राप्त होवे, तिसमें मैं पुत्ररूप से उत्पन्न होऊं, फिर मेरे को गौ आदिक कर्म साधन द्रव्य प्राप्त होवे, ताकि मैं मुक्ति के साधन कर्म को करूं. इस

प्रकार जब तक इन कहे हुये पदार्थों में से एक एक को नहीं पालेता है, तब तक वह समझता है कि मैं अपूर्ण हूं, परंतु हे सौम्य ! उस की पूर्णता तब होतीहै जब वह मनोगत अभिलाषा को प्राप्त होताहै, और उसकी पूर्णता तभी होगी जब उसका विचार ऐसा होगा कि मनही उसका आत्मा है, और वाणी ही उसकी स्त्री है, प्राण ही उसका पुत्र है, नेत्रही उसका मनुष्यसम्बन्धी धन है, क्योंकि नेत्र करके ही मनुष्यसम्बन्धी गौ आदि धन उसको प्राप्त होता है, और उसका देवतासम्बन्धी धन यानी विज्ञान श्रोत्र है, क्योंकि श्रोत्र करके ही उस ज्ञानको सुनता है, उसका शरीरही कर्म है, क्योंकि शरीर करके ही वह कर्म को करता है, इसलिये हे प्रियदर्शन ! वही यह यज्ञ पांच पदार्थों से सिद्ध हुआ है, वही यह पांच पदार्थ से सिद्ध हुआ यज्ञ पशु है, वही यह पांच तत्त्व से बनाहुआ पुरुष है, वही यह जगत् पांच तत्त्वोंवाला है, वह जो इस प्रकार जानता है वह जो कुछ जगत् विषे है सबको प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

इति चतुर्थं ब्राह्मणम् ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

यत्सप्तान्नानि मेधया तपसाऽजनयत्पिता एकमस्य साधारणं द्वे देवानभाजयत् त्रीण्यात्मनेऽकुरुत पशुभ्य एकं प्रायच्छत् तस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितं यच्च प्राणिति यच्च न कस्मात्तानि न क्षीयन्तेऽद्यमानानि सर्वदा यो वैतामक्षितिं वेद सोऽन्नमत्ति प्रतीकेन स देवानपि गच्छति स ऊर्जमुपजीवतीति श्लोकाः ॥

पदच्छेदः ।

यत्, सप्त, अन्नानि, मेधया, तपसा, अजनयत्, पिता, एकम्, अस्य, साधारणम्, द्वे, देवान्, अभाजयत्, त्रीणि, आत्मने, अकु-

रुत, पशुभ्यः, एकम्, प्रायच्छत्, तस्मिन्, सर्वम्, प्रतिष्ठितम्, यत्, च, प्राणिति, यत्, च, न, कस्मात्, तानि, न, क्षीयन्ते, अद्यमानानि, सर्वदा, यः, वा, एताम्, अक्षितिम्, वेद, सः, अन्नम्, अत्ति, प्रतीकेन, सः, देवान्, अपि, गच्छति, सः, ऊर्जम्, उपजीवति, इति, श्लोकाः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
यत्=जो	
सप्त=सात	
अन्नानि=अन्न	
मेधया=मेधा	
+ च=और	
तपसा=तप करके	
पिता=पिताने	
अजनयत्=पैदा किया	
अस्य=उनमें से	
एकम्=एक	
साधारणम्=साधारण है यानी सबके लिये साझेमें है	
+ च=और	
द्वे=दो अन्न	
देवान्=देवताओं को	
अभाजयत्=देदिया	
त्रीणि=तीन	
आत्मने=अपने लिये	
अकुरुत=रक्खा	
पशुभ्यः=पशुओं के लिये	
एकम्=एक	
प्रायच्छत्=दिया	
तस्मिन्=तिसी अन्न विषे	
सर्वम्=सब	
यत्=जो	

अन्वयः	पदार्थाः
प्राणिति=श्वास लेते हैं	
च=और	
यत्=जो	
न=नहीं	
च=भी	
+ प्राणिति=श्वास लेते हैं	
प्रतिष्ठितम्=प्रतिष्ठित हैं यानी आश्रित हैं	
यः=जो ज्ञानी	
वा=निश्चय करके	
ताम्=उस अन्नको	
अक्षितिम्=अविनाशी	
वेद=जानता है	
च=और	
सः=वह	
अन्नम्=उसी अन्नको	
प्रतीकेन=मुख करके	
अत्ति=खाता है	
सः=वह	
देवान्=देवताओं को	
गच्छति=प्राप्त होता है	
+ च=और	
सः=वही	
ऊर्जम्=बलको भी	
+ उपजीवति=प्राप्त होता है ।	

कस्मात्=किस कारण
तानि=वे
सर्वदा=सदा
अद्यमानानि=खाये जाने पर भी
न=नहीं
क्षीयन्ते=नाशको प्राप्त होते हैं
इति=इस विषय में
श्लोकाः=आगेवाले मंत्र
प्रमाण हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जो सात प्रकार के अन्न हमारे पिता ब्रह्मदेव ने तप और बुद्धि करके उत्पन्न किये, उन में से एक सबको सामे में दिया, दो अन्न देवताओं को दिया, और तीन अपने लिये रक्खा, केवल एक पशुओं के लिये दिया, जिसके आश्रय सब जीव हैं, चाहे वह श्वास लेते हों और चाहे न लेते हों, प्रश्न उठता है कि किस कारण सब अन्न खाये जाने पर भी क्षीण नहीं होते हैं, उत्तर यही आता है कि सब अन्न परमात्मा से उत्पन्न हुये हैं, और चूंकि वह परमात्मा नाशरहित है इस कारण उससे उत्पन्न हुये अन्न भी नाशरहित हैं, जो ज्ञानी इन अन्नों को अविनाशी जानकर खाता है, वह देवताओं की पदवी को प्राप्त होता है और वही बलको भी प्राप्त होता है इस विषय में आगेवाले मंत्र प्रमाण हैं ॥ १ ॥

मन्त्रः २

यत्सप्तान्नानि मेधया तपसाऽजनयत्पितेति मेधया हि तपसाऽजनयत्पिता एकमस्य साधारणमितीदमेवास्य तत्साधारणमन्नं यदिदमद्यते स य एतदुपास्ते न स पाप्मनो व्यावर्त्तते मिश्रꣳ ह्येतद् द्वे देवानभाजयदिति हुतं च प्रहुतं च तस्माद्देवेभ्यो जुह्वति च प्र च जुह्वत्यथो आहुर्दर्शपूर्णमासाविति तस्मान्नेष्टियाजुकः स्यात् पशुभ्य एकं प्रायच्छदिति तत्पयः पयो ह्येवाग्रे मनुष्याश्च पशवश्चोपजीवन्ति तस्मात्कुमारं जातं घृतं वैवाग्रे प्रतिलेहयन्ति स्तनं वाऽनुधापयन्त्यथ वत्सं जातमाहुरतृणाद इति तस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितं यच्च प्राणिति यच्च नेति पयसि हीदꣳ सर्वं प्रतिष्ठितं यच्च प्राणिति यच्च न तद्यदिदमाहुः

संवत्सरं पयसा जुह्वदपपुनर्मृत्युं जयतीति न तथा विद्याद्यदहरेव जुहोति तदहः पुनर्मृत्युमपजयत्येवं विद्वान्सर्वं हि देवेभ्यो-न्नाद्यं प्रयच्छति कस्मात् तानि न क्षीयन्तेऽद्यमानानि सर्वदेति पुरुषो वाऽक्षितिः स हीदमन्नं पुनः पुनर्जयते यो वैतामक्षितिं वेद वेदेति पुरुषो वा अक्षितिः सहीदमन्नं धिया धिया जनयते कर्मभिर्यद्वैतन्न कुर्यात् क्षीयेत ह सोन्नमत्ति प्रतीकेनेति मुखं प्रतीकं मुखेनेत्येतत् स देवानपि गच्छति स ऊर्जमुपजीवतीति प्रशंसा ॥

पदच्छेदः ।

यत्, सप्त, अन्नानि, मेधया, तपसा, अजनयत्, पिता, इति, मेधया, हि, तपसा, अजनयत्, पिता, एकम्, अस्य, साधारणम्, इति, इदम्, एव, अस्य, तत्, साधारणम्, अन्नम्, यत्, इदम्, अद्यते, सः, यः, एतत्, उपास्ते, न, सः, पाप्मनः, व्यावर्त्तते, मिश्रम्, हि, एतत्, द्वे, देवान्, अभाजयत्, इति, हुतम्, च, प्रहुतम्, च, तस्मात्, देवेभ्यः, जुह्वति, च, प्र, च, जुह्वति, अथो, आहुः, दर्श-पूर्णमासौ, इति, तस्मात्, न, इष्टियाजुकः, स्यात्, पशुभ्यः, एकम्, प्रायच्छत्, इति, तत्, पयः, पयः, हि, एव, अग्रे, मनुष्याः, च, पशवः, च, उपजीवन्ति, तस्मात्, कुमारम्, जातम्, घृतम्, वा, एव, अग्रे, प्रतिलेहयन्ति, स्तनम्, वा, अनुधापयन्ति, अथ, वत्सम्, जातम्, आहुः, अतृणादः, इति, तस्मिन्, सर्वम्, प्रतिष्ठितम्, यत्, च, प्राणिति, यत्, च, न, इति, पयसि, हि, इदम्, सर्वम्, प्रतिष्ठितम्, यत्, च, प्राणिति, यत्, च, न, तत्, यत्, इदम्, आहुः, संवत्सरम्, पयसा, जुह्वत्, अप, पुनः, मृत्युम्, जयति, इति, न, तथा, विद्यात्, यत्, अहः, एव, जुहोति, तत्, अहः, पुनः, मृत्युम्, अप, जयति, एवम्, विद्वान्, सर्वम्, हि, देवेभ्यः, अन्नाद्यम्, प्रयच्छति, कस्मात्, तानि, न, क्षीयन्ते, अद्यमानानि, सर्वदा, इति, पुरुषः, वा, अक्षितिः, सः, हि, इदम्, अन्नम्, पुनः, पुनः, जयते, यः, वा, एताम्,

अक्षितिम्, वेद, वेद, इति; पुरुषः, वा, अक्षितिः, सः, हि, इदम्, अन्नम्, धिया, धिया, जनयते, कर्मभिः, यत्, वा, एतत्, न, कुर्यात्, क्षीयेत, ह, सः, अन्नम्, अत्ति, प्रतीकेन, इति, मुखम्, प्रतीकम्, मुखेन, इति, एतत्, सः, देवान्, अपि, गच्छति, सः, ऊर्जम्, उपजीवति, इति, प्रशंसा ॥

अन्वयः पदार्थाः

यत्=जो
+ मन्त्रः=मंत्र
इति=ऐसा
+ आह=कहता है कि
पिता=पिता ने
सप्त=सात
अन्नानि=अन्न को
मेधया=मेधा करके
+ च=और
तपसा=तप करके
अजनयत्=पैदा किया
+ तत्=सो
+ इति=ऐसा
+ सत्यम्=ठीकही
+ आह=कहता है
हि=क्योंकि
पिता=पिता ने
मेधया=मेधा करके
+ च=और
तपसा=तप करके
+ अन्नम्=अन्न को
अजनयत्=पैदा किया
+ च=और
+ यत्=जो
+ इति=ऐसा

अन्वयः पदार्थाः

+ आह=कहता है कि
एकम्=एक अन्न
साधारणम्=साधारण है यानी सबके लिये बराबर है
तत्=तो
अस्य + अर्थः=उसका अर्थ
इदम्=यह है कि
इदम्=वह
साधारणम्=साधारण अन्न
+ सर्वेण=सब करके
अद्यते=खाया जाता है
सः=वह
यः=जो
एतत्=इस साधारण अन्नकी
उपास्ते=उपासना करता है
सः=वही
पाप्मनः=पाप से
न व्यावर्त्तते=निवृत्त नहीं होता है
हि=क्योंकि
एतत्=यह साधारण अन्न
मिश्रम्=सबका है
+ पिता=पिता
द्वे=दो अन्न
हुतम्=हुत
च=और

प्रहुतम्=प्रहुत
इति=नाम करके
देवान्=देवताओं को
अभाजयत्=देता भया
च=और
तस्मात्=इसी कारण
देवेभ्यः=देवताओं के लिये
+ विद्वान्
+ जनः } =विद्वान् लोग
जुह्वति च=अग्नि में होम और बलिप्रदान करते हैं
च=और
प्रजुह्वति=विशेष करके अग्नि में अधिक होम करते हैं
अथो=और
+अन्याचार्याः=कोई कोई आचार्य
आहुः=कहते हैं कि
+ एतौ=ये दोनों अन्न
दर्शपूर्णमासौ=दर्श और पूर्णमास इष्टि के नाम
इति=करके हैं
तस्मात्=इस लिये
इष्टियाजुकः=कामयज्ञ
न स्यात्=न करे
+ च=और
+ यत्=जो
पशुभ्यः=पशुओं के लिये
एकम्=एक अन्न
प्रायच्छत्=दिया
इति=ऐसा
+ उक्तम्=कहा गया है
तत्=वह अन्न

पयः=दूध है
हि=क्योंकि
एव=निश्चय करके
अग्रे=पहिले
मनुष्याः=मनुष्य
च=और
पशवः=पशु
च=भी
पयः=दूध को
उपजीवन्ति=ग्रहण करके जीते हैं
तस्मात्=इस लिये
जातम्=उत्पन्न हुये
कुमारम्=बच्चे को
अग्रे=प्रथम
वा एव=अवश्य
घृतम्=घृत
प्रतिलेहयन्ति=चटाते हैं
वा=अथवा
स्तनम्=माता के स्तन को
अनुधा-
पयन्ति } =पिलाते हैं
अथ=और
+ पशूनाम्=पशुओं में
जातम्=उत्पन्न हुये
वत्सम्=बछरे को
अतृणादः=तृण न खानेवाला
इति=ऐसा
आहुः=कहते हैं
तस्मिन्=इसी दूधपर
सर्वम्=सब जीव
प्रतिष्ठितम्=आश्रित हैं
यत्=जो

प्राणिति=श्वास लेते हैं
च=और
यत्=जो
न=नहीं
च=भी
+ प्राणिति=श्वास लेते हैं
हि=क्योंकि
पयसि=दूध के ही ऊपर
इदम्=यह
सर्वम्=सब जीव
प्रतिष्ठितम्=आश्रित हैं
यत्=जो
प्राणिति=श्वास लेते हैं
च=और
यत्=जो
न=नहीं
च=भी
+ प्राणिति=श्वास लेते हैं
तत्=तिसी कारण
यत्=जो
इदम्=यह
+ आचार्याः=आचार्य
आहुः=कहते हैं कि
संवत्सरम्=एक साल तक
पयसा=दूध करके
+ यः=जो
पुनः=निरन्तर
जुहोति=होम करता है
सः=वह
अपमृत्युम्=अकालमृत्यु को
जयति इति=जीत लेता है
तथा=वैसा
न=न
विद्यात्=समझे
यत् एव=जिसी
अहः=दिन
जुहोति=हवन करता है
तत्=उसी
अहः=दिन
पुनः=बार बार आनेवाले
मृत्युम्=मृत्यु को
अपजयति=जीत लेता है
+ हि=क्योंकि
एवम्=इस प्रकार
विद्वान्=सात अन्न का जानने वाला विद्वान्
सर्वम्=सब
अन्नाद्यम्=अन्नादि को
देवेभ्यः=देवताओं के लिये
प्रयच्छति=देता है
कस्मात्=किस वास्ते
तानि=वे
सर्वदा=सर्वदा
अद्यमानानि=खाये जानेवाले अन्न
न क्षीयन्ते=नहीं कम होते हैं
इति=कारण यह है कि
पुरुषः धा=पुरुषही यानी अन्न का भोक्ता
अक्षितिः=अविनाशी है
सः हि=वही
इदम्=इस
अन्नम्=अन्न को
पुनः पुनः=बार बार

जनयते=पैदा करता है
वा=और
यः=जो
एताम्=इसको
अक्षितिम्=अक्षिति
वेद इति=जानता है
सः=वही पुरुष
अक्षितिः=अविनाशी है
हि=क्योंकि
इदम्=इस
अन्नम्=अन्न को
धिया धिया=बुद्धि से और
कर्मभिः=कर्म से
+ सः=वह
जनयते=उत्पन्न करता रहता है
यत् ह=यदि
+ सः=वह अविनाशी पुरुष
एतत्=इस अन्न को
न=न
कुर्यात्=उत्पन्न करता तो
+ तत्=वह
अन्नम्=अन्न
ह=अवश्य
क्षीयते=नाश होजाता
+ च=और
इति=जो ऐसा कहा गया है कि
सः=वह
अन्नम्=अन्न को
प्रतीकेन=मुख से
अत्ति=खाता है
इति=उसका भाव यह है कि
प्रतीकम्=प्रतीक का अर्थ
मुखम्=मुख है
इति=इस लिये
एतत्=यह
मुखेन इति="मुखेन" ऐसा पद
+ उक्तम्=कहा है
च=और
यः=जो
इति=ऐसा
उक्तम्=कहा गया है कि
सः=वह पुरुष
देवान्=देवताओं को
गच्छति=प्राप्त होता है यानी देवयोनि को प्राप्त होता है
+ च=और
सः=वही
ऊर्जम्=दैवबल को
उपजीवति=प्राप्त होता है तो
इति=ऐसा कहना
अपि=केवल
प्रशंसा=अन्न यज्ञ कर्म की प्रशंसा है

भावार्थ।

हे सौम्य ! जो मंत्र ने ऐसा कहा है कि पिताने मेधा और तप करके सात अन्न उत्पन्न किये हैं सो ठीक कहा है, मेधा ज्ञान है,

और ज्ञानही तप है, उससे पृथक् दूसरा कोई तप नहीं है, और जो मंत्र यह कहता है कि पिताने एक अन्न सब के वास्ते उत्पन्न किया है, उसका भाव यह है कि वह अन्न सब प्राणियों करके खाया जाता है, यानी उसमें सब का भाग है जो कोई इस अन्न को केवल अपना ही समझ कर खाता है, बिना दिये दूसरों को वह पाप से निवृत्त नहीं होता है, कारण यह है कि यह अन्न सब के साझे का है, खास उसी का नहीं है, हे सौम्य ! और जो मंत्र ने यह कहा है कि पिताने दो अन्न "हुत" और "प्रहुत" नाम करके देवताओं को दिया है, उसका अर्थ यह है कि दो कर्म यानी वैश्वदेव और बलिहरन कर्म देवताओं के लिये रक्खा गया है, और इसी कारण विद्वान् लोग अभ्यागत-रूप देवता के आने पर उसकी प्रतिष्ठा के लिये होम द्रव्य अग्नि में देते हैं, और कोई कोई आचार्य ऐसा भी कहते हैं कि यह दोनों अन्न दर्श यानी अमावस और पूर्णमास के नाम से समझे जाते हैं, इस लिये हर अमावस और पूर्णमास को निष्काम यज्ञ अवश्य करे, और जो मंत्र ने यह कहा है कि पशुओं के लिये एक अन्न दिया गया है सका अर्थ यह है कि वह दिया हुआ अन्न पय है, क्योंकि मनुष्य ोर पशु दोनों उत्पन्न होते ही पय को ग्रहण करते हैं और उसी के जीते हैं, और यही कारण है कि उत्पन्न हुये बच्चे को प्रथम अवश्य चटाते हैं, अथवा माता के स्तन को पिलाते हैं, और पशुओं में उत्पन्न हुये बछरों को अतृणाद यानी तृण न खानेवाला कहते हैं, इस लिये सब जीव चाहे वह श्वास लेते हों चाहे न लेते हों उस पयके आश्रित हैं, इसी कारण जो आचार्य कहते हैं कि जो कोई निरंतर एक सालतक दूध करके होम करता है वह अकालमृत्यु को जीत लेता है सो केवल इतनाही नहीं समझना चाहिय बल्कि यह समझना चाहिये कि जिस दिन वह दूध से हवन करता है उसी दिन अकालमृत्यु को जीतलेता है, अब प्रश्न यह है कि वे अन्न खाये जाने

पर भी क्यों कम नहीं होते हैं उत्तर यह मिलता है कि पुरुष यानी अन्न का भोक्ता अविनाशी है, वही इस अन्नको बार बार उत्पन्न करता है, और जो इस अन्नको अक्षत जानता है वही पुरुष अविनाशी होता है, क्योंकि इस अन्नको बुद्धि और कर्म करके उत्पन्न किया करता है, यदि वह पुरुष इस अन्नको उत्पन्न न किया करता तो वह अन्न अवश्य नाश हो जाता और जो ऐसा कहा है कि वह अन्न को मुख से खाता है उस का भाव यह है कि प्रतीक का अर्थ मुख है, इस लिये "मुखेन" यह पद मूल में कहागया है, और जो मंत्र में यह कहा गया है कि वह पुरुष यानी अन्नका भोक्ता देवयोनि को प्राप्त होता है यह अन्नयज्ञ की प्रशंसा है ॥ २ ॥

मन्त्रः ३

त्रीण्यात्मनेऽकुरुतेति मनो वाचं प्राणं तान्यात्मनेऽकुरुतान्यत्रमना अभूवं नादर्शमन्यत्रमना अभूवं नाश्रौषमिति मनसा ह्येव पश्यति मनसा शृणोति कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव तस्मादपि पृष्ठत उपस्पृष्टो मनसा विजानाति यः कश्च शब्दो वागेव सा एषा ह्यन्तमायत्तैषा हि न प्राणोऽपानो व्यान उदानः समानोऽन इत्येतत्सर्वं प्राण एवैतन्मयो वा अयमात्मा वाङ्मयो मनोमयः प्राणमयः ॥

पदच्छेदः ।

त्रीणि, आत्मने, अकुरुत, इति, मनः, वाचम्, प्राणम्, तानि, आत्मने, अकुरुत, अन्यत्रमनाः, अभूवम्, न, अदर्शम्, अन्यत्रमनाः, अभूवम्, न, अश्रौषम्, इति, मनसा, हि, एव, पश्यति, मनसा, शृणोति, कामः, संकल्पः, विचिकित्सा, श्रद्धा, अश्रद्धा, धृतिः, अधृतिः, ह्रीः, धीः, भीः, इति, एतत्, सर्वम्, मनः, एव, तस्मात्, अपि, पृष्ठतः, उपस्पृष्टः, मनसा, विजानाति, यः, कः, च, शब्दः, वाक् एव, सा, एषा, हि, अन्तम्, आयत्ता, एषा, हि, न, प्राणः, अपानः,

व्यानः, उदानः, समानः, अनः, इति, एतत्, सर्वम्, प्राणः, एव, एतन्मयः, वा, अयम्, आत्मा, वाङ्मयः, मनोमयः, प्राणमयः ॥

अन्वयः — पदार्थाः

+ कल्पादौ=कल्प के आदि में
+ पिता=पिता
आत्मने=अपने लिये
त्रीणि=तीन अन्न
अकुरुत=उत्पन्न करता भया
तानि=अर्थात् इन अन्नों को यानी
मनः=मन
वाचम्=वाणी
च=और
प्राणम्=प्राण को
आत्मने=अपने लिये
अकुरुत=उत्पन्न करता भया
यदा=जब
अन्यत्रमनाः अभूवम्=और जगह गया है मन जिसका ऐसा मैं होता भया
इति=तब
न अदर्शम्=मैं रूप को नहीं देखता भया
+ यदा=जब
अन्यत्रमनाः=और जगह गया हुआ है मन जिसका ऐसा मैं
अभूवम्=होता भया यानी ऐसी मेरी अवस्था भई
+ अतः=तिस हेतु
न अश्रौषम् इति=मैं नहीं सुनता भया
हि=क्योंकि

अन्वयः — पदार्थाः

मनसा एव=मन करके ही
+ पुरुषः=पुरुष
पश्यति=देखता है
मनसा वै=मन करके ही
शृणोति=सुनता है
+ अधुना=अब
+ मनःस्वरूपमुच्यते=मनका स्वरूप कहा जाता है
कामः=काम
संकल्पः=संकल्प
विचिकित्सः=संदेह
श्रद्धा=श्रद्धा
अश्रद्धा=अश्रद्धा
धृतिः=धृति
अधृतिः=अधृति
ह्रीः=लज्जा
धीः=बुद्धि
भीः=भय
इति=इस प्रकार
एतत्=ये
सर्वम्=सब
मनः एव=मनहीं के स्वरूप हैं
तस्मात् अपि=तिसी कारण
पृष्ठतः=अपने नेत्र से न देखी हुई पीठ पर
उपस्पृष्टः=दूसरे के हाथ से छुआ हुआ
+ पुरुषः=पुरुष

+ मनसा=अपने मन करके

विजानाति= { जानताहैं कि मेरी पीठ को किसी ने छूआ है }

+ अथ=अब

+ वाक्=वाणी का स्वरूप

+ इति=इस प्रकार

+ कथ्यते=कहा जाता है

यः=जो

कश्च=कोई यानी वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक

शब्दः=शब्द है

सा=वह

एव=ही

वाक्=वाणी है यानी वाणी का स्वरूप है

एषा हि=यही वाणी निश्चय करके

अन्तम्=निर्णय के अन्त तक

आयत्ता=पहुँची हुई है

हि=क्योंकि

एषा=यह वाणी

+अन्येन न प्रकाश्या } = और करके नहीं प्रकाश होने योग्य है

+ अथ=अब

+ प्राणः=प्राण का स्वरूप

+ उच्यते=कहा जाता है

प्राणः= { मुख और नासिका से हृदय तक चलने वाला वायु }

अपानः=नाभि से नीचे तक जाने वाला वायु

व्यानः= { प्राण और अपान को नियम में रखने वाला वायु }

उदानः=पैर से लेकर मस्तक तक ऊर्ध्वसंचारी वायु

समानः=खाये हुये अन्न को पचाने वाला वायु

+ एते=ये

+ पञ्चधा=पांच प्रकार के

+ प्राणः=प्राण हैं

+ च=और

इति अनः=इस प्रकार का चलने वाला

एतत्=यह

सर्वम्=सब

प्राणः=प्राण

एव=ही है

+ अतः=इस लिये

अयम्=यह

आत्मा=जीवात्मा

एतन्मयः=एतन्मय है अर्थात्

वाङ्मयः=वाणीमय है

मनोमयः=मनोमय है

प्राणमयः=प्राणमय है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! सृष्टि के आदि में जो पिताने अपने लिये तीन अन्नों को उत्पन्न किया वे तीन अन्न मन, वाणी और प्राण हैं, इसलिये

हे सौम्य ! जब किसी का मन और जगह चला जाता है तब वह कहता है कि मन और जगह होने के कारण मैंने इस रूप को नहीं देखा, और फिर कहता है कि मन और जगह चले जाने के कारण मैंने किसी बात को सुना भी नहीं. हे प्रियदर्शन ! मन करके ही पुरुष देखता है, मन करके ही पुरुष सुनता है, यदि मन न हो तो वह न देख सकता है, न सुन सकता है, सुनो अब मैं मनके स्वरूप को कहता हूं जो कामना है, संकल्प है, श्रद्धा है, अश्रद्धा है, सन्देह है, धृति है, अधृति है, लज्जा है, बुद्धि है, भय है वह सब मनही के रूप हैं. इसी मन करके उस पुरुष को सब वस्तुओं का ज्ञान होता है, अगर कोई पुरुष किसी की पीठ को छू दे तो उस पुरुष को पीठ न देखने पर भी मन के द्वारा इस बात का ज्ञान होजाता है कि किसी पुरुष ने मेरी पीठ को छूआ है. हे सौम्य ! सुनो अब मैं वाणी के स्वरूप को कहता हूं जो शब्द है चाहे वह वर्णात्मक हो चाहे ध्वन्यात्मक हो उसका ज्ञान वाणी करके ही होता है, और उस शब्द के निर्णय के अन्त तक वाणी ही पहुँचती है, जैसे मन प्रकाशस्वरूप है वैसे वाणी भी प्रकाशस्वरूप है, अब मैं प्राण के स्वरूप को कहता हूं तुम सावधान होकर सुनो प्राण पाँच प्रकार का है उसके नाम प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान हैं, प्राण वह वायु है जो मुख से नासिका तक चलता है, अपान वह वायु है जो नाभिसे नीचे को जाता है, व्यान वह वायु है जो प्राण और अपान को नियम में रखता है, उदान वह वायु है जो पैरसे लेकर मस्तक तक चला करता है, समान वह वायु है जो खाये हुये अन्नको पचाता है, और इन्हीं सबके साथ यह जीवात्मा एतन्मय है यानी यही वाणीमय है, यही मनोमय है, यही प्राणमय है ॥ ३ ॥

मन्त्रः ४

त्रयो लोका एतएव वागेवायं लोको मनोऽन्तरिक्षलोकः प्राणोऽसौ लोकः ॥

पदच्छेदः ।

त्रयः, लोकाः, एते, एव, वाग्, एव, अयम्, लोकः, मनः, अन्तरिक्षलोकः, प्राणः, असौ, लोकः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
एते एव	ये ही मन वाणी प्राण	अयम्	यह
त्रयः	तीन	लोकः	पृथ्वीलोक है
लोकाः	लोक यानी भूः, भुवः, स्वः	मनः	मन
+सन्ति	हैं	अन्तरिक्षलोकः	अन्तरिक्ष लोक है
+ तत्र	तिनमें	+ च	और
वाग्	वाणी	प्राणः	प्राणही
एव	निश्चय करके	असौ	वह
		लोकः	द्युलोक है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! यही तीन यानी वाणी, मन और प्राण तीन लोक भूः भुवः स्वः हैं, तिन में से वाणी निश्चय करके यह पृथ्वीलोक है, मन अन्तरिक्षलोक है, और प्राण द्युलोक है ॥ ४ ॥

मन्त्रः ५

त्रयो वेदा एतएव वागेवर्ग्वेदो मनो यजुर्वेदः प्राणः सामवेदः ॥

पदच्छेदः ।

त्रयः, वेदाः, एते, एव, वाक्, एव, ऋग्वेदः, मनः, यजुर्वेदः, प्राणः, सामवेदः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
एते एव	यहही	एव	निश्चय करके
त्रयः	तीन यानी वाणी, मन, प्राण	ऋग्वेदः	ऋग्वेद है
वेदाः	तीन वेद हैं	मनः	मन
+ तत्र	तिनमें	यजुर्वेदः	यजुर्वेद है
वाक्	वाणी	प्राणः	प्राण
		सामवेदः	सामवेद है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! यही तीन यानी वाणी, मन, प्राण तीन वेद हैं, तिन में वाणी निश्चय करके ऋग्वेद है, मन यजुर्वेद है, प्राण सामवेद है ॥ ५ ॥

मन्त्रः ६

देवाः पितरो मनुष्या एतएव वागेव देवा मनः पितरः प्राणो मनुष्याः ॥

पदच्छेदः ।

देवाः, पितरः, मनुष्याः, एते, एव, वाग्, एव, देवाः, मनः, पितरः, प्राणः, मनुष्याः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
एते	यह	वाग्	वाणी
एव	ही	एव	निश्चय करके
+ त्रयः	तीन यानी वाणी, मन, प्राण	देवाः	देवता हैं
देवाः	देवता	मनः	मन
पितरः	पितर	पितरः	पितर हैं
मनुष्याः	मनुष्य हैं	प्राणः	प्राण
+ तत्र	तिनमें से	मनुष्याः	मनुष्य हैं

भावार्थ ।

यही तीन यानी वाणी, मन, प्राण, देवता, पितर, मनुष्य हैं, तिनमें से निश्चय करके वाणी देवता हैं, मन पितर हैं, और प्राण मनुष्य हैं ॥ ६ ॥

मन्त्रः ७

पिता माता प्रजैत एव मन एव पिता वाङ्माता प्राणः प्रजा ॥

पदच्छेदः ।

पिता, माता, प्रजा, एते, एव, मनः, एव, पिता, वाक्, माता, प्राणः, प्रजा ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
एते=यह		मनः=मन	
एव=ही		एव=निश्चय करके	
+त्रयः=तीन यानी वाणी मन प्राण		पिता=पिता	
माता=माता		वाक्=वाणी	
पिता=पिता		माता=माता है	
प्रजा=पुत्र हैं		प्राणः=प्राण	
+ तत्र=उनमें से		प्रजा=पुत्र हैं	

भावार्थ।

हे सौम्य ! यही तीन यानी वाणी, मन, प्राण, माता, पिता, पुत्र हैं, तिन में से निश्चय करके मन पिता है, वाणी माता है, प्राण पुत्र है ॥ ७ ॥

मन्त्रः ८

विज्ञातं विजिज्ञास्यमविज्ञातमेतएव यत्किंच विज्ञातं वाचस्त-द्रूपं वागिवं विज्ञाता वागेनं तद्भूत्वाऽवति ॥

पदच्छेदः।

विज्ञातम्, विजिज्ञास्यम्, अविज्ञातम्, एते, एव, यत्, किंच, विज्ञातम्, वाचः, तत्, रूपम्, वाग्, हि, विज्ञाता, वाग्, एनम्, तत्, भूत्वा, अवति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
एते=यह		+ च=और	
एव=ही		अविज्ञातम्=अविज्ञात (जो अवि-ज्ञात है)	
+ त्रयः=तीन यानी मन, वाणी, प्राण		+ तत्र=तिनमें से	
विज्ञातम्=विज्ञात (जो ज्ञात हो चुका है)		यत्=जो	
		किंच=कुछ	
विजिज्ञास्यम्=विजिज्ञास्य (जो ज्ञात होने योग्य है)		विज्ञातम्=जाना गया है	
		तत्=वह	

वाचः=वाणी का
रूपम्=रूप है
हि=क्योंकि
वाग्=वाणी ही
विज्ञाता=विज्ञात्री भी है यानी जाननेवाली है
वाग्=वाणी ही
तत्=ऐसा विज्ञात
भूत्वा=होकर
एनम्=वाणी के महत्त्व जाननेवाले पुरुष को
अवति=अन्न करके पोषण करती है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! यही तीन यानी वाणी, मन, प्राण विज्ञात (जो ज्ञात हो चुका है) विजिज्ञास्य (जो जानने योग्य है) और अविज्ञात (जो नहीं जाना गया है) हैं, तिनमें से जो कुछ जाना गया है वह वाणी का रूप है, क्योंकि वाणी ही विज्ञात्री है, यानी जानने वाली है, वाणी ही ऐसी विज्ञात होकर वाणी के महत्त्व के जाननेवाले पुरुष को अन्न करके पालन पोषण करती है ॥ ८ ॥

मन्त्रः ९

यत्किंच विजिज्ञास्यं मनसस्तद्रूपं मनो हि विजिज्ञास्यं मन एनं तद्भूत्वाऽवति ॥

पदच्छेदः ।

यत्, किंच, विजिज्ञास्यम्, मनसः, तत्, रूपम्, मनः, हि, विजिज्ञास्यम्, मनः, एनम्, तत्, भूत्वा, अवति ॥

अन्वयः पदार्थाः

यत्=जो
किंच=कुछ
विजिज्ञास्यम्=जानने योग्य है
तत्=वही
मनसः=मनका
रूपम्=स्वरूप है
हि=क्योंकि
+ यत्=जो
विजिज्ञास्यम्=जानने योग्य है
+ तत्=वही
मनः=मन है
मनः=मनही
तत्=जानने योग्य
भूत्वा=होकर
एनम्=मनके महत्त्वके जाननेवाले पुरुष की
अवति=रक्षा करता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जो जानने योग्य है, वही मन का स्वरूप है, क्योंकि जो जानने योग्य है वही मन है, मनही जानने योग्य होकर मन के महत्त्व के जाननेवाले पुरुष की रक्षा करता है ॥ ९ ॥

मन्त्रः १०

यत्किंचाविज्ञातं प्राणस्य तद्रूपं प्राणोह्यविज्ञातः प्राण एनं तद्भूत्वाऽवति ॥

पदच्छेदः ।

यत्, किंच, अविज्ञातम्, प्राणस्य, तत्, रूपम्, प्राणः, हि, अविज्ञातः, प्राणः, एनम्, तत्, भूत्वा, अवति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
यत्=जो	
किंच=कुछ	
अविज्ञातम्=नहीं जाना गया है	
तत्=वही	
प्राणस्य=प्राण का	
रूपम्=रूप है	
हि=क्योंकि	
प्राणः=प्राण	
अविज्ञातः=अविज्ञात है	
+ च=और	
प्राणः=वह प्राणही	
तत्=अविज्ञात	
भूत्वा=होकर	
एनम्=प्राणवेत्ता पुरुष की	
अवति=रक्षा करता है	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जो कुछ नहीं जाना गया है, वही प्राण का स्वरूप है, क्योंकि प्राण अविज्ञात है, और यही प्राण अविज्ञात होकर प्राणवेत्ता की रक्षा करता है ॥ १० ॥

मन्त्रः ११

तस्यै वाचः पृथिवी शरीरं ज्योतीरूपमयमग्निस्तद्यावत्येव वाक्तावती पृथिवी तावानयमग्निः ॥

पदच्छेदः ।

तस्यै, वाचः, पृथिवी, शरीरम्, ज्योतीरूपम, अयम्, अग्निः, तत्, यावती, एव, वाक्, तावती, पृथिवी, तावान्, अयम्, अग्निः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
तस्यै	उस	यावती	जितनी दूर तक
वाचः	वाणी का	पृथिवी	पृथिवी है
शरीरम्	शरीर	तावत्	उतनी दूर तक
पृथिवी	पृथिवी है	वाक्	वाणी है
+ च	और	+ च	और
ज्योतीरूपम्	प्रकाशात्मकरूप	यावत्	जितनी दूर तक
अयम्	यह प्रत्यक्ष	अग्निः	अग्नि है
अग्निः	अग्नि है	तावत्	उतनी ही दूर तक
तत्	तिसी कारण	वाक्+च	वाणी का रूप भी है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! वाणी का शरीर पृथिवी है, और वाणी का प्रकाशात्मक रूप यह प्रत्यक्ष अग्नि है, इसी कारण जितनी दूर तक पृथिवी है उतनी ही दूर तक वाणी है, और जितनी दूर तक अग्नि है उतनी दूर तक अग्नि का प्रकाशात्मक रूप है, अथवा जहां तक पृथिवी और अग्नि है, वहां तक वाणी और वाणी का स्वरूप है, हे सौम्य ! पृथिवी में पांच तत्त्व हैं, पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इन्हीं करके सारी सृष्टि की उत्पत्ति है. इसलिये जहां तक इन पांच तत्त्वों का और खास करके पृथिवी और अग्नि का विस्तार है वहां तक वाणी का भी विस्तार है, जैसे अग्नि का कार्य नेत्र है, जिसके आश्रयरूप है, वैसे ही वाणी अग्नि के आश्रय है, यानी विना अग्नि के वाणी नहीं रह सक्ती है, यह प्रत्यक्ष देखने में आता है कि पुरुष के मरते समय जब तक शरीर में उष्णता रहती है तब तक भाषण शक्ति भी रहती है, जब शरीर से उष्णता चल देती है और शीतलता आजाती है तब वाणी भी बंद हो जाती है, इसी से जाना जाता है कि वाणी अग्नि शक्ति के आश्रित है, और जैसे अग्नि पदार्थों का प्रकाशक, और अन्धकार का नाशक है, वैसेही वाणी भी उच्चारण करके सब पदार्थों की प्रकाशिका है ॥ ११ ॥

मन्त्रः १२

अथैतस्य मनसो द्यौः शरीरं ज्योतीरूपमसावादित्यस्तद्यावदेव मनस्तावती द्यौस्तावानसावादित्यस्तौ मिथुन ँ समैतां ततः प्राणोऽजायत स इन्द्रः स एषोऽसपत्नो द्वितीयो वै सपत्नो नास्य सपत्नो भवति य एवं वेद ॥

पदच्छेदः ।

अथ, एतस्य, मनसः, द्यौः, शरीरम्, ज्योतीरूपम्, असौ, आदित्यः, तत्, यावत्, एव, मनः, तावती, द्यौः, तावान्, असौ, आदित्यः, तौ, मिथुनम्, समैताम्, ततः, प्राणः, अजायत, सः, इन्द्रः, सः, एषः, असपत्नः, द्वितीयः, वै, सपत्नः, न, अस्य, सपत्नः, भवति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
अथ	=और	असौ	=यह
एतस्य	=इस	आदित्यः	=सूर्य है
मनसः	=मन का	+ यदा	=जब
शरीरम्	=शरीर	तौ	=ये दोनों यानी मन और वाणी
द्यौः	=स्वर्ग है	मिथुनम्	=मिथुनभाव को
+ तस्य	=उसका	समैताम्	=प्राप्त हुये
ज्योतीरूपम्	=प्रकाशरूप	ततः	=तब उनसे
असौ	=यह	प्राणः	=प्राण
आदित्यः	=सूर्य है	अजायत	=हुआ
तत्	=इस कारण	सः	=वह प्राण
यावत्	=जितना प्रमाणवाला	इन्द्रः	=बड़ा शक्तिमान् है
मनः	=मन है	सः	=वही
तावती एव	=उतना ही प्रमाण वाला	एषः	=यह प्राण
द्यौः	=स्वर्ग है	असपत्नः	=स्पर्धारहित
तावान्	=उतनाही प्रमाण वाला	वै	=निश्चय करके है
		सपत्नः	=स्पर्धा करने वाला

द्वितीयः=दूसरा
+भवति=होता है
यः=जो
एवम्=ऐसा
वेद=जानता है
अस्य=इसका
सपत्नः=मुकाबिला करने वाला दूसरा
न=नहीं
भवति=होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! उस मन का शरीर स्वर्ग है, उसका प्रकाशरूप यह सूर्य है, इस कारण जितना प्रमाणवाला मन है, उतना ही प्रमाणवाला आकाश है, उतना ही प्रमाणवाला यह सूर्य है, जब दोनों यानी मन और वाणी मिथुनभाव को प्राप्त होते हैं, यानी संमिलित होते हैं तब उनसे प्राण उत्पन्न होता है, वह प्राण बड़ा शक्तिमान् है, वही यह प्राण स्पर्धारहित है, स्पर्धा करनेवाला दूसरा होता है, जो ऐसा जानता है उसका मुकाबिला करनेवाला दूसरा नहीं होता है ॥ १२ ॥

मन्त्रः १३

अथैतस्य प्राणस्यापः शरीरं ज्योतीरूपमसौ चन्द्रस्तद्यावानेव प्राणस्तावत्य आपस्तावानसौ चन्द्रस्त एते सर्व एव समाः सर्वेऽनन्ताः स यो हैतानन्तवत उपास्तेऽन्तवन्त ँ स लोकं जयत्यथ यो हैताननन्तानुपास्तेऽनन्त ँ स लोकं जयति ॥

पदच्छेदः ।

अथ, एतस्य, प्राणस्य, आपः, शरीरम्, ज्योतीरूपम्, असौ, चन्द्रः तत्, यावान्, एव, प्राणः, तावत्यः, आपः, तावान्, असौ, चन्द्रः, ते, एते, सर्वे, एव, समाः, सर्वे, अनन्ताः, सः, यः, ह, एतान्, अन्तवतः, उपास्ते, अन्तवन्तम्, सः, लोकम्, जयति, अथ, यः, ह, एतान्, अनन्तान्, उपास्ते, अनन्तम्, सः, लोकम्, जयति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
अथ=और		प्राणस्य=प्राण का	
एतस्य=इस		शरीरम्=शरीर	

आपः=जल है
+ च=और
+ तस्य=इसका
ज्योतीरूपम्=प्रकाशात्मकरूप
असौ=यह प्रत्यक्ष
चन्द्रः=चन्द्रमा है
तत्=तिसी कारण
यावान्=जितना
एव=ही
प्राणः=प्राण है
तावत्यः=उतना ही
आपः=जल है
तावान्=उतनाही
असौ=वह
चन्द्रः=चन्द्रमा है
ते=वे वाणी मन और प्राण
एते=ये
सर्वे=सब
एव=निश्चय करके
समाः=आपस में बराबर हैं
सर्वे=सब
अनन्ताः=अनन्त हैं

सः=वह
यः=जो
ह=निश्चय करके
एतान्=इनको
अन्तवतः=परिच्छिन्न
+ ज्ञात्वा=जानकर
उपास्ते=उपासना करता है
+ सः=वह
ह=अवश्य
अन्तवन्तम्=नाशवान्
लोकम्=लोकको
जयति=जीतता है
अथ=और
यः=जो
एतान्=इन मन वाणी प्राण को
अनन्तान्=अपरिच्छिन्न
+ ज्ञात्वा=जानकर
उपास्ते=उपासना करता है
सः=वह
अनन्तम्=अन्तरहित
लोकम्=लोक को
जयति=जीतता है

भावार्थ।

हे सौम्य! उस प्राण का शरीर जल है, यानी जल के आश्रय प्राण है, इसी कारण संस्कृत में कहा है, "जलं जीवनम्" विना जल के किसी प्राणी का जीवन नहीं रह सक्ता है, और प्राण का प्रकाश-रूप यह चन्द्रमा है, इस कारण जहां तक प्राण की स्थिति है वहां तक जल है, और वहीं तक चन्द्रमा है, इस लिये वाणी, मन और प्राण आपस में बराबर हैं, और सबही अनन्त हैं जो कोई इन वाणी, मन और प्राण को परिच्छिन्न जानकर उपासना करता है, वह अवश्य

नाशवान् लोकों को प्राप्त होता है, और जो उपासक मन, वाणी, प्राण को अपरिच्छिन्न जानकर उपासना करता है, वह अवश्य अन्त-रहित लोकों को प्राप्त होता है ॥ १३ ॥

मन्त्रः १४

स एष संवत्सरः प्रजापतिः षोडशकलस्तस्य रात्रय एव पञ्चदश कला ध्रुवैवास्य षोडशीकला स रात्रिभिरेवाऽऽच पूर्यतेऽप च क्षीयते सोऽमावास्या ँ रात्रिमेतया षोडश्या कलया सर्वमिदं प्राणभृदनुप्रविश्य ततः प्रातर्जायते तस्मादेता ँ रात्रिं प्राणभृतः प्राणं न विच्छिन्द्यादपि कृकलासस्यैतस्या एव देवताया अपचित्यै ॥

पदच्छेदः ।

सः, एषः, संवत्सरः, प्रजापतिः, षोडशकलः, तस्य, रात्रयः, एव, पञ्चदश, कलाः, ध्रुवा, एव, अस्य, षोडशीकला, सः, रात्रिभिः, एव आ, च, पूर्यते, अप, च, क्षीयते, सः, अमावास्याम्, रात्रिम्, एतया, षोडश्या, कलया, सर्वम्, इदम्, प्राणभृत्, अनुप्रविश्य, ततः, प्रातः, जायते, तस्मात्, एताम्, रात्रिम्, प्राणभृतः, प्राणम्, न, विच्छिन्द्यात्, अपि, कृकलासस्य, एतस्याः, एव, देवतायाः, अपचित्यै ॥

अन्वयः	पदार्थाः
सः	वही
एषः	यह
षोडशकलः	सोलह कलावाला
संवत्सरः	कालरूप
प्रजापतिः	प्रजापति है
तस्य	उस प्रजापति के
रात्रयः	शुक्ल और कृष्णपक्ष की रात्रि मिलाकर
पञ्चदश	पन्द्रह
कलाः	कला हैं यानी भाग हैं
+ च	और
अस्य	उस प्रजापति की
षोडशीकला	सोलहवीं कला
ध्रुवा एव	ध्रुव कला है जो सदा अचल रहती है
सः	वह प्रजापति
रात्रिभिः	कलाओं करके
एव	ही
आपूर्यते	पूर्ण कियाजाता है
च	और

अपक्षीयते= { उन्हीं कलाओं करके ही क्षीण भी किया जाता है
+ततः=तत्पश्चात्
सः=वही प्रजापति
अमावास्याम् रात्रिम् } =अमावस की तिथिको
एतया=इस
षोडश्या=सोलहवीं
कलया=कला के साथ
इदम्=इस
सर्वम्=सब
प्राणभृत्=प्राणियों में
अनुप्रविश्य=प्रवेश करके
प्रातः=दूसरे दिन प्रातःकाल
जायते=उत्पन्न होता है

तस्मात्=इस लिये
एताम्=इस
रात्रिम्=अमावास्या की रात्रि को
प्राणभृतः=जीवमात्र को
न विच्छिन्द्यात्=कोई न मारे
+ च=और
कृकलासस्य=अदर्शनीय और सुभाव हिंस्य गिरगिट के
प्राणम्=प्राण को
अपि=भी
एतस्याः एव=इसही
देवतायाः=चन्द्रदेवता के
अपचित्यै=पूजा के लिये
+ न एव=न
+ छिन्द्यात्=मारे

भावार्थ।

हे सौम्य ! वही यह सोलह कलावाला संवत्सरात्मक प्रजापति है, और जैसे शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष की रात्रि मिलाकर पन्द्रह कला इसके घटते बढ़ते हैं, और सोलहवीं इसकी कला जो सदा अचल रहती है, और अमावस की तिथिको सोलहवीं कला से युक्त होकर सब प्राणियों के अन्दर प्रवेश करता है और दूसरे दिन प्रातःकाल उत्पन्न होता है, इसी प्रकार यह पुरुष भी सोलह कलावाला है, इसके सोलह कलाओं में से पन्द्रह कला गौ, महिष, भूमि, हिरण्य, साम्राज्यादि धन हैं, जो घटते बढ़ते रहते हैं और सोलहवीं इसकी कला आत्मा है जो घटने बढ़ने से रहित होकर अचल स्थित रहता है हे सौम्य ! इस लिये इस अमावस की रात्रिको जीवमात्र का मारना निषेध है, यहां तक कि अदर्शनीय स्वभावहिंस्य गिरगिटान को भी चन्द्रदेवता की प्रतिष्ठानिमित्त भी हत न करे ॥ १४ ॥

मन्त्रः १५

योवै स संवत्सरः प्रजापतिः षोडशकलोऽयमेव स योऽयमेवंवित्पुरुषस्तस्य वित्तमेव पञ्चदश कला आत्मैवास्य षोडशी कला स वित्तेनैवाऽऽच पूर्यतेऽप च क्षीयते तदेतन्नभ्यं यदयमात्मा प्रधिर्वित्तं तस्माद्यद्यपि सर्वज्यानिं जीयते आत्मना चेज्जीवति प्रधिनाऽगादित्येवाऽऽहुः ॥

पदच्छेदः ।

यः, वै, सः, संवत्सरः, प्रजापतिः, षोडशकलः, अयम्, एव, सः, यः, अयम्, एवंवित्, पुरुषः, तस्य, वित्तम्, एव, पञ्चदश, कला, आत्मा, एव, अस्य, षोडशी, कला, सः, वित्तेन, एव, आ, च, पूर्यते, अप, च, क्षीयते, तत्, एतत्, नभ्यम्, यत्, अयम्, आत्मा, प्रधिः, वित्तम्, तस्मात्, यदि, अपि, सर्वज्यानिम्, जीयते, आत्मना, चेत्, जीवति, प्रधिना, अगात्, इति, एव, आहुः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
यः	जो
सः	वह
वै	निश्चय करके
षोडशकलः	सोलह कलावाला
संवत्सरः	संवत्सरात्मक
प्रजापतिः	प्रजापति है
सः एव	वह ही
अयम्	यह सोलह कलायुक्त
पुरुषः	पुरुष है
यः	जो
एवंवित्	इस प्रकार जानता है
तस्य	उसका
वित्तम्	धन गौ आदि
एव	अवश्य
पञ्चदश कला	पन्द्रह कलाके तुल्य है
च	और
अस्य	उसका
आत्मा	आत्मा
एव	निश्चय करके
षोडशी	सोलहवीं
कला	कला ध्रुव के तुल्य अटल है
सः	वह पुरुष
वित्तेन	गौ आदि धन करके
एव	ही
आपूर्यते	बढ़ता है
+ च	और
अपक्षीयते	घटजाता है
यदि	अगर
यत्	जो
अयम्	यह

आत्मा=आत्मा है
तत्=सो
एतत्=यह
नभ्यम्=नाभिस्थानी है
च=और
यत्=जो
वित्तम्=गौ आदि धन है
प्रधिः=वह प्रधि के समान है
तस्मात्=इस कारण
यद्यपि=यद्यपि
अस्य=इसका
सर्वज्यानिम्=सर्वस्वहानि को
जीयते=प्राप्त होजाय
+ तथापि=तो भी उसकी
+ न + क्षतिः=कोई क्षति नहीं है
चेत्=अगर
आत्मना=आत्मा करके
+ सः=वह
जीवति=जीता हुआ हो
इति=ऐसी हालत में
आहुः एव=लोग उनके बारे में यही कहेंगे कि
सः=वह केवल
प्रधिना=प्रधिस्थानी धन से
अगात्=क्षीणता को प्राप्त हुआ है पर आत्मा करके अब भी बली है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जैसे सोलह कलायुक्त संवत्सरात्मक प्रजापति है वैसे ही यह सोलह कलायुक्त पुरुष भी है, और जैसे प्रजापति के पन्द्रह कला यानी प्रतिपदा से अमावस के अर्धभागतक घटते बढ़ते हैं वैसे ही इस ज्ञानी पुरुष के भी गौ आदि धन बढ़ते घटते हैं, और जैसे प्रजापति का सोलहवाँ कला यानी अन्तिमभाग अमावस और पूर्णमासी का ध्रुववत् अटल रहता है, उसी प्रकार इस पुरुष का भी सोलहवाँ कला यानी आत्मा अटल बना रहता है, और इसी अविनाशी आत्मा के आश्रय पन्द्रह कला स्थित रहते हैं, ये पन्द्रह कला अरा और परिधि के तुल्य हैं, और आत्मा चक्र के नाभिस्थानी है, जैसे नाभि के बने रहने पर निकले हुये अरे और परिधि दुरुस्त होसक्ते हैं उसी प्रकार आत्मा के आश्रय गौ आदि धन भी रहते हैं, यदि यह धन एकबार नष्ट भी होजायँ और आत्मा बना रहे तो फिर भी धन प्राप्त हो सक्ता है, और संसार में लोग ऐसा भी कहते हैं कि अरा

और परिधि के तुल्य इस पुरुष के सब धन नष्ट होगये हैं, परन्तु इसका आत्मा चक्रनाभि के तरह बना है जिस करके यह फिर अपने धन को पूर्ण करलेगा ॥ १५ ॥

मन्त्रः १६

अथ त्रयो वाव लोका मनुष्यलोकः पितृलोको देवलोक इति सोऽयं मनुष्यलोकः पुत्रेणैव जय्यो नान्येन कर्मणा कर्मणा पितृलोको विद्यया देवलोको देवलोको वै लोकाना श्रेष्ठस्तस्माद्विद्यां प्रशꣳसन्ति॥

पदच्छेदः ।

अथ, त्रयः, वाव, लोकाः, मनुष्यलोकः, पितृलोकः, देवलोकः, इति, सः, अयम्, मनुष्यलोकः, पुत्रेण, एव, जय्यः, न, अन्येन, कर्मणा, कर्मणा, पितृलोकः, विद्यया, देवलोकः, देवलोकः, वै, लोकानाम्, श्रेष्ठः, तस्मात्, विद्याम्, प्रशंसन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
अथ	और
त्रयः	तीन
वाव	ही
लोकाः	लोक हैं यानी
मनुष्यलोकः	मनुष्यलोक
पितृलोकः	पितरलोक
+ च	और
देवलोकः इति	देवलोक के नाम से प्रसिद्ध है
+ तत्र	तिनमें
सः	वही
अयम्	यह
मनुष्यलोकः	मनुष्यलोक
पुत्रेण	पुत्र करके
एव	ही
जय्यः	जीतने योग्य है
न अन्येन कर्मणा	अन्य यज्ञादि कर्म करके नहीं
कर्मणा	कर्म करके
पितृलोकः	पितरलोक
+ च	और
विद्यया	विद्या करके
देवलोकः	देवलोक
+ जय्यः	जीतने योग्य है
देवलोकः	देवलोक
वै	निश्चय करके
लोकानाम्	तीनों लोकों में
श्रेष्ठः	श्रेष्ठ है
तस्मात्	इसी कारण
विद्याम्	विद्या की
+ विद्वांसः	विद्वान् लोग
प्रशंसन्ति	प्रशंसा करते हैं

भावार्थ।

हे सौम्य ! तीन लोक हैं, यानी मनुष्यलोक, पितरलोक, देवलोक. मनुष्यलोक पुत्र करके प्राप्त होने योग्य है, और कर्मों करके नहीं, यज्ञादि कर्मों करके पितरलोक प्राप्त होने योग्य है, और ज्ञान करके देवलोक प्राप्त होने योग्य है, कहे हुये तीनों लोकों में से देवलोक श्रेष्ठ है, क्योंकि देवलोक की प्राप्ति ज्ञान करके होती है, और यही कारण है कि ज्ञानकी प्रशंसा विद्वान् लोग करते हैं ॥ १६ ॥

मन्त्रः १७

अथातः संप्रत्तिर्यदा प्रैष्यन्मन्यतेऽथ पुत्रमाह त्वं ब्रह्म त्वं यज्ञस्त्वं लोक इति स पुत्रः प्रत्याहाहं ब्रह्माहं यज्ञोऽहं लोक इति यद्वै किंचा-नूक्तं तस्य सर्वस्य ब्रह्मेत्येकता ये वै के च यज्ञास्तेषाᳬ सर्वेषां यज्ञ इत्येकता ये वै के च लोकास्तेषाᳬ सर्वेषां लोक इत्येकतैतावद्वा इदᳬ सर्वमेतन्मा सर्वᳬ सन्नयमितोऽभुनजदिति तस्मात्पुत्रमनुशिष्टं लोक्य-माहुस्तस्मादेनमनुशासति स यदैवंविदस्माल्लोकात्प्रैत्यथैभिरेव प्राणैः सह पुत्रमाविशति स यद्यनेन किंचिदक्ष्णयाऽकृतं भवति तस्मा-देनᳬ सर्वस्मात्पुत्रो मुञ्चति तस्मात्पुत्रो नाम स पुत्रेणैवास्मिँल्लोके प्रतितिष्ठत्यथैनमेते दैवाः प्राणा अमृता आविशन्ति ॥

पदच्छेदः।

अथ, अतः, संप्रत्तिः, यदा, प्रैष्यन्, मन्यते, अथ, पुत्रम्, आह, त्वम्, ब्रह्म, त्वम्, यज्ञः, त्वम्, लोकः, इति, सः, पुत्रः, प्रत्याह, अहम्, ब्रह्म, अहम्, यज्ञः, अहम्, लोकः, इति, यत्, वै, किंच, अनू-क्तम्, तस्य, सर्वस्य, ब्रह्म, इति, एकता, ये, वै, के, च, यज्ञाः, तेषाम्, सर्वेषाम्, यज्ञः, इति, एकता, ये, वै, के, च, लोकाः, तेषाम्, सर्वे-षाम्, लोकः, इति, एकता, एतावत्, वा, इदम्, सर्वम्, एतत्, मा, सर्वम्, सन्, अयम्, इतः, अभुनजत्, इति, तस्मात्, पुत्रम्, अनु-शिष्टम्, लोक्यम्, आहुः, तस्मात्, एनम्, अनुशासति, सः, यदा,

एवंवित्, अस्मात्, लोकात्, प्रैति, अथ, एभिः, एव, प्राणैः, सह, पुत्रम्, आविशति, सः, यदि, अनेन, किंचित्, अक्ष्णया, अकृतम्, भवति, तस्मात्, एनम्, सर्वस्मात्, पुत्रः, मुञ्चति, तस्मात्, पुत्रः, नाम, सः, पुत्रेण, एव, अस्मिन्, लोके, प्रतितिष्ठति, अथ, एनम्, एते, दैवाः, प्राणाः, अमृताः, आविशन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
अथ अतः	तीन लोकों के कथन के पीछे
संप्रत्तिः	संप्रत्ति कर्म का वर्णन
+ कथ्यते	किया जाता है
यदा	जब
+ पिता	पिता
प्रैष्यन्	मरनेवाला
मन्यते	अपने को समझता है
अथ	तब
+ सः	वह
पुत्रम्	पुत्र से
आह	कहता है कि
त्वम्	तू
ब्रह्म	वेद है
त्वम्	तू
यज्ञः	यज्ञ है
त्वम्	तू
लोकः	लोक है
इति	इस प्रकार
+ श्रुत्वा	सुन कर
सः	वह
पुत्रः	पुत्र
प्रत्याह	जवाब देता है कि
अहम्	मैं
ब्रह्म	वेद हूं
अहम्	मैं
यज्ञः	यज्ञ हूं
अहम्	मैं
लोकः इति	लोक हूं तब
+ पिता पुनः वदति	पिता फिर कहता है कि
यत्	जो
किंच वै	कुछ मुझ करके
अनूक्तम्	पढ़ा गया है अथवा नहीं पढ़ा गया है
तस्य	उस
सर्वस्य	सबकी
एकता	एकता
ब्रह्म इति	वेद के साथ है
+ च	और
ये वै के	जो कोई
यज्ञाः	यज्ञ मुझकरके किये गये हैं अथवा नहीं किये गये हैं
तेषाम्	उन
सर्वेषाम्	सबकी
एकता	एकता
यज्ञः इति	यज्ञ के साथ है
च	और

ये वै के=जो कोई

लोकाः=लोक मुझकरके जीते गये हैं अथवा नहीं जीते गये हैं

तेषाम्=उन

सर्वेषाम्=सबकी

एकता=एकता

लोकः इति=लोकपद के साथ है

+ पुत्र=हे पुत्र !

एतावत् वै=इतना ही

इदम्=यह

सर्वम्=सबहै यानी इन तीन कर्मों से अधिक और कोई कर्म नहीं है

एतत्=इस

सर्वम्=सब भार को

+ अपच्छिद्य=मुझसे अलग करके और अपने ऊपर रख करके

+ मम=मेरा

सन्=विद्वान्

अयम्=यह पुत्र

इतः=इस लोक से

मा=मुझको

अभुनजत् इति=अच्छी तरह पालेगा यानी सर्व बन्धनों से छुड़ादेगा

तस्मात्=इस कारण

अनुशिष्टम्=सुशिक्षित

पुत्रम्=पुत्रको

लोकम्=पितृलोकहितकारी

+ जनाः=विद्वान्लोग

आहुः=कहते हैं

+ च=और

तस्मात्=इसी कारण

एनम्=इस पुत्र को

अनुशासति=विद्या पढ़ाते और कर्म सिखाते हैं

+ यदा=जब

सः=वह पिता

एवंवित्=ऐसा जाननेवाला

अस्मात्=इस

लोकात्=लोक से यानी इस शरीर से

प्रैति=चला जाता है

अथ=तब

+ सः=वह

एभिः=इन

प्राणैः एव=वाणी, मन और प्राण के

सह=साथ

पुत्रम्=पुत्र में

आविशति=प्रवेश करता है

+ येन=जिस करके

+ सः=वह पुत्र

+ पितृवत्=पिता की तरह

+ कर्म=कर्मों को

+ करोति=करता है

यदि=अगर

अनेन=इस पिता करके

किंचित्=कुछ

अक्ष्णया=विघ्नवश

अकृतम्=नहीं किया गया

भवति=होता है तो

सः=वह

पुत्रः=पुत्र
तस्मात्=उस
सर्वस्मात्=सब अकृत कर्म से
एनम्=इस पिता को
मुञ्चति=छुड़ा देता है
तस्मात्=इस कारण
सः=वह पिता
पुत्रः=पुत्र रूप
नाम=करके प्रसिद्ध है
+अतः=इसी कारण
+सः=वह पिता
पुत्रेण=पुत्ररूप से
अस्मिन् लोके=इस लोक विषे
एव=अवश्य
प्रतितिष्ठति=विद्यमान रहता है
अथ=तत्पश्चात्
एनम्=इस पुत्र में
एते=ये
प्राणाः=मन, वाक्, प्राणादि
दैवाः=देवता
अमृताः=मरणधर्मरहित
आविशन्ति=प्रविष्ट रहते हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! तीन लोक जो ऊपर कथन कर आये हैं उन सबके पीछे अब सम्प्रत्ति कर्मका वर्णन करते हैं, हे सौम्य ! जब पिता मरने लगता है तब वह अपने पुत्र को समझाता है कि हे पुत्र ! तू वेद है यानी तू वेद को पढ़, तू यज्ञ है यानी यज्ञ को कर, तू लोक है यानी तू सब लोकों को अपने पुरुषार्थ करके प्राप्त कर यह सुन कर पुत्र जवाब देता है कि हे पिता ! मैं वेद हूं यानी वेद को पढूंगा, मैं यज्ञ हूं यानी यज्ञ करूंगा और मैं लोक हूं यानी लोकों को जीतूंगा, तब फिर पिता कहता है, हे पुत्र ! जो कुछ मुझ करके पढ़ा गया है, और जो नहीं पढ़ा गया है उन सबकी एकता वेद के साथ है, और जो कुछ मुझ करके यज्ञ किया गया है उनकी एकता यज्ञ के साथ है, और जो कुछ लोक जीते गये हैं या नहीं जीते गये हैं, उन सबकी एकता लोकपद के साथ है. इस ऊपर कहे हुये का अभिप्राय यह है कि जो कुछ पिताने लड़के को सिखलाया है और जो कुछ लड़के ने पिता से सीखने को कहा है वह सब वेद में अनुगत है, और जो कुछ पितासे लड़के ने यज्ञ करने को वाक्य दिया है वह सब यज्ञ विषे अनुगत है, और जो पितासे लोकों की प्राप्ति के लिये लड़के ने कहा

है वह सब लोक में अनुगत है, हे सौम्य ! फिर पिता अपने पुत्र से कहता है कि यही तीन कर्म ऊपर कहे हुये हैं, इनसे अधिक कर्म कोई नहीं है, हे पुत्र ! तू मुझ को इसके भार से उद्धार कर, और उस भारको अपने ऊपर रख, और मुझको सब प्रकार के बन्धनों से छुड़ा दे, पुत्र कहता है ऐसाही करूंगा. इस कारण सुशिक्षित पुत्र पितरों का हितकारी होताहै, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं, और इसी कारण पुत्र को विद्या पढ़ाते हैं, कर्म सिखाते हैं, और जब वह पिता इस लोक से चलाजाता है तब वह इन वाक्, मन और प्राण के साथ पुत्र में प्रवेश करता है, और यही कारण है कि पुत्र पिताकी तरह कर्मों को करने लगता है, यदि पिताने कोई कर्म विघ्नवश नहीं किया है तो पुत्र उस अकृत कर्म को करके पिता को पाप से छुड़ा देता है, इसी कारण वह पिता पुत्र के रूप में संसार विषे विद्यमान रहता है, और उस पुत्र में ही सब वाक्, प्राण, मन आदि देवता मरणधर्म से रहित होते हुये प्रवेश करते हैं ॥ १७ ॥

मन्त्रः १८

पृथिव्यै चैनमग्नेश्च दैवी वागाविशति सा वै दैवी वाग्यया यद्यदेव वदति तत्तद्भवति ॥

पदच्छेदः ।

पृथिव्यै, च, एनम्, अग्नेः च, दैवी, वाग्, आविशति, सा, वै, दैवी, वाग्, यया, यत्, यत्, एव, वदति, तत्, तत्, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
पृथिव्यै	पृथिवी अंशसे पृथक्
च	और
अग्नेः	अग्नि अंश से
च	भी पृथक्
+ यदा	जब
दैवी	दैवी शक्तियुक्त
वाग्	वाणी
एनम्	इस कृतकृत्य पुरुष में
आविशति	प्रवेश करती है
+ तदा	तब
वै	निश्चय करके
सा	वही

दैवी=दैवी	+ पुरुषः=वह पुरुष
वाग्=वाणी है	वदति=कहता है
यया=जिस करके	तत् तत् एव=वही वही
यत् यत्=जो जो	भवति=होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! यह दैवीशक्तियुक्त वाणी पृथिवी अंश और अग्नि अंश से पृथक् होकर जब इस कृतकृत्य पुरुष में प्रवेश करती है तभी निश्चय करके दैवी वाणी है जिस करके वह पुरुष जो जो कहता है वह वह सब सत्य होता है ॥ १८ ॥

मन्त्रः १९

दिवश्चैनमादित्याच्च दैवं मन आविशति तद्वै दैवं मनो येनाऽऽनन्द्येव भवत्यथो न शोचति ॥

पदच्छेदः ।

दिवः, च, एनम्, आदित्यात्, च, दैवम्, मनः, आविशति, तत्, वै, दैवम्, मनः, येन, आनन्दी, एव, भवति, अथो, न, शोचति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
+ यदा=जब		तत्=वह	
दैवम्=दैवीशक्तियुक्त		वै=निश्चय करके	
मनः=मन		दैवम्=दैवीशक्तियुक्त	
दिवः=आकाश के अंशसे पृथक्		मनः=मन है	
च=और		येन=जिस करके	
आदित्यात्=सूर्य के अंश से पृथक्		+ पुरुषः=पुरुष	
च=भी		एव=अवश्य	
+ भूत्वा=होकर		आनन्दी=आनन्दित	
एनम्=इस कृतकृत्य पुरुष विषे		भवति=होता है	
आविशति=प्रवेश करता है		अथ=और	
+ तदा=तब		न शोचति=सोच नहीं करता है	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब दैवीशक्तियुक्त मन आकाश और सूर्य के

अंश को त्याग करके इस कृतकृत्य पुरुष में प्रवेश करता है तब वही निश्चय करके दैवीशक्तियुक्त मन है जिस करके पुरुष आनन्दित होता है और शोक नहीं करता है ॥ १६ ॥

मन्त्रः २०

अद्भ्यश्चैनं चन्द्रमसश्च दैवः प्राण आविशति स वै दैवः प्राणो यः संचरꣳश्चासंचरꣳश्च न व्यथतेऽथो न रिष्यति स एवंवित्सर्वेषां भूतानामात्मा भवति यथैषा देवतैवꣳस यथैतां देवताꣳ सर्वाणि भूतान्यवन्त्येवꣳ हैवंविदꣳसर्वाणि भूतान्यवन्ति यदु किंचेमाः प्रजाः शोचन्त्यमैवाऽऽसां तद्भवति पुण्यमेवामुं गच्छति न ह वै देवान्पापं गच्छति ॥

पदच्छेदः ।

अद्भ्यः, च, एनम्, चन्द्रमसः, च, दैवः, प्राणः, आविशति, सः, वै, दैवः, प्राणः, यः, संचरन्, च, असंचरन्, च, न, व्यथते, अथो, न, रिष्यति, सः, एवंवित्, सर्वेषाम्, भूतानाम्, आत्मा, भवति, यथा, एषा, देवता, एवम्, सः, यथा, एताम्, देवताम्, सर्वाणि, भूतानि, अवन्ति, एवम्, ह, एवंविदम्, सर्वाणि, भूतानि, अवन्ति, यत्, उ, किंच, इमाः, प्रजाः, शोचन्ति, अमा, एव, आसाम्, तत्, भवति, पुण्यम्, एव, अमुम्, गच्छति, न, ह, वै, देवान्, पापम्, गच्छति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
+ यदा	=जब	एनम्	=इस पुरुष में
दैवः	=दैवीशक्तियुक्त	आविशति	=प्रवेश करता है
प्राणः	=प्राण	+ तदा	=तब
अद्भ्यः	=जल के अंशसे पृथक्	सः वै	=वही
च	=और	दैवः	=दैवीशक्तियुक्त
चन्द्रमसः	=चन्द्रमा के अंश से	प्राणः	=प्राण है
च	=भी अतिरिक्त	यः	=जो
+ भूत्वा	=हो कर	संचरन्	=चलता हुआ

च=और
असंचरन् च=नहीं चलता हुआभी
न=नहीं
व्यथते=दुःखित होता है
अथो=और
न=नहीं
रिष्यति=नष्ट होता है
एवंवित्=प्राणकी ऐसी महिमा का जानने वाला
सः=वह पुरुष
सर्वेषाम्=सब
भूतानाम्=प्राणियों का
आत्मा=प्रिय आत्मा
भवति=होता है
+च=और
यथा=जैसे
एषा=यह प्राण
देवता=देवता कल्याणरूप है
एवम्=तैसेही
सः=वह भी कल्याणरूप
+ भवति=होता है
+ च=और
यथा=जैसे
सर्वाणि=सब
भूतानि=प्राणी
एताम् देवताम्=इस प्राणदेवता की
अवन्ति=रक्षा करते हैं
एवम् ह=वैसे ही
सर्वाणि=सब
भूतानि=प्राणी
एवंविदम्=इस प्राणवेत्ता की भी
अवन्ति=रक्षा करते हैं
उ=और
यत्=जो
किंच=कुछ
इमाः=यह
प्रजाः=प्रजायें
शोचन्ति=शोक करती हैं यानी जो कुछ उनको दुःख पहुँचता है
तत्=वह सब दुःख
आसाम्=इन प्रजाओं के आत्मा के
अमा=साथ
एव=ही
भवति=होता है
+ परन्तु=परन्तु
अमुम्=इस प्राणवित् देव पुरुष को
पुण्यम् एव=सुख अवश्य
गच्छति=प्राप्त होता है
ह वै=क्योंकि निश्चय करके
देवान्=देवों को
पापम्=पापजन्य दुःख
न=नहीं
गच्छति=प्राप्त होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब दैवीशक्तियुक्त प्राण जल अंश और चन्द्र अंश को त्याग करके इस कृतकृत्य पुरुष विषे प्रवेश करता है तब वही

दैवीशक्तियुक्त प्राण है जो चलता है और नहीं भी चलता है सो ऐसा यह प्राण न नष्ट होता है, न दुःखित होता है, प्राण की इस महिमा का जाननेवाला जो पुरुष है वह सब प्राणियों का प्रिय आत्मा होता है, और जैसे वह प्राण देवता कल्याणरूप है, तैसेही वह पुरुष भी कल्याणरूप होता है, और जैसे सब प्राणी उस प्राणदेवता की रक्षा करते हैं वैसेही सब प्राणी इस प्राणवेत्ता की रक्षा करते हैं, और हे सौम्य ! जो कुछ यह प्रजा शोक करती है यानी जो कुछ उसको दुःख होता है वह दुःख इस प्रजा के आत्मा को भी पहुँचता है, और इस प्राणवित् पुरुष को पुण्यफल यानी सुख अवश्य प्राप्त होता है, क्योंकि देवताओं को पापजन्य दुःख नहीं प्राप्त होता है ॥ २० ॥

मन्त्रः २१

अथातो व्रतमीमाꣳसा प्रजापतिर्ह कर्माणि ससृजे तानि सृष्टान्यन्योन्येनास्पर्धन्त वदिष्याम्येवाहमिति वाग्दध्रे द्रक्ष्याम्यहमिति चक्षुः श्रोष्याम्यहमिति श्रोत्रमेवमन्यानि कर्माणि यथाकर्म तानि मृत्युः श्रमो भूत्वोपयेमे तान्याप्नोत्तान्याप्त्वा मृत्युरवारुन्ध तस्माच्छ्राम्यत्येव वाक् श्राम्यति चक्षुः श्राम्यति श्रोत्रमथेममेव नाप्नोद्योऽयं मध्यमः प्राणस्तानि ज्ञातुं दध्रिरे अयं वै नः श्रेष्ठो यः संचरꣳश्चासंचरꣳश्च न व्यथतेऽथो न रिष्यति हन्तास्यैव सर्वे रूपमसामेति त एतस्यैव सर्वे रूपमभवꣳस्तस्मादेत एतेनाऽऽख्यायन्ते प्राणा इति तेन ह वाव तत्कुलमाचक्षते यस्मिन्कुले भवति य एवं वेद य उ हैवंविदा स्पर्धतेऽनुशुष्यत्यनुशुष्य हैवान्ततो म्रियत इत्यध्यात्मम् ॥

पदच्छेदः ।

अथ, अतः, व्रतमीमांसा, प्रजापतिः, ह, कर्माणि, ससृजे, तानि, सृष्टानि, अन्योन्येन, अस्पर्धन्त, वदिष्यामि, एव, अहम्, इति, वाग्, दध्रे, द्रक्ष्यामि, अहम्, इति, चक्षुः, श्रोष्यामि, अहम्, इति, श्रोत्रम्,

एवम्, अन्यानि, कर्माणि, यथाकर्म, तानि, मृत्युः, श्रमः, भूत्वा, उपयेमे, तानि, आप्नोत्, तानि, आप्त्वा, मृत्युः, अवारुन्ध, तस्मात्, श्राम्यति, एव, वाक्, श्राम्यति, चक्षुः, श्राम्यति, श्रोत्रम्, अथ, इमम्, एव, न, आप्नोत्, यः, अयम्, मध्यमः, प्राणः, तानि, ज्ञातुम्, दध्रिरे, अयम्, वै, नः, श्रेष्ठः, यः, संचरन्, च, असंचरन्, च, न, व्यथते, अथो, न, रिष्यति, हन्त, अस्य, एव, सर्वे, रूपम्, असाम, इति, ते, एतस्य, एव, सर्वे, रूपम्, अभवन्, तस्मात्, एते, एतेन, आख्यायन्ते, प्राणाः, इति, तेन, ह, वाव, तत्, कुलम्, आचक्षते, यस्मिन्, कुले, भवति, यः, एवम्, वेद, यः, उ, ह, एवंविदा, स्पर्धते, अनुशुष्यति, अनुशुष्य, ह, एव, अन्ततः, म्रियते, इति, अध्यात्मम् ॥

अन्वयः	पदार्थाः
अथ	अब
अतः	यहां से
व्रतमीमांसा	व्रत का विचार है यानी इन्द्रियों में कौन श्रेष्ठ है यह विचारने योग्य है
+ सौम्य	हे सौम्य !
ह	वह प्रसिद्ध है कि
प्रजापतिः	प्रजापति
कर्माणि	वागादि कर्मेन्द्रियों को
ससृजे	पैदा करता भया
तानि	वे
सृष्टानि	पैदा हुई इन्द्रियां
अन्योन्येन	आपस में
अस्पर्धन्त	ईर्षा करती भई कि
अहम्	मैं
एव	अवश्य
वदिष्यामि	बोलती रहूंगी
इति	ऐसा व्रत
वाग्	वाणी
दध्रे	धारण करती भई
अहम्	मैं
द्रक्ष्यामि	देखता रहूंगा
इति	ऐसा व्रत
चक्षुः	नेत्र
दध्रे	धारण करता भया
अहम्	मैं
श्रोष्यामि	सुनता रहूंगा
इति	ऐसा व्रत
श्रोत्रम्	श्रोत्र
+ दध्रे	धारण करता भया
एवम्	इसी प्रकार
अन्यानि	और
कर्माणि	इन्द्रियां भी

यथाकर्म=अपने अपने कर्मानुसार
+ दध्रिरे=व्रत धारण करती भईं
+ तदा=तब
श्रमः=श्रम
मृत्युः=मृत्यु
भूत्वा=हो कर
तानि=उनको
उपयेमे=पकड़ लिया यानी काम में थका दिया
+ च=और
तानि=उनको
आप्नोत्=अपना स्वरूप दिखलाता भया यानी उनके निकट आ पहुँचा
+ च=और
आप्त्वा=उनके पास जाकर
मृत्युः=वही मृत्यु
अवारुन्ध=उनको अपने काम से रोकता भया
तस्मात्=तिसी कारण
वाक् एव=वाणी अवश्य
श्राम्यति=बोलते २ थक जाती है
चक्षुः=नेत्र
श्राम्यति=देखते २ थक जाता है
श्रोत्रम्=श्रोत्र
श्राम्यति=सुनते २ थक जाता है
+ सौम्य=हे सौम्य !
अथ=अब अखण्ड व्रत को कहते हैं
+ मृत्युः=मृत्युरूपी श्रम
इमम् एव=इस प्राण को
न=नहीं
आप्नोत्=पकड़ सका
यः=जो
अयम्=यह
मध्यमः=मध्यम यानी सब इन्द्रियों में फिरनेवाला
प्राणः=प्राण है
+ तम् ज्ञातुम् =उसके जानने के लिये
तानि=वे सब इन्द्रियां
दध्रिरे=इच्छा करती भईं
+ च=और
+ तम्=उसको
+ ज्ञात्वा=जान कर
+वदन्ति+स्म=कहने लगीं कि
नः=हम लोगों में
+ प्राणः वै=प्राणही
श्रेष्ठः=श्रेष्ठ है
यः=जो
संचरन्=चलता हुआ
च=और
असंचरन्=न चलता हुआ
च=भी
न=न
व्यथते=दुःखी होता है
अथो=और
न=न
रिष्यति=नष्ट होता है
हन्त=यदि सबकी राय हो तो
सर्वे=हम सब
अस्य=इसी का
एव=ही
रूपम्=रूप

असाम=बनजायें
इति=ऐसा सुनने पर
ते सर्वे=वे सब
एतस्य=इसका
एव=ही
रूपम्=रूप
अभवन्=होते भये
तस्मात्=इसी कारण
एते=ये वागादि इन्द्रियां
एतेन=इस प्राण के नामसेही
प्राणाः="प्राण"
इति=ऐसा
आख्यायन्ते=कहे जाते हैं यानी प्राणके नाम करके ही पुकारे जाते हैं
यः=जो कोई
एवम्=इस प्रकार
वेद=प्राण की श्रेष्ठता को जानता है
सः=वह प्राणवित् पुरुष
यस्मिन् कुले=जिस कुल में
भवति=उत्पन्न होता है
तत्=उस
कुलम्=कुल को
तेन=उसी नाम से
ह वाव=निश्चय करके
आचक्षते=लोग कहते हैं
उ=और
यः=जो
एवंविदा=ऐसे जाननेवाले के
+ सह=साथ
स्पर्धते=ईर्षा करता है
+ सः=वह
ह=अवश्य
अनुशुष्यति=सूख जाता है
+ च=और
अनुशुष्य=सूखकर
ह एव=अवश्य
अन्ततः=अन्त में
म्रियते=नाश होजाता है
इति=ऐसा यह
अध्यात्मम्=अध्यात्मविषयक विचार है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! अब प्राण की श्रेष्ठता को दिखलाते हैं, और व्रत का विचार करते हैं, यानी इन्द्रियों विषे कौन इन्द्रिय श्रेष्ठ है, हे सौम्य ! यह संसार में प्रसिद्ध है कि जब प्रजापति ने वागादि कर्मेन्द्रियों को उत्पन्न किया तब पैदा की हुई इन्द्रियां आपस में ईर्षा करती भई. वाणी ऐसा व्रत धारण करती भई कि मैं सदा बोलती रहूंगी, नेत्र ऐसा व्रत धारण करता भया कि मैं सदा देखता रहूंगा, श्रोत्र ने ऐसा व्रत धारण किया कि मैं सदा सुनता रहूंगा, इसी प्रकार और और

इन्द्रियों ने भी ऐसा व्रत धारण किया तब उन सब को साहंकार पाकर श्रम ने मृत्यु होकर उन सबको पकड़ लिया, यानी उन को उनके कार्य में थका दिया, और उनके निकट जाकर उनको अपने काम से रोक दिया. इसी कारण वाणी अवश्य बोलते बोलते थक जाती है, नेत्र देखते देखते थक जाता है, श्रोत्र सुनते सुनते थक जाता है, हे सौम्य ! अब आगे उस व्रत को कहते हैं जो अखण्डित रहता है. हे सौम्य ! वह श्रमरूप मृत्यु इस प्राण को नहीं पकड़ सका. जो यह इन्द्रियों में फिरनेवाला प्राण है उसके जानने की इच्छा सब इन्द्रियां करती भई, और उसके महत्त्व को जानकर आपस में कहने लगीं कि निस्संदेह यह प्राण हम लोगों में श्रेष्ठ है. जो चलता हुआ और नहीं चलता हुआ भी न कभी दुःखी होता है न कभी नष्ट होता है. यदि सब की राय हो तो हम इसका ही रूप बन जायँ, ऐसा सुनने पर वे सब इसके ही रूप हो गये. इसी कारण वे वागादि इन्द्रियां इसी प्राण के नाम से पुकारी जाती हैं. हे सौम्य ! जो कोई इस प्रकार प्राण की श्रेष्ठता को जानता है, वह जिस कुल म पैदा होता है वह कुल उसी के नाम से पुकारा जाता है. और जो कोई ऐसे प्राणवित् पुरुष के साथ द्वेष करता है वह सूख जाता है और सूख कर अन्त में नाश होजाता है. हे सौम्य ! ऐसा यह अध्यात्मविषयक विचार है ॥ २१ ॥

मन्त्रः २२

अथाधिदैवतं ज्वलिष्याम्येवाहमित्यग्निर्दध्रे तप्स्याम्यहमित्यादित्यो भास्याम्यहमिति चन्द्रमा एवमन्या देवता यथादैवतꣳस यथैषां प्राणानां मध्यमः प्राण एवमेतासां देवतानां वायुर्म्लोचन्ति ह्यन्या देवता न वायुः सैषाऽनस्तमिता देवता यद्वायुः ॥

पदच्छेदः ।

अथ, अधिदैवतम्, ज्वलिष्यामि, एव, अहम्, इति, अग्निः, दध्रे,

तप्स्यामि, अहम्, इति, आदित्यः, भास्यामि, अहम्, इति, चन्द्रमाः, एवम्, अन्याः, देवताः, यथादैवतम्, सः, यथा, एषाम्, प्राणानाम्, मध्यमः, प्राणः, एवम्, एतासाम्, देवतानाम्, वायुः, म्लोचन्ति, हि, अन्याः, देवताः, न, वायुः, सा, एषा, अनस्तम्, इता, देवता, यत्, वायुः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
अथ	अध्यात्म वर्णन के पीछे
अधिदैवतम्	देवता सम्बन्धी विषय
+ कथ्यते	कहा जाता है
अहम्	मैं
ज्वलिष्यामि एव	जलता ही रहूंगा
इति	ऐसा व्रत
अग्निः	अग्नि
दध्रे	धारण करता भया
अहम्	मैं
तप्स्यामि+एव	तपताही रहूंगा
इति	ऐसा व्रत
आदित्यः	सूर्य
+ दध्रे	धारण करता भया
+ च	और
अहम्	मैं
भास्यामि+एव	प्रकाश करता ही रहूंगा
इति	ऐसा व्रत
चन्द्रमाः	चन्द्रमा
+ दध्रे	धारण करता भया
एवम्	ऐसेही
अन्याः	और
देवताः	देवता भी
यथादैवतम्	अपने स्वभाव अनुसार
+ अकुर्वन्	व्रत धारण करते भये
+ च	और
+ सौम्य	हे सौम्य !
यथा	जैसे
एषाम्	इन
प्राणानाम्	प्राणों में
सः	वह
मध्यमः प्राणः	मुख्य प्राण
+ श्रेष्ठः	श्रेष्ठ है
एवम्	वैसेही
एतासाम्	इन
देवतानाम्	अग्नि आदि देवताओं में
वायुः	वायु
+ श्रेष्ठः	श्रेष्ठ है
हि	क्योंकि
अन्याः	और
देवताः	देवता
म्लोचन्ति	अपने कार्य में थक जाते हैं
+ परन्तु	परन्तु
वायुः	वायु
न	नहीं
+ श्राम्यति	थकता है

+ च=और	वायुः=वायु
यत्=इसी कारण	देवता=देवता
सा=वही	अनस्तम्=नहीं अस्त को
एषा=यह	इता=प्राप्त होता है

भावार्थ।

हे सौम्य ! अध्यात्मवर्णन के पीछे अब देवतासम्बन्धी विषय कहा जाता है, इसको तुम सावधान हो कर सुनो. मैं जलनाही रहूंगा ऐसा व्रत अग्नि देवता ने धारण किया, मैं तपना ही रहूंगा ऐसा व्रत सूर्य देवताने धारण किया, मैं प्रकाशित करना रहूंगा ऐसा व्रत चन्द्रदेवता ने धारण किया, और इसी प्रकार और देवता भी अपने स्वभाव और कर्म अनुसार व्रतको धारण करते भये. हे सौम्य ! जैसे इन इन्द्रियों विषे और प्राणदेवताओं विषे मुख्य प्राण श्रेष्ठ है वैसेही इन अग्नि आदि देवताओं विषे वायु देवता श्रेष्ठ है. क्योंकि और देवता अपने कार्य करते करते थक जाते हैं. परन्तु वायु देवता अपने कार्य के करने में कभी नहीं थकता है. और यही कारण है कि वह वायु देवता कभी अस्त को नहीं प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

मन्त्रः २३

अथैष श्लोको भवति यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छतीति प्राणाद्वा एष उदेति प्राणेऽस्तमेति तं देवाश्चक्रिरे धर्मꣳस एवाद्य स उ श्व इति यद्वा एतेऽमुर्ह्यध्रियन्त तदेवाप्यद्य कुर्वन्ति तस्मादेकमेव व्रतं चरेत्प्राण्याच्चैवापान्याच्च नेन्मा पाप्मा मृत्युराप्नुवदिति यद्यु चरेत्समापिपयिषेत्तेनो एतस्यै देवतायै सायुज्यꣳसलोकतां गच्छति ॥

इति पञ्चमं ब्राह्मणम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः।

अथ, एषः, श्लोकः, भवति, यतः, च, उदेति, सूर्यः, अस्तम्, यत्र, च, गच्छति, इति, प्राणात्, वा, एषः, उदेति, प्राणे, अस्तम्, एति, तम्, देवाः, चक्रिरे, धर्मम्, सः, एव, अद्य, सः, उ, श्वः, इति, यत्, वा, एते, अमुर्हि, अध्रियन्त, तत्, एव, अपि, अद्य, कुर्वन्ति, तस्मात्,

एकम्, एव, व्रतम्, चरत्, प्राण्यात्, च, एव, अपान्यात्, च, चेत्, मा, पाप्मा, मृत्युः, आप्नुवत्, इति, यदि, उ, चरेत्, समापिपयिषेत्, तेन, उ, एतस्यै, देवतायै, सायुज्यम्, सलोकताम्, गच्छति ॥

अन्वयः पदार्थाः

यतः=कहांसे
सूर्यः=सूर्य
उदेति=उदय होता है
च=और
यत्र=किसमें
अस्तम्=अस्त को
गच्छति=प्राप्त होता है
+ इदम्=इसका
+ उत्तरम्=उत्तर यह है
एषः=यह सूर्य
प्राणात्=प्राण से
वै=ही
उदेति=उदय होता है
च=और
प्राणे=प्राण में ही
अस्तम्=अस्तको
एति=प्राप्त होता है
अथ=इस अर्थ विषे
एषः श्लोकः=यही मन्त्र प्रमाण है
तम् धर्मम्=उसी लगातारचलने वाले प्राण के व्रत को
देवाः=वागादि देवता
+ एव=भी
चक्रिरे=ग्रहण करते भये
उ=और
यत्=जो व्रत
अद्य=आज है

अन्वयः पदार्थाः

सः एव=वह ही
श्वः=कल भी
इति=ऐसाही
+ भविता=बना रहेगा
वा=और
यत्=जिस व्रत को
अमुर्हि=व्यतीत काल में
एते=ये वागादि देवता
अध्रियन्त=धारण करते भये
सः तत् एव=उसही निश्चय किये हुये व्रत को
अद्य=आजकल
अपि=भी
कुर्वन्ति=वेई देवता करते हैं
तस्मात्=इस कारण
एकम्=केवल एक
एव=ही
व्रतम्=व्रत को
चरेत्=पुरुष करे
च=और
+ यथा=जैसे
प्राण्यात्=प्राण व्यापार करता है
च=और
+ यथा=जैसे
अपान्यात्=अपान व्यापार करता है

+ तथा=वैसे
एव=ही
+ सः=वह पुरुष भी अपना व्रत
+ कुर्यात्=करता कि
पाप्मा=पापरूप
मृत्युः=मृत्यु
मा=मुझको यानी उसको
नेत् आप्नुवत्=न प्राप्त होवे
उ=और
यत्=जिस व्रतको
चरेत्=पुरुष करे
समापिपयिषेत्=उस व्रत के समाप्ति की इच्छाभी रक्खे
उ=क्योंकि
तेन=उसी व्रत करके
+ सः=वह उपासक
एतस्यै=इस
देवतायै=प्राणदेवता के
सायुज्यम्=सायुज्यलोक को और
सलोकताम्=सामीप्यलोक को
गच्छति=प्राप्त होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! प्रश्न होता है कि कहां से सूर्य उदय होता है, और किस में लय होता है, इसका उत्तर यही मिलता है कि यह सूर्य प्राण से ही उदय होता है, और प्राण में ही लय होता है और जैसे सूर्य देवता ने अहर्निश लगातार चलने का व्रत किया है, उसी प्रकार वागादि देवताओं ने भी व्रत किया है, और जैसे सूर्य का जो व्रत आज है वही कल रहेगा, वैसेही व्रत इन देवताओं का भी है, और व्यतीतकाल में जिस व्रत को वागादि देवताओं ने धारण किया था, उसी व्रत को आजकल भी वे धारण किये हैं. इसी कारण हे सौम्य ! पुरुष एकही व्रत को धारण करे, और जैसे प्राण अपान अपने व्यापार को किया करते हैं, वैसेही वह पुरुष भी अपने व्रत को धारण किया करे, ऐसा करने से पापरूप मृत्यु कभी उसके पास न आवेगा, हे सौम्य ! जिस व्रत को पुरुप एक वार करे उसी व्रत की पूर्णता का भी ध्यान रक्खे, ऐसे व्रत करने से उपासक प्राणदेवता के सायुज्य लोक को और सालोक्यता को प्राप्त होता है ॥ २३ ॥

इति पञ्चमं ब्राह्मणम् ॥ ५ ॥

अथ षष्ठं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

त्रयं वा इदं नाम रूपं कर्म तेषां नाम्नां वागित्येतदेषामुक्थमथो हि सर्वाणि नामान्युत्तिष्ठन्ति । एतदेषाᳫ सामैतद्धि सर्वैर्नामभिः सममेतदेषां ब्रह्मैतद्धि सर्वाणि नामानि बिभर्ति ॥

पदच्छेदः ।

त्रयम्, वै, इदम्, नाम, रूपम्, कर्म, तेषाम्, नाम्नाम्, वाक्, इति, एतद्, एषाम्, उक्थम्, अथो, हि, सर्वाणि, नामानि, उत्, तिष्ठन्ति, एतद्, एषाम्, साम, एतद्, हि, सर्वैः, नामभिः, समम्, एतद्, एषाम्, ब्रह्म, एतद्, हि, सर्वाणि, नामानि, बिभर्ति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
वै	निश्चय कर
इदम्	ये
त्रयम्	तीन
नाम	नाम
रूपम्	रूप
+ च	और
कर्म	कर्म
+ सन्ति	हैं
तेषाम्	उन
+ त्रयाणांमध्ये	तीनों में से
एषाम्	इन
नाम्नाम्	नामों का
एतत्	यह
वागिति	वाणी ही
उक्थम्	उपादान कारण है
अथो	क्योंकि
हि	जिससे
सर्वाणि	सब
नामानि	नाम
उत्तिष्ठन्ति	उत्पन्न होते हैं
एतत्	यही
एषाम्	इन नामों की
साम	समता है
एतत् हि	यही
सर्वैः	सब
नामभिः	नामों की
समम्	बराबरी है
एतत्	यह
एषाम्	इनका
ब्रह्म	ब्रह्म है
एतद् हि	यही
सर्वाणि	सब
नामानि	नामों को
बिभर्ति	धारण करता है

भावार्थ ।

ये तीन नाम, रूप, और कर्म हैं, इनमें से नामों का वाणी ही

उपादान कारण है. क्योंकि वाणी ही से सब नाम कहे जाते हैं. यह वाणी ही इन सब नामों की समतारूप है, यही सब नामों की समानता है, यही इनका ब्रह्म है, क्योंकि यह वाणीही सब नामों को धारण करती है विना वाणी के नामों का उच्चारण नहीं होसक्ता है ॥ १ ॥

मन्त्रः २

अथ रूपाणां चक्षुरित्येतदेषामुक्थमतो हि सर्वाणि रूपाण्यु-त्तिष्ठन्त्येतदेषाᳬ सामैतद्धि सर्वैरूपैः सममेतदेषां ब्रह्मैतद्धि सर्वाणि रूपाणि बिभर्ति ॥

पदच्छेदः ।

अथ, रूपाणाम्, चक्षुः, इति, एतद्, एषाम्, उक्थम्, अतः, हि, सर्वाणि, रूपाणि, उत्, तिष्ठन्ति, एतद्, एषाम्, साम, एतद्, हि, सर्वैः, रूपैः, समम्, एतद्, एषाम्, ब्रह्म, एतद्, हि, सर्वाणि, रूपाणि, बिभर्ति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
अथ	अब
एषाम्	इन
सितासित-प्रभृतीनाम्	सफ़ेद, काले आदि
रूपाणाम्	रूपों का
एतत्	यह
चक्षुः	नेत्र
इति	ही
उक्थम्-अस्ति	उपादान कारण है
अतः-हि	इसी से
सर्वाणि	सब
रूपाणि	रूप
उत्तिष्ठन्ति	दृष्ट होते हैं
एतत्	यह
एषाम्	इनका
साम	साम
+ अस्ति	है
एतद्-हि	यही
सर्वैः	सब
रूपैः	रूपों की
समम्	समता है
एतद्	यही
एषाम्	इन रूपों का
ब्रह्म	ब्रह्म
+ अस्ति	है
एतद्-हि	यही ब्रह्म
सर्वाणि	सब
रूपाणि	रूपों को
बिभर्ति	धारण करता है

भावार्थ ।

और इन सफ़ेद काले आदि रूपों का चक्षुही उपादान कारण है, इसी चक्षुसे ही सब रूप देखे जाते हैं, यही इनका साम है, यही समस्तरूपों की समता है, यही इन रूपों का ब्रह्म है, यही ब्रह्म सब रूपों को धारता है ॥ २ ॥

मन्त्रः ३

अथ कर्मणामात्मेत्येतदेषामुक्थमतो हि सर्वाणि कर्माण्युत्तिष्ठन्त्येतदेषाꣳ सामैतद्धि सर्वैः कर्मभिः सममेतदेषां ब्रह्मैतद्धि सर्वाणि कर्माणि बिभर्ति तदेतत्त्रयꣳ सदेकमयमात्माऽऽत्मो एकः सन्नेतत्त्रयं तदेतदमृतꣳ सत्येनच्छन्नं प्राणो वा अमृतं नामरूपे सत्यं ताभ्यामयं प्राणश्छन्नः ॥

इति षष्ठं ब्राह्मणम् ॥ ६ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, कर्मणाम्, आत्मा, इति, एतद्, एषाम्, उक्थम्, अतः, हि, सर्वाणि, कर्माणि, उत्, तिष्ठन्ति, एतद्, एषाम्, साम, एतत्, हि, सर्वैः, कर्मभिः, समम्, एतद्, एषाम्, ब्रह्म, एतद्, हि, सर्वाणि, कर्माणि, बिभर्ति, तत्, एतत्, त्रयम्, सत्, एकम्, अयम्, आत्मा, आत्मा, उ, एकः, सन्, एतत्, त्रयम्, तत्, एतत्, अमृतम्, सत्येन, छन्नम्, प्राणः, वै, अमृतम्, नामरूपे, सत्यम्, ताभ्याम्, अयम्, प्राणः, छन्नः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
अथ=और		सर्वाणि=सब	
एषाम्=इन		कर्माणि=कर्म	
कर्मणाम्=कर्मों का		उत्तिष्ठन्ति=पैदा होते हैं	
एतत्=यह		एतत्=यह	
आत्मा इति=आत्माही		एषाम्=इन कर्मों का	
उक्थम्=उपादान कारण		साम=साम है	
+ अस्ति=है		एतद्-हि=यही	
+ अतः-हि=इसी से ही		सर्वैः=सब	

कर्मभिः=कर्मों के
सममू=बराबर है
एतत्=यही
एषाम्=इनका
ब्रह्म=ब्रह्म है
एतद्-हि=यही
सर्वाणि=सब
कर्माणि=कर्मों को
बिभर्ति=धारण करता है
तत्-एतत्=सो यह पूर्व कथनानुसार
त्रयम्=तीनों
सदेकम्=सत्यरूप होकर एक हैं
अयम्=यही
आत्मा=आत्मा है
च=और
+एतावत्-हि=इतनाही
+ इदम्-सर्वम्=यह सब नाम-रूप-कर्म
एकः=एक
आत्मा=आत्मा
सन्=होता हुआ
+व्यवस्थितम्=स्थित है
एतद् + एव=यही
त्रयम्=तीनों
+नाम रूप कर्म=नाम-रूप-कर्म हैं
तत्=सो
एतत्=यह
अमृतम्=अमृतरूप
सत्येन=पञ्चभूतात्मक से
छन्नम्=ढका है
प्राणः=प्राण
वै=ही
अमृतम्=अमृत है
+ च=और
नामरूपे=नाम रूप
सत्यम्=कार्यात्मक हैं
ताभ्याम्=उन दोनों से
अयम्=यह
प्राणः=प्राण
छन्नः=अप्रकाशित है

भावार्थ ।

और कर्मों का आत्मा ही उपादान कारण है, क्योंकि आत्मा से ही सब कर्म किये जाते हैं, यही इन कर्मों का साम है. यही सब कर्मों के समान है और यही इनका ब्रह्म है. यही सब कर्मों को धारता है, येही तीनों सत्यरूप होकर एक हैं. यही नाम-रूप-कर्मात्मक आत्मा है, यही तीनों नाम-रूप-कर्म वाला है, वही यह अविनाशीरूप होकर पञ्चमहाभूतों से घिरा है. और प्राणही अमृतरूप है और नाम-रूप कर्मात्मक हैं उन दोनों से ही यह प्राण अप्रकाशित रहता है ॥ ३ ॥

इति षष्ठं ब्राह्मणम् ॥ ६ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि भाषानुवादे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ प्रथमं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

दृप्तबालाकिर्हानूचानो गार्ग्य आस स होवाचाजातशत्रुं काश्यं ब्रह्म ते ब्रवाणीति स होवाचाजातशत्रुः सहस्रमेतस्यां वाचि दद्मो जनको जनक इति वै जना धावन्तीति ॥

पदच्छेदः ।

दृप्तबालाकिः, ह, अनूचानः, गार्ग्यः, आस, सः, ह, उवाच, अजातशत्रुम्, काश्यम्, ब्रह्म, ते, ब्रवाणि, इति, सः, ह, उवाच, अजातशत्रुः, सहस्रम्, एतस्याम्, वाचि, दद्मः, जनकः, जनकः, इति, वै, जनाः, धावन्ति, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
ह	किसी समय किसी देश में
गार्ग्यः	गर्गगोत्र में उत्पन्न हुआ
दृप्तबालाकिः	दृप्तबालाकी नामक
अनूचानः	वेद का पढ़ने वाला
आस	रहता था
सः	वह
काश्यम्	काशी देश के राजा
अजातशत्रुम्	अजातशत्रु से
उवाच	कहता भया कि
ते	आपके लिये
ब्रह्म	ब्रह्म का उपदेश
ह	भली प्रकार
ब्रवाणि	करूंगा मैं

अन्वयः	पदार्थाः
इति	ऐसा सुन कर
सः	वह
ह	प्रसिद्ध
अजातशत्रुः	अजातशत्रु राजा
उवाच	बोला कि
एतस्याम्	इस
वाचि	वचन के बदले में
+ ते	तेरे लिये
सहस्रम्	एक हज़ार गौवें
वै	अभी
दद्मः	देता हूं
+ किम्	क्यों
जनकः जनकः इति	जनक जनक ऐसा

+ वदन्तः=पुकारते हुये	+ निकटम्=पास
जनाः=सब मनुष्य	धावन्ति इति=दौड़े जाते हैं
+ तस्य=उसके	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! किसी समय गर्गगोत्र में उत्पन्न हुआ एक अहंकारी वेद का पढ़नेवाला बालाकीनामक ब्राह्मण था, वह एक दिन काशी के राजा अजातशत्रु के पास पहुँचा, और उससे कहा कि मैं आपके लिये ब्रह्मविद्या का उपदेश करूंगा. यह सुन कर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ और कहा हे ब्राह्मण ! तू धन्य है, ऐसा तेरे कहने पर मैं एक सहस्र गौ देता हूं, जनक जनक ऐसा पुकारते हुये लोग क्यों उनके पास (जनक के पास) जाते हैं, और मेरे निकट क्यों नहीं आते हैं, मैं सहस्रों गौ देने को तैयार हूं, यदि ब्रह्मवादी मेरे पास आवें, और मुझको ब्रह्मोपदेश का अधिकारी समझें ॥ १ ॥

मन्त्रः २

स होवाच गार्ग्यो य एवासावादित्ये पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठा अतिष्ठाः सर्वेषां भूतानां मूर्धा राजेति वा अहमेतमुपास इति स य एतमेवमुपास्तेऽतिष्ठाः सर्वेषां भूतानां मूर्धा राजा भवति ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, गार्ग्यः, यः, एव, असौ, आदित्ये, पुरुषः, एतम्, एव, अहम्, ब्रह्म, उपासे, इति, सः, ह, उवाच, अजातशत्रुः, मा, मा, एतस्मिन्, संवदिष्ठाः, अतिष्ठाः, सर्वेषाम्, भूतानाम्, मूर्धा, राजा, इति, वै, अहम्, एतम्, उपासे, इति, सः, यः, एतम्, एवम्, उपास्ते, अतिष्ठाः, सर्वेषाम्, भूतानाम्, मूर्धा, राजा, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
सः-ह=वह प्रसिद्ध बालाकी		उवाच=बोलता भया कि	
गार्ग्यः=गर्गगोत्रवाला		एव=निश्चय करके	

यः=जो	राजा=प्रकाशवाला है
असौ=वह	इति=ऐसा
पुरुषः=पुरुष	+ मत्वा=मान कर
आदित्ये=सूर्यविषे	अहम्=मैं
+ अस्ति=है	वै=अवश्य
एतम् एव=उसही को	एतम्=इसकी
ब्रह्म=ब्रह्म	उपासे=उपासना करता हूं
इति=करके	+ च=और
अहम्=मैं	इति=ऐसा
उपासे=उपासना करता हूं	+ मत्वा=मानकर
+ तदा=तब	यः=जो
सः=वह	एतम्=इसकी
ह=प्रसिद्ध	एवम्=इस प्रकार
अजातशत्रुः=अजातशत्रु राजा	उपास्ते=उपासना करता है
उवाच=बोला कि	सः=वह उपासक
एतस्मिन्=इस ब्रह्म विषे	अतिष्ठाः=सबको अतिक्रमण करके रहने वाला
मा मा संवदिष्ठाः=ऐसा मत कहो ऐसा मत कहो	+ भवति=होता है
+ सः=वह सूर्यस्थ पुरुष	+ च=और
अतिष्ठाः=सबजीवों को अतिक्रमणकरकेरहनेवालाहै	सर्वेषाम्=सब
सर्वेषाम्=सब	भूतानाम्=प्राणियों के मध्य
भूतानाम्=प्राणियों का	मूर्धा=प्रतिष्ठावाला
मूर्धा=शिर है	+ च=और
+ च=और	राजा=राजा
	भवति=होता है

भावार्थ ।

तब वह प्रसिद्ध बालाकी गर्गगोत्रवाला बोलता भया कि हे राजन्! सूर्यविषे जो पुरुष दिखाई देता है वही ब्रह्म है, और उसी को मैं ब्रह्म मानकर उसकी उपासना करता हूं, तब वह अजातशत्रु राजा ऐसा सुनकर बोला कि ब्रह्मसंवाद विषे ऐसा मत कहो, यह आदित्य जो

दिखाई देता है वह ब्रह्म नहीं है, यह सूर्यस्थ पुरुष निस्संदेह सब जीवों को अतिक्रमण करके रहता है, यानी जब सब जीव नष्ट होजाते हैं तब भी यह बना रहता है, यह सब प्राणियों का शिर है, यानी सबों करके पूजने योग्य है, और यही प्रकाशवाला भी है, ऐसा मानकर मैं इस सूर्य की उपासना करता हूं, और ऐसा समझ कर जो कोई इसकी उपासना करता है, वह उपासक सबको अतिक्रमण करके रहता है, और सब प्राणियों के मध्य में प्रतिष्ठा पानेवाला और राजा होता है ॥ २ ॥

मन्त्रः ३

स होवाच गार्ग्यो य एवासौ चन्द्रे पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठा बृहन्पाण्डरवासाः सोमो राजेति वा अहमेतमुपास इति स य एतमेवमुपास्तेऽहरहर्ह सुतः प्रसुतो भवति नास्यान्नं क्षीयते ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, गार्ग्यः, यः, एव, असौ, चन्द्रे, पुरुषः, एतम्, एव, अहम्, ब्रह्म, उपासे, इति, सः, ह, उवाच, अजातशत्रुः, मा, मा, एतस्मिन्, संवदिष्ठाः, बृहन्पाण्डरवासाः, सोमः, राजा, इति, वै, अहम्, एतम्, उपासे, इति, सः, यः, एतम्, एवम्, उपास्ते, अहरहः, ह, सुतः, प्रसुतः, भवति, न, अस्य, अन्नम्, क्षीयते ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
सः	वह	असौ	वह
ह	प्रसिद्ध	पुरुषः	पुरुष है
गार्ग्यः	गर्गगोत्रवाला	एतम्	इसीको
+ बालाकिः	बालाकी	एव	ही
उवाच	बोलता भया कि	अहम्	मैं
यः	जो	ब्रह्म	ब्रह्म
चन्द्रे	चन्द्रमा विषे	इति	करके

एव=निस्सन्देह
उपासे=उपासना करता हूं
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
सः=वह
अजातशत्रुः=अजातशत्रु राजा
उवाच=कहता भया कि
एतस्मिन्=इस ब्रह्म विषे
मा मा संवदिष्ठाः = ऐसा मत कहो ऐसा मत कहो
+ अयम्=यह
राजा=प्रकाशवाला
सोमः=चन्द्रमा
वै=निश्चय करके
बृहन्पाण्डरवासाः इति = बड़ा श्वेत वस्त्रधारी है ऐसी
अहम्=मैं
एतम्=इसकी
एव=अवश्य
उपासे=उपासना करता हूं
+ च=और
इति=इस प्रकार
यः=जो कोई
एतम्=इसकी
अहरहः=प्रतिदिन
उपास्ते=उपासना करता है
सः=वह
सुतःप्रसुतः=सोम यज्ञ का करनेवाला
भवति=होता है
+ च=और
अस्य=उसका
अन्नम्=अन्न
न=कभी नहीं
क्षीयते=क्षीण होता है

भावार्थ ।

फिर वह प्रसिद्ध गर्गगोत्री बालाकी बोला कि जो चन्द्रमा विषे पुरुष है, उसीको मैं ब्रह्म समझकर उपासना करता हूं. ऐसा सुनकर वह अजातशत्रु राजा कहता भया कि इस ब्रह्मसंवाद विषे ऐसा कहना ठीक नहीं है, यानी यह ब्रह्म नहीं है, निस्संदेह यह श्वेत वस्त्रधारी चन्द्रमा प्रकाशमान है, मैं इसकी उपासना ऐसा समझकर करता हूं, और जो इसकी उपासना इसीप्रकार प्रतिदिन करता है, वह अपनें घर में सोमयज्ञ का करनेवाला होता है, और उसके घर में कभी अन्न क्षीण नहीं होता है ॥ ३ ॥

मन्त्रः ४

स होवाच गार्ग्यो य एवासौ विद्युति पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास

इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठास्तेजस्वीति वा अहमेतमुपास इति स य एतमेवमुपास्ते तेजस्वी ह भवति तेजस्विनी हास्य प्रजा भवति ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, गार्ग्यः, यः, एव, असौ, विद्युति, पुरुषः, एतम्, एव, अहम्, ब्रह्म, उपासे, इति, सः, ह, उवाच, अजातशत्रुः, मा, मा, एतस्मिन्, संवदिष्ठाः, तेजस्वी, इति, वै, अहम्, एतम्, उपासे, इति, सः, यः, एतम्, एवम्, उपास्ते, तेजस्वी, ह, भवति, तेजस्विनी, ह, अस्य, प्रजा, भवति ॥

अन्वयः पदार्थाः

+ पुनः=फिर
सः=वह
ह=प्रसिद्ध
गार्ग्यः=गार्गगोत्री बालाकी
उवाच=बोलता भया कि
यः=जो
असौ=वह
विद्युति=बिजली विषे
पुरुषः=पुरुष है
एतम्-एव=उसही को
अहम्=मैं
ब्रह्म=ब्रह्म
इति=करके
ह=ही
उपासे=उपासना करता हूं
+ इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुन कर
सः=वह
अजातशत्रुः=अजातशत्रु राजा
उवाच-ह=साफ बोला कि

अन्वयः पदार्थाः

एतस्मिन्=इस ब्रह्म विषे
मा मा संवदिष्ठाः=ऐसा मत कहो ऐसा मत कहो
यः=जो
+ हृदये=हृदय में
इति=ऐसा
तेजस्वी=तेजस्वी देवता है
एतम् एव=उसही की
अहम्=मैं
एवम्=इस प्रकार
वै=निश्चय करके
उपासे=उपासना करता हूं
इति=इसी प्रकार
यः=जो
+ अन्यः=और कोई
एतम्=इसकी
उपास्ते=उपासना करता है
सः=वह
+ एव=भी

तेजस्वी=तेजस्वी	प्रजा=संतान
भवति=होता है	ह=भी
+ च=और	तेजस्विनी=तेजवाली
अस्य=इसकी	भवति=होती है

भावार्थ ।

फिर वह प्रसिद्ध गर्गगोत्र में उत्पन्न हुआ बालाकी बोला कि हे राजन् ! जो बिजली विषे पुरुष है उसीको मैं ब्रह्म करके उपासना करता हूं, ऐसा सुनकर अजातशत्रु राजा बोलता भया कि हे बालाकी ब्राह्मण ! इस ब्रह्म विषे ऐसा मत कहो जिसको तुम बिजली विषे पुरुष-रूप ब्रह्म समझते हो वह वास्तव में हृदय में तेजस्वी देवता है, मैं उसकी उपासना ऐसा समझ कर करता हूं, और जो कोई इसकी उपासना ऐसा समझकर करता है वह भी तेजस्वी होता है, और उसकी संतान भी तेजस्विनी होती है ॥ ४ ॥

मन्त्रः ५

स होवाच गार्ग्यो य एवायमाकाशे पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठाः पूर्णमप्रवर्त्तीति वा अहमेतमुपास इति स य एतमेवमुपास्ते पूर्यते प्रजया पशुभिर्नास्या-स्माल्लोकात्प्रजोद्वर्त्तते ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, गार्ग्यः, यः, एव, अयम्, आकाशे, पुरुषः, एतम्, एव, अहम्, ब्रह्म, उपासे, इति, सः, ह, उवाच, अजातशत्रुः, मा, मा, एतस्मिन्, संवदिष्ठाः, पूर्णम्, अप्रवर्त्ति, इति, वै, अहम्, एतम्, उपासे, इति, सः, यः, एतम्, एवम्, उपास्ते, पूर्यते, प्रजया, पशुभिः, न, अस्य, अस्मात्, लोकात्, प्रजा, उद्वर्त्तते ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
+ पुनः=फिर		ह=प्रसिद्ध	
सः=वह		गार्ग्यः=गर्गगोत्रोत्पन्न बालाकी	

उवाच=बोला कि
यः=जो
अयम्=यह
आकाशे=आकाश विषे
पुरुषः=पुरुष है
एतम् एव=उसही को
अहम्=मैं
ब्रह्म=ब्रह्म
इति=करके
उपासे=उपासना करता हूं
+ इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुन कर
सः=वह
ह=प्रसिद्ध
अजातशत्रुः=अजातशत्रु राजा
उवाच=बोला कि
एतस्मिन्=इस ब्रह्म विषे
मा मा संवदिष्ठाः=ऐसा मत कहो ऐसा मत कहो
यः=जो
+ आकाशे=आकाश विषे
पूर्णम्=पूरा
अप्रवर्त्ति=क्रियारहित पुरुष है
अहम्=मैं
एतम्=उसकी
वै=ही
इति=ऐसा समझ कर
उपासे=उपासना करता हूं
एवम्=इसी प्रकार
+ यः=जो
+ अन्यः=और कोई
उपास्ते=उपासना करता है
सः=वह
प्रजया=संतान करके
पशुभिः=पशुओं करके
पूर्यते=पूर्ण होता है
+ च=और
अस्मात्=इस
लोकात्=लोक से
अस्य=इसकी
प्रजा=संतान
न=नहीं
उद्वर्तते=दूर की जाती है

भावार्थ।

हे सौम्य ! फिर भी वह प्रसिद्ध गर्गगोत्र में उत्पन्न हुआ बालाकी कहता भया कि हे राजन् ! आकाश विषे जो पुरुष है उसी की मैं ब्रह्म करके उपासना करता हूं, ऐसा सुनकर वह राजा अजातशत्रु ऐसा कहने लगा कि हे ब्राह्मण ! इस ब्रह्म विषे ऐसा मत कहो, यह ब्रह्म नहीं है, जिसको तुम ब्रह्म समझते हो, जो आकाश विषे पूरा और क्रियारहित पुरुष है, उसकी उपासना ऐसा समझ कर मैं करता हूं, और जो कोई उसकी उपासना ऐसा ही समझ कर करता है वह संतान

करके और पशुओं करके पूर्ण होता है, और उसकी संतान नष्ट नहीं होती है ॥ ५ ॥

मन्त्रः ६

स होवाच गार्ग्यो य एवायं वायौ पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठा इन्द्रो वैकुण्ठोऽपराजिता सेनेति वा अहमेतमुपास इति स य एतमेवमुपास्ते जिष्णुर्हापराजिष्णुर्भवत्यन्यतस्त्यजायी ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, गार्ग्यः, यः, एव, अयम्, वायौ, पुरुषः, एतम्, एव, अहम्, ब्रह्म, उपासे, इति, सः, ह, उवाच, अजातशत्रुः, मा, मा, एतस्मिन्, संवदिष्ठाः, इन्द्रः, वैकुण्ठः, अपराजिता, सेना, इति, वै, अहम्, एतम्, उपासे, इति, सः, यः, एतम्, एवम्, उपास्ते, जिष्णुः, ह, अपराजिष्णुः, भवति, अन्यतस्त्यजायी ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ पुनः	फिर
सः	वह
ह	प्रसिद्ध
गार्ग्यः	गर्गगोत्रोत्पन्न बालाकी
उवाच	बोला कि
यः	जो
एव	निश्चय करके
अयम्	यह
वायौ	वायु में
पुरुषः	पुरुष है
अहम्	मैं
एतम् एव	इसही पुरुष को
ब्रह्म	ब्रह्म
इति	करके
उपासे	उपासना करता हूं
+ इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	सुन कर
सः	वह
अजातशत्रुः	अजातशत्रु राजा
उवाच	बोला कि
एतस्मिन्	इस ब्रह्म विषे
मा मा संवदिष्ठाः	ऐसा मत कहो ऐसा मत कहो
+ अयम्	यह
इन्द्रः	ऐश्वर्यवाला
वैकुण्ठः	अजय वायु अधिष्ठान पुरुष है
+ च	और
+ मरुताम्	पवनों के मध्य में

अपराजिता सेनाइति = अपराजिता यानी अजीत सेना है
वै=निश्चय करके
अहम्=मैं
एतम्=इसकी
उपासे=उपासना करता हूं
इति=इस प्रकार
यः=जो
+ अन्यः=और कोई
एवम्=इस प्रकार
एतम्=इसकी
उपास्ते=उपासना करता है

सः=वह
+ एव=भी
जिष्णुः=जीतनेवाला
ह=अवश्य
भवति=होता है
अपराजिष्णुः=हारनेवाला नहीं
भवति=होता है
+ किंच=और
अन्यतस्त्य-जायी = दूसरों से हारनेवाला नहीं
+ भवति=होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! फिर वह गर्गगोत्र में उत्पन्न हुआ बालाकी बोला कि हे राजन् ! जो वायु विषे पुरुष है मैं उसकी उपासना ब्रह्म समझ कर करता हूं, ऐसा सुन कर वह राजा बोला कि हे बालाकी ! तुम इस ब्रह्म विषे ऐसा मत कहो, वह ब्रह्म नहीं है जिसको तुम ब्रह्म समझते हो, वायु विषे जो पुरुष है वह इन्द्र है, वह अजय है, वह ऐश्वर्य वाला है, वही पवनों की अजीत सेना का सेनापति है, मैं इसकी उपासना इस प्रकार निश्चय करके करता हूं, और जो कोई दूसरा पुरुष उसकी उपासना इस प्रकार करता है, वह भी जीतनेवाला अवश्य होजाता है, वह किसी करके जीता नहीं जाता है ॥ ६ ॥

मन्त्रः ७

स होवाच गार्ग्यो य एवायमग्नौ पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठा विषासहिरिति वा अहमेत-मुपास इति स य एतमेवमुपास्ते विषासहिर्ह भवति विषासहिर्हास्य प्रजा भवति ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, गार्ग्यः, यः, एव, अयम्, अग्नौ, पुरुषः, एतम्,

एव, अहम्, ब्रह्म, उपासे, इति, सः, ह, उवाच, अजातशत्रुः, मा, मा, एतस्मिन्, संवदिष्ठाः, विपासहिः, इति, वै, अहम्, एतम्, उपासे, इति, सः, यः, एतम्, एवम्, उपास्ते, विपासहिः, ह, भवति, विपासहिः, ह, अस्य, प्रजा, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
सः	वह
ह	प्रसिद्ध
गार्ग्यः	गर्गगोत्रोत्पन्न
+ बालाकिः	बालाकी
उवाच	बोला कि
यः	जो
अयम्	यह
एव	निश्चय करके
अग्नौ	अग्नि विषे
पुरुषः	पुरुष है
अहम्	मैं
एतम्	उसको
एव	ही
ब्रह्म	ब्रह्म
इति	करके
उपासे	उपासना करता हूं
+ इति	ऐसा
श्रुत्वा	सुन कर
सः	वह
ह	प्रसिद्ध
अजातशत्रुः	अजातशत्रु राजा
उवाच	बोला कि
एतस्मिन्	इस ब्रह्म विषे
मा मा संवदिष्ठाः	ऐसा मत कहो ऐसा मत कहो
+ एतत्	यह
+ ब्रह्म	ब्रह्म
+ न	नहीं है
+ अयम्	यह अग्नि
विपासहिः	सब कुछ सहनेवाला है
इति	ऐसा
वै	निश्चय कर
अहम्	मैं
एतम्	इसकी
उपासे	उपासना करता हूं
+ च	और
यः	जो कोई
+ अन्यः	अन्य
एतम्	इसकी
एव	ही
उपास्ते	उपासना करता है
सः	वह
ह	भी
विपासहिः	सहनशीलवाला
भवति	होता है
+ च	और
अस्य	उसकी
प्रजा	संतान
विपासहिः	सहनशीलवाली
ह	अवश्य
भवति	होती है

भावार्थ।

हे सौम्य ! वह प्रसिद्ध गर्गगोत्रोत्पन्न बालाकी बोला कि हे राजन् ! जो यह अग्निविषे पुरुष है, यानी उसका जो अधिष्ठात्री देवता है, उसको मैं ब्रह्म समझकर उपासना करता हूं, तुम भी ऐसाही करो ऐसा सुनकर राजा ने कहा कि हे अनूचान, ब्राह्मण ! ऐसी बात इस ब्रह्म विषे मत कहो, जिसको तुम ब्रह्म करके समझते हो, वह ब्रह्म नहीं है, वह अग्नि देवता है, जो सब कुछ सहनेवाला है, यह सब से बड़ा ज़बरदस्त है, मैं इसको ऐसा समझ कर इसकी उपासना करता हूं, परंतु ब्रह्म समझ कर नहीं करता हूं, और जो अन्य पुरुष इसकी उपासना ऐसाही समझ कर करता है, वह भी सहन-शीलवाला होता है, और उसकी संतान सहनशीलवाली अवश्य होती है ॥ ७ ॥

मन्त्रः ८

स होवाच गार्ग्यो य एवायमप्सु पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठाः प्रतिरूप इति वा अहमेत-मुपास इति स य एतमेवमुपास्ते प्रतिरूपꣳ हैवैनमुपगच्छति नाप्र-तिरूपमथो प्रतिरूपोऽस्माज्जायते ॥

पदच्छेदः।

सः, ह, उवाच, गार्ग्यः, यः, एव, अयम्, अप्सु, पुरुषः, एतम्, एव, अहम्, ब्रह्म, उपासे, इति, सः, ह, उवाच, अजातशत्रुः, मा, मा, एतस्मिन्, संवदिष्ठाः, प्रतिरूपः, इति, वै, अहम्, एतम्, उपास, इति, सः, यः, एतम्, एवम्, उपास्ते, प्रतिरूपम्, ह, एव, एनम्, उपगच्छति, न, अप्रतिरूपम्, अथो, प्रतिरूपः, अस्मात्, जायते ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
सः	वह	+ बालाकिः	बालाकी
ह	प्रसिद्ध	उवाच	बोला कि
गार्ग्यः	गर्गगोत्रोत्पन्न	यः	जो

अयम्=यह
एव=निश्चय करके
अप्सु=जल में
पुरुषः= { पुरुष है यानी जो जलविषे पुरुष का प्रतिबिम्ब है }
अहम्=मैं
एतम्=इसको
एव=ही
ब्रह्म=ब्रह्म
इति=करके
उपासे=उपासना करता हूं
+ इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुन कर
सः=वह
ह=प्रसिद्ध
अजातशत्रुः=अजातशत्रु राजा
उवाच=बोला कि
एतस्मिन्=इस ब्रह्म विषे
मा मा संवदिष्ठाः } =ऐसा मत कहो ऐसा मत कहो
+अयम्=यह
प्रतिरूपः=प्रतिबिम्बहै यानी अनुकूलत्व गुणवाला है
इति=ऐसा
+ ज्ञात्वा=जानकर
वै=निस्संदेह
अहम्=मैं
एतम्=इसकी
उपासे=उपासना करता हूं
+च=और
यः=जो कोई
+ अन्यः=अन्य
एतम्=इसका
एव=ही
इति=ऐसा
+ ज्ञात्वा=जानकर
उपास्ते=उपासना करता है
सः=वह भी
एनम्=इस
प्रतिरूपम्=अनुकूलता यानी अनुकूल पदार्थों को
ह एव=अवश्य
उपगच्छति=प्राप्त होता है
अप्रतिरूपम्=विपरीत वस्तु को
न=नहीं
अथो=और
अस्मात्=इस पुरुष से
प्रतिरूपः=इसके समान पुत्र पौत्र
जायते=उत्पन्न होते हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! वह प्रसिद्ध गर्गगोत्रोत्पन्न बालाकी अजातशत्रु राजा से कहता भया कि जो निश्चय करके जल विषे पुरुष है यानी पुरुष का प्रतिबिम्ब है, मैं उसको ब्रह्म समझ कर उपासना करता हूं, आप भी ऐसा ही करें. यह सुनकर वह राजा बोला कि हे अनूचान, ब्राह्मण !

इस ब्रह्म विषे ऐसा मत कहो यह ब्रह्म नहीं है जिसको तुम उपासना करते हो यह केवल पुरुष का प्रतिबिम्ब है यानी इसमें अनुकूलत्व गुण है ऐसा जानकर मैं इसकी उपासना करता हूं और जो कोई अन्य इसको ऐसा ही जानकर उपासना करता है वह भी अनुकूलता यानी अनुकूल पदार्थों को प्राप्त होता है, विपरीत वस्तुको नहीं, और इस पुरुष के समान इसके पुत्र पौत्र उत्पन्न होते हैं ॥ ८ ॥

मन्त्रः ९

स होवाच गार्ग्यो य एवायमादर्शे पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन् संवदिष्ठा रोचिष्णुरिति वा अहमेतमुपास इति स य एतमेवमुपास्ते रोचिष्णुर्ह भवति रोचिष्णु-र्हास्य प्रजा भवत्यथो यैः संनिगच्छति सर्वाꣳस्तानतिरोचते ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, गार्ग्यः, यः, एव, अयम्, आदर्शे, पुरुषः, एतम्, एव, अहम्, ब्रह्म, उपासे, इति, सः, ह, उवाच, अजातशत्रुः, मा, मा, एतस्मिन्, संवदिष्ठाः, रोचिष्णुः, इति, वै, अहम्, एतम्, उपासे, इति, सः, यः, एतम्, एवम्, उपास्ते, रोचिष्णुः, ह, भवति, रोचिष्णुः, ह, अस्य, प्रजा, भवति, अथो, यैः, संनिगच्छति, सर्वान्, तान्, अतिरोचते ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
सः=वह		आदर्शे=दर्पण में	
ह=प्रसिद्ध		पुरुषः=पुरुष है यानी प्रति-बिम्ब पड़ता है	
गार्ग्यः=गर्गवंशी		अहम्=मैं	
+ बालाकिः=बालाकी		एतम्=इसको	
उवाच=बोला कि		एव=ही	
यः=जो		ब्रह्म=ब्रह्म	
अयम्=यह		+ ज्ञात्वा=जानकर	
एव=निस्संदेह			

उपासे=उपासना करता हूं
+ इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुन कर
सः=वह
ह=प्रसिद्ध
अजातशत्रुः=अजातशत्रु राजा
उवाच=बोला कि
एतस्मिन्=इस ब्रह्म विषे
मा मा संवदिष्ठाः=ऐसा मत कहो ऐसा मत कहो
+न एतत् + ब्रह्म=यह ब्रह्म नहीं है
+ अयम्=यह
रोचिष्णुः=प्रकाशमान छायाग्राही वस्तु है
इति=ऐसा
+ बुद्ध्वा=जान कर
अहम्=मैं
वै=अवश्य
उपासे=उपासना करता हूं
+ च=और
यः=जो कोई
+ अन्यः=और
एतम्=इसको
एवम्=ऐसाही
इति एव=समझकर
उपास्ते=उपासना करता है
सः=वह
एव=भी
रोचिष्णुः=प्रकाशवाला
भवति=होता है
+ च=और
अस्य=इसकी
प्रजा=संतान
ह=निस्संदेह
रोचिष्णुः=प्रकाशवाली
भवति=होती है
अथो=और
यैः=जिनके साथ
संनिगच्छति=सम्बन्ध करता है
तान्=उन
सर्वान्=सबको
अतिरोचते=प्रकाशमान करता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! वह प्रसिद्ध गर्गवंशी बालाकी राजा से कहता भया कि हे राजन् ! दर्पण में जो पुरुष है उस विषे जो प्रतिविम्ब है, मैं उसको ब्रह्म समझ कर उसकी उपासना करता हूं, आपभी ऐसाही करें. यह सुन कर राजा कहता है कि हे अनूचान, ब्राह्मण ! ऐसी बात ब्रह्म विषे मत कहो, यह ब्रह्म नहीं है, जिसको तुम ब्रह्म समझ कर उपासना करते हो यह प्रकाशमान छायग्राही वस्तु है, ऐसा जानकर मैं इसकी उपासना करता हूं. जो कोई अन्य पुरुष ऐसाही जान कर

इसकी उपासना करता है, वह भी प्रकाशवाला होता है, और इसकी संतान भी प्रकाशवाली होती है, और जिनके साथ वह सम्बन्ध करता है उन सबको प्रकाशमान करता है ॥ ६ ॥

मन्त्रः १०

स होवाच गार्ग्यो य एवायं यन्तं पश्चाच्छब्दोऽनुदेत्येतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठा असुरिति वा अहमेतमुपास इति स य एतमेवमुपास्ते सर्वं हैवास्मिँल्लोक आयुरेति नैनं पुरा कालात्प्राणो जहाति ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, गार्ग्यः, यः, एव, अयम्, यन्तम्, पश्चात्, शब्दः, अनुदेति, एतम्, एव, अहम्, ब्रह्म, उपासे, इति, सः, ह, उवाच, अजातशत्रुः, मा, मा, एतस्मिन्, संवदिष्ठाः, असुः, इति, वै, अहम्, एतम्, उपासे, इति, सः, यः, एतम्, एवम्, उपास्ते, सर्वम्, ह, एव, अस्मिन्, लोके, आयुः एति, न, एनम्, पुरा, कालात्, प्राणः, जहाति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
सः	वह	शब्दः	शब्द
ह	प्रसिद्ध	उदेति	उठता है
गार्ग्यः	गर्गगोत्रोत्पन्न बालाकी	अहम्	मैं
उवाच	बोला कि	एतम् एव	उसही को
यः	जो	ब्रह्म	ब्रह्म
अयम्	यह	इति	करके
एव	निश्चय करके	उपासे	उपासना करता हूँ
यन्तम्	गमन करनेवाले पुरुष के	+ इति	ऐसा
पश्चात्	पीछे	+ श्रुत्वा	सुन कर
अनु	अतिसमीप	सः	वह
		ह	प्रसिद्ध
		अजातशत्रुः	अजातशत्रु राजा

उवाच=बोला कि
एतस्मिन्=इस ब्रह्म विषे
मा मा } = ऐसा मत कहो
संवदिष्ठाः } ऐसा मत कहो
+ एतत्-ब्रह्म=यह ब्रह्म
+ न=नहीं है
+ अयम्=यह
असुः=प्राण है
इति + मत्वा=ऐसा समझ कर
वै=निस्संदेह
अहम्=मैं
एतम्=इसकी
उपासे=उपासना करता हूं
+ च=और
यः=जो कोई
+ अन्यः=अन्य पुरुष
एवम्=इसी प्रकार
एतम्=इसको
उपास्ते=उपासना करता है
सः=वह
एव=भी
अस्मिन्=इस
ह=ही
लोके=लोक में
सर्वम्=पूर्ण
आयुः=आयुको
एति=प्राप्त होता है
+ च=और
कालात्=नियत समय से
पुरा=पहिले
प्राणः=प्राण
एनम्=इसको
न=नहीं
जहाति=त्यागता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब वह प्रसिद्ध गर्गगोत्रवाला बालाकी राजा से कहता भया कि गमन करनेवाले पुरुष के पीछे पीछे अतिसमीप जो शब्द उठता है मैं उसीको ब्रह्म समझ कर उसकी उपासना करता हूं. ऐसा सुन कर अजातशत्रु राजा कहता भया कि हे अनूचान, ब्राह्मण ! तुम क्या कहते हो, यह ब्रह्म नहीं है, तुमको ऐसा कहना नहीं चाहिये, यह प्राण है, ऐसाही इसको समझ कर इसकी उपासना मैं करता हूं. जो कोई इसको ऐसा समझ कर इसकी उपासना करता है वह अवश्य इसलोक में पूर्ण आयुको प्राप्त होता है, और वह नियमित काल से पहिले अपने शरीर को नहीं त्यागता है, यानी बड़ी आयुवाला होता है ॥१०॥

मन्त्रः ११

स होवाच गार्ग्यो य एवायं दिक्षु पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास

इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठा द्वितीयोऽनपग इति वा अहमेतमुपास इति स य एतमेवमुपास्ते द्वितीयवान्ह भवति नास्माद्गणश्छिद्यते ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, गार्ग्यः, यः, एव, अयम्, दिक्षु, पुरुषः, एतम्, एव, अहम्, ब्रह्म, उपासे, इति, सः, ह, उवाच, अजातशत्रुः, मा, मा, एतस्मिन्, संवदिष्ठाः, द्वितीयः, अनपगः, इति, वै, अहम्, एतम्, उपासे, इति, सः, यः, एतम्, एवम्, उपास्ते, द्वितीयवान्, ह, भवति, न, अस्मात्, गणः, छिद्यते ॥

अन्वयः	पदार्थाः
सः	वह
ह	प्रसिद्ध
गार्ग्यः	गर्गगोत्रोत्पन्न बालाकी
उवाच	बोला कि
यः	जो
अयम्	यह
दिक्षु	चारों दिशाओं में
पुरुषः	पुरुष है
अहम्	मैं
एतम्	इसको
एव	ही
ब्रह्म	ब्रह्म
इति	मान करके
उपासे	उपासना करता हूं
इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	सुन कर
सः	वह
ह	प्रसिद्ध
अजातशत्रुः	अजातशत्रु राजा

अन्वयः	पदार्थाः
उवाच	बोला कि
एतस्मिन्	इस ब्रह्म विषे
मा मा संवदिष्ठाः	ऐसा मत कहो ऐसा मत कहो
+ एतत्	यह
+ ब्रह्म	ब्रह्म
+ न	नहीं है
+ अयम्	यह
अनपगः	नहीं त्याग करनेवाला
द्वितीयः	दूसरा दिशागत पुरुष है
वै	निश्चय करके
अहम्	मैं
इति	ऐसा
+ मत्वा	मान कर
एतम्	इसकी
उपासे	उपासना करता हूं
+ च	और
यः	जो कोई
+ अन्यः	अन्य पुरुष

+ एव=भी
एतम्=इसकी
एवम्=इस प्रकार
उपास्ते=उपासना करता है
सः=वह
एव=भी
द्वितीयवान्=द्वितीयवान्
भवति=होता है
अस्मात्=इससे
गणः=पुत्र पशु आदि समुदाय
न=नहीं
छिद्यते=नष्ट होते हैं यानी वे सदा बने रहते हैं

भावार्थ ।

वह प्रसिद्ध गर्गगोत्री बालाकी बोला कि हे राजन् ! जो चारों दिशाओं में पुरुष है, वही ब्रह्म है, उसी को मैं ब्रह्म मान कर उसकी उपासना करता हूं. ऐसा सुन कर अजातशत्रु राजा बोला हे अनूचान, ब्राह्मण ! यह तुम क्या कहते हो, यह ब्रह्म नहीं है, यह निश्चय करके नित्यसम्बन्धी दिशागत दूसरा वायुरूप पुरुष है, मैं उसको ऐसा समझ कर उसकी उपासना करता हूं. हे ब्राह्मण ! जो कोई इसको इस प्रकार जान कर इसकी उपासना करता है, वह भी द्वितीयहीन नहीं होता है, और इसके पुत्र पशु आदि इससे पृथक् नहीं होते हैं, यानी सदा इसके साथ बने रहते हैं ॥ ११ ॥

मन्त्रः १२

स होवाच गार्ग्यो य एवायं छायामयः पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठा मृत्युरिति वा अहमेतमुपास इति स य एतमेवमुपास्ते सर्वꣳहैवास्मिँल्लोक आयुरेति नैनं पुरा कालान्मृत्युरागच्छति ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, गार्ग्यः, यः, एव, अयम्, छायामयः, पुरुषः, एतम्, एव, अहम्, ब्रह्म, उपासे, इति, सः, ह, उवाच, अजातशत्रुः, मा, मा, एतस्मिन्, संवदिष्ठाः, मृत्युः, इति, वै, अहम्, एतम्, उपासे, इति, सः, यः, एतम्, एवम्, उपास्ते, सर्वम्, ह, एव, अस्मिन्, लोके, आयुः, एति, न, एनम्, पुरा, कालात्, मृत्युः, आगच्छति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
सः	वह
ह	प्रसिद्ध
गार्ग्यः	गर्गगोत्रोत्पन्न बालाकी
उवाच	बोला कि
यः	जो
अयम्	यह
एव	निश्चय करके
छायामयः	छायारूपी
पुरुषः	पुरुष है
अहम्	मैं
एतम्	इसको
एव	ही
ब्रह्म	ब्रह्म
इति	मान करके
उपासे	उपासना करता हूं
इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	सुन कर
सः	वह
ह	प्रसिद्ध
अजातशत्रुः	अजातशत्रु राजा
उवाच	बोला कि
एतस्मिन्	इस ब्रह्म विषे
मा मा संवदिष्ठाः	ऐसा मत कहो ऐसा मत कहो
+ एतत्	यह
+ ब्रह्म	ब्रह्म
+ न	नहीं है

अन्वयः	पदार्थाः
+ अयम्	यह छायापुरुष
मृत्युः	मृत्यु है
इति + मत्वा	ऐसा मान कर
वै	निस्संदेह
अहम्	मैं
एतम्	इसकी
उपासे	उपासना करता हूं
+ च	और
यः	जो कोई
+ अन्यः एव	अन्य भी
एतम्	इसकी
एवम् उपास्ते	इस प्रकार उपासना करता है
सः	वह
ह	अवश्य
अस्मिन्	इस
लोके	लोक में
सर्वम्	पूर्ण
आयुः	आयु को
एति	प्राप्त होता है
+ च	और
मृत्युः	मृत्यु
कालात्	नियमित काल से
पुरा	पहिले
एनम्	इसके पास
न	नहीं
आगच्छति	आती है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! वह प्रसिद्ध गर्गगोत्रवाला बालाकी राजा से कहता

भझा कि जो यह छायापुरुष है, इसीको मैं ब्रह्म मान कर इसकी उपासना करता हूं. ऐसा सुन कर अजातशत्रु राजा ने जवाब दिया कि हे ब्राह्मण ! यह तुम क्या कहते हो, ऐसा मत कहो, यह ब्रह्म नहीं है, यह तो छायापुरुष मृत्यु है, क्योंकि जब उपासक को यह फटा कुटा दिखाई देता है तब उसीको अपने मरने का बोध होता है. इसको मैं ऐसा समझ कर इसकी उपासना करता हूं. जो कोई इसकी उपासना इस प्रकार समझ कर करता है, वह अवश्य इस लोक में पूर्ण आयु को प्राप्त होता है, और उसके निकट मृत्यु नियत कालसे पहिले नहीं आती है ॥१२॥

मन्त्रः १३

स होवाच गार्ग्यो य एवायमात्मनि पुरुष एतमेवाहं ब्रह्मोपास इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवदिष्ठा आत्मन्वीति वा अहमेतमुपास इति स य एतमेवमुपास्त आत्मन्वी ह भवत्यात्मन्विनी हास्य प्रजा भवति स ह तूष्णीमास गार्ग्यः ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, गार्ग्यः, यः, एव, अयम्, आत्मनि, पुरुषः, एतम्, एव, अहम्, ब्रह्म, उपासे, इति, सः, ह, उवाच, अजातशत्रुः, मा, मा, एतस्मिन्, संवदिष्ठाः, आत्मन्वी, इति, वै, अहम्, एतम्, उपासे, इति, सः, यः, एतम्, एवम्, उपास्ते, आत्मन्वी, ह, भवति, आत्मन्विनी, ह, अस्य, प्रजा, भवति, सः, ह, तूष्णीम्, आस, गार्ग्यः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
सः	वह
ह	प्रसिद्ध
गार्ग्यः	गर्गगोत्रोत्पन्न बालाकी
उवाच	बोला कि
यः	जो
अयम्	यह
एव	निश्चय करके
आत्मनि	हृदय में
पुरुषः	पुरुष है
अहम्	मैं
एतम्	इसको
ब्रह्म	ब्रह्म
+ मत्वा इति	समझ करके

उपासे=उपासना करता हूं
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुन कर
सः=वह
ह=प्रसिद्ध
अजातशत्रुः=अजातशत्रु राजा
उवाच=बोला कि
एतस्मिन्=इस ब्रह्म विषे
मा मा } =ऐसा मत कहो
संवदिष्ठाः } ऐसा मत कहो
+ एतत्=यह
+ ब्रह्म=ब्रह्म
+ न=नहीं है
+ अयम्=यह
आत्मन्वी=जीवात्मा पराधीन है
इति=इस प्रकार
वै=निश्चय करके
अहम्=मैं
एतम्=इसको
+ एव=निस्संदेह
उपासे=उपासना करता हूं
+ च=और
यः=जो कोई
+ अन्यः=अन्य पुरुष
+ एव=भी
एतम्=इसकी
एवम्=इस प्रकार
उपास्ते=उपासना करता है
सः=वह
+ एव=भी
ह=अवश्य
आत्मन्वी=शुद्धगुणग्राही
भवति=होता है
+ च=और
ह=अवश्य
अस्य=इसकी
प्रजा=संतान
+ एव=भी
आत्मन्विनी=शुद्ध आत्मावाली
भवति=होती है
ह=इसके पश्चात्
सः=वह
गार्ग्यः=गर्गगोत्री बालाकी
तूष्णीम्=चुपचाप
आस=होता भया

भावार्थ।

हे सौम्य ! वह प्रसिद्ध गर्गगोत्रोत्पन्न बालाकी बोला कि हे राजन् ! इस हृदयाकाश विषे जो पुरुष है उसको मैं ब्रह्म मान कर उसकी उपासना करता हूं, ऐसा सुन कर वह प्रसिद्ध राजा अजातशत्रु बोला कि हे अनूचान, ब्राह्मण ! तुम क्या कहते हो, तुमको ऐसा नहीं कहना चाहिये, जिसको तुम ब्रह्म समझे हो वह ब्रह्म नहीं है, यह तो केवल जीवात्मा पराधीन है, मैं इसको ऐसा जान कर इसकी उपासना करता हूं, जो कोई इसको ऐसा जान कर इसकी उपासना करता है वह

अवश्य शुद्धगुणग्राही होता है, और उसकी संतति भी शुद्ध आत्मा-वाली होती है, ऐसा उत्तर पाकर बालाकी चुपचाप होगया ॥ १३ ॥

मन्त्रः १४

स होवाचाजातशत्रुरेतावन्नू ३ इत्येतावद्धीति नैतावता विदितं भवतीति स होवाच गार्ग्य उप त्वा यानीति ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, अजातशत्रुः, एतावत्, नू, इति, एतावत्, हि, इति, न, एतावता, विदितम्, भवति, इति, सः, ह, उवाच, गार्ग्यः, उप, त्वा, यानि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
ह	तब
सः	वह
अजातशत्रुः	अजातशत्रु राजा
उवाच	बोला कि
नू	क्या
एतावत् इति +विजानासि	तुम इतनाही जानते हो
+ बालाकिः	बालाकी
+ उवाच	बोला कि
हि	हां अवश्य
एतावत् इति	इतनाही ब्रह्म विषे
+ जानामि	मैं जानता हूं
+ पुनः	फिर
+ काश्यः	काशी के राजाने
आह	कहा
एतावता इति	इतना करके
विदितम्	ब्रह्म का ज्ञान
न	नहीं
भवति	होता है
इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	सुन कर
सः	वह
ह	प्रसिद्ध
गार्ग्यः	गर्गगोत्रोत्पन्न बालाकी
उवाच	बोला कि
त्वा	आपके
उप	निकट
+ अहम्	मैं
+ शिशुवत्	शिष्यवत्
इति	ऐसा
यानि	प्राप्त हूं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब बालाकी चुप होगया, तब राजा अजातशत्रु ने

कहा हे अनूचान, ब्राह्मण ! क्या तुम ब्रह्म विष इतनाही जानते हो ? उसने कहा हां महाराज, ब्रह्म विषे इतनाही मैं जनता हूं. इसस राजा को विज्ञात होगया कि यह ब्राह्मण ब्रह्मज्ञान में अपूर्ण है, और फिर कहा कि इतने करके ब्रह्म का ज्ञान नहीं होसकता है, इस पर बालाकी को मालूम होगया कि राजा को ब्रह्म का पूरा ज्ञान है, ऐसा जान कर राजा से कहा कि हे भगवन् ! मैं आपके निकट शिष्यभाव से प्राप्त हूं ॥ १४ ॥

मन्त्रः १५

स होवाचाजातशत्रुः प्रतिलोमं चैतद्यद्ब्राह्मणः क्षत्रियमुपेयाद् ब्रह्म मे वक्ष्यतीति व्येव त्वा ज्ञपयिष्यामीति तं पाणावादायोत्तस्थौ तौ ह पुरुषꣳ सुप्तमाजग्मतुस्तमेतैर्नामभिरामन्त्रयाञ्चक्रे बृहन्पाण्डरवासः सोम राजन्निति स नोत्तस्थौ तं पाणिनाऽऽपेषं बोधयाञ्चकार स होत्तस्थौ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, अजातशत्रुः, प्रतिलोमम्, च, एतत्, यत्, ब्राह्मणः, क्षत्रियम्, उपेयात्, ब्रह्म, मे, वक्ष्यति, इति, वि, एव, त्वा, ज्ञपयिष्यामि, इति, तम्, पाणौ, आदाय, उत्तस्थौ, तौ, ह, पुरुषम्, सुप्तम्, आजग्मतुः, तम्, एतैः, नामभिः, आमन्त्रयाञ्चक्रे, बृहन्, पाण्डरवासः, सोम, राजन्, इति, सः, न, उत्तस्थौ, तम्, पाणिना, आपेषम्, बोधयाञ्चकार, सः, ह, उत्तस्थौ ॥

अन्वयः	पदार्थाः
ह=तब	
सः=वह	
अजातशत्रुः=अजातशत्रु राजा	
उवाच=बोला कि	
यत्=जो	
ब्राह्मणः=ब्राह्मण	
क्षत्रियम्=क्षत्रिय के पास	
उपेयात्=निकट जाय	
इति=इस आशासे कि	
मे=मेरेलिये	
+ सः=वह	
ह=अवश्य	

ब्रह्म=ब्रह्म को
वक्ष्यति=उपदेश करेगा तो
एतत्=यह
प्रतिलोमम्=शास्त्रविरुद्ध
+ अस्ति=है
परन्तु=परन्तु
अहम्=मैं
एव=अवश्य
त्वा=तुमको
विज्ञपयिष्यामि=ब्रह्म के विषे कहूंगा
इति=इतना
+ उक्त्वा=कह कर
तम्=उसके
पाणौ=हाथ को
आदाय=पकड़ कर
उत्तस्थौ=उठखड़ा हुआ
+ च=और
तौ=वे दोनों
सुप्तम्=किसी सोये हुये
पुरुषम्=पुरुष के पास
आजग्मतुः=आये
+ च=और
तम्=उस सोये हुये पुरुषको
एतैः=इन
नामभिः=नामों से
आमन्त्रयाञ्चक्रे=जगाने के लिये पुकारने लगे
बृहन्=हे श्रेष्ठपुरुष,
पाण्डरवासः=हे श्वेतवस्त्र के धारण करने वाले,
सोम=हे सोम !
राजन्=हे राजन् !
+ उत्तिष्ठ=जागो
+ परन्तु=परन्तु
सः=वह सोया हुआ पुरुष
न=नहीं
उत्तस्थौ=उठा
ह=तब
पाणिना=हाथ से
आपेषम्=दबा दबा कर
तम्=उसको
बोधयाञ्चकार=जगाया
+ तदा=तब
सः=वह
उत्तस्थौ=जगउठा

भावार्थ ।

इस पर हे सौम्य ! राजा अजातशत्रु ने जवाब दिया कि हे बालाकी ! यदि ब्राह्मण क्षत्रिय के पास इस आशा से जाय कि वह क्षत्रिय मुझको ब्रह्म का उपदेश करेगा तो उसका ऐसा करना शास्त्रविरुद्ध है, परन्तु मैं तुमको अवश्य ब्रह्म विषे कहूंगा, इतना कह कर उसका हाथ पकड़ कर उठ खड़ा हुआ, और दोनों एक सोये हुये पुरुष के पास आये, और उसके जगाने के लिये ऐसे पुकारने लगे कि, हे श्रेष्ठपुरुष !

हे श्वेतवस्त्र धारण करनेवाले ! हे चन्द्रमुख ! हे प्रकाशवाले ! जागो, जागो, उठो, परन्तु जब वह नहीं जागा, तब हाथ से उसके शरीर को दबा दबाकर उसको जगाया, तब वह उठ बैठा ॥ १५ ॥

मन्त्रः १६

स होवाचाजातशत्रुर्यत्रैष एतत्सुप्तोऽभूद्य एष विज्ञानमयः पुरुषः क्वैष तदाऽभूत्कुत एतदागादिति तदु ह न मेने गार्ग्यः ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, अजातशत्रुः, यत्र, एषः, एतत्, सुप्तः, अभूत्, यः, एषः, विज्ञानमयः, पुरुषः, क्व, एषः, तदा, अभूत, कुतः, एतत्, आगात्, इति, तत्, उ, ह, न, मेने, गार्ग्यः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
+ अथ=तिस के पीछे		विज्ञानमयः=विज्ञानमय	
सः=वह		पुरुषः=पुरुष है	
ह=प्रसिद्ध		एषः=यह	
अजातशत्रुः=अजातशत्रु राजा		तदा=सोते वक्त	
उवाच=बोला कि		क्व=कहां	
+ बालाके=हे बालाकी !		अभूत्=था	
यत्र=जिस काल		+ च=और	
ह=निस्संदेह		कुतः=कहां से	
एषः=यह जीवात्मा		एतत्=उस काल में यानी जागने पर	
एतत्=इस शरीर में		आगात् इति=आगया ऐसे	
सुप्तः=सोया हुआ		तत्=इन दोनों प्रश्नों को	
अभूत्=था		उ ह=अच्छी तरह से	
+ च=और		गार्ग्यः=बालाकी	
यः=जो		न=नहीं	
एषः=यह		मेने=समझा	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! वह प्रसिद्ध राजा अजातशत्रु बोला कि हे बालाकी ! जिस काल में यह जीवात्मा सोया हुआ था, उस अवस्था में यह

विज्ञानमय पुरुष कहां था, और जब शरीर के दबाने से जगाया गया तो यह कहां से आगया, यानी इस पड़े हुये शरीर में कौन सोने और जागनेहारा है, और कौन जगाया गया है, और वह कहां से आया है, यह मेरा प्रश्न है, हे अनूचान, ब्राह्मण ! क्या तुम इन सबको जानते हो ? यह सुन कर वह ब्राह्मण बोला कि मैं आपके प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकता हूं, क्योंकि मैं इस विषय को नहीं जानता हूं ॥ १६ ॥

मन्त्रः १७

स होवाचाजातशत्रुर्यत्रैष एतत्सुप्तोऽभूद्य एष विज्ञानमयः पुरुषस्तदेषां प्राणानां विज्ञानेन विज्ञानमादाय य एषोऽन्तर्हृदय आकाशस्तस्मिञ्छेते तानि यदा गृह्णात्यथ हैतत्पुरुषः स्वपिति नाम तद्गृहीत एव प्राणो भवति गृहीता वाग् गृहीतं चक्षुर्गृहीतꣳ श्रोत्रं गृहीतं मनः ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, अजातशत्रुः, यत्र, एषः, एतत्, सुप्तः, अभूत्, यः, एषः, विज्ञानमयः, पुरुषः, तत्, एषाम्, प्राणानाम्, विज्ञानेन, विज्ञानम्, आदाय, यः, एषः, अन्तर्हृदये, आकाशः, तस्मिन्, शेते, तानि, यदा, गृह्णाति, अथ, ह, एतत्, पुरुषः, स्वपिति, नाम, तत्, गृहीतः, एव, प्राणः, भवति, गृहीता, वाग्, गृहीतम्, चक्षुः, गृहीतम्, श्रोत्रम्, गृहीतम्, मनः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
सः=वह		एतत्=इस शरीर विषे	
ह=प्रसिद्ध		सुप्तः=सोया हुआ	
अजातशत्रुः=अजातशत्रु राजा		अभूत्=था	
उवाच=बोला कि		+ तत्=उस अवस्था में	
यत्र=जिस काल में		यः=जो	
एषः=यह जीवात्मा		एषः=यह	

विज्ञानमयः पुरुषः = विज्ञानमय पुरुष कर्मों का करनेहारा है
+ सः=वह
विज्ञानेन=अपने ज्ञान करके
एषाम्=इन
प्राणानाम्=वागादि इन्द्रियों के
विज्ञानम्=विषय ग्रहण सामर्थ्य को
आदाय=ले कर
तस्मिन्=उस विषे
शेते=सोता है
यः=जो
एषः=यह
अन्तर्हृदये=हृदय के भीतर
आकाशः=आकाश है
+ च=और
यदा=जब
+ सः=वह पुरुष
तानि=उन वागादि इन्द्रियों को
गृह्णाति=अपने में लय कर लेता है
अथ=तब
ह=वह प्रसिद्ध
एतत्पुरुषः=यह पुरुष
स्वपिति="स्वपिति" के
नाम=नाम से
+ विख्याता भवति = कहा जाता है
+ च=और
तत्=तवहीं
प्राणः=घ्राण इन्द्रिय
गृहीतः एव=स्वकार्य में असमर्थ
भवति=होती है
+ एवम्=इसी प्रकार
वाक्=वाणी इन्द्रिय
गृहीता=स्वकार्य में असमर्थ
+ भवति=होजाती है
चक्षुः=नेत्र इन्द्रिय
गृहीतम्=स्वकार्य में असमर्थ
+ भवति=होजाता है
श्रोत्रम्=श्रोत्र इन्द्रिय
गृहीतम् + भवति = स्वकार्य में बद्ध होजाती है
मनः=मन
गृहीतम् + भवति = स्वकार्य में बद्ध होजाता है

भावार्थ ।

तब वह प्रसिद्ध अजातशत्रु राजा बोलता भया कि हे ब्राह्मण ! जिस काल में यह जीवात्मा इस शरीर विषे सोया हुआ था, उस अवस्था में यह विज्ञानमय जीवात्मा कर्मों का करने हारा अपनी ज्ञान-शक्ति करके इन वागादि इन्द्रियों के स्व, स्वविषय ग्रहण सामर्थ्य को लेकर उस देश में जाकर जो हृदय के भीतर स्थित है सोगया था. हे

सौम्य ! जब यह पुरुष वागादि इन्द्रियों को अपने में लय कर लेता है, तब लोग ऐसा कहते हैं कि यह पुरुष सोता है, उस समय इस पुरुष की घ्राणेन्द्रिय अपने कार्य के करने में असमर्थ होजाती है, नेत्रेन्द्रिय अपने कार्य के करने में असमर्थ होजाती है, श्रोत्र अपने कार्य के करने में असमर्थ होजाता है, और मन अपने कार्य के करने में असमर्थ होजाता है ॥ १७ ॥

मन्त्रः १८

स यत्रैतत्स्वप्न्यया चरति ते हास्य लोकास्तदुतेव महाराजो भवत्युतेव महाब्राह्मण उतेवोच्चावचं निगच्छति स यथा महाराजो जानपदान् गृहीत्वा स्वे जनपदे यथाकामं परिवर्त्ततैवमेवैष एतत्प्राणान् गृहीत्वा स्वे शरीरे यथाकामं परिवर्तते ॥

पदच्छेदः ।

सः, यत्र, एतत्, स्वप्न्यया, चरति, ते, ह, अस्य, लोकाः, तत्, उत, इव, महाराजः, भवति, उत, इव, महाब्राह्मणः, उत, इव, उच्चावचम्, निगच्छति, सः, यथा, महाराजः, जानपदान्, गृहीत्वा, स्वे, जनपदे, यथाकामम्, परिवर्त्तेत, एवम्, एव, एषः, एतत्, प्राणान्, गृहीत्वा, स्वे, शरीरे, यथाकामम्, परिवर्तते ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
यत्र=जिस काल में		लोकाः=किये हुये सब कर्म फल	
सः=वह		+ उत्तिष्ठन्ते=उदय हो आते हैं	
स्वप्न्यया=स्वप्नद्वारा		तत्=उस अवस्था में	
एतत्=इस शरीर में		उत=कभी	
ह=अवश्य		सः=वह	
चरति=स्वप्न के व्यापारों को करता है		महाराजः=महाराजा के	
+ तदा=उस समय में		इव=समान	
अस्य=इस पुरुष के		एतत्=इस शरीर में	
ते=वे		भवति=विचरता है	

उत=और कभी
महाब्राह्मणः=महाब्राह्मण की
इव=भांति
+ भवति=विचरता है
उत=और कभी
+ सः=वह सुसगत
+ पुरुषः=पुरुष
+ महाब्राह्मणः=महाब्राह्मण की
इव=भांति
उच्चावचम्=ऊंच नीच योनिको
निगच्छति=प्राप्त होता है
+ च=और
यथा=जैसे
महाराजः=कोई महाराजा
जानपदान्=जीते हुये देशों के पदार्थों को
गृहीत्वा=ले कर
स्वे=अपने
जनपदे=देश में
यथाकामम्=अपनी इच्छानुसार
परिवर्त्तेत=घूमता फिरता है
एवम् एव=इसी प्रकार
एषः=यह पुरुष भी
प्राणान्=वागादिक इन्द्रियों को
गृहीत्वा=ले कर
स्वे=अपने
शरीरे=शरीर में
यथाकामम्=कामना के अनुसार
परिवर्तते=भ्रमण करता है

भावार्थ।

हे सौम्य ! जिस काल में यह जीवात्मा इस शरीर में स्वप्नद्वारा स्वप्न के व्यापार को करता है, तब उसके पूर्वके किये हुये कर्म के फल उदय हो आते हैं, और तभी यह जीवात्मा कभी महाराजा के समान वर्तता है, और कभी महाब्राह्मण के समान विचरता है, और कभी ऊंच नीच योनिको प्राप्त होता है. यानी कभी राजा होता है, और कभी चाण्डाल बनता है, कभी हँसता है, कभी रोता है, कभी मारता है, और कभी माराजाता है, और जैसे कोई महाराजा जीते हुये देशों के पदार्थों को लेकर अपने देश में अपनी इच्छानुसार घूमता फिरता है, इसी प्रकार यह पुरुष यानी जीवात्मा भी इस शरीर में जो उसका देश है, अपनी कामनानुसार अपनी इन्द्रियों के साथ भ्रमण करता है ॥ १८ ॥

मन्त्रः १९

अथ यदा सुषुप्तो भवति यदा न कस्यचन वेद हिता नाम

नाड्यो द्वासप्ततिः सहस्राणि हृदयात्पुरीततमभिप्रतितिष्ठन्ते ताभिः प्रत्यवसृप्य पुरीतति शेते स यथा कुमारो वा महाराजो वा महाब्राह्मणो वाऽतिघ्नीमानन्दस्य गत्वा शयीतैवमेवैष एतच्छेते ॥

पदच्छेदः ।

अथ, यदा, सुषुप्तः, भवति, यदा, न, कस्यचन, वेद, हिताः, नाम, नाड्यः, द्वासप्ततिः, सहस्राणि, हृदयात्, पुरीततम्, अभिप्रतितिष्ठन्ते, ताभिः, प्रत्यवसृप्य, पुरीतति, शेते, सः, यथा, कुमारः, वा, महाराजः, वा, महाब्राह्मणः, वा, अतिघ्नीम्, आनन्दस्य, गत्वा, शयीत, एवम्, एव, एषः, एतत्, शेते ॥

अन्वयः	पदार्थाः
अथ	तदनन्तर
यदा	जब
पुरुषः	पुरुष
सुषुप्तः	सुषुप्तिगत
भवति	होता है
+ च	और
यदा	जब
कस्यचन	किसी पदार्थ को
न	नहीं
वेद	जानता है
तदा	उस अवस्था में
हिताः नाम	हिता नामक
+ ये	जो
द्वासप्ततिः	बहत्तर
सहस्राणि	हज़ार
नाड्यः	नाड़ियां
हृदयात्	हृदय से
+ निस्तीर्य	निकल कर
पुरीततम्	शरीर भर में
अभिप्रतितिष्ठन्ते	व्याप्त हैं
+ सः	वह
ताभिः	उन के द्वारा
+ बुद्धेः	बुद्धि के साथ
प्रत्यवसृप्य	लौट कर
पुरीतति	सुषुम्ना नाड़ी में
शेते	सोता है यानी आनन्द भोगता है
+ अत्र	इस विषय में
+ दृष्टान्तः	दृष्टान्त है कि
यथा	जैसे
सः	कोई
कुमारः	बालक
वा	अथवा
महाराजः	महाराजा
वा	अथवा
महाब्राह्मणः	दिव्य ब्राह्मण
आनन्दस्य	आनन्द की

अतिघ्नीम्=सीमा को	एषः=यह जीवात्मा
+ गत्वा=पा कर	एतत्=इस शरीर में
शयीत=सोता है	शेते=आनन्दपूर्वक सोता है
एवम् एव=इसी प्रकार	

भावार्थ।

हे सौम्य! फिर जब यह पुरुष सुषुप्ति में रहता है, और जब किसी पदार्थ को नहीं जानता है, तब वह पुरुष सोया हुआ है ऐसा कहा जाता है, उस अवस्था में जो ये बहत्तर हजार नाड़ियां हृदय से निकलकर शरीर भरमें व्याप्त हैं उनके साथ वह घूम फिर कर बुद्धि में सिमट कर शरीर में, अथवा सुषुम्ना नाड़ी में आनन्दभोक्ता हो जाता है, हे सौम्य! इस विषय में लोग ऐसा दृष्टान्त देते हैं कि वह आत्मा ऐसा आनन्दपूर्वक सोता है जैसे कोई बालक अथवा महाराजा अथवा कोई दिव्य ब्राह्मण आनन्द में पड़ा हुआ सोता है ॥ १९ ॥

मन्त्रः २०

स यथोर्णनाभिस्तन्तुनोच्चरेद्यथाऽग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्त्येवमेवास्मादात्मनः सर्वे प्राणाः सर्वे लोकाः सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्ति तस्योपनिषत्सत्यस्य सत्यमिति प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यम् ॥

इति प्रथमं ब्राह्मणम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः।

सः, यथा, ऊर्णनाभिः, तन्तुना, उच्चरेत्, यथा, अग्नेः, क्षुद्राः, विस्फुलिङ्गाः, व्युच्चरन्ति, एवम्, एव, अस्मात्, आत्मनः, सर्वे, प्राणाः, सर्वे, लोकाः, सर्वे, देवाः, सर्वाणि, भूतानि, व्युच्चरन्ति, तस्य, उपनिषत्, सत्यस्य, सत्यम्, इति, प्राणाः, वै, सत्यम्, तेषाम्, एषः, सत्यम् ॥

अन्वयः पदार्थाः	अन्वयः पदार्थाः
यथा=जैसे	तन्तुना=अपने तन्तु के आश्रय
सः=वह प्रसिद्ध	उच्चरेत्=विचरती है
ऊर्णनाभिः=मकड़ी	+ च=और

यथा=जैसे
अग्नेः=अग्नि से
क्षुद्राः=छोटी
विस्फुलिङ्गाः=चिनगारियां
व्युच्चरन्ति=निकलती हैं
एवम् एव=इसी प्रकार निश्चय करके
अस्मात्=इस
आत्मनः=आत्मा से
सर्वे=सब
प्राणाः=वागादि इन्द्रियां
सर्वे=सब
लोकाः=भूरादिलोक
सर्वे=सब
देवाः=सूर्यादि देवता
सर्वाणि=सब
भूतानि=आकाशादि महाभूत
व्युच्चरन्ति=निकलते हैं
तस्य=उसका
उपनिषद्=ज्ञानही
सत्यस्य=सत्य का
सत्यम्=सत्य है
इति=इसी प्रकार
प्राणाः=इन्द्रियां
वै=निश्चय करके
सत्यम्=सत्य हैं यानी नाशवान् हैं
तेषाम्=उन सब में
एषः=यह आत्मा
सत्यम्=सत्य है यानी अविनाशी है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जैसे ऊर्णनाभि नामक कीट अपने मेंसे उत्पन्न किये हुये तन्तुओं के आश्रय विचरता है, उसी प्रकार ब्रह्म भी अपने से किये हुये जगत् के आश्रय विचरता हुआ प्रतीत होता है, और जैसे अग्नि से छोटी छोटी चिनगारियां इधर उधर उड़ती हुई दिखाई देती हैं, उसी प्रकार इस जीवात्मा से सब वागादि इन्द्रियां, सब भूरादि लोक, सब सूर्यादि देवता, आकाशादि पञ्चमहाभूत निकलते हैं, और दिखाई देते हैं, हे सौम्य ! उसका ज्ञानही सत्य का सत्य है, और ऐसेही वागादि इन्द्रिया भी उसके आश्रय होने के कारण सत्य हैं नहीं तो नाशवान् हैं और वह इनमें अविनाशी है ॥ २० ॥

इति प्रथमं ब्राह्मणम् ॥ १ ॥

अथ द्वितीयं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

यो ह वै शिशुꣳ साधानꣳ सप्रत्याधानꣳ सस्थूणꣳ सदामं वेद सप्त ह द्विषतो भ्रातृव्यानवरुणद्धि अयं वाव शिशुर्योऽयं मध्यमः प्राणस्तस्येदमेवाऽऽधानमिदं प्रत्याधानं प्राणः स्थूणाऽन्नं दाम ॥

पदच्छेदः ।

यः, ह, वै, शिशुम्, साधानम्, सप्रत्याधानम्, सस्थूणम्, सदामम्, वेद, सप्त, ह, द्विषतः, भ्रातृव्यान्, अवरुणद्धि, अयम्, वाव, शिशुः, यः, अयम्, मध्यमः, प्राणः, तस्य, इदम्, एव, आधानम्, इदम्, प्रत्याधानम्, प्राणः, स्थूणा, अन्नम्, दाम ॥

अन्वयः	पदार्थाः
यः	जो
ह	निश्चय करके
साधानम्	आधान सहित
सप्रत्याधानम्	प्रत्याधान सहित
सस्थूणम्	स्थाणुसहित
सदामम्	दामसहित
शिशुम्	बछवे को
वेद	जानता है
+ सः	वह
ह वै	अवश्य
सप्त	सात
द्विषतः	द्वेष करनेहारे
भ्रातृव्यान्	शत्रुओं को
अवरुणद्धि	वशमें करलेता है
+ तेषु	तिन शत्रुओं के मध्य में

अन्वयः	पदार्थाः
यः	जो
अयम्	यह
मध्यमः	बीच में रहनेवाला
प्राणः	प्राण है
अयम्	यही
वाव	निस्संदेह
शिशुः	बछड़ा है
तस्य	उसका
आधानम्	अधिष्ठान यानी उसके रहने की जगह
इदम्	यह
एव	ही
+ शरीरम्	स्थूल शरीर है
इदम्	यह
+ शिरः	शिर
+ तस्य	उसके

प्रत्याधानम्= { रहने की अनेक जगह यानी शिर में आंख, कान, नाक, मुख जो अनेक जगह हैं उनमें वहरहताहै }
\+ तस्य=उसका
स्थूणा=खूंटा

प्राणः=अन्न से पैदा हुआ बल है
\+ तस्य=उसकी
दाम=रस्सी
अन्नम्=अन्न यानी भोज्य पदार्थ है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! इस मन्त्र में मुख्य प्राण को गाय के बछड़े के साथ उपमा दिया है, जैसे बछड़ा खूंटे से बँधा हुआ घासादि खाकर बली हो जाता है, वैसेही विविध प्रकार के भोजनादि करने से यह प्राण भी बली होजाता है, हे सौम्य ! जिस में कोई वस्तु रहे, उसको आधान कहते हैं, प्राण के रहने की जगह यह स्थूल शरीर है, इस लिये इस स्थूल शरीर कोही आधान कहा है, क्योंकि इस शरीर में ही प्राण रहता है, एक स्थान के अन्दर और कई जगह रहने का हो तो उसे प्रत्याधान कहते हैं. यह शिर प्रत्याधान है, क्योंकि इसमें प्राण के रहने की जगह सात हैं, यानी दो आँख, दो कान, दो नासिका, एक रसना है, यह अन्नोत्पन्न बल ही प्राणरूपी बछड़े का खूंटा है, और अन्न इसका भोज्य है जैसे खूंटे से बँधा हुआ बछड़ा घास फूसादि जो उसका भोग है खा कर बली होता है, वैसेही यह प्राण शरीर से बँधा हुआ अनेक प्रकार के भोजन करके बली बनता है ॥ १ ॥

मन्त्रः २

तमेताः सप्ताक्षितय उपतिष्ठन्ते तद्या इमा अक्षन्लोहिन्यो राजयस्ताभिरेन छंरुद्रोऽन्वायत्तोऽथ या अक्षन्नापस्ताभिः पर्जन्यो या कनीनिका तयाऽऽदित्यो यत्कृष्णं तेनाग्निर्यच्छुक्लं तेनेन्द्रोऽधरयैनं वर्तन्या पृथिव्यन्वायत्ता द्यौरुत्तरया नास्यान्नं क्षीयते य एवं वेद ॥

पदच्छेदः ।

तम्, एताः, सप्त, अक्षितयः, उपतिष्ठन्ते, तत्, याः, इमाः, अक्षन्,

लोहिन्यः, राजयः, ताभिः, एनम्, रुद्रः, अन्वायत्तः, अथ, याः, अक्षन्, आपः, ताभिः, पर्जन्यः, या, कनीनिका, तया, आदित्यः, यत्, कृष्णम्, तेन, अग्निः, यत्, शुक्लम्, तेन, इन्द्रः, अधरया, एनम्, वर्तन्या, पृथ्वी, अन्वायत्ता, द्यौः, उत्तरया, न, अस्य, अन्नम्, क्षीयते, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थाः
तम्=	इस लिङ्गात्मा प्राण को
एताः=	ये
सप्त=	सात
अक्षितयः=	अजय देवता
उपतिष्ठन्ते=	पूजते हैं
तत्=	तिस विषे
याः=	जो
इमाः=	ये
लोहिन्यः=	लाल
राजयः=	रेखायें
अक्षन्=	नेत्र विषे हैं
ताभिः=	उन करके
एनम्=	इस मध्यम प्राण के अन्दर
रुद्रः=	रुद्रदेवता
अन्वायत्तः=	उपस्थित है
अथ=	और
याः=	जो
आपः=	जल
अक्षन्=	नेत्र विषे हैं
ताभिः=	उन करके
पर्जन्यः=	पर्जन्य देवता
+ अन्वायत्तः=	उपस्थित है
याः=	जो
कनीनिका=	पुतली है
तया=	उस करके
आदित्यः=	सूर्य देवता
+ अक्षन्=	नेत्र विषे
+ अन्वायत्तः=	उपस्थित है
यत्=	जो
+ अक्षन्=	नेत्र विषे
कृष्णम्=	कालापन है
तेन=	उस करके
अग्निः=	अग्निदेवता
+ उपतिष्ठते=	उपस्थित है
यत्=	जो
+ चक्षुषि=	नेत्र विषे
शुक्लम्=	श्वेतता है
तेन=	उस करके
इन्द्रः=	इन्द्र देवता
+ उपतिष्ठते=	उपस्थित है
पृथिवी=	पृथिवी
अधरया=	नीचेवाली
वर्तन्या=	पलकों करके
एनम्=	इस मध्यम प्राण के
अन्वायत्तः=	अनुगत है
+ च=	और
द्यौः=	आकाश
उत्तरया=	ऊपरवाली
+ वर्तन्या=	पलकों करके

+ अन्वायत्तः=अनुगत है	अस्य=इसका
यः=जो उपासक	अन्नम्=अन्न
एवम्=इस प्रकार	न=कभी नहीं
वेद=जानता है	क्षीयते=क्षीण होता है

भावार्थ।

हे सौम्य ! इस लिङ्गात्मक प्राण को जो सात अक्षय देवता इसके निकट रह कर पूजते हैं-वे ये हैं, जो नेत्र विषे लाल रेखाओं द्वारा इस मध्यम प्राण को पूजता है वह रुद्र है, जो जल करके नेत्र में रहने वाले प्राण को पूजता है वह पर्जन्यदेवता है, जो पुतली में मध्यम प्राण को पूजता है वह सूर्यदेवता है, जो नेत्र विषे कालापन है उसमें रहने वाले प्राण को जो पूजता है वह अग्निदेवता है, जो नेत्र विषे श्वेतता है उसके अन्दर जो प्राण रहता है उसको जो पूजता है वह इन्द्रदेवता है, पृथिवी अभिमानी देवता नेत्र के नीचे की पलकों के अन्दर रह कर प्राण की पूजा करता है, और द्यौ अभिमानी देवता ऊपर के पलकों के अन्दर रह कर प्राण की पूजा करता है, इस प्रकार जो उपासक प्राण को जानता है उसका अन्न कभी क्षीण नहीं होता है ॥ २ ॥

मन्त्रः ३

तदेष श्लोको भवति अर्वाग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपं तस्याऽऽसत ऋषयः सप्त तीरे वागष्टमी ब्रह्मणा संविदानेति अर्वाग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्न इतीदं तच्छिर एष ह्यर्वाग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपमिति प्राणा वै यशो विश्वरूपं प्राणानेतदाह तस्याऽऽसत ऋषयः सप्त तीर इति प्राणा वा ऋषयः प्राणानेतदाह वागष्टमी ब्रह्मणा संविदानेति वाग्ध्यष्टमी ब्रह्मणा संवित्ते ॥

पदच्छेदः।

तत्, एषः, श्लोकः, भवति, अर्वाग्बिलः, चमसः, ऊर्ध्वबुध्नः, तस्मिन्, यशः, निहितम्, विश्वरूपम्, तस्य, आसते, ऋषयः, सप्त, तीरे, वाग्,

अष्टमी, ब्रह्मणा, संविदाना, इति, अर्वाग्बिलः, चमसः, ऊर्ध्वबुध्नः, इति, इदम्, तत्, शिरः, एषः, हि, अर्वाग्बिलः, चमसः, ऊर्ध्वबुध्नः, तस्मिन्, यशः, निहितम्, विश्वरूपम्, इति, प्राणाः, वै, यशः, विश्वरूपम्, प्राणान्, एतत्, आह, तस्य, आसते, ऋषयः, सप्त, तीरे, इति, प्राणाः, वै, ऋषयः, प्राणान्, एतत्, आह, वाग्, अष्टमी, ब्रह्मणा, संविदाना, इति, वाग्, हि, अष्टमी, ब्रह्मणा, संवित्ते ॥

अन्वयः	पदार्थाः
तत्	पिछले मन्त्र में जो कहा गया है उस विषे
एषः	यह
श्लोकः	मन्त्र
भवति	प्रमाण है
अर्वाग्बिलः	नीचे है मुख जिसका
+ च	और
ऊर्ध्वबुध्नः	ऊपर है पेंदा जिसका
चमसः	ऐसा यज्ञ का कटोरा
+ शिरः	मनुष्य का शिर है
तस्मिन्	उसमें
विश्वरूपम् यशः	नाना प्रकार का विभववाला प्राण
निहितम्	स्थित है
तस्य	उसके
तीरे	किनारे पर
सप्त	सात *
ऋषयः	प्राणयुक्त इन्द्रियां हैं
+ च	और
ब्रह्मणा	वेद से
संविदाना	संवाद करनेवाली
अष्टमी	आठवीं
वाक्	वाणी

अन्वयः	पदार्थाः
आसते	स्थित हैं
अर्वाग्बिलः	नीचे है मुखरूप बिल जिसमें
+ च	और
ऊर्ध्वबुध्नः	ऊपर है पेंदा जिसमें
इति	ऐसा
तत्	वह
इदम्	यह
चमसः	चमसाकार
शिरः	मनुष्य का शिर है
हि	क्योंकि
एषः	यह मनुष्य का शिर
अर्वाग्बिलः	नीचे छेदवाला
च	और
ऊर्ध्वबुध्नः	ऊपर पेंदावाला
चमसः	यज्ञ का कटोरा है
तस्मिन्	तिसी शिर में
विश्वरूपम्	नाना प्रकार का
यशः	विभववाला प्राण
निहितम्	स्थित है
इति	वही
विश्वरूपम्	सर्वशक्तिमान्
यशः	विभववाला

वै=निश्चय करके	मन्त्रः=मन्त्र ने
प्राणः=प्राण है	एतत्=इसको
+ इति=इस लिये	प्राणान्=प्राण
प्राणान्=प्राण को ही	आह=कहा है
एतत्=यह विश्वरूप यश	+ च=और
आह=कहते हैं	ब्रह्मणा=वेद से
तस्य=तिसके	संविदाना=संवाद करनेवाली
तीरे=समीप	अष्टमी=आठवीं
सप्त=सात	वाग्=वाणी है
ऋषयः=इन्द्रियां	इति=ऐसा
आसते=रहती हैं	+ मन्त्रः=मन्त्र ने
इति=इस प्रकार	+ उक्तम्=कहा है
ऋषयः=सात इन्द्रियां यानी दो नेत्र, दो श्रोत्र, दो नासिका और एक जिह्वा	हि=क्योंकि
	अष्टमी=आठवीं
	वाक्=वाणी
प्राणाः वै=प्राणही हैं	ब्रह्मणा=वेद के साथ
+ इति=इसी कारण	संवित्ते=सम्बन्ध करती है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जो पिछले मन्त्र में कहा गया है कि जीवात्मा के सात शत्रु हैं, उन्हीं का व्याख्यान इस मन्त्र में कहा जाता है सुनो, जिसका मुख नीचे है और पेंदा ऊपर है, ऐसा यज्ञ का कटोरावत् जो मनुष्य का शिर है, उसमें नाना प्रकार के चमत्कारवाले प्राण स्थित हैं, और उसके किनारे पर सात प्राणयुक्त इन्द्रियां, यानी दो नेत्र, दो कर्ण, दो नासिका, और एक जिह्वा (विषयों की भोगनेवाली और इसी कारण जीवके शत्रु) स्थित हैं, और हे सौम्य ! एक प्राणयुक्त वेद से संवाद करनेवाली आठवीं वाणी भी स्थित है ॥ ३ ॥

मन्त्रः ४

इमावेव गोतमभरद्वाजावयमेव गोतमोऽयं भरद्वाज इमावेव विश्वामित्रजमदग्नी अयमेव विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरिमावेव वसिष्ठ-

कश्यपावयमेव वसिष्ठोऽयं कश्यपो वागेवात्रिर्वाचा ह्यन्नमद्यतेऽत्तिर्ह वै नामैतद्यदत्रिरिति सर्वस्यात्ता भवति सर्वमस्यान्नं भवति य एवं वेद ॥

इति द्वितीयं ब्राह्मणम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

इमौ, एव, गोतमभरद्वाजौ, अयम्, एव, गोतमः, अयम्, भरद्वाजः, इमौ, एव, विश्वामित्रजमदग्नी, अयम्, एव, विश्वामित्रः, अयम्, जमदग्निः, इमौ, एव, वसिष्ठकश्यपौ, अयम्, एव, वसिष्ठः, अयम्, कश्यपः, वाक्, एव, अत्रिः, वाचा, हि, अन्नम्, अद्यते, अत्तिः, ह, वै, नाम, एतत्, यत्, अत्रिः, इति, सर्वस्य, अत्ता, भवति, सर्वम्, अस्य, अन्नम्, भवति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ गुरुः	गुरु
+ शिष्यम्	शिष्य से
+ आह	कहता है
इमौ एव	ये दोनों कर्ण निश्चय करके
गोतमभरद्वाजौ	गोतम और भरद्वाज हैं यानी
अयम्	यह दहिना कर्ण
एव	निस्संदेह
गोतमः	गोतम है
अयम्	यह बायां कर्ण
भरद्वाजः	भरद्वाज है
इमौ	ये दोनों नेत्र
एव	निश्चय करके
विश्वामित्रजमदग्नी	विश्वामित्र और जमदग्नि हैं यानी
अयम् एव	यह दहिना नेत्र निश्चय करके
विश्वामित्रः	विश्वामित्र है

अन्वयः	पदार्थाः
अयम्	यह बायां नेत्र
जमदग्निः	जमदग्नि है
इमौ	ये दोनों नासिका
एव	निस्संदेह
वसिष्ठकश्यपौ	वसिष्ठ और कश्यप हैं यानी
अयम् एव	यह दहिनी नासिका निश्चय करके
वसिष्ठः	वसिष्ठ है
अयम्	यह बाईं नासिका
कश्यपः	कश्यप है
वाक्	वाणी
एव	निस्संदेह
अत्रिः	अत्रि है
हि	क्योंकि
वाचा	वाणी करके
अन्नम्	अन्न
अद्यते	खायाजाता है
+ तस्मात्	इस लिये

+ अस्य=इस वाणी का	वेद=जानता है
ह वै=प्रसिद्ध निश्चय करके	सः=वह
नाम=नाम	सर्वस्य=सब अन्न का
अत्तिः=अत्ति है	अत्ता=भोक्ता
यत्=जो	भवति=होता है
एतत्=यह है	+ च=और
+ तत्=वही	सर्वम्=सब
अत्रिः=अत्रि है	अन्नम्=अन्न
इति=ऐसा	अस्य=इसका
यः=जो	+ भोज्यम्=भोज्य
एवम्=कहे हुये प्रकार	भवति=होता है

भावार्थ ।

हे प्रियदर्शन ! गुरु शिष्य से कहता है कि ये दोनों कर्ण गौतम और भरद्वाजऋषि हैं, यानी यह दहिना कर्ण गौतम है, और यह बायां कर्ण भरद्वाज है, उसीतरह नेत्रों को अंगुली से बताकर कहता है कि ये दोनों विश्वामित्र और जमदग्नि हैं, यानी यह जो दहिना नेत्र है वह विश्वामित्र है, और जो यह बायां नेत्र है वह जमदग्नि है, फिर दोनों नासिका को अंगुली से दिखा कर कहता है, हे शिष्य ! ये वसिष्ठ और कश्यप हैं, यानी जो यह दहिनी नासिका है, वह वसिष्ठ है, और जो बाईं नासिका है, वह कश्यप है, हे शिष्य ! वाणी निस्सन्देह अत्रि है, क्योंकि वाणी करके ही अन्न खाया जाता है, इसीका प्रसिद्ध नाम अत्ति है, जो अत्ति है, वही अत्रि है, जो उपासक इस प्रकार जानता है वह सब अन्नों का भोक्ता होता है, और सब अन्न इसका भोज्य होता है ॥ ४ ॥

इति द्वितीयं ब्राह्मणम् ॥ २ ॥

अथ तृतीयं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्त्तं चैवामूर्त्तं च मर्त्यं चामृतं च स्थितं च यच्च सच्च त्यं * च ॥

पदच्छेदः ।

द्वे, वाव, ब्रह्मणः, रूपे, मूर्त्तम्, च, एव, अमूर्तम्, च, मर्त्यम्, च, अमृतम्, च, स्थितम्, च, यत्, च, सत्, च, त्यम्, च ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
ब्रह्मणः=ब्रह्म के		च=और	
वाव=निश्चय करके		अमृतम्=दूसरा अमरधर्मी	
द्वे=दो		स्थितम्=एक अचल	
रूपे=रूप हैं		च=और	
मूर्त्तम्=एक मूर्त्तिमान्		यत्=दूसरा चल	
च=और		सत्=एक व्यक्त	
अमूर्त्तम्=दूसरा अमूर्त्तिमान् है		च=और	
मर्त्यम्=एक मरणधर्मी		एव=निश्चय करके	
		त्यम्=दूसरा अव्यक्त	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! ब्रह्म के दो रूप हैं, एक मूर्त्तिमान्, दूसरा अमूर्त्तिमान्, एक मरणधर्मी, दूसरा अमरधर्मी, एक चल, दूसरा अचल, एक व्यक्त, दूसरा अव्यक्त, कार्यरूप करके जगत् के अथवा ब्रह्माण्ड के जितने रूप हैं सब मूर्त्तिमान् हैं, और इसीलिये नाशवान् भी हैं, परन्तु जो परमाणुरूप से सृष्टि के नाश होने पर स्थित रहते हैं, वे अमूर्त्तिमान् और मरणधर्मरहित कहे जाते हैं. यही परमाणु जब ईश्वर जगत् के रचने की इच्छा करता है एक दूसरे से मिलकर स्थूल गोलाकार लोकआदिक बन जाते हैं, और फिर उन लोकों में ईश्वर की प्रेरणा

---

* इस मन्त्र में चकार आठ हैं जिनमें से चार का अर्थ लिखा गया है और चार छोड़ दिये गये ।

करके चलनशक्ति होने लगती है, और तत्पश्चात् मूर्त्तिमान् वृक्ष, कीड़े, पतिंगे और जीवजन्तु उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १ ॥

मन्त्रः २

तदेतन्मूर्त्तं यदन्यद्वायोश्चान्तरिक्षाच्चैतन्मर्त्यमेतत्स्थितमेतत्सत्तस्यै-तस्य मूर्त्तस्यैतस्य मर्त्यस्यैतस्य स्थितस्यैतस्य सत एष रसो य एष तपति सतो ह्येष रसः ॥

पदच्छेदः ।

तत्, एतत्, मूर्त्तम्, यत्, अन्यत्, वायोः, च, अन्तरिक्षात्, च, एतत्, मर्त्यम्, एतत्, स्थितम्, एतत्, सत्, तस्य, एतस्य, मूर्त्तस्य, एतस्य, मर्त्यस्य, एतस्य, स्थितस्य, एतस्य, सतः, एषः, रसः, यः, एषः, तपति, सतः, हि, एषः, रसः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
यत्	जो
वायोः	वायु से
च	और
अन्तरिक्षात्	आकाश से
अन्यत्	भिन्न तेज जल पृथ्वी है
तत्	वही
एतत्	यह
मूर्त्तम्	मूर्त्तिमान् है
एतत्	यही
मर्त्यम्	मरणधर्मी है
एतत्	यही
स्थितम्	स्थायी है
एतत्	यही
सत्	व्यक्त है
तस्य	तिस
एतस्य	इस
मूर्त्तस्य	मूर्त्तिमान् का

अन्वयः	पदार्थाः
एतस्य	इस
मर्त्यस्य	मरणधर्मी का
एतस्य	इस
स्थितस्य	स्थायी का
एतस्य	इस
सतः	व्यक्त का
एषः	यह
च	ही
रसः	सार है
यः	जो
एषः	यह सूर्य
तपति	प्रकाशता है
हि	क्योंकि
एषः	यह
सतः	पृथ्वी जल और अग्नि का
रसः	सार है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! वायु और आकाश से पृथक् जो तेज, जल, पृथ्वी हैं वे मूर्त्तिमान्, मरणधर्मी, अस्थायी, व्यक्त यानी रूपवाले कहे जाते हैं, तिनका जो सार है वह यही सूर्य है, जो सामने प्रकाश करता है ॥ २ ॥

मन्त्रः ३

अथामूर्त्तं वायुश्चान्तरिक्षं चैतदमृतमेतद्यदेतत्त्यं तस्यैतस्यामूर्त्तस्यैतस्यामृतस्यैतस्य यत एतस्य त्यस्यैष रसो य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषस्त्यस्य ह्येष रस इत्यधिदैवतम् ॥

पदच्छेदः ।

अथ, अमूर्त्तम्, वायुः, च, अन्तरिक्षम्, च, एतत्, अमृतम्, एतत्, यत्, एतत्, त्यम्, तस्य, एतस्य, अमूर्त्तस्य, एतस्य, अमृतस्य, एतस्य, यतः, एतस्य, त्यस्य, एषः, रसः, यः, एषः, एतस्मिन्, मण्डले, पुरुषः, त्यस्य, हि, एषः, रसः, इति, अधिदैवतम् ॥

अन्वयः	पदार्थाः
अथ	अब
अमूर्त्तम्	ब्रह्म का अमूर्त्तिमान् रूप
+ उच्यते	कहाजाता है
एतत्	यह
वायुः	वायु
च	और
अन्तरिक्षम्	आकाश
अमृतम्	अमर धर्मवाले हैं
एतत्	यह दोनों
यत्	चलने फिरने वाले हैं
एतत्	यह दोनों
त्यत्	अव्यक्त हैं
तस्य	तिस
एतस्य	इस
अमूर्त्तस्य	अमूर्त्तिमान् का
एतस्य	इस
अमृतस्य	अमर धर्मवाले का
एतस्य	इस
यतः	चलने फिरने वाले का
एतस्य	इस
त्यस्य	अव्यक्त का
यः	जो
एषः	यह
रसः	सार है
+ सः	वही
एतस्मिन्	इस सूर्य
मण्डले	मण्डल में
एषः	यह
पुरुषः	पुरुष है
हि	क्योंकि

एषः=यह पुरुष	इति=यह
त्यस्य=अव्यक्तकाही	अधिदैवतम्=देवतासम्बन्धी
रसः=सार है	विज्ञान है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! अब इस मन्त्र में ब्रह्म के अमूर्त्तिमान् रूप को कहते हैं, पांच महाभूतों में से तीन यानी तेज, जल, पृथ्वी मूर्त्तिमान् हैं, जिनका व्याख्यान पहिले मन्त्र में होचुका है, और दो यानी वायु और आकाश अमूर्त्तिमान् हैं, यानी उनकी अपेक्षा ये दोनों अमरधर्मी हैं, चलने फिरने वाले हैं, और अव्यक्त हैं, यानी निराकार हैं, इन दोनों का सार सूर्यस्थ पुरुष है, यह देवतासम्बन्धी उपदेश है ॥ ३ ॥

मन्त्रः ४

अथाध्यात्ममिदमेव मूर्त्तं यदन्यत्प्राणाच्च यश्चायमन्तरात्मन्नाकाश एतन्मर्त्यमेतत्स्थितमेतत्सत्तस्यैतस्य मूर्त्तस्यैतस्य मर्त्यस्यैतस्य स्थितस्यैतस्य सत एष रसो यच्चक्षुः सतो ह्येष रसः ॥

पदच्छेदः ।

अथ, अध्यात्मम्, इदम्, एव, मूर्त्तम्, यत्, अन्यत्, प्राणात्, च, यः, च, अयम्, अन्तरात्मन्, आकाशः, एतत्, मर्त्यम्, एतत्, स्थितम्, एतत्, सत्, तस्य, एतस्य, मूर्त्तस्य, एतस्य, मर्त्यस्य, एतस्य, स्थितस्य, एतस्य, सतः, एषः, रसः, यत्, चक्षुः, सतः, हि, एषः, रसः ॥

अन्वयः पदार्थाः	अन्वयः पदार्थाः
अथ=अब	यः=जो
अध्यात्मम्=शरीरसम्बन्धी	अयम्=यह
+ ज्ञानम्=ज्ञान	अन्तरात्मन्=शरीर के अन्दर
+ उच्यते=कहा जाता है	आकाशः=आकाश है
यत्=जो	+ तस्मात्=उससे
प्राणात्=वायु से	एव=भी
अन्यत्=भिन्न है	+ यः=जो
च=और	+ भिन्नः=पृथक् है

इदम्=वही
+ एतत्=यह
मूर्त्तम्=मूर्त्तिमान् है
एतत्=वही
मर्त्यम्=मरणधर्मा है
एतत्=वही
स्थितम्=स्थायी है
एतत्=वही
सत्=व्यक्त है
तस्य=उसी
एतस्य=इस
मूर्त्तस्य=मूर्त्तिमान् का
एतस्य=इस
मर्त्यस्य=मरणधर्मा का
एतस्य=इस
स्थितस्य=स्थायी का
एतस्य=इस
सतः=व्यक्त का
यत्=जो
एषः=यह
रसः=सार है
+ तत्=वही
चक्षुः=नेत्र है
हि=क्योंकि
एषः=यह नेत्र
सतः=व्यक्त का यानी अग्नि, जल और पृथ्वी का
रसः=सार है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! अब शरीरसम्बन्धी उपदेश कहा जाता है, जो वायु और वायु के विकार से भिन्न है, जो शरीरस्थ आकाश और आकाश के विकार से भिन्न वस्तु है, यानी जो अग्नि, जल, पृथिवी हैं, वही मूर्त्तिमान् है, वही मरणधर्मी है, वही स्थायी है, वही व्यक्त है, तिसी मूर्त्तिमान् का, तिसी मरणधर्मी का, तिसी स्थायी का, और तिसी व्यक्त का जो सार है वही नेत्र है ॥ ४ ॥

मन्त्रः ५

अथामूर्त्तं प्राणश्च यश्चायमन्तरात्मन्नाकाश एतदमृतमेतद्यदेतत्त्यं तस्यैतस्यामूर्त्तस्यैतस्यामृतस्यैतस्य यत एतस्य त्यस्यैष रसो योऽयं दक्षिणेऽक्षन्पुरुषस्त्यस्य ह्येष रसः ॥

पदच्छेदः ।

अथ, अमूर्त्तम्, प्राणः, च, यः, च, अयम्, अन्तरात्मन्, आकाशः, एतत्, अमृतम्, एतत्, यत्, एतत्, त्यम्, तस्य, एतस्य,

अमूर्त्तस्य, एतस्य, अमृतस्य, एतस्य, यतः, एतस्य, त्यस्य, एषः, रसः, यः, अयम्, दक्षिणे, अक्षन्, पुरुषः, त्यस्य, हि, एषः, रसः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
अथ	अब
अमूर्त्तम्	अमूर्त्त के बारे में
+ उच्यते	उपदेश किया जाता है
यः-च	जो
अयम्-च	यह
अन्तरात्मन्	हृदय के भीतर
आकाशः	आकाश है
+ च	और
+ यः	जो
प्राणः	प्राण है
+ च	और जितने प्राण और आकाश के भेद हैं
एतत्	वही
अमृतम्	अमरधर्मी है
एतत्	वही
यत्	गमनशील है
एतत्	वही
त्यम्	अव्यक्त है
तस्य	उसी

अन्वयः	पदार्थाः
एतस्य	इस
अमूर्त्तस्य	अमूर्त्तिमान् का
एतस्य अमृतस्य	इस अमरधर्मी का
एतस्य-यतः	इस चलनशील का
एतस्य	इस
त्यस्य	अव्यक्त का
यः	जो
एषः	यह
रसः	सार है
अयम्	यही
दक्षिणे	दहिने
अक्षन्	नेत्र में
पुरुषः	पुरुष है
त्यस्य	तिस अव्यक्तका यानी आकाश और वायुका
हि	ही
एषः	यह नेत्रस्थ पुरुष
रसः	सार है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! अब अमूर्त्त जो पदार्थ है उस विषय का उपदेश किया जाता है, जो हृदय के भीतर आकाश है, और जो शरीरस्थ प्राण है, और जितने प्राण और आकाश के भेद हैं, वही यह अमरधर्मी है, वही गमनशीलवाला है, वही अव्यक्त है, उसी अमूर्त्तिमान् का, उसी अमरधर्मी का, उसी चलन शीलवाले का, उसी अव्यक्त का जो सार है, वही दहिने नेत्र में पुरुष है, अथवा दहिने नेत्रस्थ पुरुष आकाश वायु का सार है ॥ ५ ॥

मन्त्रः ६

तस्य हैतस्य पुरुषस्य रूपं यथा महारजनं वासो यथा पाण्ड्वाविकं यथेन्द्रगोपो यथाग्न्यर्चिर्यथा पुण्डरीकं यथा सकृद्विद्युत्तꣳ सकृद्विद्युत्तेव ह वा अस्य श्रीर्भवति य एवं वेदाथात आदेशो नेति नेति न ह्येतस्मादिति नेत्यन्यत्परमस्त्यथ नामधेयꣳ सत्यस्य सत्यमिति प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यम् ॥

इति तृतीयं ब्राह्मणम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तस्य, ह, एतस्य, पुरुषस्य, रूपम्, यथा, महारजनम्, वासः, यथा, पाण्डु, आविकम्, यथा, इन्द्रगोपः, यथा, अग्न्यर्चिः, यथा, पुण्डरीकम्, यथा, सकृत्, विद्युत्, तम्, सकृत्, विद्युत्ता, इव, ह, वै, अस्य, श्रीः, भवति, यः, एवम्, वेद, अथ, अतः, आदेशः, न, इति, न, इति, न, हि, एतस्मात्, इति, न, इति, अन्यत्, परम्, अस्ति, अथ, नामधेयम्, सत्यस्य, सत्यम्, इति, प्राणाः, वै, सत्यम्, तेषाम्, एषः, सत्यम् ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ अथ	अब
तस्य	उस
एतस्य	इस
ह	प्रसिद्ध
पुरुषस्य	जीवात्मा के
रूपम्	रूप को
+ आह	कहते हैं
+ कदा	कभी
+ अस्य	इस जीवात्मा का
+ स्वरूपम्	स्वरूप
महारजनम्	कुसुंभ के फूलों से रँगा हुआ
वासः यथा	वस्त्र की तरह
+ भवति	होता है
+ कदा	कभी
पाण्डु	कुछ श्वेत
यथा आविकम्	भेड़ी के रोम की तरह
+ भवति	होता है
+ कदा	कभी
यथा इन्द्रगोपः	वीरबहूटी कीट के समान
+ भवति	होता है
+ कदा	कभी
यथा अग्न्यर्चिः	अग्नि की ज्वाला की तरह
+ भवति	होता है
+ कदा	कभी

यथा पुण्डरीकम् = श्वेत कमल की तरह
+ भवति = होता है
+ कदा = कभी
यथा सकृत् विद्युत्तम् = एकायक विद्युत् के प्रकाश की तरह
+ भवति = होता है यानी इन उपमाओं के समान वह जीवात्मा विषयों के संयोगसे अनेकरूपवाला हुआ करता है
+ यः = जो
+ एतस्य = इस जीवात्मा को
एवम् = ऊपर कहे हुये प्रकार
वेद = जानता है
तस्य = उसकी
श्रीः = संपत्ति
सकृत्विद्युत्ता इव = एकबारगी विद्युत् के प्रकाशके समान चमकने वाली
ह वै = निस्संदेह
भवति = होती है
अथ = अब
+ बालाके = हे बालाके
अतः = यहां से
आदेशः = परमात्मा के विषय में उपदेश
नेति नेति = न इति न इति करके
+ प्रारभ्यते = आरम्भ करते हैं
हि = क्योंकि
एतस्मात् = इस
+ उपदेशात् = उपदेशसे
+ अन्योपदेशः = और उपदेश
न = श्रेष्ठ नहीं है
+ हि = क्योंकि
अस्मात् = इस परमात्मा से
अन्यत् = दूसरा
परम् = उत्कृष्टदेव
नेति अस्ति = नहीं है
अथ = अब
नामधेयम् = ब्रह्म के नाम को
+ आह = कहते हैं
+ तस्य = उसका
+ नाम = नाम
सत्यस्य = सत्य का
सत्यम् = सत्य
इति = ऐसा है यानी परम-सत्य है
प्राणाः = प्राणों का
+ नाम = नाम
वै = निश्चय करके
सत्यम् = सत्य है
तेषाम् = उन प्राणों को
+ एव = भी
एषः = वह परमात्मा
सत्यम् = सत्ता देनेवाला है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! अब इस जीवात्मा के स्वरूप को अनेक उपमाओं द्वारा वर्णन करते हैं, हे सौम्य ! कभी इस जीवात्मा का स्वरूप कुसुंभके फूलों से रँगे हुये कपड़ों की तरह होजाता है, कभी किंचित् श्वेत भेड़

के रोम की तरह होजाता है, कभी इन्द्रगोपनामक कीट (बीरबहूटी) की तरह होजाता है, कभी अग्नि की ज्वाला की तरह उसका रूप होजाता है, कभी श्वेतकमल की तरह उसका रूप होजाता है, कभी विद्युत् के प्रकाश की तरह इसका रूप बन जाता है, यानी जैसी इस की उपाधि होती है वैसेही यह आत्मा भी देख पड़ता है, हे प्रियदर्शन ! जो पुरुष इस रहस्य का जाननेवाला है उसकी संपूर्ण संपत्ति विद्युत् के प्रकाश की तरह चमकनेवाली होती है, हे बालाके ! जो कुछ अभी तक कहा गया है, वह प्रकृति और जीव के विषय में कहा गया है, अब परमात्मा के विषय में उपदेश प्रारम्भ करते हैं, हे ब्राह्मण ! उस परमात्मा का उपदेश नेति नेति शब्दों से होता है, क्योंकि इस उपदेश से बढ़कर दूसरा कोई उपदेश नहीं है, क्योंकि इस परमात्मा से बढ़कर न कोई उत्कृष्ट देव है, न कोई उसके समान है, और न कोई सामग्री उसके वर्णन के लिये है, इस लिये नेति नेति शब्द के द्वारा उसका उपदेश किया जाता है, हे बालाके ! जगत् के दो भाग हैं, एक मूर्त्तिमान्, और एक अमूर्त्तिमान्, इन दोनों के लिये दो नकार प्रयुक्त हैं, यानी मूर्त्तिमान् वस्तु को देखकर शिष्य के प्रश्न करने पर कि यह ब्रह्म है ? गुरु कहता है-यह नहीं है, यह नहीं है, ज्यों ज्यों ब्रह्म विषे शिष्य प्रश्न करता जाता है त्यों त्यों गुरु नेति नेति करके उत्तर देता जाता है, जब संपूर्ण मूर्त्तिमान् विषय यानी अग्नि, जल, पृथ्वी की सब वस्तुओं की समाप्ति होजाती है, और जब शिष्य अमूर्त्तिमान् यानी वायु और आकाश के कार्यों के विषय में प्रश्न करता है तब गुरु फिर भी नेति नेनि शब्द से उसको उपदेश करता जाता है, जहां शिष्य का प्रश्न समाप्त होजाता है, वहां दोनों यानी शिष्य और गुरु चुप चाप होजाते हैं, वहीं पर शिष्य को ब्रह्म की तरफ निर्देश करके गुरु बताता है कि यह ब्रह्म है, और फिर वहां से ही ऊपर को यानी कारण के कार्य को बताता चला आता है कि यह

भी ब्रह्म है, यह भी ब्रह्म है, क्योंकि कार्य में कारण अनुगत रहता है, अथवा कार्य कारण एकरूप होता है, सब संसार भर ब्रह्मरूप ही है, ऐसा उपदेश पाने के बाद शिष्य शान्त होकर महाआनन्द को प्राप्त होजाता है, और फिर शिष्यत्व और गुरुत्व भाव दोनों का नष्ट होजाता है. हे बालाके ! इस ब्रह्म का नाम सत्य का सत्य है, जो बाह्य, और अभ्यन्तर प्राण है, उसका नाम भी सत्य है, उन प्राणों का भी जो प्रेरक हो यानी सत्ता देनेवाला हो, वही त्रिकालाबाध सच्चिदानन्द स्वरूप है, यही उसका नाम है ॥ ६ ॥

इति तृतीयं ब्राह्मणम् ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

मैत्रेयीति होवाच याज्ञवल्क्य उद्यास्यन्वा अरेऽहमस्मात्स्थानादस्मि हन्त तेऽनया कात्यायन्याऽन्तं करवाणीति ॥

पदच्छेदः ।

मैत्रेयि, इति, ह, उवाच, याज्ञवल्क्यः, उद्यास्यन्, वै, अरे, अहम्, अस्मात्, स्थानात्, अस्मि, हन्त, ते, अनया, कात्यायन्या, अन्तम्, करवाणि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
मैत्रेयि	हे प्रियमैत्रेयि
इति	ऐसा सम्बोधन करके
याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य
उवाच	बोले कि
अरे	हे प्रियमैत्रेयि
अहम्	मैं
अस्मात्	इस
स्थानात्	गृहस्थ आश्रम से
वै	निश्चय करके
उद्यास्यन् अस्मि	ऊपरको जानेवाला हूं यानी वानप्रस्थाश्रमको धारण करनेवाला हूं
+ यदि	अगर
हन्त	अनुमति हो तो

अनया=इस निकट बैठी हुई
कात्यायन्या=कात्यायनी के साथ
ते=तुम्हारा
अन्तम्=सम्बन्ध को पृथक्
करवाणि इति=करदूं यानी तुम दोनों के मध्य धन को बराबर बांट दूं ताकि एक दूसरेसे कोई सम्बन्ध न रहजाय

भावार्थ ।

हे सौम्य ! एक समय राजा जनक और याज्ञवल्क्यऋषि परस्पर बातचीत कर रहे थे, राजा जनक ने याज्ञवल्क्य महाराज से कहा कि हे प्रभो ! मैंने वैराग्य के स्वरूप को नहीं देखा है, उसका कैसा स्वरूप होता है, मैं देखना चाहता हूं, याज्ञवल्क्य महाराजने कहा कि कल मैं तुमको वैराग्य का स्वरूप दिखादूंगा. ऐसा कहकर अपने घर चले आये, और अपनी लघुपत्नी मैत्रेयी से कहा हे प्रियमैत्रेयि ! मैं इस गृहस्थाश्रम को त्यागना चाहता हूं, और वानप्रस्थाश्रम को ग्रहण करनेवाला होना चाहता हूं, यदि तुम्हारी अनुमति हो तो तुम्हारे और कात्यायनी के मध्य में द्रव्यको बराबर बराबर बांट दूं ॥ १ ॥

मन्त्रः २

सा होवाच मैत्रेयी यन्नु म इयं भगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात्कथं तेनामृता स्यामिति नेति होवाच याज्ञवल्क्यो यथैवोपकरणवतां जीवितं तथैव ते जीवितꣳ स्यादमृतत्वस्य तु नाऽऽशाऽस्ति वित्तेनेति ॥

पदच्छेदः ।

सा, ह, उवाच, मैत्रेयी, यत्, नु, मे, इयम्, भगोः, सर्वा, पृथिवी, वित्तेन, पूर्णा, स्यात्, कथम्, तेन, अमृता, स्याम्, इति, न, इति, ह, उवाच, याज्ञवल्क्यः, यथा, एव, उपकरणवताम्, जीवितम्, तथा, एव, ते, जीवितम्, स्यात्, अमृतत्वस्य, तु, न, आशा, अस्ति, वित्तेन, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
+ इति	यह	इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	सुन कर	+ श्रुत्वा	सुन कर
सा	वह	ह	प्रसिद्ध
ह	प्रसिद्ध	याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य
मैत्रेयी	मैत्रेयी	उवाच	बोले कि
उवाच	बोली कि	न इति	ऐसा नहीं
भगोः	हे भगवन् !	यथा	जैसे
नु	मैं पूछती हूं कि	एव	निश्चय करके
यत्	जो	उपकरणवताम्	उत्तम सुख साधन वालों को
इयम्	यह	जीवितम्	जीवन
सर्वा	सब	+ भवति	होता है
पृथिवी	पृथिवी	तथैव	तैसेही
वित्तेन	धन करके	ते	तेरा भी
पूर्णा	पूर्ण	जीवितम्	जीवन
मे	मेरी ही	स्यात्	होगा
स्यात्	होजाय तो	तु	परन्तु
कथम्	किसी प्रकार	अमृतस्य	मुक्तिकी
तेन	उस धन करके	आशा	आशा
+ अहम्	मैं	वित्तेन	धन करके
अमृता	मुक्त	न अस्ति इति	कभी नहीं होसकती है
स्याम्	होजाऊंगी		

भावार्थ ।

यह सुनकर मैत्रेयी बोली कि हे प्रभो, हे भगवन् ! मैं पूछती हूं आप कृपा करके मुझको उत्तर दीजिये. हे प्रभो ! मान लीजिये कि यह सब पृथ्वी धन करके पूर्ण है, यदि दैवइच्छा से मेरी होजाय तो क्या उस धन करके मैं तापत्रय से छूट जाऊंगी, यानी मुक्त होजाऊंगी, याज्ञवल्क्य महाराज ने जवाब दिया कि ऐसा तो नहीं होसकता है, हाँ जैसे उत्तम सुखसाधनवालों का जीवन होता है वैसेही तुम्हारा भी जीवन हो जायगा, परन्तु मुक्ति की आशा धन करके नहीं हो सकती है ॥ २ ॥

मन्त्रः ३

सा होवाच मैत्रेयी येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्यां यदेव भगवान्वेद तदेव मे ब्रूहीति ॥

पदच्छेदः।

सा, ह, उवाच, मैत्रेयी, येन, अहम्, न, अमृता, स्याम्, किम्, अहम्, तेन, कुर्याम्, यत्, एव, भगवान्, वेद, तत्, एव, मे, ब्रूहि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
+ तदा	तब	अहम्	मैं
सा	वह	किम्	क्या
ह	प्रसिद्ध	कुर्याम्	लाभ उठाऊंगी
मैत्रेयी	मैत्रेयी	यत्	जिस साधन को
उवाच	बोली कि	भगवान्	आप
येन	जिस धन करके	एव	निश्चय करके
अहम्	मैं	वेद	जानते हो
अमृता	मुक्त	तत्-एव	उसी साधन को
न	नहीं	मे	मेरी मुक्तिके लिये
स्याम्	होसक्ती हूं	ब्रूहि-इति	कहिये
तेन	उस धन से		

भावार्थ।

मैत्रेयी बोली कि हे भगवन्! जिस धन करके मैं मुक्त नहीं हो सकती हूं, उस धन से मैं क्या लाभ उठाऊंगी? जिस साधन को आप जानते हैं, उस साधन को मेरी मुक्ति के लिये बताइये, और जिस श्रेष्ठ धनको आप लिये जाते हैं उसमें मेरे को भी भाग दीजिये ॥ ३ ॥

मन्त्रः ४

स होवाच याज्ञवल्क्यः प्रिया बतारे नः सती प्रियं भाषस एह्यास्व व्याख्यास्यामि ते व्याचक्षाणस्य तु मे निदिध्यासस्वेति ॥

पदच्छेदः।

सः, ह, उवाच, याज्ञवल्क्यः, प्रिया, बत, अरे, नः, सती, प्रियम्,

भापसे, एहि, आस्स्व, व्याख्यास्यामि, ते, व्याचक्षाणस्य, तु, मे, निदिध्यासस्व, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	सुन कर
सः	वह
ह	प्रसिद्ध
याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य
उवाच	बोले कि
अरे	हे प्रियमैत्रेयि !
नः	तू मेरी
प्रिया	प्यारी
सती	पतिव्रता स्त्री है
+ त्वम्	तू
बत	प्रेमके साथ
प्रियम्	प्रिय
भापसे	बोलती है
एहि	आवो
आस्स्व	बैठो
व्याख्यास्यामि	तेरे लिये मुक्ति के साधन को कहूंगा
तु	पर
व्याचक्षाणस्य	व्याख्यान करते हुये
मे	मेरी
+ वाक्यानि	वार्तों पर
निदिध्यासस्व इति	ध्यान करके सुनो

भावार्थ ।

हे प्रियदर्शन ! ऐसा सुनकर वह प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य महाराज बोले कि हे मैत्रेयि ! तू मेरी पतिव्रता स्त्री है, तू सदा मेरे साथ प्रियभाषण करती रही है, और अब भी प्रिय बोलती है, हे प्यारी ! उठो, एकान्त विषे चलो, तेरी मुक्ति के लिये मुक्ति के साधन को कहूंगा, तू मेरी वार्तों पर ध्यान देकर सुन, तेरा कल्याण अवश्य होगा ॥ ४ ॥

मन्त्रः ५

स होवाच न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति । न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति । न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति । न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति । न वा अरे ब्रह्मणः कामाय ब्रह्म प्रियं भवत्यात्मनस्तु

कामाय ब्रह्म प्रियं भवति । न वा अरे क्षत्रस्य कामाय क्षत्रं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय क्षत्रं प्रियं भवति । न वा अरे लोकानां कामाय लोकाः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय लोकाः प्रिया भवन्ति । न वा अरे देवानां कामाय देवाः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय देवाः प्रिया भवन्ति । न वा अरे भूतानां कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्त्यात्मनस्तु कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्ति । न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति । आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदꣳ सर्वं विदितम् ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, न, वै, अरे, पत्युः, कामाय, पतिः, प्रियः, भवति, आत्मनः, तु, कामाय, पतिः, प्रियः, भवति, न, वै, अरे, जायायै, कामाय, जाया, प्रिया, भवति, आत्मनः, तु, कामाय, जाया, प्रिया, भवति, न, वै, अरे, पुत्राणाम्, कामाय, पुत्राः, प्रियाः, भवन्ति, आत्मनः, तु, कामाय, पुत्राः, प्रियाः, भवन्ति, न, वै, अरे, वित्तस्य, कामाय, वित्तम्, प्रियम्, भवति, आत्मनः, तु, कामाय, वित्तम्, प्रियम्, भवति, न, वै, अरे, ब्रह्मणः, कामाय, ब्रह्म, प्रियम्, भवति, आत्मनः, तु, कामाय, ब्रह्म, प्रियम्, भवति, न, वै, अरे, क्षत्त्रस्य, कामाय, क्षत्त्रम्, प्रियम्, भवति, आत्मनः, तु, कामाय, क्षत्त्रम्, प्रियम्, भवति, न, वै, अरे, लोकानाम्, कामाय, लोकाः, प्रियाः, भवन्ति, आत्मनः, तु, कामाय, लोकाः, प्रियाः, भवन्ति, न, वै, अरे, देवानाम्, कामाय, देवाः, प्रियाः, भवन्ति, आत्मनः, तु, कामाय, देवाः, प्रियाः, भवन्ति, न, वै, अरे, भूतानाम्, कामाय, भूतानि, प्रियाणि, भवन्ति, आत्मनः, तु, कामाय, भूतानि, प्रियाणि, भवन्ति, न, वै, अरे, सर्वस्य, कामाय, सर्वम्, प्रियम्, भवति, आत्मनः, तु, कामाय, सर्वम्, प्रियम्, भवति, आत्मा, वै, अरे, द्रष्टव्यः, श्रोतव्यः, मन्तव्यः, निदिध्यासितव्यः, मैत्रेयी, आत्मनः, वै,

अरे, दर्शनेन, श्रवणेन, मत्या, विज्ञानेन, इदम्, सर्वम्, विदितम् ॥

अन्वयः	पदार्थाः
सः ह	वह प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य
उवाच	बोला कि
अरे	हे प्रियमैत्रेयि !
पत्युः	पति की
कामाय	कामना के लिये
पतिः	पति
+ भार्याम्	भार्या को
प्रियः	प्यारा
न भवति	नहीं होता है
तु	किन्तु
वै	निश्चय करके
आत्मनः	अपने जीवात्मा की
कामाय	कामना के लिये
पतिः	पति
+ भार्याम्	भार्या को
प्रियः	प्यारा
भवति	होता है
अरे	हे प्रियमैत्रेयि !
जायायै	जाया की
कामाय	कामना के लिये
जाया	स्त्री
प्रिया	प्यारी
न भवति	नहीं होती है
तु	किन्तु
वै	निश्चय करके
आत्मनः	अपने यानी पति के आत्मा की
कामाय	कामना के लिये
जाया	स्त्री
प्रिया	प्यारी
भवति	होती है
अरे	हे प्रियमैत्रेयि !
पुत्राणाम्	पुत्रों की
कामाय	कामना के लिये
पुत्राः	पुत्र
प्रियाः	प्यारे
न भवन्ति	नहीं होते हैं
तु	किन्तु
वै	निश्चय करके
आत्मनः	अपने यानी माता पिता के आत्मा की
कामाय	कामना के लिये
पुत्राः	लड़के
प्रियाः	प्यारे
भवन्ति	होते हैं
अरे	हे प्रियमैत्रेयि !
वित्तस्य	धनकी
कामाय	कामना के लिये
वित्तम्	धन
प्रियम्	प्यारा
न भवति	नहीं होता है
तु	किन्तु
वै	निश्चय करके
आत्मनः	अपने यानी धनीकी आत्मा की
कामाय	कामना के लिये
वित्तम्	धन
प्रियम्	प्यारा
भवति	होता है
अरे	हे प्रियमैत्रेयि !

ब्रह्मणः=ब्राह्मण की
कामाय=कामना के लिये
ब्रह्म=ब्राह्मण
प्रियम्=प्यारा
न भवति=नहीं होता है
तु=किन्तु
वै=निश्चय करके
आत्मनः=अपने यानी यजमान के आत्मा की
कामाय=कामना के लिये
ब्रह्म=ब्राह्मण
प्रियम्=प्यारा
भवति=होता है
अरे=हे प्रियमैत्रेयि !
क्षत्रस्य=क्षत्रिय की
कामाय=कामना के लिये
क्षत्रम्=क्षत्रिय
प्रियम्=प्यारा
न भवति=नहीं होता है
तु=किन्तु
वै=निश्चय करके
आत्मनः=अपने यानी पालनीय की आत्मा की
कामाय=कामना के लिये
क्षत्रम्=क्षत्रिय
प्रियम्=प्यारा
भवति=होता है
अरे=हे प्रियमैत्रेयि !
लोकानाम्=लोगों की
कामाय=कामना के लिये
लोकाः=लोग
प्रियाः=प्यारे
न भवति=नहीं होते हैं
तु=किन्तु
वै=निश्चय करके
आत्मनः=अपने यानी अर्थी की आत्मा की
कामाय=कामना के लिये
लोकाः=लोग
प्रियाः=प्यारे
भवन्ति=होते हैं
अरे=हे प्रियमैत्रेयि !
देवानाम्=देवों की
कामाय=कामना के लिये
देवाः=देव
प्रियाः=प्यारे
न भवन्ति=नहीं होते हैं
तु=किन्तु
वै=निश्चय करके
आत्मनः=अपने यानी उपासक की आत्मा की
कामाय=कामना के लिये
देवाः=देवता
प्रियाः=प्रिय
भवन्ति=होते हैं
अरे=हे प्रियमैत्रेयि !
भूतानाम्=प्राणियों के
कामाय=कामना के लिये
भूतानि=प्राणी
प्रियाणि=प्यारे
न भवन्ति=नहीं होते हैं
तु=किन्तु
वै=निश्चय करके

आत्मनः=अपने यानी प्राणी की आत्मा की
कामाय=कामना के लिये
भूतानि=प्राणी
प्रियाणि=प्यारे
भवन्ति=होते हैं
अरे=हे प्रियमैत्रेयि !
सर्वस्य=सबकी
कामाय=कामना के लिये
सर्वम्=सब
प्रियम्=प्रिय
न भवति=नहीं होता है
तु=किन्तु
आत्मनः=अपने यानी सब लोगों की आत्मा की
कामाय=कामना के लिये
सर्वम्=सब
प्रियम्=प्रिय
भवति=होता है
अरे=हे प्रियमैत्रेयि !
+ तस्मात्=इस लिये
आत्मा=अपना आत्मा
द्रष्टव्यः=दर्शन के योग्य है
श्रोतव्यः=यही गुरु और शास्त्र करके सुनने योग्य है
मन्तव्यः=विचार करने योग्य है
निदिध्यासितव्यः=निश्चय करने योग्य है
अरे मैत्रेयि=हे प्रियमैत्रेयि !
आत्मनः=आत्मा के
दर्शनेन=दर्शन से
श्रवणेन=सुनने से
मत्या=समझने से
विज्ञानेन=जानने से
इदम्=यह
सर्वम्=सब
विदितम्=जाना हुआ
वै=अवश्य
+ भवति=होता है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! मैत्रेयी देवी ने अपने पति याज्ञवल्क्य महाराज से सविनय प्रार्थना किया कि जिस साधन करके आप अपने आत्मा सम्बन्धी ज्ञानरूपी धन को अपने साथ लिये जाते हैं उसमें मुझको संमिलित कीजिये, यह सुनकर याज्ञवल्क्य महाराज बड़े प्रसन्न हुये, और बोले हे प्रियमैत्रेयि ! पति की कामना के लिये पति भार्या को प्यारा नहीं होता है, किन्तु निज आत्मा की कामना के लिये भार्या को पति प्यारा होता है, हे प्रियमैत्रेयि ! जाया की कामना से जाया पति को प्यारी नहीं होती है, किन्तु पति के

निज आत्मा की कामना के लिये जाया प्रिय होती है. हे प्रियमैत्रेयि ! पुत्रों की कामना के लिये पुत्र पिता को प्यारे नहीं होते हैं, किन्तु माता पिता की कामना के लिये लड़के लड़की प्यारे होते हैं. हे प्रियमैत्रेयि ! धनकी कामना के लिये धन धनी को प्यारा नहीं होता है, किन्तु धनी की निज आत्मा की कामना के लिये धन प्यारा होता है. हे प्रियमैत्रेयि ! ब्राह्मण की कामना के लिये ब्राह्मण यजमान को प्यारा नहीं होता है, किन्तु यजमान के आत्मा की कामना के लिये ब्राह्मण प्यारा होता है. हे प्रियमैत्रेयि ! क्षत्रिय की कामना के लिये क्षत्रिय स्वामी को प्यारा नहीं होता है, किन्तु पालनीय के आत्मा की कामना के लिये क्षत्रिय प्यारा होता है. हे प्रियमैत्रेयि ! लोगों की कामना के लिये लोग प्यारे नहीं होते हैं, किन्तु अर्थी की कामना के लिये लोग प्यारे होते हैं. हे प्रियमैत्रेयि ! देवों की कामना के लिये देव उपासकों को प्यारे नहीं होते हैं, किन्तु उपासक की कामना के लिये देवता उपासक को प्यारे होते हैं. हे प्रियमैत्रेयि ! प्राणियों की कामना के लिये प्राणी को प्राणी प्यारे नहीं होते हैं, किन्तु प्राणी के आत्मा की कामना के लिये प्राणी प्यारे होते हैं. हे प्रियमैत्रेयि ! सब की कामना के लिये सबको सब प्यारे नहीं होते हैं, किन्तु सबलोगों की आत्मा की कामना के लिये सब प्रिय होते हैं. इस लिये, हे प्रियमैत्रेयि ! यह अपना आत्माही दर्शन के योग्य है, यही गुरु और शास्त्र करके सुनने योग्य है, यही विचारने योग्य है, यही निश्चय करने योग्य है. हे प्रियमैत्रेयि ! इस आत्मा के दर्शन से, सुनने से, समझने से, जानने से यावत् कुछ ब्रह्माण्ड विषे है सब जाना जाता है. हे प्रियमैत्रेयि ! अपने आत्मा को जानो, इसीसे तुम्हारा कल्याण होगा. वही सब वस्तु प्रिय है, जिससे इस आत्मा को आनन्द मिलता है क्योंकि यह आत्मा आनन्दस्वरूप है इससे अतिरिक्त कहीं आनन्द नहीं है, जो कुछ है वह आत्माही है ॥ ५ ॥

मन्त्रः ६

ब्रह्म तं परादाद्योऽन्यत्राऽऽत्मनो ब्रह्म वेद क्षत्रं तं परादाद्यो-ऽन्यत्राऽऽत्मनः क्षत्रं वेद लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्राऽऽत्मनोलोकान्वेद देवास्तं परादुर्योऽन्यत्राऽऽत्मनो देवान्वेद भूतानि तं परादुर्योऽन्य-त्राऽऽत्मनो भूतानि वेद सर्वं तं परादाद्योऽन्यत्राऽऽत्मनः सर्वं वेदेदं ब्रह्मेदं क्षत्रमिमे लोका इमे देवा इमानि भूतानीदꣳ सर्वं यदयमात्मा ॥

पदच्छेदः ।

ब्रह्म, तम्, परादात्, यः, अन्यत्र, आत्मनः, ब्रह्म, वेद, क्षत्रम्, तम्, परादात्, यः, अन्यत्र, आत्मनः, क्षत्रम्, वेद, लोकाः, तम्, परादुः, यः, अन्यत्र, आत्मनः, लोकान्, वेद, देवाः, तम्, परादुः, यः, अन्यत्र, आत्मनः, देवान्, वेद, भूतानि, तम्, परादुः, यः, अन्यत्र, आत्मनः, भूतानि, वेद, सर्वम्, तम्, परादात्, यः, अन्यत्र, आत्मनः, सर्वम्, वेद, इदम्, ब्रह्म, इदम्, क्षत्रम्, इमे, लोकाः, इमे, देवाः, इमानि, भूतानि, इदम्, सर्वम्, यत्, अयम्, आत्मा ॥

अन्वयः	पदार्थाः
ब्रह्म	ब्रह्मत्व
तम्	उस पुरुष को
परादात्	त्याग देता है
यः	जो
आत्मनः	आत्मा से
अन्यत्र	पृथक्
ब्रह्म	ब्रह्मत्व को
वेद	जानता है
क्षत्रम्	क्षत्रियत्व
तम्	उस पुरुष को
परादात्	त्याग देता है
यः	जो
आत्मनः	आत्मा से
अन्यत्र	पृथक्
क्षत्रम्	क्षत्रियत्व को
वेद	जानता है
लोकाः	लोक
तम्	उस पुरुष को
परादुः	त्याग देते हैं
यः	जो
आत्मनः	आत्मा से
अन्यत्र	भिन्न
लोकान्	लोकों को
वेद	जानता है
देवाः	देवतालोग
तम्	उस पुरुष को

परादुः=त्याग देते हैं
यः=जो
आत्मनः=आत्मा से
अन्यत्र=भिन्न
देवान्=देवों को
वेद=जानता है
भूतानि=प्राणिमात्र
तम्=उस पुरुष को
परादुः=त्याग देते हैं
यः=जो
आत्मनः=आत्मा से
अन्यत्र=भिन्न
भूतानि=प्राणियों को
वेद=जानता है
तम्=उसको
सर्वम्=सब
परादात्=त्याग देता है
यः=जो
आत्मनः=आत्मा से
अन्यत्र=भिन्न
सर्वम्=सबको
वेद=जानता है
इदम्=यह
ब्रह्म=ब्राह्मण
इदम्=यह
क्षत्रम्=क्षत्रिय
इमे=ये
लोकाः=लोक
इमे=ये
देवाः=देवता
इमानि=ये
भूतानि=प्राणिमात्र
यत्=जो कुछ
इदम्=यह
सर्वम्=सब है
अयम्=यह सब
आत्मा=आत्माही है

भावार्थ ।

हे मैत्रेयि ! ब्रह्मत्व उस पुरुष को त्याग देता है, जो आत्मा से पृथक् ब्रह्मत्व को जानता है. क्षत्रियत्व उस पुरुष को त्याग देता है, जो आत्मा से पृथक् क्षत्रियत्व को जानता है. द्युलोक, अन्तरिक्षलोक, पृथिवीलोकादि उस पुरुष को त्याग देते हैं जो आत्मा से भिन्न उन लोकों को जानता है. सूर्य, चन्द्रमा, वरुण, शिव आदि देवता उस पुरुष को त्याग देते हैं जो अपने जीवात्मा से इन देवों को पृथक् जानता है; सकल प्राणी उस पुरुष को त्याग देते हैं जो अपने जीवात्मा से इन सबको पृथक् जानता है. हे मैत्रेयि ! मैं इस विषय में बहुत क्या कहूं इतनाही कहना बहुत है कि जो कुछ ब्रह्माण्ड विषे है, हे मैत्रेयि !

वह उस पुरुष को त्याग देते हैं जो अपनी आत्मा से पृथक् उन सब को जानता है. हे मैत्रेयि ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, लोकलोकान्तर, देवता आदि प्राणिमात्र जो कुछ है यह सब जीवात्माही है, इससे पृथक् कुछ नहीं है ॥ ६ ॥

मन्त्रः ७

स यथा दुन्दुभेर्हन्यमानस्य न बाह्याञ्शब्दाञ्शक्नुयाद्ग्रहणाय दुन्दुभेस्तु ग्रहणेन दुन्दुभ्याघातस्य वा शब्दो गृहीतः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यथा, दुन्दुभेः, हन्यमानस्य, न, बाह्यान्, शब्दान्, शक्नुयात्, ग्रहणाय, दुन्दुभेः, तु, ग्रहणेन, दुन्दुभ्याघातस्य, वा, शब्दः, गृहीतः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
+ अत्र	इस विषे	दुन्दुभेःग्रहणेन	दुन्दुभि के पकड़ लेने से
सः	प्रसिद्ध	वा	अथवा
+ दृष्टान्तः	दृष्टान्त	दुन्दुभ्याघातस्य + ग्रहणेन	दुन्दुभि के बजाने वाले के पकड़ लेने से
+ वदति	देते हैं कि	शब्दः	शब्द
यथा	जैसे	गृहीतः	गृहीत
हन्यमानस्य	बजाये हुये	+ भवति	होता है
दुन्दुभेः	नगारे के	+ तद्वत्	उसी प्रकार
बाह्यान्	बाहर निकले हुये	+ आत्मनः	आत्मा के ज्ञान से
शब्दान्	शब्दों को	+ सर्वस्य ज्ञानम्	सबका ज्ञान
ग्रहणाय	पकड़ने के लिये	+ भवति	होता है
+ जनः	कोई मनुष्य		
न	नहीं		
शक्नुयात्	समर्थ होता है		
तु	परन्तु		

भावार्थ ।

हे सौम्य ! मैत्रेयी को दृष्टान्त देकर याज्ञवल्क्य महाराज समझातेहैं कि हे मैत्रेयि ! जैसे बजाये हुये नगारे के बाहर निकले हुये शब्दों को कोई मनुष्य नहीं पकड़सक्ता है वैसेही आत्मा को कोई बाहर से

पकड़ना चाहे तो नहीं पकड़ सक्ता है, परन्तु जैसे दुन्दुभिके पकड़ लेने से अथवा दुन्दुभिके बजाने वाले को पकड़लेने से शब्द पकड़ा जा सक्ता है उसी प्रकार हे प्रियमैत्रेयि ! आत्मा के समीप जो इन्द्रियसमूह हैं उनके रोकने से आत्मा का ज्ञान होसक्ता है ॥ ७ ॥

मन्त्रः ८

स यथा शङ्खस्य ध्मायमानस्य न बाह्याञ्शब्दाञ्शक्नुयाद्ग्रहणाय शङ्खस्य तु ग्रहणेन शङ्खध्मस्य वा शब्दो गृहीतः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यथा, शङ्खस्य, ध्मायमानस्य, न, बाह्यान्, शब्दान्, शक्नुयात्, ग्रहणाय, शङ्खस्य, तु, ग्रहणेन, शङ्खध्मस्य, वा, शब्दः, गृहीतः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
+ अत्र	इस विषे	शङ्खस्य	शंख के
सः	वह प्रसिद्ध	ग्रहणेन	ग्रहण से
+ दृष्टान्तः	दृष्टान्त	वा	अथवा
+ वदन्ति	कहते हैं	शङ्खध्मस्य	शंख बजाने वाले के
यथा	जैसे	+ ग्रहणेन	ग्रहण से
ध्मायमानस्य	बजते हुये	शब्दः	शब्द का
शङ्खस्य	शंख के	गृहीतः	ग्रहण
बाह्यान्	बाहर निकले हुये	+ भवति	होजाता है
शब्दान्	शब्दों को	+ तद्वत्	उसीप्रकार
ग्रहणाय	ग्रहण करने को	+ आत्मनः	आत्मा के ज्ञानसे
+ जनः	कोई मनुष्य	+ सर्वस्य ज्ञानम्	सबका ज्ञान
न	नहीं	+ भवति	होजाता है
शक्नुयात्	समर्थ होता है		
तु	परन्तु		

भावार्थ ।

हे सौम्य ! याज्ञवल्क्य महाराज फिर दृष्टान्त देकर मैत्रेयी को समझाते हैं कि हे प्रियमैत्रेयि ! जैसे बजते हुये शंख के बाहर निकले हुये शब्दों को ग्रहण करने के लिये कोई मनुष्य समर्थ नहीं होता है,

वैसेही इस आत्मा से निकले हुये शास्त्र आदि के ग्रहण करने से आत्मा का ग्रहण नहीं होसक्ता है. परन्तु शंख के ग्रहण करने से अथवा शंख के बजानेवाले के ग्रहण करने से शंख के शब्दका ग्रहण होजाता है, उसीतरह इन्द्रियादिकों के ग्रहण करलेने से उसके साथ जो आत्मा है उसका ग्रहण होता है ॥ ८ ॥

मन्त्रः ९

स यथा वीणायै वाद्यमानायै न बाह्याञ्शब्दाञ्शक्नुयाद्ग्रहणाय वीणायै तु ग्रहणेन वीणावादस्य वा शब्दो गृहीतः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यथा, वीणायै, वाद्यमानायै, न, बाह्यान्, शब्दान्, शक्नुयात्, ग्रहणाय, वीणायै, तु, ग्रहणेन, वीणावादस्य, वा, शब्दः, गृहीतः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
+ अत्र=इस विषे		शक्नुयात्=समर्थ होता है	
सः=प्रसिद्ध		तु=परन्तु	
+ दृष्टान्तः=दृष्टान्त		वीणायै=वीणा के	
+ वदति=कहते हैं		ग्रहणेन=ग्रहण करने से	
यथा=जैसे		वा=अथवा	
वाद्यमानायै=बजती हुई		वीणावादस्य=वीणा बजाने वाले के	
वीणायै=वीणा के		+ ग्रहणेन=ग्रहण करने से	
बाह्यान्=बाहर निकले हुये		शब्दःगृहीतः=शब्द का ग्रहण	
शब्दान्=शब्दों को		+ भवति=होता है	
ग्रहणाय=भलीप्रकार ग्रहण करने के लिये		+ तद्वत्=उसीतरह	
+ जनः=कोई मनुष्य		+ आत्मा=आत्मा	
न=नहीं		+ गृहीतः=गृहीत	
		+ भवति=होता है	

भावार्थ ।

हे सौम्य ! तीसरा दृष्टान्त देकर मैत्रेयी को याज्ञवल्क्य महाराज समझाते हैं कि हे मैत्रेयि ! जैसे बजती हुई बीन के बाहर निकले हुये शब्दों को भलीप्रकार ग्रहण करने के लिये कोई मनुष्य समर्थ नहीं

होता है उसीप्रकार बाहर सुने सुनाये उपदेशों करके आत्मा का ग्रहण नहीं होता है, परन्तु जैसे वीणा के ग्रहण करने से अथवा वीणा के बजाने वाले के ग्रहण करने से शब्द का ग्रहण होता है उसी तरह से मन आदिक इन्द्रियों के वश करने से आत्मा का ज्ञान होता है ॥ ६ ॥

मन्त्रः १०

स यथाऽऽर्द्रैधाग्नेरभ्याहितात्पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि निश्वसितानि ॥

पदच्छेदः ।

सः, यथा, आर्द्रैधाग्नेः, अभ्याहितात्, पृथक्, धूमाः, विनिश्चरन्ति, एवम्, वै, अरे, अस्य, महतः, भूतस्य, निश्वसितम्, एतत्, यत्, ऋग्वेदः, यजुर्वेदः, सामवेदः, अथर्वाङ्गिरसः, इतिहासः, पुराणम्, विद्याः, उपनिषदः, श्लोकाः, सूत्राणि, अनुव्याख्यानानि, व्याख्यानानि, अस्य, एव, एतानि, निश्वसितानि ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
+ अत्र	=इस विषे	विनिश्चरन्ति	=निकलती हैं
सः	=यह प्रसिद्ध	एवम्	=इसी प्रकार
+ दृष्टान्तः	=दृष्टान्त	वै	=निश्चय करके
+ वदति	=कहते हैं कि	अरे	=हे प्रियमैत्रेयि !
यथा	=जैसे	यत्	=जो
अभ्याहितात्	=स्थापित की हुई	एतत्	=यह वक्ष्यमाण
आर्द्रैधाग्नेः	=गीली लकड़ी जलती हुई अग्नि से	ऋग्वेदः	=ऋग्वेद है
		यजुर्वेदः	=यजुर्वेद है
पृथक्	=नाना प्रकार के	सामवेदः	=सामवेद है
धूमाः	=धूयें और चिनगारियां आदि	अथर्वाङ्गिरसः	=अथर्वण वेद है
		इतिहासः	=इतिहास है

पुराणम्=पुराण है
विद्याः=विद्या हैं
उपनिषदः=वेदान्तशास्त्र हैं
श्लोकाः=काव्य हैं
सूत्राणि=पदार्थसंग्रहवाक्य हैं
अनुव्याख्यानानि=मन्त्रव्याख्या हैं
व्याख्यानानि=अर्थव्याख्या हैं
एतानि=ये सब
अस्य=उसी
महतः=श्रेष्ठ
भूतस्य=जीवात्मा के
निश्वसितम्=श्वास हैं
+ च=और
अस्य=उसके
एव=ही
निश्वसितानि=परश्वास हैं

भावार्थ।

हे सौम्य ! याज्ञवल्क्य महाराज मैत्रेयी महारानी से कहते हैं कि हे प्रियमैत्रेयि ! जैसे एक जगह रक्खी हुई गीली लकड़ी जब जलाई जाती है तब उसमें से नाना प्रकार के धूयें और चिनगारियां आदि निकलती हैं इसी प्रकार इस श्रेष्ठ जीवात्मा के श्वास से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वणवेद, इतिहास, पुराण, विद्या, वेदान्तशास्त्र, श्लोक, सूत्र, मन्त्र, व्याख्या और अर्थव्याख्यादि निकलती हैं ॥ १० ॥

मन्त्रः ११

स यथा सर्वासामपाꣳ समुद्र एकायनमेवꣳ सर्वेषाꣳ स्पर्शानां त्वगेकायनमेवꣳ सर्वेषां गन्धानां नासिके एकायनमेवꣳ सर्वेषाꣳ रसानां जिह्वैकायनमेवꣳ सर्वेषाꣳ रूपाणां चक्षुरेकायनमेवꣳ सर्वेषाꣳ शब्दानाꣳ श्रोत्रमेकायनमेवꣳ सर्वेषाꣳ संकल्पानां मन एकायनमेवꣳ सर्वासां विद्यानाꣳ हृदयमेकायनमेवꣳ सर्वेषां कर्मणाꣳ हस्तावेकायनमेवꣳ सर्वेषामानन्दानामुपस्थ एकायनमेवꣳ सर्वेषां विसर्गाणां पायुरेकायनमेवꣳ सर्वेषामध्वनां पादावेकायनमेवꣳ सर्वेषां वेदानां वागेकायनम् ॥

पदच्छेदः ।

सः, यथा, सर्वासाम्, अपाम्, समुद्रः, एकायनम्, एवम्, सर्वेषाम्,

स्पर्शानाम्, त्वक्, एकायनम्, एवम्, सर्वेषाम्, गन्धानाम्, नासिके, एकायनम्, एवम्, सर्वेषाम्, रसानाम्, जिह्वा, एकायनम्, एवम्, सर्वेषाम्, रूपाणाम्, चक्षुः, एकायनम्, एवम्, सर्वेषाम्, शब्दानाम्, श्रोत्रम्, एकायनम्, एवम्, सर्वेषाम्, संकल्पानाम्, मनः, एकायनम्, एवम्, सर्वासाम्, विद्यानाम्, हृदयम्, एकायनम्, एवम्, सर्वेषाम्, कर्मणाम्, हस्तौ, एकायनम्, एवम्, सर्वेषाम्, आनन्दानाम्, उपस्थः, एकायनम्, एवम्, सर्वेषाम्, विसर्गाणाम्, पायुः, एकायनम्, एवम्, सर्वेषाम्, अध्वनाम्, पादौ, एकायनम्, एवम्, सर्वेषाम्, वेदानाम्, वाक्, एकायनम् ॥

अन्वयः पदार्थाः

+ अत्र=इस विषे
सः=वह प्रसिद्ध
+ दृष्टान्तः=दृष्टान्त है कि
यथा=जैसे
सर्वासाम्=सब
अपाम्=जलों का
समुद्रः=समुद्र
एकायनम्=एकायन है
एवम्=इसी प्रकार
सर्वेषाम्=सब
स्पर्शानाम्=स्पर्शों का
त्वक्=त्वचा
एकायनम्=एकायन है
एवम्=इसी प्रकार
सर्वेषाम्=सब
गन्धानाम्=गन्धों का
नासिके=दोनों नासिका
एकायनम्=एकायन हैं
एवम्=इसी प्रकार
सर्वेषाम्=सब

अन्वयः पदार्थाः

रसानाम्=रसों का
जिह्वा=जीभ
एकायनम्=एकायन है
एवम्=इसी प्रकार
सर्वेषाम्=सब
रूपाणाम्=रूपों का
चक्षुः=नेत्र
एकायनम्=एकायन है
एवम्=इसी प्रकार
सर्वेषाम्=सब
शब्दानाम्=शब्दों का
श्रोत्रम्=कान
एकायनम्=एकायन है
एवम्=इसी प्रकार
सर्वेषाम्=सब
संकल्पानाम्=संकल्पों का
मनः=मन
एकायनम्=एकायन है
एवम्=इसी प्रकार
सर्वासाम्=सब

विद्यानाम्=ज्ञानों का
हृदयम्=हृदय
एकायनम्=एकायन है
एवम्=इसी प्रकार
सर्वेषाम्=सब
कर्मणाम्=कर्मों का
हस्तौ=दोनों हाथ
एकायनम्=एकायन हैं
एवम्=इसी प्रकार
सर्वेषाम्=सब
आनन्दानाम्=आनन्दों का
उपस्थः=उपस्थ इन्द्रिय
एकायनम्=एकायन है
एवम्=इसीप्रकार
सर्वेषाम्=सब
विसर्गाणाम्=त्यागों का
पायुः=पायु इन्द्रिय
एकायनम्=एकायन है
एवम्=इसी प्रकार
सर्वेषाम्=सब
अध्वनाम्=मार्गों का
पादौ=दोनों पाद
एकायनम्=एकायन हैं
एवम्=इसी प्रकार
सर्वेषाम्=सब
वेदानाम्=वेदों का
वाक्=वाणी
एकायनम्=एकायन है.
+ तथा एव=इसी प्रकार
+ अयम्=यह जीवात्मा
+ सर्वेषाम्=सब का
+ एकायनम्=एकायन है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! याज्ञवल्क्य महाराज फिर भी दृष्टान्त देकर मैत्रेयी महारानी को समझाते हैं, हे प्रियमैत्रेयि ! जैसे सब जलों की स्थिति की एक जगह समुद्र है, जैसे सब स्पर्शों के रहने की एक जगह त्वचा है, जैसे सब गन्धों के रहने की एक जगह दोनों नासिका हैं, जैसे सब रसों के रहने की एक जगह जिह्वा है, जैसे सब रूपों के रहने की एक जगह नेत्र है, जैसे सब शब्दों के रहने की एक जगह श्रोत्र इन्द्रिय है, जैसे सब संकल्पों के रहने की एक जगह मन है, जैसे सब ज्ञानों के रहने की एक जगह हृदय है, जैसे सब कर्मों के रहने की एक जगह दोनों हाथ हैं, जैसे सब आनन्दों के रहने की एक जगह उपस्थ इन्द्रिय है, जैसे सब त्यागों के रहने की एक जगह गुदा इन्द्रिय है, जैसे सब मार्गों के रहने की जगह दोनों पाद हैं, जैसे सब

वेदों के रहने की एक जगह वाणी है, वैसेही हे मैत्रेयि ! सब के रहने का एक स्थान जीवात्मा है ॥ ११ ॥

मन्त्रः १२

स यथा सैन्धवखिल्य उदके प्रास्त उदकमेवानुविलीयेत न हास्योद्ग्रहणायेव स्याद् यतो यतस्त्वाददीत लवणमेवैवं वा अर इदं महद्भूतमनन्तमपारं विज्ञानघन एव एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानु विनश्यति न प्रेत्य संज्ञास्तीत्यरे ब्रवीमीति होवाच याज्ञवल्क्यः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यथा, सैन्धवखिल्यः, उदके, प्रास्तः, उदकम्, एव, अनु, विलीयेत, न, ह, अस्य, उद्ग्रहणाय, इव, स्यात्, यतः, यतः, तु, आददीत, लवणम्, एव, एवम्, वै, अरे, इदम्, महत्, भूतम्, अनन्तम्, अपारम्, विज्ञानघनः, एव, एतेभ्यः, भूतेभ्यः, समुत्थाय, तानि, एव, अनु, विनश्यति, न, प्रेत्य, संज्ञा, अस्ति, इति, अरे, ब्रवीमि, इति, ह, उवाच, याज्ञवल्क्यः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ अत्र	इस विषे
सः	प्रसिद्ध
+ दृष्टान्तः	दृष्टान्त है कि
यथा	जैसे
उदके	जल में
प्रास्तः	डाला हुआ
सैन्धवखिल्यः	सैन्धव नमक का डला
उदकम्-अनु	जल में
एव	ही
विलीयेत	गलकर लय होजाता है
+ च	और
+ पुनः	फिर
अस्य	उसके
उद्ग्रहणाय	बाहर निकालने के लिये
+ कश्चित् उपायः	कोई उपाय
न ह इव	निश्चय करके नहीं
स्यात्	होसक्ता है
+ च	और
यतः यतः	जहां जहां से
आददीत	ग्रहण करोगे
+ ततः + ततः	वहां वहां से
लवणम् एव	नमकही को
+ आदत्से	पावोगे
एवम् + एव	इसी प्रकार
अरे	हे प्रियमैत्रेयि !
वै	निस्संदेह
इदम्	यह

महत् भूतम्=महान् आत्मा
अनन्तम्=अनन्त
\+ च=और
अपारम्=अपार है
\+ च=और
एव=निश्चय करके
विज्ञानघनः=विज्ञानरूप है
\+ अयम्=यह
एतेभ्यः=इन
भूतेभ्यः=भूतों से
समुत्थाय=उठ कर
तानि=उन्हीं के
अनु एव=अन्तरही
विनश्यति=जलसैन्धववत् अदृष्ट होजाता है
\+ पुनः=फिर
प्रेत्य=मरने पर
संज्ञा=उसका नाम
न=नहीं
अस्ति=रहता है
अरे=हे प्रियमैत्रेयि !
इति=ऐसा
\+ ते=तेरे लिये
ब्रवीमि=मैं कहताहूं
\+ इति=ऐसा
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य
ह=निश्चय के साथ
उवाच=कहते भये

भावार्थ ।

हे सौम्य ! याज्ञवल्क्य महाराज अपनी प्रियपत्नी को दृष्टान्त देकर समझाते हैं, यह कहते हुये कि जैसे जलमें डाला हुआ नमक का डला गल कर लय होजाता है, और उसके वाहर निकालने के लिये कोई उपाय नहीं होसक्ता है. और जहां कहीं से यानी ऊपर नीचे, दहिने बायें, मध्य से पानी को जो कोई चखता है तो नमकही नमक पाता है. उसी प्रकार हे मैत्रेयि ! यह जीवात्मा निस्संदेह इन पांच तत्त्वों में और उनके कार्यों में अनन्त और अपाररूप से स्थित है, यह विज्ञानरूप है, इन भूतों से उठकर इन्हीं में जलसैन्धववत् अदृष्ट होजाता है, और फिर शरीर से पृथक् होने पर उस जीवात्मा का कोई नाम नहीं रहता है ॥ १२ ॥

मन्त्रः १३

सा होवाच मैत्रेय्यत्रैव मा भगवानमूमुहन्न प्रेत्य संज्ञाऽस्तीति स होवाच न वा अरेऽहं मोहं ब्रवीम्यलं वा अर इदं विज्ञानाय ॥

पदच्छेदः ।

सा, ह, उवाच, मैत्रेयी, अत्र, एव, मा, भगवान्, अमूमुहत्, न, प्रेत्य, संज्ञा, अस्ति, इति, सः, ह, उवाच, न, वै, अरे, अहम्, मोहम्, ब्रवीमि, अलम्, वै, अरे, इदम्, विज्ञानाय ॥

अन्वयः पदार्थाः	अन्वयः पदार्थाः
सा=वह	सः=वह
ह=प्रसिद्ध	ह=प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य
मैत्रेयी=मैत्रेयी	उवाच=बोले कि
उवाच=बोली कि	अहम्=मैं
+ यत्=जो	अरे=हे प्रियमैत्रेयि !
भगवान्=आपने	वै=निश्चय करके
+ उक्तम्=कहा है कि	मोहम्=भ्रम में डालने वाली बात को
प्रेत्य=मरने पर	न=नहीं
संज्ञा=उस महान् आत्मा का नाम	ब्रवीमि=कहता हूं
न=नहीं	+ किन्तु=किन्तु
अस्ति=रहजाता है	अरे=हे मैत्रेयि !
अत्र एव=इसी विषय में ही	इदम्=मेरा यह कहना
+ भगवान्=आपने	अलम्=पूर्ण
मा=मुझको	विज्ञानाय=ज्ञानके लिये
अमूमुहत्=भ्रममें डाल दिया है	वै=ही है
+ तदा=तब	

भावार्थ ।

हे प्रियदर्शन ! याज्ञवल्क्य महाराज के वचन को सुनकर मैत्रेयी बोली कि जो आपने मुझसे कहा कि मरने पर इस जीवात्मा का कोई नाम नहीं रह जाता है, यह सुनकर मैं बड़ी भ्रान्ति को प्राप्त हुई हूं, ऐसा मालूम होताहै कि आपने मुझे भ्रम में डाल दिया है, तब वह प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य महाराज बोले कि हे प्रियमैत्रेयि ! ऐसा मत कहो, जो कुछ मैंने तुमसे कहा, वह यथार्थ कहा है, मेरा उपदेश

तुम्हारे प्रति भ्रम से निकालने का है न कि भ्रम में डालने का. जो कुछ मैंने तुमसे कहा है, वह तुम्हारे पूर्णज्ञान के लिये कहा है ॥ १३ ॥

मन्त्रः १४

यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं जिघ्रति तदितर इतरं पश्यति तदितर इतरᳫं शृणोति तदितर इतरमभिवदति तदितर इतरं मनुते तदितर इतरं विजानाति यत्र वा अस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं जिघ्रेत्तत्केन कं पश्येत्तत्केन कᳫं शृणुयात्तत्केन कमभिवदेत्तत्केन कं मन्वीत तत्केन कं विजानीयाद् येनेदᳫं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयाद्विज्ञातारमरे केन विजानीयादिति ॥

इति चतुर्थं ब्राह्मणम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

यत्र, हि, द्वैतम्, इव, भवति, तत्, इतरः, इतरम्, जिघ्रति, तत्, इतरः, इतरम्, पश्यति, तत्, इतरः, इतरम्, शृणोति, तत्, इतरः, इतरम्, अभिवदति, तत्, इतरः, इतरम्, मनुते, तत्, इतरः, इतरम्, विजानाति, यत्र, वै, अस्य, सर्वम्, आत्मा, एव, अभूत्, तत्, केन, कम्, जिघ्रेत्, तत्, केन, कम्, पश्येत्, तत्, केन, कम्, शृणुयात्, तत्, केन, कम्, अभिवदेत्, तत्, केन, कम्, मन्वीत, तत्, केन, कम्, विजानीयात्, येन, इदम्, सर्वम्, विजानाति, तम्, केन, विजानीयात्, विज्ञातारम्, अरे, केन, विजानीयात्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
+ अरे मैत्रेयि	हे प्रियमैत्रेयि !	जिघ्रति	सूंघता है
यत्र	जहां	तत्	वहां
हि	निश्चय करके	इतरः	इतर
द्वैतम् इव	द्वैत के समान भावना	इतरम्	इतर को
भवति	होती है	पश्यति	देखता है
तत्	तहां	तत्	वहां
इतरः	और	इतरः	और
इतरम्	और को	इतरम्	और को

शृणोति=सुनता है
तत्=वहां
इतरः=और
इतरम्=और को
अभिवदति=कहता है
तत्=वहां
इतरः=और
इतरम्=और को
मनुते=समझता है
तत्=वहां
इतरः=और
इतरम्=और को
विजानाति=जानता है
+ परन्तु=पर
यत्र=जहां
वै=निश्चय करके
सर्वम्=सब
अस्य=इस ब्रह्मवित् पुरुष का
आत्मा एव=आत्माही
अभूत्=होगया है
तत्=तहां
केन=किस करके
कम्=किसको
जिघ्रेत्=सूंघता है
तत्=तहां
केन=किस करके
कम्=किसको
पश्येत्=देखता है
तत्=तहां
केन=किस करके
कम्=किसको
शृणुयात्=सुनता है
तत्=तहां
केन=किस करके
कम्=किसको
अभिवदेत्=कहता है
तत्=तहां
केन=किस करके
कम्=किसको
मन्वीत=मानता है
तत्=तहां
केन=किस करके
कम्=किसको
विजानीयात्=जानता है
येन=जिस आत्मा करके
इदम्=इस
सर्वम्=सबको
+ पुरुषः=पुरुष
विजानाति=जानता है
तम्=उस आत्मा को
केन=किस करके
विजानीयात्=कोई जानसक्ता है
अरे=हे प्रियमैत्रेयि !
विज्ञातारम्=विज्ञाता को
केन=किस साधन करके
विजानीयात् इति=कोई जानसक्ता है

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज फिर भी अपनी प्रिया मैत्रेयी से कहते हैं

कि, हे मैत्रेयि ! जहां द्वैत की भावना होती है वहांही इतर इत रको सूंघता है, वहां ही इतर इतर को देखता है, वहां ही और और को सुनता है, वहां ही और और को कहता है, वहां ही और और को समझता है, वहां ही इतर इतर को जानता है. हे प्रियमैत्रेयि ! जहां सब आत्मा ही होगया है, वहां किस करके किसको कौन सूंघता है, वहां किस करके किसको कौन देखता है, वहां किस करके किसको कौन सुनता है, वहां किस करके किसको कौन कहता है, वहां किस करके किसको कौन समझता है, वहां किस करके किसको कौन जानता है, जिस आत्मा करके इस सबको पुरुष जानता है उस आत्मा को किस करके कौन जानसक्ता है ? ज्ञानस्वरूप आत्मा को किस साधन करके कोई ग्रहण कर सक्ता है ? आत्मा ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप होने के कारण, अपने को ऐसा नहीं जान सक्ता है ऐसी अवस्थापर इस जीवात्मा के मरने पर कुछ नहीं रहजाताहै ॥ १४ ॥

इति चतुर्थं ब्राह्मणम् ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

इयं पृथिवी सर्वेषां भूतानां मध्वस्यै पृथिव्यै सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्यां पृथिव्यां तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मꣳ शारीरस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदꣳ सर्वम् ॥

पदच्छेदः ।

इयम्, पृथिवी, सर्वेषाम्, भूतानाम्, मधु, अस्यै, पृथिव्यै, सर्वाणि, भूतानि, मधु, यः, च, अयम्, अस्याम्, पृथिव्याम्, तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः, यः, च, अयम्, अध्यात्मम्, शारीरः, तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः, अयम्, एव, सः, यः, अयम्, आत्मा, इदम्, अमृतम्, इदम्, ब्रह्म, इदम्, सर्वम् ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
इयम्	यह	अध्यात्मम्	हृदय में
पृथिवी	पृथ्वी	अयम्	जो यह
सर्वेषाम्	सब	शारीरः	शरीर उपाधिवाला
भूतानाम्	पञ्च महाभूतों का	तेजोमयः	प्रकाशस्वरूप
मधु	सार है यानी सबके रस से संयुक्त है	अमृतमयः	अमरधर्मी
+ च	और	पुरुषः	पुरुष है
अस्यै	इस	अयम्	यही हृदयस्थ पुरुष
पृथिव्यै	पृथ्वी का	एव	निश्चय करके
मधु	सार	सः	वही पृथ्वीसम्बन्धी पुरुष है
सर्वाणि	सब	च	और
भूतानि	पांचों महाभूत हैं	यः	जो
च	और	अयम्	यह हृदयगत
अस्याम्	इस	आत्मा	आत्मा है
पृथिव्याम्	पृथिवी में	इदम्	यही
यः	जो	अमृतम्	अमर है
अयम्	यह	इदम्	यही
तेजोमयः	प्रकाशस्वरूप	ब्रह्म	ब्रह्म है
अमृतमयः	अमरधर्मी	इदम्	यही
पुरुषः	पुरुष है	सर्वम्	सर्वशक्तिमान् है
च	और		

भावार्थ ।

हे सौम्य! याज्ञवल्क्य महाराज मैत्रेयी देवी से फिर कहते हैं कि हे देवि! यह पृथिवी सब भूतों का सार है, यानी सब भूतों के रससे संयुक्त है, और इस पृथ्वीका सार पञ्चमहाभूत हैं, यानी इसका भाग और तत्त्वों में भी स्थित है, जैसे औरों का भाग इसमें स्थित है. हे देवि! इस पृथ्वी में जो प्रकाशस्वरूप, अमरधर्मी पुरुष है. वही हृदयस्थ, शरीर उपाधिवाला, प्रकाशस्वरूप, अमरधर्मी पुरुष है, यानी दोनों एकही हैं. और जो हृदयस्थ पुरुष है यही अमर है, यही ब्रह्म है, यही सर्वशक्तिमान् है ॥ १ ॥

मन्त्रः २

इमा आपः सर्वेषां भूतानां मध्वासामपाᳬ सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमास्वप्सु तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मᳬ रैतसस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदᳬ सर्वम् ॥

पदच्छेदः ।

इमाः, आपः, सर्वेषाम्, भूतानाम्, मधु, आसाम्, अपाम्, सर्वाणि, भूतानि, मधु, यः, च, अयम्, आसु, अप्सु, तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः, यः, च, अयम्, अध्यात्मम्, रैतसः, तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः, अयम्, एव, सः, यः, अयम्, आत्मा, इदम्, अमृतम्, इदम्, ब्रह्म, इदम्, सर्वम् ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
इमाः=यह		पुरुषः=पुरुष है	
आपः=जल		च=और	
सर्वेषाम्=सब		अध्यात्मम्=हृदय में	
भूतानाम्=महाभूतों का		यः=जो	
मधु=सार है		अयम्=यह	
+ च=और		रैतसः=वीर्यसम्बन्धी	
आसाम्=इन		तेजोमयः=प्रकाशरूप	
अपाम्=जलों का		अमृतमयः=अमरधर्मी	
मधु=सार		पुरुषः=पुरुष है	
सर्वाणि=सब		अयम्=यही हृदयगत पुरुष	
भूतानि=महाभूत हैं		एव=निश्चय करके	
आसु=इन		सः=वह है जो जलादि अन्तर्गत है	
अप्सु=जलों में		च=और	
यः=जो		यः=जो	
अयम्=यह		अयम्=यह	
तेजोमयः=प्रकाशरूप		आत्मा=हृदयस्थ आत्मा है	
अमृतमयः=अमरधर्मी			

इदम्=यही	ब्रह्म=ब्रह्म है
अमृतम्=अमरधर्मी है	इदम्=यही
इदम्=यही	सर्वम्=सर्वशक्तिमान् है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! याज्ञवल्क्य महाराज मैत्रेयी देवी से फिर कहते हैं कि, हे प्रियमैत्रेयि ! जल सब भूतों का सार है, और जलका सार सब भूत हैं, और हे देवि ! जो जल विषे प्रकाशस्वरूप अमरधर्मी पुरुष है, वही हृदयगत वीर्यसम्बन्धी प्रकाशस्वरूप अमरधर्मी पुरुष है, यानी दोनों एकही हैं, और जो हृदयस्थ पुरुष है, यही अमर है, अजर है, यही ब्रह्म है, यही सर्वशक्तिमान् है ॥ २ ॥

मन्त्रः ३

अयमग्निः सर्वेषां भूतानां मध्वस्याग्नेः सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन्नग्नौ तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं वाङ्मयस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदꣳ सर्वम् ॥

पदच्छेदः ।

अयम्, अग्निः, सर्वेषाम्, भूतानाम्, मधु, अस्य, अग्नेः, सर्वाणि, भूतानि, मधु, यः, च, अयम्, अस्मिन्, अग्नौ, तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः, यः, च, अयम्, अध्यात्मम्, वाङ्मयः, तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः, अयम्, एव, सः, यः, अयम्, आत्मा, इदम्, अमृतम्, इदम्, ब्रह्म, इदम्, सर्वम् ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
अयम्=यह		अस्य=इस	
अग्निः=अग्नि		अग्नेः=अग्नि का	
सर्वेषाम्=सब		सर्वाणि=सब	
भूतानाम्=महाभूतों का		भूतानि=महाभूत	
मधु=सार है		मधु=सार हैं	
+ च=और		च=और	

यः=जो
अयम्=यह
अस्मिन्=इस
अग्नौ=अग्नि में
तेजोमयः=प्रकाशरूप
अमृतमयः=अमरधर्मी
पुरुषः=पुरुष है
च=और
यः=जो
अयम्=यह
अध्यात्मम्=शरीर में
वाङ्मयः=वाणीमय
तेजोमयः=प्रकाशस्वरूप
अमृतमयः=अमर
पुरुषः=पुरुष है
अयम् एव=यही वाणी में रहने वाला
सः=वह पुरुष है जो अग्नि विषे है
+ च=और
यः=जो
अयम्=यह
आत्मा=वाणीमय आत्मा है
इदम्=यही
अमृतम्=अमर है
इदम्=यही
ब्रह्म=ब्रह्म है
इदम्=यही
सर्वम्=सर्वशक्तिमान् है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! याज्ञवल्क्य महाराज फिर मैत्रेयी देवी से कहते हैं कि यह प्रत्यक्ष अग्नि सब महाभूतों का सार है, और इस अग्नि का सार सब महाभूत हैं, यानी जैसे इस अग्नि में अपने भाग के सिवाय आकाश, वायु, जल, पृथ्वी का भाग भी है, वैसेही इस अग्नि का अंश उन चारों में भी प्रवेश है, और जो इस अग्नि विषे प्रकाशस्वरूप अमरधर्मी पुरुष है और जो वाङ्मय, तेजोमय, अमृतमय पुरुष है, वे दोनों एकही हैं. हे देवि ! यही वाणी में रहनेवाला पुरुष अजन्मा है, अमर है, ब्रह्म है और सर्वशक्तिमान् है ॥ ३ ॥

मन्त्रः ४

अयं वायुः सर्वेषां भूतानां मध्वस्य वायोः सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन्वायौ तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं प्राणस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदꣳ सर्वम् ॥

पदच्छेदः ।

अयम्, वायुः, सर्वेषाम्, भूतानाम्, मधु, अस्य, वायोः, सर्वाणि, भूतानि, मधु, यः, च, अयम्, अस्मिन्, वायौ, तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः, यः, च, अयम्, अध्यात्मम्, प्राणः, तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः, अयम्, एव, सः, यः, अयम्, आत्मा, इदम्, अमृतम्, इदम्, ब्रह्म, इदम्, सर्वम् ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
अयम्=यह		यः=जो	
वायुः=वायु		अध्यात्मम्=शरीर में	
सर्वेषाम्=सब		अयम्=यह	
भूतानाम्=महाभूतों का		प्राणः=प्राणरूप	
मधु=सार है		तेजोमयः=प्रकाशात्मक	
+ तथा=तैसेही		अमृतमयः=अमर	
अस्य=इस		पुरुषः=पुरुष है	
वायोः=वायु का		अयम्=यही हृदयगत पुरुष	
सर्वाणि=सब		एव=निश्चय करके	
भूतानि=महाभूत		सः=वह पुरुष है जो वायु विषे रहनेवाला है	
मधु=सार हैं		यः=जो	
च=और		अयम्=यह हृदयगत	
यः=जो		आत्मा=आत्मा (पुरुष है)	
अस्मिन्=इस		इदम्=यही	
वायौ=वायु विषे		अमृतम्=अमरधर्मा है	
अयम्=यह		इदम्=यही	
तेजोमयः=प्रकाशस्वरूप		ब्रह्म=ब्रह्म है	
अमृतमयः=अमरधर्मा		इदम्=यही	
पुरुषः=पुरुष है		सर्वम्=सर्वशक्तिमान् है	
च=और			

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि हे मैत्रेयि, देवि ! जैसे यह प्रत्यक्ष वायु सब महाभूतों का सार है वैसेही इस वायु का सब महाभूत सार

हैं यानी इसका सूक्ष्म अंश सब में प्रवेश है अथवा कारण कार्य एकही हैं और हे मैत्रेयि ! जो वायु विषे तेजोमय, अमृतमय पुरुष है और जो हृदय में और प्राणइन्द्रियव्यापी, प्रकाशात्मक, अमरधर्मी पुरुष है ये दोनों निश्चय करके एकही हैं. इसमें उसमें कोई भेद नहीं है. और हे देवि ! जो यह हृदयगत पुरुष है अथवा आत्मा है, यही अमरधर्मी है, यही ब्रह्म है, यही सर्वशक्तिमान् है ॥ ४ ॥

मन्त्रः ५

अयमादित्यः सर्वेषां भूतानां मध्वस्यादित्यस्य सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन्नादित्ये तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं चाक्षुषस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदꣳ सर्वम् ॥

पदच्छेदः ।

अयम्, आदित्यः, सर्वेषाम्, भूतानाम्, मधु, अस्य, आदित्यस्य, सर्वाणि, भूतानि, मधु, यः, च, अयम्, अस्मिन्, आदित्ये, तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः, यः, च, अयम्, अध्यात्मम्, चाक्षुषः, तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः, अयम्, एव, सः, यः, अयम्, आत्मा, इदम्, अमृतम्, इदम्, ब्रह्म, इदम्, सर्वम् ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
अयम्=यह		भूतानि=भूत हैं	
आदित्यः=सूर्य		यः=जो	
सर्वेषाम्=सब		अस्मिन्=इस	
भूतानाम्=भूतों का		आदित्ये=सूर्य विषे	
मधु=सार है		अयम्=यह	
+ च=और		तेजोमयः=प्रकाशस्वरूप	
अस्य=इस		अमृतमयः=अमरधर्मी	
आदित्यस्य=सूर्य का		पुरुषः=पुरुष है	
मधु=सार		च=और	
सर्वाणि=सब		यः=जो	

अध्यात्मम्=शरीर में
अयम्=यह
चाक्षुषः=नेत्रसम्बन्धी
तेजोमयः=प्रकाशरूप
अमृतमयः=अमरधर्मवाला
पुरुषः=पुरुष है
अयम्=यही
एव=निश्चय करके
सः=वह पुरुष है जो सूर्य विषे है
च=और
यः=जो
अयम्=यह
आत्मा=नेत्रगत आत्मा है
इदम्=यही
अमृतम्=अमर है
इदम्=यही
ब्रह्म=ब्रह्म है
इदम्=यही
सर्वम्=सब कुछ है यानी सर्वशक्तिमान् है

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि हे मैत्रेयि, देवि ! यह दृश्यमान सूर्य सब भूतों का सार है, और इस सूर्य का सार सब भूत हैं, यानी जैसे ये सब भूतों में प्रवेशित हैं, वैसेही इसमें सब भूत सूक्ष्म अंशों से प्रवेशित हैं, अथवा कारण कार्य एकही हैं. और जो तेजोमय, अमृतमय पुरुष है, और जो यह नेत्रविषे प्रकाशस्वरूप अमरधर्मवाला पुरुष है, ये दोनों एकही हैं. और हे मैत्रेयि ! यही नेत्र विषे स्थित पुरुष आत्मा अमरधर्मी है, यही ब्रह्म है, यही सर्वशक्तिमान् है, यही सब का अधिष्ठान है ॥ ५ ॥

मन्त्रः ६

इमा दिशः सर्वेषां भूतानां मध्वासां दिशाᳬ सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमासु दिक्षु तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मᳬ श्रौत्रः प्रातिश्रुत्कस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदᳬ सर्वम् ॥

पदच्छेदः ।

इमाः, दिशः, सर्वेषाम्, भूतानाम्, मधु, आसाम्, दिशाम्, सर्वाणि, भूतानि, मधु, यः, च, अयम्, आसु, दिक्षु, तेजोमयः,

अमृतमयः, पुरुषः, यः, च, अयम्, अध्यात्मम्, श्रौत्रः, प्रातिश्रुत्कः, तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः, अयम्, एव, सः, यः, अयम्, आत्मा, इदम्, अमृतम्, इदम्, ब्रह्म, इदम्, सर्वम् ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
इमाः=ये		अध्यात्मम्=शरीर में	
दिशः=दिशायें		अयम्=यह	
सर्वेषाम्=सब		श्रौत्रः=कर्णव्यापी	
भूतानाम्=प्राणियों को		प्रातिश्रुत्कः=प्रतिध्वनिरूप	
मधु=प्रिय हैं		तेजोमयः=तेजोमय	
च=और		अमृतमयः=अमृतमय	
आसाम्=इन		पुरुषः=पुरुष है	
दिशाम्=दिशाओं को		अयम् एव=यही यानी कर्ण-व्यापी पुरुष	
सर्वाणि=सब		सः=वह दिशा व्यापी पुरुष है	
भूतानि=प्राणी		च=और	
मधु=प्रिय हैं		यः=जो	
+ च=और		अयम्=यह कर्णव्यापी	
यः=जो		आत्मा=आत्मा है	
आसु=इन		इदम्=यही	
दिक्षु=दिशाओं में		अमृतम्=अमरधर्मी है	
अयम्=यह		इदम्=यही	
तेजोमयः=प्रकाशस्वरूप		ब्रह्म=ब्रह्म है	
अमृतमयः=अमरधर्मी		इदम्=यही	
पुरुषः=पुरुष है		सर्वम्=सर्वशक्तिमान् है	
च=और			
यः=जो			

भावार्थ ।

हे प्रियदर्शन ! याज्ञवल्क्य महाराज मैत्रेयी देवी से कहते हैं कि, ये दिशायें सब प्राणियों को प्रिय हैं और इन दिशाओं को सब प्राणी प्रिय हैं क्योंकि विना दिशा के किसी प्राणी का आना जाना नहीं होसक्ता है. सब कार्य दिशा के आधीन हैं. कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, मन,

बुद्धि, चित्त, अहंकार और पांचों प्राण ये सब दिशा केही आधीन हैं, विना दिशा की सहायता के किसी कार्य के करने में असमर्थ हैं. इस लिये दिशायें सब प्राणियों को प्रिय हैं और जो वस्तु प्रिय होती है उसी को लोग अपने में रखते हैं और चूंकि पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दिशाओं में सब चराचर सृष्टि व्याप्त है इस लिये दिशा को सब प्रिय हैं, हे देवि ! जो प्रकाशस्वरूप, अमरधर्मी पुरुष इन दिशाओं में है और जो शरीर में करणव्यापी, प्रतिध्वनिव्यापी, तेजोमय, अमृतमय पुरुष है वे दोनों एकही हैं. और जो करणव्यापी, प्रतिध्वनि-व्यापी पुरुष है, यही ब्रह्म है, यही अमरधर्मा है, यही सर्वव्यापी है, यही सर्वशक्तिमान् है, यही सब का अधिष्टान है ॥ ६ ॥

मन्त्रः ७

अयं चन्द्रः सर्वेषां भूतानां मध्वस्य चन्द्रस्य सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिँश्चन्द्रे तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं मानसस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदꣳ सर्वम् ॥

पदच्छेदः ।

अयम्, चन्द्रः, सर्वेषाम्, भूतानाम्, मधु, अस्य, चन्द्रस्य, सर्वाणि, भूतानि, मधु, यः, च, अयम्, अस्मिन्, चन्द्रे, तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः, यः, च, अयम्, अध्यात्मम्, मानसः, तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः, अयम्, एव, सः, यः, अयम्, आत्मा, इदम्, अमृतम्, इदम्, ब्रह्म, इदम्, सर्वम् ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
अयम्=यह		अस्य=इस	
चन्द्रः=चन्द्रमा		चन्द्रस्य=चन्द्र को	
सर्वेषाम्=सब		सर्वाणि=सब	
भूतानाम्=प्राणियों को		भूतानि=प्राणी	
मधु=प्रिय है		मधु=प्रिय हैं	

+ च=और	पुरुषः=पुरुष है
यः=जो	अयम् एव=यही मनसम्बन्धी पुरुष
अस्मिन्=इस	सः=वह चन्द्रमासम्बन्धी पुरुष है
चन्द्रे=चन्द्रमा में	च=और
अयम्=यह	यः=जो
तेजोमयः=प्रकाशरूप	अयम्=यह
अमृतमयः=अमरधर्मी	आत्मा=मनोव्यापी आत्मा है
पुरुषः=पुरुष है	इदम्=यही
च=और	अमृतम्=अमर है
यः=जो	इदम्=यही
अयम्=यह	ब्रह्म=ब्रह्म है
अध्यात्मम्=इस शरीर में	इदम्=यही
मानसः=मनोव्यापी	सर्वम्=सर्वशक्तिमान् है
तेजोमयः=तेजोमय	
अमृतमयः=अमृतमय	

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि हे मैत्रेयि, देवि ! यह चन्द्रमा सब प्राणियों को प्रिय है, और इस चन्द्रमा को सब प्राणी प्रिय हैं, जो प्रिय होता है उसी की तरफ लोग देखा करते हैं, सब प्राणी चन्द्रमा की तरफ देखा करते हैं, इस लिये चन्द्रमा सबको प्रिय है, और चन्द्रमा भी सब की तरफ देखा करता है, इस लिये सब चन्द्रमा को प्यारे हैं, हे देवि ! जो चन्द्रमा विषे प्रकाशस्वरूप, अमरधर्मी पुरुष है और जो इस शरीर में मनोव्यापी, तेजोमय, अमृतमय पुरुष है ये दोनों एकही हैं, और जो मनोव्यापी आत्मा है, यही अमर है, यही ब्रह्म है, यही सर्वशक्तिमान् है ॥ ७ ॥

मन्त्रः ८

इयं विद्युत्सर्वेषां भूतानां मध्वस्यै विद्युतः सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्यां विद्युति तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं

तैजसस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदꣳ सर्वम् ॥

पदच्छेदः।

इयम्, विद्युत्, सर्वेषाम्, भूतानाम्, मधु, अस्यै, विद्युतः, सर्वाणि, भूतानि, मधु, यः, च, अयम्, अस्याम्, विद्युति, तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः, यः, च, अयम्, अध्यात्मम्, तैजसः, तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः, अयम्, एव, सः, यः, अयम्, आत्मा, इदम्, अमृतम्, इदम्, ब्रह्म, इदम्, सर्वम् ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
इयम्=यह		यः=जो	
विद्युत्=बिजली		अध्यात्मम्=शरीर में	
सर्वेषाम्=सब		अयम्=यह	
भूतानाम्=प्राणियों को		तैजसः=त्वचासम्बन्धी	
मधु=प्रिय है		तेजोमयः=प्रकाशरूप	
+ च=और		अमृतमयः=अमरधर्मी	
अस्यै=इस		पुरुषः=पुरुष है	
विद्युतः=बिजली को		अयम् एव=यही त्वचासम्बन्धी पुरुष निश्चय करके	
सर्वाणि=सब		सः=वह है यानी विद्युद्व्यापी पुरुष है	
भूतानि=प्राणी		यः=जो	
मधु=प्रिय हैं		अयम्=यही त्वचासम्बन्धी	
च=और		आत्मा=आत्मा है	
यः=जो		इदम्=यही	
अस्याम्=इस		अमृतम्=अमर है	
विद्युति=बिजली में		इदम्=यही	
अयम्=यह		ब्रह्म=ब्रह्म है	
तेजोमयः=प्रकाशस्वरूप		इदम्=यही	
अमृतमयः=अमरधर्मी		सर्वम्=सर्वशक्तिमान् है	
पुरुषः=पुरुष है			
च=और			

भावार्थ।

याज्ञवल्क्य महाराज मैत्रेयी देवी से कहते हैं कि हे देवि ! ये वक्ष्य-

माण विजली सब प्राणियों को प्रिय है और इस बिजली को सब प्राणी प्रिय हैं, जब वर्षा काल विषे काले बादलों में बिजली चमकती है तब सब को बड़ी प्रिय लगती है, जो वह सब के सामने बार बार प्रकाशित होती है उसी से मालूम होता है कि सब उस को अति प्रिय हैं, हे देवि ! जो प्रकाशस्वरूप, अमरधर्मी पुरुष इस बिजली विषे है, वही प्रकाशस्वरूप, अमरधर्मी पुरुष इस शरीर की त्वचा में है, यानी दोनों एकही हैं, और हे देवि ! जो यह त्वचासम्बन्धी पुरुष है, यही आत्मा है, यही अमर है, यही ब्रह्म है, यही सर्वशक्तिमान् है ॥ ८ ॥

मन्त्रः ९

अयꣳ स्तनयित्नुः सर्वेषां भूतानां मध्वस्य स्तनयित्नोः सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन्स्तनयित्नौ तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मꣳ शाब्दः सौवरस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदꣳ सर्वम् ॥

पदच्छेदः ।

अयम्, स्तनयित्नुः, सर्वेषाम्, भूतानाम्, मधु, अस्य, स्तनयित्नोः, सर्वाणि, भूतानि, मधु, यः, च, अयम्, अस्मिन्, स्तनयित्नौ, तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः, यः, च, अयम्, अध्यात्मम्, शाब्दः, सौवरः, तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः, अयम्, एव, सः, यः, अयम्, आत्मा, इदम्, अमृतम्, इदम्, ब्रह्म, इदम्, सर्वम् ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
अयम्=यह		अस्य=इस	
स्तनयित्नुः=मेघ		स्तनयित्नोः=मेघ का	
सर्वेषाम्=सब		सर्वाणि=सब	
भूतानाम्=भूतों का		भूतानि=भूत	
मधु=सार है अथवा सब प्राणियों को प्रिय है		मधु=सार हैं अथवा इस मेघ को सब प्राणी प्रिय हैं	
+ च=और		च=और	

यः=जो
अस्मिन्=इस
स्तनयित्नौ=मेघ में
अयम्=यह
तेजोमयः=प्रकाशरूप
अमृतमयः=अमरधर्मी
पुरुषः=पुरुष है
अयम् एव=यही
सः=वह है
यः=जो
अध्यात्मम्=देह विषे
अयम्=यह
शाब्दः=शब्दव्यापी
सौवरः=स्वरव्यापी
तेजोमयः=प्रकाशरूप
अमृतमयः=अमरधर्मी
पुरुषः=पुरुष है
च=और
यः=जो
अयम्=यह शब्द और स्वर व्यापी
आत्मा=आत्मा है
इदम्=यही
अमृतम्=अमृतमय है
इदम्=यही
ब्रह्म=ब्रह्म है
इदम्=यही
सर्वम्=सर्वशक्तिमान् है

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि हे मैत्रेयि, देवि ! नाद करनेवाला मेघ सब भूतों का सार है, अथवा सब प्राणियों को प्रिय है, और इस मेघका सार सब भूत हैं, अथवा इस मेघको सब मनुष्यादि प्राणी प्रिय हैं, और हे मैत्रेयि ! इस मेघविषे जो यह प्रकाशस्वरूप अमरधर्मी पुरुष है, यही वह है जो देहविषे स्वर्गव्यापी अथवा स्वरव्यापी, तेजोमय, अमृतरूप पुरुष है, यानी दोनों में कोई भेद नहीं है, और हे मैत्रेयि ! जो इस देह में शब्दव्यापी और स्वरव्यापी पुरुष है वही अमररूप है, यही सर्वशक्तिमान् है, यही तुम्हारा रूप है ॥ ९ ॥

मन्त्रः १०

अयमाकाशः सर्वेषां भूतानां मध्वस्याऽऽकाशस्य सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन्नाकाशे तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मꣳ हृद्याकाशस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदꣳ सर्वम् ॥

पदच्छेदः ।

अयम्, आकाशः, सर्वेषाम्, भूतानाम्, मधु, अस्य, आकाशस्य, सर्वाणि, भूतानि, मधु, यः, च, अयम्, अस्मिन्, आकाशे, तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः, यः, च, अयम्, अध्यात्मम्, हृदि, आकाशः, तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः, अयम्, एव, सः, यः, अयम्, आत्मा, इदम्, अमृतम्, इदम्, ब्रह्म, इदम्, सर्वम् ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
अयम्=यह		अयम् एव=यही	
आकाशः=आकाश		सः=वह है	
सर्वेषाम्=सब		यः=जो	
भूतानाम्=भूतों का		अध्यात्मम्=देह में	
मधु=सार है अथवा सब प्राणियों को प्रिय है		हृदि=हृदय विषे	
अस्य=इस		अयम्=यह	
आकाशस्य=आकाश के		आकाशः=आकाशव्यापी	
सर्वाणि=सब		तेजोमयः=तेजोमय	
भूतानि=भूत		अमृतमयः=अमृतमय	
मधु=सार हैं अथवा आकाश को सब प्राणी प्रिय हैं		पुरुषः=पुरुष है	
च=और		च=और	
यः=जो		यः=जो	
अस्मिन्=इस		अयम्=यह हृदयसम्बन्धी	
आकाशे=आकाश में		आत्मा=आत्मा यानी पुरुष है	
अयम्=यह		इदम्=यही	
तेजोमयः=प्रकाशरूप		अमृतम्=अमर है	
अमृतमयः=अमरधर्मी		इदम्=यही	
पुरुषः=पुरुष है		ब्रह्म=ब्रह्म है	
		इदम्=यही	
		सर्वम्=सर्वशक्तिशाली है	

भावार्थ ।

हे मैत्रेयि, देवि ! यह दृश्यमान आकाश सब भूतों का सार है, अथवा सब प्राणियों को प्रिय है, और सब भूत आकाश के सार हैं,

अथवा आकाश को सब प्राणी प्रिय हैं, और हे देवि ! जो आकाश में प्रकाशस्वरूप, अमरधर्मी पुरुष है, यह वही है जो हृदयविषे आकाशव्यापी, तेजोमय, अमृतमय पुरुष है, यानी दोनों एकही हैं, और जो हृदयगत पुरुष है, वही अमरधर्मा है, वही व्यापक है, वही सर्वशक्तिमान् है, वही तुम्हारा रूप है ॥ १० ॥

मन्त्रः ११

अयं धर्मः सर्वेषां भूतानां मध्वस्य धर्मस्य सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन्धर्मे तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं धार्मस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदꣳ सर्वम् ॥

पदच्छेदः ।

अयम्, धर्मः, सर्वेषाम्, भूतानाम्, मधु, अस्य, धर्मस्य, सर्वाणि, भूतानि, मधु, यः, च, अयम्, अस्मिन्, धर्मे, तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः, यः, च, अयम्, अध्यात्मम्, धार्मः, तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः, अयम्, एव, सः, यः, अयम्, आत्मा, इदम्, अमृतम्, इदम्, ब्रह्म, इदम्, सर्वम् ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
अयम्=	यह	मधु=	सार हैं अथवा इस धर्म को सब प्राणी प्रिय हैं
धर्मः=	श्रौतस्मार्त धर्म	च=	और
सर्वेषाम्=	सब	यः=	जो
भूतानाम्=	महाभूतों का	अस्मिन्=	इस
मधु=	सार है अथवा सब प्राणियोंको प्रिय है	धर्मे=	धर्म में
च=	और	अयम्=	यह
अस्य=	इस	तेजोमयः=	प्रकाशरूप
धर्मस्य=	धर्म के	अमृतमयः=	अमरधर्मी
सर्वाणि=	सब	पुरुषः=	पुरुष है
भूतानि=	महाभूत		

अयम् एव=यही
सः=वह है
यः=जो
अयम्=यह
अध्यात्मम्=शरीर में
धार्मः=धर्मव्यापी
तेजोमयः=प्रकाशस्वरूप
अमृतमयः=अमरधर्मी
पुरुषः=पुरुष है
यः=जो
अयम्=यह
आत्मा=धर्मव्यापी आत्मा यानी पुरुष है
इदम्=यही
अमृतम्=अमृतरूप है
इदम्=यही
ब्रह्म=ब्रह्मरूप है
इदम्=यही
सर्वम्=सर्वशक्तिमान् है

भावार्थ ।

हे मैत्रेयि, देवि ! यह श्रौतस्मार्त्त धर्म सब महाभूतों का सार है, अथवा सब प्राणियों को प्रिय है, और इस धर्म का सार सब महाभूत हैं, अथवा इस धर्म को सब प्राणी प्रिय हैं, और हे देवि ! जो इस धर्म में यह प्रकाशस्वरूप, अमरधर्मी पुरुष है, यही वह है जो शरीर विषे धर्मव्यापी, तेजोमय, अमृतमय पुरुष है, यानी दोनों एक ही हैं, इन में कोई भेद नहीं है, और हे प्रियमैत्रेयि ! जो यह धर्मव्यापी शरीर विषे पुरुष है, यही अमृतरूप है, यही ब्रह्मरूप है, यही सर्वशक्तिमान् है, यही तुम्हारा रूप है ।। ११ ।।

मन्त्रः १२

इदꣳ सत्यꣳ सर्वेषां भूतानां मध्वस्य सत्यस्य सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन्सत्ये तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं सत्यस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदꣳ सर्वम् ॥

पदच्छेदः ।

इदम्, सत्यम्, सर्वेषाम्, भूतानाम्, मधु, अस्य, सत्यस्य, सर्वाणि, भूतानि, मधु, यः, च, अयम्, अस्मिन्, सत्ये, तेजोमयः, अमृतमयः पुरुषः, यः, च, अयम्, अध्यात्मम्, सत्यः, तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः, अयम्, एव, सः, यः, अयम्, आत्मा, इदम्, अमृतम्, इदम्, ब्रह्म, इदम्, सर्वम् ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
इदम्=यह		पुरुषः=पुरुष है	
सत्यम्=सत्य		अयम्-एव=यही निश्चय करके	
सर्वेषाम्=सब		सः=वह है	
भूतानाम्=भूतों का		यः=जो	
मधु=सार है अथवा सब भूतों को प्रिय है		अध्यात्मम्=हृदयसम्बन्धी	
+ च=और		अयम्=यह	
अस्य=इस		सत्यः=सत्य	
सत्यस्य=सत्य का		तेजोमयः=प्रकाशस्वरूप	
सर्वाणि=सब		अमृतमयः=अमरधर्मी	
भूतानि=भूत		पुरुषः=पुरुष है	
मधु=सार हैं यानी इस सत्य को सब प्राणी प्रिय हैं		च=और	
च=और		यः=जो	
यः=जो		अयम्=यह हृदयस्थ	
अस्मिन्=इस		आत्मा=आत्मा है यानी पुरुष है	
सत्ये=सत्य में		इदम्=यही	
अयम्=यह		अमृतम्=अमर है	
तेजोमयः=प्रकाशस्वरूप		इदम्=यही	
अमृतमयः=अमरधर्मी		+ ब्रह्म=ब्रह्म है	
		इदम्=यही	
		सर्वम्=सर्वशक्तिमान् है	

भावार्थ ।

हे मैत्रेयि, देवि ! यह परिच्छिन्न सत्य सब भूतों का सार है, अथवा सब प्राणियों को प्रिय है, और इस अपरिच्छिन्न सत्य का सब भूत सार हैं, यानी सब इसको प्रिय हैं, और हे देवि ! जो प्रकाशस्वरूप, अमरधर्मी पुरुष इस सत्य में रहता है वही निश्चय करके हृदय विषे सत्य है, वही प्रकाशस्वरूप, अमरधर्मी पुरुष हृदय विषे रहता है, यानी दोनों एकही हैं इन दोनों में कोई भेद नहीं है, और हे देवि ! जो हृदयस्थ आत्मा है यानी हृदय विषे जो पुरुष शयन किये हुये है, यही अमर है, यही ब्रह्म है, यही सर्वशक्तिमान् है, यही तुम्हारा रूप है ॥ १२ ॥

मन्त्रः १३

इदं मानुषᳬं सर्वेषां भूतानां मध्वस्य मानुषस्य सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन्मानुषे तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं मानुषस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदᳬं सर्वम् ॥

पदच्छेदः ।

इदम्, मानुषम्, सर्वेषाम्, भूतानाम्, मधु, अस्य, मानुषस्य, सर्वाणि, भूतानि, मधु, यः, च, अयम्, अस्मिन्, मानुषे, तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः, यः, च, अयम्, अध्यात्मम्, मानुषः, तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः, अयम्, एव, सः, यः, अयम्, आत्मा, इदम्, अमृतम्, इदम्, ब्रह्म, इदम्, सर्वम् ॥

अन्वयः	पदार्थाः
इदम्	यह
मानुषम्	मनुष्यजाति
सर्वेषाम्	सब
भूतानाम्	भूतों का
मधु	सार है अथवा सब प्राणियों को प्रिय है
+ च	और
अस्य	इस
मानुषस्य	मनुष्यजाति का
सर्वाणि	सब
भूतानि	भूत
मधु	सार है अथवा सब प्राणी इसका प्रिय हैं
च	और
यः	जो
अयम्	यह
अस्मिन्	इस
मानुषे	मनुष्यजाति में
तेजोमयः	प्रकाशरूप
अमृतमयः	अमरधर्मी
पुरुषः	पुरुष है
+ च	और
यः	जो
अयम्	यह
अध्यात्मम्	शरीरविषे
मानुषः	मनुष्यव्यापी
तेजोमयः	तेजोमय
अमृतमयः	अमृतमय
पुरुषः	पुरुष है
अयम्	यही
एव	निश्चय करके
सः	वह है यानी जो हृदय में स्थित है
च	और

यः=जो	इदम्=यही
अयम्=यह हृदयगत	ब्रह्म=ब्रह्म है
आत्मा=आत्मा है	इदम्=यही
इदम्=यही	सर्वम्=सर्वशक्तिमान् है
अमृतम्=अमर है	

भावार्थ।

हे मैत्रेयि, देवि! यह मनुष्यजाति सब भूतों का सार है, अथवा सब प्राणियों को प्रिय है, और सब भूत इस मनुष्यजाति के सार हैं, अथवा सब प्राणी इसको प्रिय हैं, यानी जैसे यह औरों को चाहता है वैसेही और प्राणी भी इसको चाहते हैं, और हे देवि! जो इस मनुष्यजाति में प्रकाशस्वरूप अमरधर्मी पुरुष है और जो हृदय में प्रकाशरूप अमरधर्मी पुरुष है ये दोनों एकही हैं, कोई उनमें भेद नहीं है, और हे देवि! जो यह हृदयगत पुरुष है, यही अमर है, यही ब्रह्म है, यही सर्वशक्तिमान् है, यही तुम्हारा रूप है॥ १३ ॥

मन्त्रः १४

अयमात्मा सर्वेषां भूतानां मध्वस्याऽऽत्मनः सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन्नात्मनि तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमात्मा तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदꣳ सर्वम् ॥

पदच्छेदः।

अयम्, आत्मा, सर्वेषाम्, भूतानाम्, मधु, अस्य, आत्मनः, सर्वाणि, भूतानि, मधु, यः, च, अयम्, अस्मिन्, आत्मनि, तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः, यः, च, अयम्, आत्मा, तेजोमयः, अमृतमयः, पुरुषः, अयम्, एव, सः, यः, अयम्, आत्मा, इदम्, अमृतम्, इदम्, ब्रह्म, इदम्, सर्वम् ॥

अन्वयः पदार्थाः	अन्वयः पदार्थाः
अयम्=यह परिच्छिन्न	सर्वेषाम्=सब
आत्मा=आत्मा	भूतानाम्=भूतों का

मधु=सार है अथवा सब प्राणियों को प्रिय है
+ च=और
अस्य=इस
आत्मनः=अपरिच्छिन्न आत्मा का
सर्वाणि=सब
भूतानि=भूत
मधु=सार हैं अथवा सब प्राणी इसको प्रिय हैं
च=और
यः=जो
अस्मिन्=इस
आत्मनि=अपरिच्छिन्न आत्मा में
अयम्=यह
तेजोमयः=प्रकाशस्वरूप
अमृतमयः=अमरधर्मी
पुरुषः=पुरुष है
अयम्-एव=यही निश्चय करके
सः=वह है
यः=जो
आत्मा=परिच्छिन्न आत्मा
तेजोमयः=तेजोमय
अमृतमयः=अमृतमय
पुरुषः=पुरुष है
च=और
यः=जो
अयम्=यह
आत्मा=परिच्छिन्न आत्मा है
इदम्=यही
अमृतम्=अमरधर्मी है
इदम्=यही
ब्रह्म=ब्रह्म है
इदम्=यही
सर्वम्=सर्वशक्तिमान् है

भावार्थ ।

हे मैत्रेयि, देवि ! यह जो परिच्छिन्न बुद्धि है, यह सब भूतों का सार है, अथवा सब भूतों को प्रिय है, और इस अपरिच्छिन्न बुद्धि का सब भूत सार हैं, अथवा सब प्राणी इसको प्रिय हैं, और जो अपरिच्छिन्न बुद्धि में प्रकाशरूप, अमरधर्मी पुरुष है, और जो परिच्छिन्न बुद्धि में तेजोमय पुरुष है, यह दोनों एकही हैं, और हे देवि ! जो परिच्छिन्न बुद्धि विषे पुरुष है, यही अमर है, यही ब्रह्म है, यही सर्वशक्तिमान् है, और यही तुम्हारा रूप है ॥ १४ ॥

मन्त्रः १५

स वा अयमात्मा सर्वेषां भूतानामधिपतिः सर्वेषां भूतानाꣳ राजा तद्यथा रथनाभौ च रथनेमौ चाराः सर्वे समर्पिता एवमेवा-

स्मिन्नात्मनि सर्वाणि भूतानि सर्वे देवाः सर्वे लोकाः सर्वे प्राणाः सर्व एत आत्मानः समर्पिताः ॥

पदच्छेदः ।

सः, वै, अयम्, आत्मा, सर्वेषाम्, भूतानाम्, अधिपतिः, सर्वेषाम्, भूतानाम्, राजा, तत्, यथा, रथनाभौ, च, रथनेमौ, च, अराः, सर्वे, समर्पिताः, एवम्, एव, अस्मिन्, आत्मनि, सर्वाणि, भूतानि, सर्वे, देवाः, सर्वे, लोकाः, सर्वे, प्राणाः, सर्वे, एते, आत्मानः, समर्पिताः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
वै	निश्चय करके	एवम् एव	इसी प्रकार निश्चय करके
सः	वही	अस्मिन्	इस
अयम्	यह	आत्मनि	परमात्मा में
आत्मा	परमात्मा	सर्वाणि	सब
सर्वेषाम्	सब	भूतानि	ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त भूत
भूतानाम्	भूतों का	सर्वे	सब
अधिपतिः	अधिपति है	देवाः	अग्न्यादि देवता
सर्वेषाम्	सब	सर्वे	सब
भूतानाम्	प्राणियों में	लोकाः	भूरादिलोक
राजा	प्रकाशस्वरूप है	सर्वे	सब
तत्	सो	प्राणाः	वागादि इन्द्रियां
यथा	जैसे	च	और
रथनाभौ	रथचक्र की नाभिमें	एते	ये
च	और	सर्वे	सब
रथनेमौ	रथचक्र की परिधिमें	आत्मानः	जीवात्मा
सर्वे	सब	समर्पिताः	समर्पित रहते हैं
अराः	अरे		
समर्पिताः	लगे रहते हैं		

भावार्थ ।

हे मैत्रेयि, देवि ! यही परमात्मा सब भूतों का अधिपति है, यही सब प्राणियों में प्रकाशस्वरूप है, और जैसे रथचक्र की नाभि में और परिधि में सब अरे लगे रहते हैं, इसी प्रकार इस परमात्मा में

सब ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सब भूत, सब अग्नि आदि देवता, सब भूरादि लोक, सब वागादि इन्द्रियां, सब जीव समर्पित रहते हैं, यानी कोई विना आधार परमात्मा के रह नहीं सक्ता है, यानी इसी से सबकी उत्पत्ति है, इसीमें सबका लय है, इसीमें सबकी स्थिति है, ऐसा यह परमात्मा सबका आत्मा है, यही तुम्हारा स्वरूप है ॥ १५ ॥

मन्त्रः १६

इदं वै तन्मधु दध्यङ्ङाथर्वणोऽश्विभ्यामुवाच तदेतदृषिः पश्यन्नवोचत् । तद्वां नरा सनये दंसउग्रमाविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम् । दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीमुवाचेति ॥

पदच्छेदः ।

इदम्, वै, तत्, मधु, दध्यङ्, आथर्वणः, अश्विभ्याम्, उवाच, तत्, एतत्, ऋषिः, पश्यन्, अवोचत्, तत्, वाम्, नराः, सनये, दंसः, उग्रम्, आविः, कृणोमि, तन्यतुः, न, वृष्टिम्, दध्यङ्, ह, यत्, मधु, आथर्वणः, वाम्, अश्वस्य, शीर्ष्णा, प्र, यत्, ईम्, उवाच, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ मैत्रेयि	हे प्रियमैत्रेयि !
वै	निश्चय करके
अहम्	मैं
इदम्	इस
तत्	उस
मधु	ब्रह्मविद्या को
+ वदिष्यामि	कहता हूं
यत्	जिसको
आथर्वणः	अथर्ववेदी
दध्यङ्	दध्यङ्ऋषिने
अश्विभ्याम्	अश्विनीकुमारों के प्रति
उवाच	कहा था
+ सः	वह दध्यङ्ऋषि
तेषाम्	उनसे
इति	ऐसा
अवोचत्	कहता भया कि
नराः	हे अश्विनीकुमारो !
वाम्	तुम दोनों के लिये
तत्	उसी
एतत्	इस ब्रह्मविद्या को
युवयोः	तुम्हारे
सनये	लाभ के लिये
इति	ऐसा साफ
आविष्कृणोमि	प्रकाश करूंगा
न	जैसे

तन्यतुः=विद्युत्	आथर्वणः=अथर्ववेदी
वृष्टिम्=वृष्टि के आने को	दध्यङ्=दध्यङ्ऋषि
+ सूचयति=बताती है	अश्वस्य=घोड़े के
तत्पश्चात्=इसके बाद	शीर्ष्णा=शिर के द्वारा
तत्=उस	तेषाम्=उनको
उग्रम्=उग्र	मधु=ब्रह्मविद्या को
दंसः=कर्म को	प्रोवाच=कहता भया
पश्यन्=अनुभव करता हुआ	

भावार्थ ।

हे प्रियमैत्रेयि ! एक समय दोनों अश्विनीकुमार देवताओं के वैद्य, अथर्ववेदी दध्यङ्ऋषि के पास गये, और सविनय प्रार्थना किया, यह कहते हुये कि हे प्रभो ! हम लोगों के प्रति आप कृपा करके ब्रह्मविद्या का उपदेश करें, ऋषि महाराज ने कहा कि मैं उपदेश करने को तैयार हूं, परन्तु मुझ को इन्द्र का भय है, क्योंकि उसने कहा है कि अगर तुम कभी ब्रह्मविद्या का उपदेश किसी को करोगे तो तुम्हारा शिर मैं काट डालूंगा, सो अगर मैंने तुम को उपदेश किया तो वह मेरा शिर अवश्य काटडालेगा. ऐसा सुन कर अश्विनीकुमारों ने ऋषि को आश्वासन देकर कहा कि आप न घबड़ाइये हम आपके शिर को काट कर अलग रखदेंगे, और एक घोड़े के शिर को काट कर आपकी गर्दन पर लगा देंगे, उसके द्वारा आप हम को उपदेश करें, जब इन्द्र आकर घोड़ेवाले आपके शिर को काटडालेगा तब हम फिर आप के पहिले शिर को आपकी गर्दन से जोड़ देंगे. यह सुन कर दध्यङ्ऋषि अश्विनीकुमारों को उपदेश के लिये उद्यत हुये, और अश्विनीकुमारों ने अपने कहने के अनुसार दध्यङ्ऋषि का शिर काट कर अलग रख दिया, और एक घोड़े का शिर काट कर दध्यङ्ऋषि की गर्दन से जोड़ दिया, तब ऋषि ने उस घोड़े के शिर के द्वारा अश्विनीकुमारों को ब्रह्मविद्या का उपदेश किया, जब यह हाल इन्द्र को मालूम हुआ तब

इन्द्र आन कर दध्यङ्ऋषि के घोड़ेवाले शिर को काट कर चलागया तत्पश्चात् अश्विनीकुमारों ने ऋषि महाराज के पहिलेवाले शिर को लाकर उनकी गर्दन से जोड़ दिया. इस आख्यायिका से ब्रह्मविद्या का महत्त्व दिखाया गया है, और हे मैत्रेयि ! उसी ब्रह्मविद्या को मैं तुम से कहता हूं ॥ १६ ॥

मन्त्रः १७

इदं वै तन्मधु दध्यङ्ङाथर्वणोऽश्विभ्यामुवाच । तदेतदृषिः पश्यन्नवोचत् । आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यꣳ शिरः प्रत्यैरयतं स वां मधु प्रवोचदृतायन्त्वाष्ट्रं यद्दस्रावपि कक्ष्यं वामिति ॥

पदच्छेदः ।

इदम्, वै, तत्, मधु, दध्यङ्, आथर्वणः, अश्विभ्याम्, उवाच, तत्, एतत्, ऋषिः, पश्यन्, अवोचत्, आथर्वणाय, अश्विना, दधीचे, अश्व्यम्, शिरः, प्रत्यैरयतम्, सः, वाम्, मधु, प्रवोचत्, ऋतायन्, त्वाष्ट्रम्, यद्, दस्रौ, अपि, कक्ष्यम्, वाम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ मैत्रेयि	हे मैत्रेयि !
आथर्वणः	अथर्ववेदी
दध्यङ्	दध्यङ्ऋषि
अश्विभ्याम्	अश्विनीकुमारों के प्रति
तत्	उस
इदम्	इस
मधु	मधुनामक ब्रह्मविद्या को
उवाच	कहता भया
तत्	तिसी
एतत्	इसी दध्यङ् की कही हुई ब्रह्मविद्या को
ऋषिः	एक ऋषि
पश्यन्	देखता हुआ
+ अश्विनीकुमारौ	अश्विनीकुमारों से
+ इति	ऐसा
अवोचत्	कहता भया कि
अश्विना	हे अश्विनीकुमारो !
+ युवाम्	तुम दोनों ने
+ यस्मै	जिस
अथर्वाय	अथर्ववेदी
दधीचे	दध्यङ् के लिये
अश्व्यम्-शिरः	अश्व के शिर को
प्रत्यैरयतम्	प्राप्त कराया है
सः	उसी दध्यङ्ऋषि ने
वाम्	तुम दोनों के लिये

ऋतायन् } = अपने वचन को-
+ सन् } पालन करता हुआ

मधु } = मधुविद्या का
अवोचत् } उपदेश किया

+ च=और

दस्रौ=हे शत्रुहन्ता अश्विनी-
कुमारो !

यत्=जो

त्वाष्ट्रम्=चिकित्सा शास्त्र-
सम्बन्धी ज्ञान है

अपि=और

+ यत्=जो

कक्ष्यम्=आत्मविज्ञान है

+ ते=उन दोनों को

वाम्=तुम दोनों के लिये

इति=इस प्रकार

+ अवोचत्=उपदेश करता भया

भावार्थ ।

हे मैत्रेयि, देवि ! जिस मधुनामक ब्रह्मविद्या को अश्विनीकुमारों के लिये अथर्ववेदी दध्यङ्ऋषि ने उपदेश किया उसी ब्रह्मविद्या के उपदेश को सुन कर एक ऋषिने भी अश्विनीकुमारों से ऐसा कहा. हे अश्विनीकुमारो ! जिस दध्यङ्ऋषि के शिर को काट कर तुम लोगों ने अलग कर दिया और उसकी जगह पर घोड़े के शिर को लाकर लगा दिया, तिसी दध्यङ्ऋषि ने तुम्हारे कल्याणार्थ और अपने वाक्यपालनार्थ ब्रह्मविद्या का उपदेश तुम दोनों को किया, और हे शत्रुहन्ता, अश्विनीकुमारो ! जो चिकित्साशास्त्रसम्बन्धी ज्ञान है, और जो आत्मसम्बन्धी ज्ञान है, उन दोनों का भी उपदेश तुम्हारे लिये किया. इस मन्त्र से यह प्रकट होता है कि दध्यङ्ऋषि से चिकित्साशास्त्र और आत्मज्ञान, अश्विनीकुमारों को मिले हैं ॥ १७ ॥

मन्त्रः १८

इदं वै तन्मधु दध्यङ्ङाथर्वणोऽश्विभ्यामुवाच तदेतदृषिः पश्यन्नवोचत् पुरश्चक्रे द्विपदः पुरश्चक्रे चतुष्पदः पुरः स पक्षी भूत्वा पुरः पुरुषः आविशदिति स वा अयं पुरुषः सर्वासु पूर्षु पुरिशयो नैनेन किंचनानावृतं नैनेन किंचनासंवृतम् ॥

पदच्छेदः ।

इदम्, वै, तत्, मधु, दध्यङ्, आथर्वणः अश्विभ्याम्, उवाच,

तत्, एतत्, ऋषिः, पश्यन्, अवोचत्, पुरः, चक्रे, द्विपदः, पुरः, चक्रे, चतुष्पदः, पुरः, सः, पक्षी, भूत्वा, पुरः, पुरुषः, आविशत, इति, सः, वै, अयम्, पुरुषः, सर्वासु, पूर्षु, पुरिशयः, न, एनेन, किंचन, अनावृतम्, न, एनेन, किञ्चन, असंवृतम् ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ मैत्रेयि	हे प्रियमैत्रेयि !
वै	निश्चय करके
तत्	उसी
इदम्	इस
मधु	मधु ब्रह्मविद्या को
आथर्वणः	अथर्ववेदी
दध्यङ्	दध्यङ्ऋषि
अश्विभ्याम्	अश्विनीकुमारों के प्रति
उवाच	कहता भया
तत्	उसी
एतत्	इस मधु ब्रह्मविद्या को
पश्यन्	देखते हुये
ऋषिः	एक ऋषि ने
अवोचत्	कहा कि
सः	वह परमात्मा
द्विपदः	दो पादवाले
पुरः	पक्षी और मनुष्यों के शरीरों को
चतुष्पदः	चार पादवाले
पुरः	पशुओं के शरीरों को
चक्रे	बनाता भया
+ सः	वही परमात्मा
पुरः	पहिले
पक्षी	लिङ्गशरीर
भूत्वा	हो कर

अन्वयः	पदार्थाः
पुरः	शरीरों में
पुरुषः + सन्	पुरुष यानी पुर में रहनेवाला ऐसा अर्थग्राही नाम धारण करता हुआ
आविशत् इति	प्रवेश करता भया
सः वै	वही
अयम्	यह परमात्मा
सर्वासु	सब
पूर्षु	शरीरों में
पुरिशयः पुरुषः	सोनेवाला है
एनेन	इसी पुरुष करके
किञ्चन	कुछ भी
अनावृतम्	अनाच्छादित
न	नहीं है यानी इसी पुरुष करके सब चराचर ब्रह्माण्ड आच्छादित है
+ तथा	तैसेही
एनेन	इसी पुरुष करके
किञ्चन	कुछ भी
असंवृतम् न	अनुप्रवेशित नहीं है ऐसा नहीं है यानी सब कुछ इसी पुरुष करके प्रवेशित है

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं हे मैत्रेयि ! उसी मधुनामक ब्रह्मविद्या का उपदेश अथर्ववेदी दध्यङ्ऋषि ने अश्विनीकुमारों के प्रति कहा और तिसी मधुनामक ब्रह्मविद्या को जानता हुआ एक ऋषि उन अश्विनीकुमारों से ऐसा कहता भया कि हे अश्विनीकुमारो ! वह परमात्मा दो पैरवाले पक्षी और मनुष्य के शरीरों को और फिर चार पैरवाले पशुओं के शरीरों को बनाता भया. वही परमात्मा आदि में लिङ्गशरीर होकर शरीरों में पुरुष यानी पुर में रहनेवाला ऐसा अर्थग्राही नाम धारण करता हुआ प्रवेश करता भया. वही परमात्मा सब शरीरों में सोनेवाला पुरुष है, इसी पुरुष करके सब आच्छादित है यानी इसी पुरुष करके सब चराचर ब्रह्माण्ड व्याप्त है और इसी पुरुष करके कुछ भी अननुप्रवेशित नहीं है यानी सब कुछ प्रवेशित है, अथवा सब में यह व्याप्त है. हे मैत्रेयि, देवि ! जो कुछ दृष्टिगोचर है वह सब ब्रह्मरूपही है ॥ १८ ॥

मन्त्रः १९

इदं वै तन्मधु दध्यङ्ङाथर्वणोऽश्विभ्यामुवाच तदेतदृषिः पश्यन्नवोचत् रूपꣳरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दशेति अयं वै हरयोऽयं वै दश च सहस्राणि बहूनि चानन्तानि च तदेतद्ब्रह्मापूर्वमनपरमनन्तरमबाह्यमयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभूरित्यनुशासनम् ॥

इति पञ्चमं ब्राह्मणम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

इदम्, वै, तत्, मधु, दध्यङ्, आथर्वणः, अश्विभ्याम्, उवाच, तत्, एतत्, ऋषिः, पश्यन्, अवोचत्, रूपम्, रूपम्, प्रतिरूपः, बभूव, तत्, अस्य, रूपम्, प्रतिचक्षणाय, इन्द्रः, मायाभिः, पुरुरूपः, ईयते, युक्ताः, हि, अस्य, हरयः, शता, दश, इति, अयम्, वै, हरयः, अयम्, वै, दश, च, सहस्राणि, बहूनि, च, अनन्तानि, च, तत्, एतत्, ब्रह्म,

अपूर्वम्, अनपरम्, अनन्तरम्, अबाह्यम्, अयम्, आत्मा, ब्रह्म, सर्वानुभूः, इति, अनुशासनम् ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ मैत्रेयि	हे प्रियमैत्रेयि, देवि !
वै	निश्चय करके
तत्	उस
इदम् मधु	इस मधुविद्या को
आथर्वणः	अथर्ववेदी
दध्यङ्	दध्यङ्ऋषि
अश्विभ्याम्	अश्विनीकुमारों के प्रति
उवाच	कहता भया
तत्	उसी
एतत्	इस मधुविद्या को
पश्यन्	देखता हुआ
ऋषिः	एक ऋषि
अवोचत्	कहता भया कि
+ सः	वह परमात्मा
रूपम् रूपम्	हरएक रूप में
प्रतिरूपः	प्रतिबिम्बरूप
बभूव	होता भया
+ किमर्थमिदम्	यह प्रतिबिम्बरूप क्यों होता भया
+ उच्यते	उत्तर यह कहा जाता है कि
अस्य	इस आत्मा का
तत्	वह
रूपम्	प्रतिबिम्बरूप
प्रतिचक्षणाय	आत्मतत्त्व सिद्धि के लिये
+ अस्ति	है यानी यदि प्रतिबिम्ब न हो तो बिम्ब का ज्ञान नहीं हो सका है

अन्वयः	पदार्थाः
इन्द्रः	परमात्मा
मायाभिः	नाम रूप उपाधि करके
पुरुरूपः	बहुत रूपवाला
ईयते	जाना जाता है
यथा	जैसे
+ रथे	रथ में
युक्ताः	लगे हुये
हरयः	घोड़े
+ रथिनम्	रथी को
+ स्वदृष्टदेशम्	अपने नेत्र के सामने के देश की तरफ
+ नयन्ति	ले जाते हैं
+ तथा	तैसेही
अस्य	इस प्रत्यगात्मा को
+ शरीरे	शरीर में
युक्ताः	युक्त हुई
हरयः	विषयहरण करने वाली इन्द्रियां भी
+ नयन्ति	ले जाती हैं
ते	वे इन्द्रियां
+ यदि	अगर
दश शता	दश सौ हैं तो
इति	उतनाही
अयम्	यह प्रत्यगात्मा भी
वै	निश्चय करके
अस्ति	है
च	और

+ यदि=अगर
+ ते=वे इन्द्रियां
दश सहस्राणि = दश हज़ार हैं तो
इति=उतनाही
अयम्=यह प्रत्यगात्मा भी है
च=और
+ यदि=अगर
ते=वे इन्द्रियां
बहूनि=बहुत
च=और
अनन्तानि=असंख्य हैं तो
इति=उतनाही
अयम्=यह प्रत्यगात्मा भी है
+ अरे मैत्रेयि=हे मैत्रेयि !
तत्=सोई
एतत्=यह
ब्रह्म=ब्रह्म
अनपरम्=जातिरहित है
अनन्तरम्=अपचयानरहित है
अबाह्यम्=सर्वव्यापी है
अयम्=यही प्रत्यगात्मा
ब्रह्म=ब्रह्म है
सर्वानुभूः=सबका अनुभव करने वाला है
इति=इस प्रकार
+ अरे=हे प्रियमैत्रेयि !
अनुशासनम्=यह सब वेदान्त का उपदेश है

भावार्थ ।

हे प्रियमैत्रेयि ! इसी मधु ब्रह्मविद्या को अथर्ववेदी दध्यङ्ऋषि अश्विनीकुमारों के प्रति कहता भया और उसी विद्या को जानता हुआ एक ऋषि भी अपने शिष्य अश्विनीकुमारों से कहता भया कि वह परमात्मा हरएक रूप में प्रतिबिम्बरूप से स्थित हुआ है, प्रश्न होता है, वह क्यों ऐसा होता भया. उत्तर मिलता है कि वह प्रतिबिम्ब बिम्ब की सिद्धि के लिये होता भया है, क्योंकि बिना प्रतिबिम्ब के ज्ञान के बिम्ब का ज्ञान नहीं होसक्ता है, हे मैत्रेयि ! वह परमात्मा नामरूप उपाधि करके बहुरूपवाला जाना जाता है, वास्तव में उसका एकही रूप है. हे प्रियमैत्रेयि ! जैसे रथ में लगे हुये घोड़े रथी को अपने नेत्र के सामने के देश की तरफ़ लेजाते हैं, तैसेही इस प्रत्यगात्मा यानी जीव को शरीर में लगी हुई विषयहरण करनेवाली इन्द्रियां भी विषय की तरफ लेजाती हैं, वे इन्द्रियां एक हज़ार हैं, दश हज़ार हैं, बहुत हैं, असंख्य हैं, यानी जितनी वे हैं उतनाही यह प्रत्यगात्मा भी दिख-

लाई देता है. यही प्रत्यगात्मा व्यापक ब्रह्म है, यही अद्वितीय है, यही सब व्यवधानों से रहित है, यही प्रत्यगात्मा सबका अनुभवी है, हे प्रियमैत्रेयि ! यही वेदान्त का उपदेश है ॥ १६ ॥

इति पञ्चमं ब्राह्मणम् ॥ ५ ॥

अथ षष्ठं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

अथ वꣳशः पौतिमाष्यो गौपवनाद्गौपवनः पौतिमाष्यात्पौतिमाष्यो गौपवनाद्गौपवनः कौशिकात्कौशिकः कौण्डिन्यात्कौण्डिन्यः शाण्डिल्याच्छाण्डिल्यः कौशिकाच्च गौतमाच्च गौतमः ॥ १ ॥ आग्निवेश्यादाग्निवेश्यः शाण्डिल्याच्चानभिम्लाताच्चानभिम्लात आनभिम्लातादानभिम्लात आनभिम्लातादानभिम्लातो गौतमाद्गौतमः सैतवप्राचीनयोग्याभ्याꣳ सैतवप्राचीनयोग्यौ पाराशर्यात्पाराशर्यो भारद्वाजाद्भारद्वाजो भारद्वाजाच्च गौतमाच्च गौतमो भारद्वाजाद्भारद्वाजः पाराशर्यात्पाराशर्यो बैजवापायनाद्बैजवापायनः कौशिकायनेः कौशिकायनिः ॥ २ ॥ घृतकौशिकाद्घृतकौशिकः पाराशर्यायणात्पाराशर्यायणः पाराशर्यात्पाराशर्यो जातूकर्ण्याज्जातूकर्ण्य आसुरायणाच्च यास्काच्चाऽऽसुरायणस्त्रैवणेस्त्रैवणिरौपजन्धनेरौपजन्धनिरासुरेरासुरिर्भारद्वाजाद्भारद्वाज आत्रेयादात्रेयो माण्टेर्माण्टिर्गौतमाद्गौतमो गौतमाद्गौतमो वात्स्याद्वात्स्यः शाण्डिल्याच्छाण्डिल्यः कैशोर्यात्काप्यात्कैशोर्यः काप्यः कुमारहारीतात्कुमारहारीतो गालवाद्गालवो विदर्भीकौण्डिन्याद्विदर्भीकौण्डिन्यो वत्सनपातो बाभ्रवाद्वत्सनपाद्बाभ्रवः पथः सौभरात्पन्थाः सौभरोऽयास्यादाङ्गिरसादयास्य आङ्गिरस आभूतेस्त्वाष्ट्रादाभूतिस्त्वाष्ट्रो विश्वरूपात्त्वाष्ट्राद्विश्वरूपस्त्वाष्ट्रोऽश्विभ्यामश्विनौ दधीच आथर्वणाद्दध्यङ्ङाथर्वणो दैवादथर्वा दैवो मृत्योः प्राध्वꣳसनान्मृत्यु-

प्रध्वंसनः प्रध्वंसनात्प्रध्वंसना एकर्षेरेकर्षिर्विप्रचित्तेर्विप्रचित्तिर्व्यष्टेर्व्यष्टिः सनारोः सनारुः सनातनात्सनातनः सनगात्सनगः परमेष्ठिनः परमेष्ठी ब्रह्मणो ब्रह्म स्वयम्भु ब्रह्मणे नमः ॥ ३ ॥

इति षष्ठं ब्राह्मणम् ॥ ६ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ वंशः ।

पौतिमाष्य ने गौपवन से विद्या प्राप्त की, गौपवन ने पौतिमाष्य से विद्या प्राप्त की, पौतिमाष्यने गौपवनसे, गौपवनने कौशिक से, कौशिकने कौण्डिन्यसे, कौण्डिन्यने शाण्डिल्यसे, शाण्डिल्यने कौशिक और गौतमसे, गौतमने आग्निवेश्यसे, आग्निवेश्यने शाण्डिल्य और अनभिम्लातसे, अनभिम्लातने आनभिम्लातसे, आनभिम्लातने आनभिम्लात से, आनभिम्लातने गौतम से, गौतमने सैतव और प्राचीनयोग्यसे, सैतव और प्राचीनयोग्य ने पाराशर्य से, पाराशर्य ने भारद्वाजसे, भारद्वाजने भारद्वाज और गौतमसे, गौतमने भारद्वाज से, भारद्वाज ने पाराशर्य से, पाराशर्य ने बैजवापायनसे, बैजवापायनने कौशिकायनि से, कौशिकायनिने घृतकौशिकसे, घृतकौशिकने पाराशर्यायणसे, पाराशर्यायणने पाराशर्य से, पाराशर्य ने जातूकर्ण्य से, जातूकर्ण्य ने आसुरायण और यास्कसे, आसुरायण और यास्कने त्रैवणिसे, त्रैवणिने औपजन्धनिसे, औपजन्धनिने आसुरिसे, आसुरिने भारद्वाज से, भारद्वाजने आत्रेयसे, आत्रेयने माण्टिसे, माण्टिने गौतम से, गौतमने गौतमसे, गौतमने वात्स्यसे, वात्स्यने शाण्डिल्यसे, शाण्डिल्य ने कैशोर्यकाप्यसे, कैशोर्यकाप्यने कुमारहारीतसे, कुमारहारीतने गालवसे, गालवने विदर्भिकौण्डिन्यसे, विदर्भिकौण्डिन्यने वत्सनपातबाभ्रवसे, वत्सनपातबाभ्रवने पन्था और सौभरसे, पन्था और सौभरने आयास्य और आङ्गिरससे, आयास्य आङ्गिरसने आभूति-

त्वाष्ट्रसे, आभूतित्वाष्ट्रने विश्वरूपत्वाष्ट्रसे, विश्वरूपत्वाष्ट्रने अश्विद्वय से, अश्वि ने दध्यङ्आथर्वणसे, दध्यङ्आथर्वणने अथर्वादैवसे, अथर्वादैवने मृत्यु प्राध्वंसनसे, मृत्युप्राध्वंसनने प्रध्वंसनसे, प्रध्वंसनने एकर्षिसे, एकर्षिने विप्रचित्तिसे, विप्रचित्तिने व्यष्टिसे, व्यष्टिने सनारुसे, सनारुने सनातन से, सनातनने सनगसे, सनगने परमेष्ठीसे, परमेष्ठीने ब्रह्मसे, ब्रह्म स्वयंभू है, उस ब्रह्मको नमस्कार है ॥ १ । ३ ॥

इति षष्ठं ब्राह्मणम् ॥ ६ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि भाषानुवादे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ बृहदारण्यकोपनिषदि तृतीयाध्याये

जनकाश्वमेधप्रकरणम् ।

अथ प्रथमं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

*ॐ जनको ह † वैदेहो ‡ बहुदक्षिणेन यज्ञेनेजे तत्र ह कुरुपञ्चालानां ब्राह्मणा अभिसमेता बभूवुस्तस्य ह जनकस्य वैदेहस्य विजिज्ञासा बभूव कः स्विदेषां ब्राह्मणानामनूचानतम इति स ह गवाꣳ सहस्रमवरुरोध दश दश पादा एकैकस्याः शृङ्गयोराबद्धा बभूवुः ॥

पदच्छेदः ।

ॐ, जनकः, ह, वैदेहः, बहुदक्षिणेन, यज्ञेन, ईजे, तत्र, ह, कुरुपञ्चालानाम्, ब्राह्मणाः, अभिसमेताः, बभूवुः, तस्य, ह, जनकस्य, वैदेहस्य, विजिज्ञासा, बभूव, कः, स्वित्, एषाम्, ब्राह्मणानाम्, अनूचानतमः, इति, सः, ह, गवाम्, सहस्रम्, अवरुरोध, दश, दश, पादाः, एकैकस्याः, शृङ्गयोः, आबद्धाः, बभूवुः ॥

---

* जितने मिथिलादेश के राजा हुये हैं वे सब जनक नाम से प्रसिद्ध हुये हैं, क्योंकि वे अपनी प्रजा के ऊपर पिता के सदृश कृपा रखते थे ॥

† वैदेह—इस शब्द में वि उपसर्ग है, जिसका अर्थ नहीं है, और देह का अर्थ शरीर है, वैदेह वह पुरुष कहा जाता है जिसका शरीराभिमान नष्ट होगया है, चूंकि मिथिलादेश के राजा जितने हुये हैं वे सब विद्वान् ब्रह्मविद् देहाभिमानरहित हुये हैं, इस कारण वे वैदेह कहलाते रहे ॥

‡ बहुदक्षिणा वह यज्ञ है जिसमें बहुत दक्षिणा ब्राह्मणों को दिया जाय, ऐसे यज्ञ अश्वमेध और राजसूयादिक हैं ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
ॐम्	ॐम्	इति	ऐसी
ह	प्रसिद्ध	विजिज्ञासा	तीव्र जिज्ञासा
वैदेहः	विदेह देशका राजा	बभूव	उत्पन्न होती भई कि
जनकः	जनक	एषाम्	इन उपस्थितमान्य
बहुदक्षिणेन	बहुदक्षिणासम्बन्धी	ब्राह्मणानाम्	ब्राह्मणों के मध्य में
यज्ञेन	यज्ञ करके	कः	कौन
ईजे	यज्ञ करता भया	स्वित्	सा ब्राह्मण
च	और	अनूचानतमः	अति ब्रह्मवेत्ता है
+ यदा	जब	+ एवंविचार्य	ऐसा विचार करके
तत्र	उस यज्ञ में	एकैकस्याः	एक एक गौके
कुरुपञ्चालानाम्	कुरु और पञ्चाल देश के	शृङ्गयोः	दोनों सींगों में
ह	परम प्रसिद्ध	दश दश	दस दस
ब्राह्मणाः	विद्वान् ब्राह्मण	पादाः	पाद सुवर्ण
अभिसमेताः	एकत्र	आबद्धाः	बँधे
बभूवुः	होते भये	बभूवुः	हुये
ह	तब	गवाम् सहस्रम्	एक सहस्र गौओं को
वैदेहस्य	विदेहदेश के राजा	सः ह	वह राजा
जनकस्य	जनक को	अवरुरोध	एक जगह रखवाता भया

भावार्थ ।

हे सौम्य ! एक समय मिथिलादेश के राजा जनक ने बहुदक्षिणा-नामक यज्ञको किया, उस यज्ञ में देश देशान्तर के ब्रह्मविद् ब्राह्मण बुलाये गये, उसमें से विशेष करके कुरु और पञ्चालदेशके ब्राह्मण थे, ऐसा विचार कर राजा जनक ने इस यज्ञ का आरम्भ किया कि जो ब्रह्मवित् पुरुष इस यज्ञ निमित्त यहां एकत्र होंगे उनमें से कौन अति-श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता निकलेगा, जो मेरे को उपदेश करने को योग्य होगा, ऐसी विशेष जिज्ञासा करके एक सहस्र नवीन दुग्धवती गौओं को सींगों में सुवर्ण के पत्र मढ़वाकर दान निमित्त एकत्र करवाया ॥ १ ॥

मन्त्रः २

तान्होवाच ब्राह्मणा भगवन्तो यो वो ब्रह्मिष्ठः स एता गा उदजतामिति ते ह ब्राह्मणा न दधृषुरथ ह याज्ञवल्क्यः स्वमेव ब्रह्मचारिणमुवाचैताः सोम्योदज सामश्रवा ३ इति ता होदाचकार ते ह ब्राह्मणाश्चुक्रुधुः कथं नो ब्रह्मिष्ठो ब्रुवीतेत्यथ ह जनकस्य वैदेहस्य होताऽश्वलो बभूव स हैनं पप्रच्छ त्वं नु खलु नो याज्ञवल्क्य ब्रह्मिष्ठोसी ३ इति स होवाच नमो वयं ब्रह्मिष्ठाय कुर्मो गोकामा एववयꣳ स्म इति तꣳ ह तत एव प्रष्टुं दध्रे होताश्वलः ॥

पदच्छेदः ।

तान्, ह, उवाच, ब्राह्मणाः, भगवन्तः, यः, वः, ब्रह्मिष्ठः, सः, एताः, गाः, उदजताम्, इति, ते, ह, ब्राह्मणाः, न, दधृषुः, अथ, ह, याज्ञवल्क्यः, स्वम्, एवं, ब्रह्मचारिणम्, उवाच, एताः, सोम्य, उदज, सामश्रवाः, इति, ताः, ह, उदाचकार, ते, ह, ब्राह्मणाः, चुक्रुधुः, कथम्, नः, ब्रह्मिष्ठः, ब्रुवीत, इति, अथ, ह, जनकस्य, वैदेहस्य, होता, अश्वलः, बभूव, सः, ह, एनम्, पप्रच्छ, त्वम्, नु, खलु, नः, याज्ञवल्क्य, ब्रह्मिष्ठः, असि, इति, सः, ह, उवाच, नमः, वयम्, ब्रह्मिष्ठाय, कुर्मः, गोकामाः, एव, वयम्, स्मः, इति, तम्, ह, ततः, एव, प्रष्टुम्, दध्रे, होता, अश्वलः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
सः ह	वह प्रसिद्ध राजा जनक
तान्	उन ब्राह्मणों से
इति	ऐसा
उवाच	कहता भया कि
+ हे ब्राह्मणाः	हे ब्राह्मणो !
यूयम्	आप
भगवन्तः	सबही पूज्य हैं
+ परन्तु	परन्तु
वः	आपलोगों में
यः	जो
ब्रह्मिष्ठः	अति ब्रह्मनिष्ठ हो
सः	वह
एताः	इन
गाः	गौओं को
उदजताम्	अपने घर ले जाय
+ यदा	जब
ते	वे

ब्राह्मणाः=ब्राह्मण
+ गाः=उन गौओं को
न=नहीं
दधृषुः=ग्रहण करते भये
अथ=तब
ह=पूज्य
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
स्वम् ब्रह्मचारिणम् = अपने एक ब्रह्मचारी शिष्य से
इति=ऐसा
उवाच=कहा कि
सामश्रवाः=हे सामवेदिन्,
सोम्य=सौम्य !
+ त्वम्=तू
एताः=इन गौओं को
उदज=मेरे घर लेजा
ह=तब
+ सः=वह शिष्य
एताः=उन गौओं को
उदाचकार=गुरु के घर ले गया
ह=उस पर
ते=वे
ब्राह्मणाः=ब्राह्मण
चुक्रुधुः=क्रोध करते भये
+ च=और
इति=ऐसा
+ ऊचुः=कहते भये कि
नः=हम लोगों में
ब्रह्मिष्ठः=अधिक ब्रह्मवेत्ता
अस्मि=हूं मैं
+ त्वम्=तूने
कथम्=कैसे ऐसा
ब्रुवीत=अपने को कहा
अथ=तिसके पश्चात्
ह=तब
वैदेहस्य=विदेह देश का राजा
जनकस्य=जनक का
ह=पूज्य
अश्वलः=अश्वलनामक ऋषि
यः=जो
होता=यज्ञ में होता
बभूव=हुआ था
सः=वह
एनम्=इस याज्ञवल्क्य से
ह=स्पष्ट
पप्रच्छ=पूंछता भया कि
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
नु=क्या
खलु=निश्चय करके
त्वम्=तू
नः=हम लोगों में
ब्रह्मिष्ठः=अतिब्रह्मिष्ठ
असि=है
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=तिरस्कार वाक्य को सुन कर
सः ह=वह पूज्य याज्ञवल्क्य
उवाच=कहता भया कि
वयम्=मैं
ब्रह्मिष्ठाय=ब्रह्मवेत्ताओं को
नमः=नमस्कार
कुर्मः=करता हूं
वयम्=मैं

एव=केवल
गोकामाः स्मः=गौओं की कामना वाला हूं
इति=तब
तम्=उस याज्ञवल्क्य से
ततः एव=पूर्वोक्त प्रतिज्ञा स्वीकार करने के कारण
अश्वलः=अश्वलनामक
होता=होता
प्रष्टुम्=प्रश्नों का करना
दध्रे=आरम्भ किया

भावार्थ ।

हे सौम्य ! जब राजा जनक ने देखा कि सब ब्राह्मण एकत्र हो गये हैं तब उनसे बोले कि हे माननीय, पूज्य, ब्राह्मणो ! आप लोगों में से जो अतिशय करके ब्रह्मविद् हों वे इन गौओं को अपने घर लेजायँ, इतना कह कर चुप होगये, यह सुनकर सब ब्राह्मण एक दूसरे की तरफ़ देखने लगे, पर उनमें से किसी को साहस न हुआ कि वह उन गौओं को अपने घर ले जाय, जब याज्ञवल्क्य ने देखा कि कोई लेने को समर्थ नहीं होता है, तब उन्होंने अपने प्रिय शिष्य सामश्रवा से कहा कि हे प्रिय ! तू इन गौओं को मेरे घर ले जा, ऐसा सुनकर वह उन सब गौओं को लेकर याज्ञवल्क्य के घर चला गया, यह देख कर समस्त ब्राह्मण क्रुद्ध हो एकवाणी बोल उठे कि यह याज्ञवल्क्य हम लोगों में अपने को अति ब्रह्मनिष्ठ और ब्रह्मविद् कैसे कह सकता है ? इसके पीछे राजा जनक का होता अश्वल नामक ब्राह्मण क्रोधित होकर याज्ञवल्क्य से कहता है अरे याज्ञवल्क्य ! क्या तूही सबसे श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता है याज्ञवल्क्य ने कहा हे होता, अश्वल ! मैं अपने को ऐसा नहीं समझता हूं, मैं ब्रह्मवेत्ता पुरुषों का दास हूं, उनको मैं नमस्कार करता हूं, मैंने अपने को गौओं की कामनावाला और आप लोगों को गौओं की कामना से रहित पाकर गौओं को अपने घर भेज दिया है, ऐसा सुनकर अश्वल ने कहा यह बात नहीं तू अपने को अवश्य अति श्रेष्ठ मानता है, मैं प्रश्न करता हूं, तू उनका उत्तर दे ॥ २ ॥

मन्त्रः ३

याज्ञवल्क्येति होवाच यदिदꣳ सर्वं मृत्युनाप्तꣳ सर्वं मृत्युनाभि-

पन्नं केन यजमानो मृत्योराप्तिमतिमुच्यत इति होत्रर्त्विजाग्निना वाचा वाग्वै यज्ञस्य होता तद्येयं वाक्सोयमग्निः स होता स मुक्तिः सातिमुक्तिः ॥

पदच्छेदः ।

याज्ञवल्क्य, इति, ह, उवाच, यत्, इदम्, सर्वम्, मृत्युना, आप्तम्, सर्वम्, मृत्युना, अभिपन्नम्, केन, यजमानः, मृत्योः, आप्तिम्, अतिमुच्यते, इति, होत्रा, ऋत्विजा, अग्निना, वाचा, वाग्, वै, यज्ञस्य, होता, तत्, या, इयम्, वाक्, सः, अयम्, अग्निः, सः, होता, सः, मुक्तिः, सा, अतिमुक्तिः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
इति	ऐसा
श्रुत्वा	सुन कर
उवाच ह	अश्वल कहता भया कि
याज्ञवल्क्य	हे याज्ञवल्क्य !
यत्	जो
इदम्	यह
सर्वम्	सब पदार्थ यज्ञ विषे दीखते हैं
तत्	वह
मृत्युना	मृत्यु करके
आप्तम्	ग्रस्त हैं
च	और
सर्वम्	सब पदार्थ
मृत्युना	मृत्यु करकेही
अभिपन्नम्	वशीकृत हुये हैं
+एतद्दशायाम्	ऐसी हालत में
केन	किस साधन करके
यजमानः	यजमान
मृत्योः	मृत्यु के

अन्वयः	पदार्थाः
आप्तिम्	अहोरात्ररूप पाश को
अतिमुच्यते	उल्लङ्घन करसक्ता है
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य
+ उवाच	कहते भये कि
+ अश्वल	हे अश्वल !
होत्रर्त्विजा	होतारूप ऋत्विज्
अग्निना	ऋत्विज्रूप अग्नि
वाचा	अग्निरूप वाणी करके
+ सः	वह यजमान
+ मुच्यते	मृत्यु के पाश से मुक्त होजाता है
+ हि	क्योंकि
यज्ञस्य	यज्ञका
होता	होताही
वाक्	वाक्य है
तत्	इस लिये
इयम्	यह
या	जो
वाक्	वाक्य है
सः	वही

अयम्=यह
अग्निः=अग्नि है
सः=वही
होता=होता है
सः=वही होतारूपी अग्नि
मुक्तिः=मुक्ति है यानी मुक्ति का साधन है
+ च=और
सा=वही मुक्ति यानी वही मुक्ति का साधन
अतिमुक्तिः=अतिमुक्ति है

भावार्थ ।

हे याज्ञवल्क्य ! यज्ञ में जो कुछ वस्तु दिखाई देती हैं, वे सब मृत्यु से ग्रसित हैं, ऐसी हालत में किस के द्वारा यजमान मृत्यु की पाश से छूट जाता है, इसके उत्तर में याज्ञवल्क्य कहते हैं कि होता नामक ऋत्विज् की सहायता करके यजमान मुक्त होजाता है, वह होता अग्निरूप है, अग्निसे तात्पर्य वाक्य से है, यानी जब होता शुद्ध वाणी से उदात्त, अनुदात्त, स्वरित स्वरों के साथ वैदिकमन्त्रों का उच्चारण यज्ञ विषे करता है तब देवता प्रसन्न होकर यजमान को स्वर्ग में ले जाते हैं, इस लिये हे अश्वल ! वाणी ही यज्ञ का होता है, वही अग्नि है, और वही मुक्ति का साधन है ॥ ३ ॥

मन्त्रः ४

याज्ञवल्क्येति होवाच यदिदꣳ सर्वमहोरात्राभ्यामाप्तꣳ सर्वमहोरात्राभ्यामभिपन्नं केन यजमानोऽहोरात्रयोराप्तिमतिमुच्यत इत्यध्वर्युणर्त्विजा चक्षुषादित्येन चक्षुर्वै यज्ञस्याध्वर्युस्तद्यदिदं चक्षुः सोऽसावादित्यः सोऽध्वर्युः स मुक्तिः सातिमुक्तिः ॥

पदच्छेदः ।

याज्ञवल्क्य, इति, ह, उवाच, यत्, इदम्, सर्वम्, अहोरात्राभ्याम्, आप्तम्, सर्वम्, अहोरात्राभ्याम्, अभिपन्नम्, केन, यजमानः, अहोरात्रयोः, आप्तिम्, अतिमुच्यते, इति, अध्वर्युणा, ऋत्विजा, चक्षुषा, आदित्येन, चक्षुः, वै, यज्ञस्य, अध्वर्युः, तत्, यत्, इदम्, चक्षुः, सः, असौ, आदित्यः, सः, अध्वर्युः, सः, मुक्तिः, सा, अतिमुक्तिः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ अश्वलः	अश्वल ने
इति	ऐसा
उवाच	कहा कि
याज्ञवल्क्य	हे याज्ञवल्क्य !
यत्	जो
इदम्	यह
सर्वम्	सब सामग्री
+ दृश्यते	यज्ञ विषे दिखाई देती हैं
तत्	वह सब
अहोरात्राभ्याम्	दिन रात्रि करके
आप्तम्	गृहीत हैं
च	और
सर्वम्	सब सामग्री
अहोरात्राभ्याम्	दिन रात्रि करके
अभिपन्नम्	वशीकृत हुई हैं
+ एतद्दशायाम्	ऐसी हालत में
केन	किस साधन करके
यजमानः	यजमान
अहोरात्रयोः	अहोरात्र के
आप्तिम्	पाश को
अतिमुच्यते	उल्लङ्घन करके मुक्त हो जाता है
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
+ उवाच	उत्तर दिया कि
+ अश्वल	हे अश्वल !
अध्वर्युणा	अध्वर्युरूप
ऋत्विजा	ऋत्विज्
चक्षुषा	ऋत्विज्रूप चक्षु और
आदित्येन	चक्षुरूप आदित्य करके
+ सः	वह जीव
+ मुच्यते	मुक्त होता है
हि	क्योंकि
यज्ञस्य	यज्ञ का
अध्वर्युः	अध्वर्यु
वै	ही
चक्षुः	नेत्र है
यत्	जो
इदम्	यह
चक्षुः	नेत्र है
सः	वही
असौ	यह
आदित्यः	सूर्य है
सः	वही सूर्य
अध्वर्युः	अध्वर्यु है
सः	वही अध्वर्यु
मुक्तिः	यजमान की मुक्ति का कारण है
सा	वही
अतिमुक्तिः	उसकी अतिमुक्ति का भी कारण है

भावार्थ ।

प्रथम प्रश्न के उत्तर के पाने से समाधान होकर अश्वल होता सन्तुष्ट होता हुआ फिर प्रश्न करता है, हे याज्ञवल्क्य ! इस संसार में

यावद् वस्तु हैं सब दिन और रात्रि से गृहीत हैं, ऐसी हालत में किस उपाय करके यज्ञ का कर्ता यानी यजमान अहोरात्र के पाश को उल्लङ्घन करके मुक्त हो जाता है, इस के उत्तर में याज्ञवल्क्य कहते हैं कि हे अश्वल! अध्वर्युनामक जो ऋत्विज् है, उसकी सहायता करके यज्ञ का कर्त्ता यजमान मुक्त हो जाता है, हे अश्वल ! अध्वर्यु के कहने से मेरा मतलब नेत्र और सूर्य है, जब यजमान नेत्र के द्वारा भली प्रकार विधिपूर्वक यज्ञ करता है, तब सूर्यदेवता अपनी रश्मियों द्वारा उस यज्ञकर्त्ता को ब्रह्मलोक को ले जाकर आवागमन से मुक्त करदेता है, इस लिये यजमान का शुद्ध चक्षु ही अध्वर्यु है ॥ ४ ॥

मन्त्रः ५

याज्ञवल्क्येति होवाच यदिदꣳ सर्वं पूर्वपक्षापरपक्षाभ्यामाप्तꣳ सर्वं पूर्वपक्षापरपक्षाभ्यामभिपन्नं केन यजमानः पूर्वपक्षापरपक्षयो-राप्तिमतिमुच्यत इत्युद्गात्रर्त्विजा वायुना प्राणेन प्राणो वै यज्ञस्यो-द्गाता तद्योऽयं प्राणः स वायुः स उद्गाता स मुक्तिः साऽतिमुक्तिः ॥

पदच्छेदः ।

याज्ञवल्क्य, इति, ह, उवाच, यत्, इदम्, सर्वम्, पूर्वपक्षापरपक्षाभ्याम्, आप्तम्, सर्वम्, पूर्वपक्षापरपक्षाभ्याम्, अभिपन्नम्, केन, यजमानः, पूर्वपक्षापरपक्षयोः, आप्तिम्, अतिमुच्यते, इति, उद्गात्रा, ऋत्विजा, वायुना, प्राणेन, प्राणः, वै, यज्ञस्य, उद्गाता, तत्, यः, अयम्, प्राणः, सः, वायुः, सः, उद्गाता, सः, मुक्तिः, सा, अतिमुक्तिः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
+ अश्वलः	=अश्वल ने	तत्	=वह सब
+ उवाच	=कहा कि	पूर्वपक्षापर-पक्षाभ्याम्	=शुक्ल कृष्ण पक्ष करके
याज्ञवल्क्य	=हे याज्ञवल्क्य !	आप्तम्	=ग्रस्त हैं
यत्	=जो	+ च	=और
इदम्	=यह	सर्वम्	=वही सब
सर्वम्	=सब पदार्थ यज्ञ विषे हैं		

पूर्वपक्षापर-पक्षाभ्याम् } = शुक्ल और कृष्ण पक्ष करके
आपन्नम्=वशीकृत हुये हैं
+ एतद्दशायाम्=ऐसी हालत में
+ याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
यजमानः=यजमान
केन=किस साधन करके
पूर्वपक्षापर-पक्षयोः } =शुक्ल और कृष्ण पक्ष की
आप्तिम्=पाश को
अतिमुच्यते=उल्लङ्घन करके मुक्त होता है
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य
+ उवाच=कहते भये कि
+ अश्वल=हे अश्वल !
उद्गात्रा=उद्गातारूपी
ऋत्विजा=ऋत्विज्
वायुना=ऋत्विजूरूप वायु
प्राणेन=वायुरूप प्राण करके
सः=वह यजमान
+ मुच्यते=मुक्त हो जाता है
हि=क्योंकि
यज्ञस्य=यज्ञ का
प्राणः=प्राण ही
उद्गाता=उद्गाता है
तत्=इस लिये
यः=जो
अयम्=यह
प्राणः=प्राण है
सः=वही
वायुः=बाह्यवायु है
सः=वही
उद्गाता=उद्गाता है
सः=वही
मुक्तिः=यजमान के मुक्ति का साधन है
सा=वही मुक्ति
अतिमुक्तिः=अतिमुक्ति का भी साधन है

भावार्थ ।

अश्वल होता फिर प्रश्न करता है, हे याज्ञवल्क्य ! संसार में सब पदार्थ कृष्ण और शुक्लपक्ष करके व्याप्त हैं, ऐसी अवस्था में हे याज्ञवल्क्य ! किस उपाय करके पूर्वपक्ष और अपरपक्ष की व्याप्ति से यज्ञकर्ता मुक्त होता है, इस के उत्तर में याज्ञवल्क्य कहते हैं कि हे अश्वल ! उद्गातानामक ऋत्विज् की सहायता से यजमान दोनों पक्षों की व्याप्ति से छूट जाता है, मनुष्यसम्बन्धी उद्गाता से मेरा मतलब नहीं है, बल्कि प्राणवायु से और बाह्यवायु से मतलब है, हे अश्वल ! यह प्राणवायु प्राणवायु है, यही उद्गाता है, यही बाह्यवायु है, यही प्राण है प्राणही को इन्द्रियां भी कहते हैं, प्रत्येक इन्द्रियों

का शुद्ध करना ही परम साधन है जब इन्द्रियां शुद्ध होजाती हैं तब इनकी सहायता करके यजमान का कल्याण होता है ॥ ५ ॥

मन्त्रः ६

याज्ञवल्क्येति होवाच यदिदमन्तरिक्षमनारम्बणमिव केनाक्रमेण यजमानः स्वर्गं लोकमाक्रमत इति ब्रह्मणर्त्विजा मनसा चन्द्रेण मनो वै यज्ञस्य ब्रह्मा तद्यदिदं मनः सोऽसौ चन्द्रः स ब्रह्मा स मुक्तिः सातिमुक्तिरित्यतिमोक्षा अथ संपदः ॥

पदच्छेदः ।

याज्ञवल्क्य, इति, ह, उवाच, यत्, इदम्, अन्तरिक्षम्, अनारम्बणम्, इव, केन, आक्रमेण, यजमानः, स्वर्गम्, लोकम्, आक्रमते, इति, ब्रह्मणा, ऋत्विजा, मनसा, चन्द्रेण, मनः, वै, यज्ञस्य, ब्रह्मा, तत्, यत्, इदम्, मनः, सः, असौ, चन्द्रः, सः, ब्रह्मा, सः, मुक्तिः, सा, अतिमुक्तिः, इति, अतिमोक्षाः, अथ, संपदः ॥

अन्वयः पदार्थाः

+ अश्वलः=अश्वल ने
इति=इस प्रकार
उवाच=कहा कि
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
यत्=जो
इदम्=यह
अन्तरिक्षम्=आकाश
अनारम्बणम् इव=निरालम्ब सा
+ दृश्यते=दीखता है तो
केन=किस
आक्रमेण=आधार करके
यजमानः=यजमान
स्वर्गम्=स्वर्ग
लोकम्=लोक को

अन्वयः पदार्थाः

आक्रमते=प्राप्त होता है
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
+ उवाच=कहा
ब्रह्मणा=ब्रह्मारूप
ऋत्विजा=ऋत्विज्
मनसा=ऋत्विजरूप मन
+ च=और
चन्द्रेण=मनरूप चन्द्र करके
आक्रमते=प्राप्त होता है
हि=क्योंकि
यज्ञस्य=यजमान का
मनः=मन
वै=ही
ब्रह्मा=ब्रह्मा है
तत्=इस लिये

यत्=जो
इदम्=यह
मनः=मन है
सः=वही
असौ=यह
चन्द्रः=चन्द्रमा है
सः=वही चन्द्रमा
ब्रह्मा=ब्रह्मा है
सः=वही ब्रह्मा
मुक्तिः=यजमान के मुक्ति का साधन है
सा=वह मुक्ति
अतिमुक्तिः=अतिमुक्ति है
इति=इस प्रकार
अतिमोक्षाः=यजमान तापत्रय से छूट जाता है
अथ=अब आगे
संपदः=पुरुषार्थक संपत्तियां
+ कथ्यन्ते=कही जाती हैं

भावार्थ ।

अश्वल फिर प्रश्न करता है, हे याज्ञवल्क्य ! यह सामने का अन्तरिक्ष यानी आकाश निरालम्ब प्रतीत होता है, और स्वर्गलोक इससे आगे है, तब किसकी सहायता से यजमान स्वर्गलोक को पहुँचता है, इस पर याज्ञवल्क्य कहते हैं कि हे अश्वल ! ब्रह्मानामक ऋत्विज की सहायता से यजमान स्वर्गलोक को चढ़ता है, हे अश्वल ! ब्रह्मा से मेरा मतलब मनरूपी चन्द्रमा से है, जब यजमान का कल्याण होगा तब केवल शुद्ध मन करकेही होगा यही मन यज्ञ का ब्रह्मा है, इस लिये जो यह मन है वही चन्द्रमा है, वही ब्रह्मा है, वह चन्द्रमाही मुक्ति का साधन है, इस लिये शुद्ध मनही यजमान को चन्द्रलोक में पहुँचा कर उसको अत्यन्त सुखभोगी बनाता है ॥ ६ ॥

मन्त्रः ७

याज्ञवल्क्येति होवाच कतिभिरयमद्यर्ग्भिर्होताऽस्मिन् यज्ञे करिष्यतीति तिसृभिरिति कतमास्तास्तिस्र इति पुरोनुवाक्या च याज्या च शस्यैव तृतीया किं ताभिर्जयतीति यत्किञ्चेदं प्राणभृदिति ॥

पदच्छेदः ।

याज्ञवल्क्य, इति, ह, उवाच, कतिभिः, अयम्, अद्य, ऋग्भिः, होता, अस्मिन्, यज्ञे, करिष्यति, इति, तिसृभिः, इति, कतमाः, ताः,

तिस्रः, इति, पुरोनुवाक्या, च, याज्या, च, शस्या, एव, तृतीया, किम्, ताभिः, जयति, इति, यत्, किञ्च, इदम्, प्राणभृत्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ अश्वलः	अश्वल ने
इति	इस प्रकार
उवाच	कहा कि
याज्ञवल्क्य	हे याज्ञवल्क्य !
अयम्	यह
होता	होता
अद्य	आज
कतिभिः	कितनी
ऋग्भिः	ऋचाओं करके
अस्मिन्	इस संमुख
यज्ञे	यज्ञ में
करिष्यति	स्तुति करता हुआ अपना कार्य करेगा
इति	ऐसा सुन कर
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
उवाच	उत्तर दिया कि
तिसृभिः	तीन ऋचाओं करके करेगा
+ अश्वलः	अश्वल ने
+ आह	कहा
ताः	वे
कतमाः	कौनसी
तिस्रः	तीन ऋचायें हैं
इति	इस पर
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
+ उवाच	कहा
पुरोनुवाक्या	पहिली पुरोनुवाक्या है
याज्या	दूसरी याज्या है
च	और
तृतीया	तीसरी
शस्या	शस्या है
ततः	तिसके पीछे
+ अश्वलः	अश्वल ने
+ पप्रच्छ	पूंछा
ताभिः	उन तीन ऋचाओं करके
यजमानः	यजमान
किम्	किसको
जयति	जीतता है
इति	इस पर
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
+ आह	कहा
यत् किञ्च	जितने इस जगत् में
प्राणभृत्	प्राणधारी हैं उन सब को

भावार्थ ।

अश्वल फिर प्रश्न करता है, हे याज्ञवल्क्य ! कितनी ऋचाओं से आज यह होता प्रस्तुत यज्ञ में हवनादि कार्य करेगा, उसके उत्तर में याज्ञवल्क्य कहते हैं, तीन ऋचाओं करके होता अपना कार्य करेगा,

फिर अश्वल पूंछता है, हे याज्ञवल्क्य ! वह तीन ऋचायें कौन कौनसी हैं, इसके उत्तर में याज्ञवल्क्य कहते हैं, हे अश्वल ! पहिली ऋचा पुरोनुवाक्या है, दूसरी याज्या है, तीसरी शस्या है, यानी जो ऋचायें कार्यारम्भ के पहिले पढ़ी जाती हैं, वे पुरोनुवाक्या हैं, और जो ऋचायें प्रत्येक विधि में पढ़ी जाती हैं, वे याज्या कही जाती हैं, और जो अन्त में स्तुतिनिमित्त बहुतसी ऋचायें पढ़ी जाती हैं, वे शस्या कहलाती हैं, उन्हीं सब ऋचाओं को पढ़ कर होता आज यज्ञ करेगा, उसको सुन कर फिर अश्वल पूंछता है कि हे याज्ञवल्क्य ! इन तीन प्रकार की ऋचाओं से यजमान का क्या लाभ होताहै ? इस पर याज्ञवल्क्य उत्तर देते हैं कि हे अश्वल ! जगत् में जितने प्राणी हैं वे सब यजमान को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

मन्त्रः ८

याज्ञवल्क्येति होवाच कत्ययमद्याध्वर्युरस्मिन् यज्ञ आहुतीर्होष्यतीति तिस्र इति कतमास्तास्तिस्र इति या हुता उज्ज्वलन्ति या हुता अतिनेदन्ते या हुता अधिशेरते किं ताभिर्जयतीति या हुता उज्ज्वलन्ति देवलोकमेव ताभिर्जयति दीप्यत इव हि देवलोको या हुता अतिनेदन्ते पितृलोकमेव ताभिर्जयत्यतीव हि पितृलोको या हुता अधिशेरते मनुष्यलोकमेव ताभिर्जयत्यध इव हि मनुष्यलोकः ॥

पदच्छेदः ।

याज्ञवल्क्य, इति, ह, उवाच, कति, अयम्, अद्य, अध्वर्युः, अस्मिन्, यज्ञे, आहुतीः, होष्यति, इति, तिस्रः, इति, कतमाः, ताः, तिस्रः, इति, याः, हुताः, उज्ज्वलन्ति, याः, हुताः, अतिनेदन्ते, याः, हुताः, अधिशेरते, किम्, ताभिः, जयति, इति, याः, हुताः, उज्ज्वलन्ति, देवलोकम्, एव, ताभिः, जयति, दीप्यते, इव, हि, देवलोकः, याः, हुताः, अतिनेदन्ते, पितृलोकम्, एव, ताभिः, जयति, अतीव, हि, पितृलोकः, याः,

हुताः, अधिशेरते, मनुष्यलोकम्, एव, ताभिः, जयति, अधः, इव, हि, मनुष्यलोकः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ अश्वलः	अश्वल ने
इति	इस प्रकार
उवाच	पूंछा कि
याज्ञवल्क्य	हे याज्ञवल्क्य !
अद्य	आज
अयम्	यह
अध्वर्युः	अध्वर्यु
अस्मिन्	इस
यज्ञे	यज्ञमें
कति	कितनी
आहुतीः	आहुतियां
होष्यति	होम करेगा
इति	इस पर
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
आह	कहा
तिस्रः	तीन आहुतियां
होष्यति	होम करेगा
इति	तब
सः	वह अश्वल
उवाच	बोला
ताः	वे
तिस्रः	तीन
कतमाः	कौन आहुतियां हैं ?
+ याज्ञवल्क्यः	इसके उत्तर में याज्ञवल्क्य
कथयति	कहते हैं
याः	जो

अन्वयः	पदार्थाः
हुताः	आहुतियां कुण्ड में डाली हुई
उज्ज्वलन्ति	ऊपर को प्रज्वलित होती हैं
याः	जो आहुतियां
हुताः	कुण्ड में डाली हुई
अतिनेदन्ते	अत्यन्त नाद करती हैं
याः	जो आहुतियां
हुताः	कुण्ड में डाली हुई
अधिशेरते	ऊपर जाकर नीचे को बैठ जाती हैं
+ इति	इस पर
अश्वलः	अश्वल ने
उवाच	पूंछा कि
ताभिः	उन आहुतियों करके
+ यजमानः	यजमान
किम्	किसको
जयति	जीतता है ?
इति	इस पर याज्ञवल्क्य कहते हैं
याः	जो
हुताः	आहुतियां
उज्ज्वलन्ति	ऊपर ज्वलित होती हैं
ताभिः	उन करके
देवलोकम्	देवलोक को
एव	अवश्य
जयति	जीतता है
हि	क्योंकि

देवलोकः=देवलोक
दीप्यते इव=प्रकाशवान् सा दीखता है
याः=जो
हुताः=आहुतियां
अतिनेदन्ते=अति नाद करती हैं
ताभिः=उन आहुतियों करके
पितृलोकम्=पितृलोक को
एव=अवश्य
जयति=जीतता है
हि=क्योंकि
पितृलोकः=पितृलोक
अतीव=अत्यन्त शब्द करते
याः=जो
हुताः=आहुतियां
अधिशेरते=नीचे बैठती हैं
ताभिः=उन करके
मनुष्यलोकम्=मनुष्यलोक को
जयति=जीतता है
हि=क्योंकि
अयम्=यह
मनुष्यलोकः=मनुष्यलोक
अधः=नीचे स्थित है

भावार्थ ।

पुनः अश्वल प्रश्न करता है कि हे याज्ञवल्क्य ! आज यह अध्वर्यु कितनी आहुतियों को इस यज्ञ विषे देगा ? इसके उत्तर में याज्ञवल्क्य कहते हैं कि तीन आहुतियां, फिर अश्वल पूंछता है वे तीन आहुतियां कौन कौन सी हैं ? याज्ञवल्क्य कहते हैं पहिली आहुति वे हैं जो अग्निकुण्ड में डालने पर ऊपर को प्रज्वलित होती हैं, दूसरी वे हैं जो अग्निकुण्ड में डालने पर अत्यन्त नाद करती हैं, तीसरी वे हैं जो अग्निकुण्ड में डालने पर नीचे को वैठती हैं, इन तीन आहुतियों के साथ ऊपर कही हुई तीन प्रकार की ऋचायें पढ़ी जाती हैं, तिस पर अश्वल फिर पूंछता है कि हे याज्ञवल्क्य ! उन आहुतियों करके यजमान किस वस्तु को पाता है ? आप कहें, इस पर याज्ञवल्क्य समाधान करते हैं कि हे अश्वल ! जो आहुतियां ऊपर को प्रज्वलित होती हैं उन करके यजमान देवलोक को जय करता है, क्योंकि देवलोक प्रकाशवान् है, इस कारण देवलोक की प्राप्ति प्रज्वलित आहुतियों करके कही गई है, जो आहुतियां अति नाद करती हैं उन करके यजमान पितृलोक को जय करता है, क्योंकि पितृलोक में पितर

भोग सुख के कारण उन्मत्त होकर नाद करते हैं, इस कारण पितृ-लोक की प्राप्ति नाद करती हुई आहुतियों करके कही गई है, जो आहुतियां नीचे को बैठती हैं, उन करके वह मनुष्यलोक को जय करता है, क्योंकि मनुष्यलोक नीचे है, इसी कारण इसकी प्राप्ति उन आहुतियों करके कही गई है जो नीचे को जाती हैं ॥ ८ ॥

मन्त्रः ९

याज्ञवल्क्येति होवाच कतिभिरयमद्य ब्रह्मा यज्ञं दक्षिणतो देवताभिर्गोपायतीत्येकयेति कतमा सैकेति मन एवेत्यनन्तं वै मनोऽनन्ता विश्वेदेवा अनन्तमेव स तेन लोकं जयति ॥

पदच्छेदः ।

याज्ञवल्क्य, इति, ह, उवाच, कतिभिः, अयम्, अद्य, ब्रह्मा, यज्ञम्, दक्षिणतः, देवताभिः, गोपायति, इति, एकया, इति, कतमा, सा, एका, इति, मनः, एव, इति, अनन्तम्, वै, मनः, अनन्ताः, विश्वेदेवाः, अनन्तम्, एव, सः, तेन, लोकम्, जयति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
+ अश्वलः=अश्वल ने		इति=इस पर	
इति=ऐसा		+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने	
उवाच=पूछा		+ उवाच=कहा	
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !		एकया=एक देवता करके	
अद्य=आज		इति=तब	
अयम्=यह		+ सः=उसने	
ब्रह्मा=ब्रह्मा		पप्रच्छ=पूछा कि	
दक्षिणतः=दक्षिण दिशा में		सा=वह	
+ स्थित्वा=बैठ कर		कतमा=कौनसा	
कतिभिः=कितने		एका=एक देवता है	
देवताभिः=देवता करके		इति=इस पर	
यज्ञम्=यज्ञ की		+ सः=उसने	
गोपायति=रक्षा करेगा		+ आह=उत्तर दिया कि	

मनः=मन
एव=ही
तत्=वह देवता है
वै=और
मनः=मन
अनन्तम्=वृत्तिभेद करके अनन्त है
+तस्य=उस मन के
विश्वेदेवाः=विश्वेदेवता भी
अनन्ताः=अनन्त हैं
तेन=इसी कारण
सः=वह यजमान
अनन्तम्=अनन्त
लोकम्=लोक को
एव=अवश्य
जयति=जीतता है

भावार्थ ।

अश्वल फिर प्रश्न करता है कि हे याज्ञवल्क्य ! यह ब्रह्मा दक्षिण दिशा में बैठ कर कितने देवताओं से यज्ञ की रक्षा करेगा ? इसके उत्तर में याज्ञवल्क्य कहते हैं कि केवल एक देवता करके यज्ञ की रक्षा होती है, इस पर अश्वल पूंछता है कि वह एक कौनसा देवता है ? याज्ञवल्क्य उत्तर देते हैं कि वह एक देवता मन है, मन यद्यपि एक है, पर उसकी वृत्तियां अनन्त हैं, इस कारण मनसम्बन्ध करके विश्वेदेवता भी अनन्त हैं, ऐसे मन करके यजमान अनन्तलोकों को जीतता है ॥ ६ ॥

मन्त्रः १०

याज्ञवल्क्येति होवाच कत्ययमद्योद्गातास्मिन् यज्ञे स्तोत्रियाः स्तोष्यतीति तिस्र इति कतमास्तास्तिस्र इति पुरोनुवाक्या च याज्या च शस्यैव तृतीया कतमास्ता या अध्यात्ममिति प्राण एव पुरोनुवाक्यापानो याज्या व्यानः शस्या किं ताभिर्जयतीति पृथिवीलोकमेव पुरोनुवाक्यया जयत्यन्तरिक्षलोकं याज्यया द्युलोकꣳ शस्यया ततो ह होताश्वल उपरराम ॥

इति प्रथमं ब्राह्मणम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

याज्ञवल्क्य, इति, ह, उवाच, कति, अयम्, अद्य, उद्गाता, अस्मिन्, यज्ञे, स्तोत्रियाः, स्तोष्यति, इति, तिस्रः, इति, कतमाः, ताः,

तिस्रः, इति, पुरोनुवाक्या, च, याज्या, च, शस्या, एव, तृतीया, कतमाः, ताः, याः, अध्यात्मम्, इति, प्राणः, एव, पुरोनुवाक्या, अपानः, याज्या, व्यानः, शस्या, किम्, ताभिः, जयति, इति, पृथिवीलोकम्, एव, पुरोनुवाक्यया, जयति, अन्तरिक्षलोकम्, याज्यया, द्युलोकम्, शस्यया, ततः, ह, होता, अश्वलः, उपरराम ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
+ अश्वलः=अश्वल ने		+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने	
इति=इस प्रकार		+ उवाच=कहा	
उवाच=पूंछा कि		पुरोनुवाक्या=पुरोनुवाक्या पहिली ऋचा है	
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !		च=और	
अद्य=आज		याज्या=दूसरी याज्या ऋचा है	
अयम्=यह		च=और	
उद्गाता=उद्गाता		तृतीया=तीसरी	
अस्मिन्=इस		एव=निश्चय करके	
यज्ञे=यज्ञ में		शस्या=शस्या ऋचा है	
कति=कितनी		+ पुनः प्रश्नः=फिर प्रश्न है	
स्तोत्रियाः=ऋग्वेद और सामवेद की ऋचाओं की		कतमाः=कौनसी	
स्तोष्यति=स्तुति करेगा		ताः=वे ऋचा हैं ?	
इति=इस पर		याः=जो	
+ सः=उसने		अध्यात्मम्=अध्यात्मविद्या से	
+ उवाच=कहा कि		+ सम्बन्धिनः=सम्बन्ध रखती हैं	
तिस्रः=तीन ऋचा		+ सः=याज्ञवल्क्य ने	
इति=तब फिर		+ उवाच=उत्तर दिया कि	
पप्रच्छ=पूंछा कि		प्राणः=प्राण	
ताः=वे		एव=ही	
कतमाः=कौनसी		पुरोनुवाक्या=पुरोनुवाक्या ऋचा है	
तिस्रः=तीन ऋचा हैं		अपानः=अपान	
इति=ऐसा		याज्या=याज्या ऋचा है	
+ श्रुत्वा=सुन कर		व्यानः=व्यान	

शस्या=शस्या ऋचा है
+ पुनः प्रश्नः=फिर प्रश्न है कि
ताभिः=तीन ऋचा करके
+ यजमानः=यजमान
किम्=किसको
जयति=जीतता है
इति=इस पर
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
उवाच=उत्तर दिया कि
पुरोनुवाक्यया=पुरोनुवाक्या ऋचा करके
पृथिवीलोकम्=पृथिवीलोक को
+ सः=वह यजमान
एव=अवश्य
जयति=जीतता है
याज्यया=याज्या ऋचा करके
अन्तरिक्षम्=अन्तरिक्षलोक को
+ जयति=जीतता है
शस्यया=शस्या ऋचा करके
द्युलोकम्=स्वर्गलोक को
+ जयति=जीतता है
ततः ह=तब
होता=होता
अश्वलः=अश्वल
उपरराम=चुप होगया

भावार्थ ।

अश्वल फिर प्रश्न करता है कि हे याज्ञवल्क्य ! इस यज्ञ विषे आज उद्गातानामक ऋत्विज् कितने स्तोत्र पढ़ेगा, तब याज्ञवल्क्य उसके उत्तर में कहते हैं कि जो अध्यात्मसम्बन्धी है वह तीन स्तोत्र पढ़ेगा, तब अश्वल पूंछता है कि वह तीन स्तोत्र कौन से हैं ? याज्ञवल्क्य उत्तर देते हैं प्रथम पुरोनुवाक्या ऋचा है, दूसरी याज्यानामक ऋचा है, तीसरी शस्यानामक ऋचा है, फिर अश्वल पूंछता है कि हे याज्ञवल्क्य ! पुरोनुवाक्या आदि ऋचाओं से आपका क्या तात्पर्य है ? इसके उत्तर में याज्ञवल्क्य कहते हैं कि पुरोनुवाक्या ऋचा से मेरा मतलब प्राणवायु से है, याज्या ऋचा से मेरा मतलब अपानवायु से है, शस्या ऋचा से मेरा मतलब व्यानवायु से है, फिर अश्वल पूंछता है कि हे याज्ञवल्क्य ! यदि इन तीनों ऋचाओं करके यज्ञ कियाजाय तो उन से क्या प्राप्ति होगी ? याज्ञवल्क्य उत्तर देते हैं कि, हे अश्वल ! पुरोनुवाक्या ऋचा से यजमान पृथ्वीलोक को जीतता है, याज्या ऋचा करके वह

अन्तरिक्षलोक को जीतता है, और शस्या ऋचा करके द्युलोक को प्राप्त होता है, ऐसा सुन कर अश्वल चुप होगया ॥ १० ॥

इति प्रथमं ब्राह्मणम् ॥ १ ॥

अथ द्वितीयं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

अथ हैनं जारत्कारव आर्त्तभागः पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच कति ग्रहाः कत्यतिग्रहा इति अष्टौ ग्रहा अष्टावतिग्रहा इति ये तेऽष्टौ ग्रहा अष्टावतिग्रहाः कतमे त इति ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, जारत्कारवः, आर्तभागः, पप्रच्छ, याज्ञवल्क्य, इति, ह, उवाच, कति, ग्रहाः, कति, अतिग्रहाः, इति, अष्टौ, ग्रहाः, अष्टौ, अतिग्रहाः, इति, ये, ते, अष्टौ, ग्रहाः, अष्टौ, अतिग्रहाः, कतमे, ते, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
अथ ह	अश्वल के चुप होने पर
एनम् ह	उस प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य से
जरत्कारवः	जरत्कारु के वंश का
आर्त्तभागः	आर्त्तभाग
इति पप्रच्छ	ऐसा पूछता भया कि
याज्ञवल्क्य	हे याज्ञवल्क्य !
कति	कितने
ग्रहाः	ग्रह हैं ?
+ च	और
कति	कितने
अतिग्रहाः	अतिग्रह हैं ?
इति	इस पर
ह	साफ़ साफ़
याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
उवाच	कहा
अष्टौ	आठ
ग्रहाः	ग्रह हैं
+ च	और
अष्टौ	आठ
अतिग्रहाः	अतिग्रह
इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	सुन कर

+ पुनः प्रश्नः=फिर प्रश्न किया कि
ये=जो
ते=वे
अष्टौ=आठ
ग्रहाः=ग्रह हैं
+ च=और
अष्टौ=आठ
अतिग्रहाः=अतिग्रह हैं
कतमे=उनमें से कितने
ते=वे ग्रह और कितने
अतिग्रह हैं

भावार्थ ।

जब अश्वल चुप होगया, उसके पीछे जरत्कारु के पुत्र आर्त्तभाग ने प्रश्न करना आरम्भ किया, यह कहता हुआ कि हे याज्ञवल्क्य ! ग्रह कितने हैं ? और अतिग्रह कितने हैं ? याज्ञवल्क्य उत्तर देते हैं कि आठ ग्रह हैं, और आठही अतिग्रह हैं, पुनः आर्त्तभाग पूंछता है हे याज्ञवल्क्य ! वे आठ ग्रह कौन कौन हैं, और आठ अतिग्रह कौन कौन हैं ॥ १ ॥

मन्त्रः २

प्राणो वै ग्रहः सोपानेनातिग्राहेण गृहीतोपानेन हि गन्धाञ्जिघ्रति ॥

पदच्छेदः ।

प्राणः, वै, ग्रहः, सः, अपानेन, अतिग्राहेण, गृहीतः, अपानेन, हि, गन्धान्, जिघ्रति ॥

अन्वयः पदार्थाः
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्यने
+ आह=उत्तर दिया कि
प्राणः=घ्राणेन्द्रिय
वै=ही
ग्रहः=ग्रह है
सः=वही घ्राणेन्द्रिय
अतिग्राहेण=अत्यन्त ग्रहण कराने वाले
अपानेन=अपानवायु करके
गृहीतः=गृहीत है
हि=क्योंकि
+ लोकः=लोक
अपानेन=अपानवायु करके
गन्धान्=गन्धों को
जिघ्रति=सूंघता है

भावार्थ ।

आर्तभाग के प्रश्न को सुन कर याज्ञवल्क्य कहते हैं कि हे आर्त-भाग ! उन आठ ग्रहों में से प्रथम ग्रह घ्राणेन्द्रिय है, और इसका विषय सुगन्धी और दुर्गन्धी अतिग्रह हैं, इस लिये वह घ्राणरूप इन्द्रिय ग्रह विषयरूप अतिग्रह करके गृहीत है, क्योंकि अपानवायु करके घ्राणेन्द्रिय नाना प्रकार के गन्धों को ग्रहण करता है, याज्ञवल्क्य के कहने का तात्पर्य यह है कि आठ ग्रह यानी इन्द्रियां हैं, और आठही उनके अतिग्रह हैं, यानी विषय हैं और चूंकि विषय इन्द्रियों को दबा लेते हैं, इसलिये इन्द्रियों की अपेक्षा विषय बलवान् होते हैं, और यही कारण है कि विषयों का नाम अतिग्रह है ॥ २ ॥

मन्त्रः ३

वाग्वैग्रहः स नाम्नातिग्राहेण गृहीतोवाचा हि नामान्यभि-वदति ॥

पदच्छेदः ।

वाक्, वै, ग्रहः, सः, नाम्ना, अतिग्राहेण, गृहीतः, वाचा, हि, नामानि, अभिवदति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
वाक्	वागिन्द्रिय	गृहीतः	गृहीत है
वै	ही	हि	क्योंकि
ग्रहः	ग्रह है	+ लोकः	लोक
सः	वही वागिन्द्रियरूपग्रह	वाचा	वाणी करके
नाम्ना	नामरूप	नामानि	नामों को
अतिग्राहेण	अतिग्रह यानी विषय से	अभिवदति	कहता है

भावार्थ ।

वागिन्द्रिय ग्रह है, वह वागिन्द्रिय वाणी और नाम अतिग्रह से गृहीत है, क्योंकि जितने नाम हैं वे सब वाणी के प्रकाशक हैं, और

वाणी वागिन्द्रिय का प्रकाशक है, बग़ैर नाम के वाणी की सिद्धि नहीं होसकती है, जैसे किसी वस्तु की सिद्धि बग़ैर नाम के नहीं होसकती है. यह घट है, यह पट है, यह ब्रह्म है, यह जगत् है, इन सबकी सिद्धि नाम करके ही होसकती है, यदि नाम न हो तो किसी वस्तु की सिद्धि कभी नहीं होसकती है, और यदि वाणी न होय तो वागिन्द्रिय यानी मुख की सिद्धि नहीं होसकती है, इस लिये वागिन्द्रिय से वाणी श्रेष्ठ है, और वाणी से नाम श्रेष्ठ है, वागिन्द्रिय को ग्रह (बन्धक) इस कारण कहा है कि वह पुरुषों को बांधती है, क्योंकि संसार में असत्यादिक अधिक कहेजाते हैं, यदि वागिन्द्रिय से सत्यादिक अधिक कहा जाय तो वही वागिन्द्रिय उस कहनेवाले को मुक्ति का कारण होसकती है, यहां पर संसार के व्यवहार की अधिकता के कारण वागिन्द्रिय को ग्रह कहा है ॥ ३ ॥

मन्त्रः ४

जिह्वा वै ग्रहः स रसेनातिग्राहेण गृहीतो जिह्वया हि रसान्विजानाति ॥

पदच्छेदः ।

जिह्वा, वै, ग्रहः, सः, रसेन, अतिग्राहेण, गृहीतः, जिह्वया, हि, रसान्, विजानाति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
जिह्वा	जीभ
वै	ही
ग्रहः	ग्रह है
सः	वही जीभ
रसेन	रसरूप
अतिग्राहेण	अतिग्रह करके यानी विषय करके
गृहीतः	गृहीत है
हि	क्योंकि
+ लोकः	लोक
जिह्वया	जीभही करके
रसान्	रसों को
विजानाति	जानता है

भावार्थ ।

जीभ ग्रह है, और इसका विषय रस अतिग्रह है, रस करके ही जीभ गृहीत है, क्योंकि जीभसेही विविध प्रकार के रसों का ज्ञान होता है, यह जीभ अनेक प्रकार के रस यानी विषयसम्बन्धी स्वाद को ग्रहण करती है, इस लिये जीवके बन्धन का हेतु है ॥ ४ ॥

मन्त्रः ५

चक्षुर्वै ग्रहः स रूपेणातिग्राहेण गृहीतश्चक्षुषा हि रूपाणि पश्यति ॥

पदच्छेदः ।

चक्षुः, वै, ग्रहः, सः, रूपेण, अतिग्राहेण, गृहीतः, चक्षुषा, हि, रूपाणि, पश्यति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
चक्षुः	नेत्र	गृहीतः	गृहीत है
वै	ही	हि	क्योंकि
ग्रहः	ग्रह है	+ लोकः	लोक
सः	वही नेत्र	चक्षुषा	नेत्र करके ही
रूपेण	रूपस्वरूप	रूपाणि	रूपों को
अतिग्राहेण	अतिग्रह यानी विषय करके	पश्यति	देखता है

भावार्थ ।

नेत्र निश्चय करके ग्रह है, और रूप उसका अतिग्रह है, रूप करके नेत्र गृहीत है, क्योंकि पुरुष चक्षु करकेही अनेक प्रकार के रूपों को देखता है, चूंकि रूप करके पुरुष बन्धन में पड़ता है, इस कारण चक्षु को ग्रह यानी बांधनेवाला कहा है ॥ ५ ॥

मन्त्रः ६

श्रोत्रं वै ग्रहः स शब्देनातिग्राहेण गृहीतः श्रोत्रेण हि शब्दा-ञ्शृणोति ॥

पदच्छेदः ।

श्रोत्रम्, वै, ग्रहः, सः, शब्देन, अतिग्राहेण, गृहीतः, श्रोत्रेण, हि, शब्दान्, शृणोति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
श्रोत्रम्=कर्ण		गृहीतः=गृहीत है	
ग्रहः=ग्रह है		हि=क्योंकि	
सः=वही कर्ण		+ लोकः=लोक	
शब्देन=शब्दरूप		श्रोत्रेण=कान करके	
अतिग्राहेण=अतिग्रह यानी विषय करके		शब्दान्=शब्दों को	
		शृणोति=सुनता है	

भावार्थ ।

श्रोत्रेन्द्रिय निश्चय करके ग्रह है, शब्द अतिग्रह है, क्योंकि शब्द करकेही श्रोत्रेन्द्रिय गृहीत है, चूंकि विषयसम्बन्धी शब्द पुरुष को बांधता है, इस कारण श्रोत्रेन्द्रिय को ग्रह यानी बांधनेवाला कहा है ॥ ६ ॥

मन्त्रः ७

मनो वै ग्रहः स कामेनातिग्राहेण गृहीतो मनसा हि कामान्कामयते ॥

पदच्छेदः ।

मनः, वै, ग्रहः, सः, कामेन, अतिग्राहेण, गृहीतः, मनसा, हि, कामान्, कामयते ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
मनः=मन		गृहीतः=गृहीत है	
वै=निश्चय करके		हि=क्योंकि	
ग्रहः=ग्रह है		+ लोकः=लोक	
सः=वही मन		मनसा=मन करकेही	
कामेन=कामनारूप		कामान्=इच्छित पदार्थों की	
अतिग्राहेण=अतिग्रह यानी विषय करके		कामयते=इच्छा करता है	

भावार्थ।

मन इन्द्रिय ग्रह है, कामरूप उसका अतिग्रह है, क्योंकि कामना करके मन गृहीत होरहा है, यानी मनसेही अनेक कामना पुरुष करता है, चूंकि विषय की कामना में पुरुष फँसा रहता है, इस कारण मन को ग्रह यानी बांधनेवाला कहा है ॥ ७ ॥

मन्त्रः ८

हस्तौ वै ग्रहः स कर्मणातिग्राहेण गृहीतो हस्ताभ्याᳬं हि कर्म करोति ॥

पदच्छेदः।

हस्तौ, वै, ग्रहः, सः, कर्मणा, अतिग्राहेण, गृहीतः, हस्ताभ्याम्, हि, कर्म, करोति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
वै	निश्चय करके	गृहीतः	गृहीत है
हस्तौ	दोनों हाथ	हि	क्योंकि
ग्रहः	ग्रह हैं	+ लोकः	लोक
सः	वही दोनों हाथ	हस्ताभ्याम्	हाथों से
कर्मणा	कर्मरूपी	कर्म	काम
अतिग्राहेण	अतिग्रह यानी विषय करके	करोति	करता है

भावार्थ।

दोनों हाथ ग्रह हैं, और कर्म उसका अतिग्रह है, दोनों हाथ कर्म करके गृहीत हैं, क्योंकि हाथों करके ही पुरुष कर्म को करता है, चूंकि अधिक करके हाथ करकेही बुरे कर्म किये जाते हैं, जिससे कि कर्मकर्त्ता बन्धन में पड़ता है, इसी लिये दोनों हाथों को ग्रह यानी बांधनेवाला कहा है ॥ ८ ॥

मन्त्रः ९

त्वग्वै ग्रहः स स्पर्शेनातिग्राहेण गृहीतस्त्वचा हि स्पर्शान् वेदयत इत्येतेऽष्टौ ग्रहा अष्टावतिग्रहाः ॥

पदच्छेदः ।

त्वक्, वै, ग्रहः, सः, स्पर्शेन, अतिग्राहेण, गृहीतः, त्वचा, हि, स्पर्शान्, वेदयते, इति, एते, अष्टौ, ग्रहाः, अष्टौ, अतिग्रहाः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
त्वक्=त्वगिन्द्रिय		+ पुरुषः=पुरुष	
वै=निश्चय करके		वेदयते=जानता है,	
ग्रहः=ग्रह है		इति=इस प्रकार	
सः=वही त्वग्रूप ग्रह		एते=ये	
स्पर्शेन=स्पर्शरूप		अष्टौ=आठ	
अतिग्राहेण=अतिग्रह करके		ग्रहाः=ग्रह हैं	
गृहीतः=गृहीत है		+ च=और	
हि=क्योंकि		अष्टौ=आठ	
त्वचा=त्वचा करके ही		अतिग्रहाः=अतिग्रह हैं	
स्पर्शान्=अनेक प्रकार के स्पर्शों को			

भावार्थ ।

त्वक् इन्द्रिय ग्रह है, और स्पर्शरूप उसका अतिग्रह है, त्वगिन्द्रिय स्पर्श से गृहीत है, क्योंकि त्वगिन्द्रिय से ही विविध प्रकार के स्पर्शों को पुरुष जानता है, चूंकि त्वगिन्द्रिय द्वारा अनेक प्रकार के स्पर्श को भोगता है, और भोग कर बन्धन में पड़ता है, इस लिये त्वगिन्द्रिय को ग्रह यानी बांधनेवाला कहा है ॥ ९ ॥

मन्त्रः १०

याज्ञवल्क्येति होवाच यदिदꣳ सर्वं मृत्योरन्नं कास्वित्सा देवता यस्या मृत्युरन्नमित्यग्निर्वै मृत्युः सोऽपामन्नमपपुनर्मृत्युं जयति ॥

पदच्छेदः ।

याज्ञवल्क्य, इति, ह, उवाच, यत्, इदम्, सर्वम्, मृत्योः, अन्नम्, का, स्वित्, सा, देवता, यस्याः, मृत्युः, अन्नम्, इति, अग्निः, वै, मृत्युः, सः, अपाम्, अन्नम्, अप, पुनः, मृत्युम्, जयति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
+ आर्तभागः	आर्तभाग ने	मृत्युः	मृत्यु है
इति	इस प्रकार	इति	ऐसा
उवाच	कहा	+ श्रुत्वा	सुन कर
याज्ञवल्क्य	हे याज्ञवल्क्य !	+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
यत्	जो	+ उवाच	उत्तर दिया कि
इदम्	यह	अग्निः	अग्नि
सर्वम्	सब वस्तु दृष्ट व अदृष्ट स्थूल व सूक्ष्म है	वै	निश्चय करके
+ तत् सर्वम्	वह सब	मृत्युः	उसका मृत्यु है
मृत्योः	ग्रह अतिग्रहरूप मृत्यु का	सः	वह अग्नि
अन्नम्	आहार है	अपाम्	जल का
का	कौन	अन्नम्	भक्ष्य है
स्वित्	सा	+ यः	जो पुरुष
सा	वह	+ इति	इस प्रकार
देवता	देवता है	विजानाति	जानता है
यस्याः	जिसका	सः	वह
अन्नम्	आहार	पुनः	फिर
		मृत्युम्	मृत्यु को
		अपजयति	जीत लेता है

भावार्थ ।

जरत्कारु के पुत्र आर्तभाग ने देखा कि याज्ञवल्क्य का उत्तर ठीक है तब द्वितीय प्रश्न इस प्रकार करता भया कि जो यह सब दृष्ट अदृष्ट अथवा मूर्त्त अमूर्त्त अथवा स्थूल सूक्ष्म दिखाई देता है वह सब ग्रह और अतिग्रहरूप मृत्यु का आहार है तब वह कौन देवता है ? जिसका आहार ग्रह अतिग्रहरूप मृत्यु है, याज्ञवल्क्य महाराज उत्तर देते हैं कि वह देवता अग्नि है, वह अग्नि जल का भक्ष्य है, जो मनुष्य इस विज्ञान को जानता है, वह मृत्यु का जय करता है, याज्ञवल्क्य महाराज ने जो ऐसा दृष्टान्त देकर मृत्यु का मृत्यु बताया है उससे उनका मतलब यह है कि संसार में जितने पदार्थ हैं सब मृत्यु से ग्रसित हैं, जो मृत्यु से

असित नहीं है उसका अन्वेषण करना उचित है वही ब्रह्म ज्ञान का साधन है, वही ब्रह्म ज्ञान ईश्वर का साक्षात् कराता है और तभी पुरुष सब दुःखों से छूट जाता है ॥ १० ॥

मन्त्रः ११

याज्ञवल्क्येति होवाच यत्रायं पुरुषो म्रियत उदस्मात्प्राणाः क्रामन्त्याहो ३ नेति नेति होवाच याज्ञवल्क्योऽत्रैव समवनीयन्ते स उच्छ्वयत्याध्मायत्याध्मातो मृतः शेते ॥

पदच्छेदः ।

याज्ञवल्क्य, इति, ह, उवाच, यत्र, अयम्, पुरुषः, म्रियते, उत्, अस्मात्, प्राणाः, क्रामन्ति, आहो, न, इति, न, इति, ह, उवाच, याज्ञवल्क्यः, अत्र, एव, सम्, अव, नीयन्ते, सः, उच्छ्वयति, आध्मायति, आध्मातः, मृतः, शेते ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ आर्तभागः=आर्तभाग ने	
इति=इस प्रकार	
उवाच=कहा कि	
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !	
यत्र=जिस समय	
अयम्=यह	
पुरुषः=ज्ञानी पुरुष	
म्रियते=मरता है	
+ तदा=तब	
अस्मात्=इस मरे हुये पुरुष से	
प्राणाः=प्राणादि इन्द्रियां	
उत्=ऊपर को	
क्रामन्ति=जाती हैं	
आहो=अथवा	
न=नहीं	

अन्वयः	पदार्थाः
इति=ऐसा	
+ मम प्रश्नः=मेरा प्रश्न है	
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने	
ह=स्पष्ट	
इति=ऐसा	
उवाच=उत्तर दिया कि	
न=नहीं	
+ क्रामन्ति=ऊपर को जाती हैं	
अत्र एव=यहीं पर यानी उसी मेंही	
समवनीयन्ते=लीन होजाती हैं	
+ च=और	
सः=वह ज्ञानी पुरुष	
उच्छ्वयति=ऊर्ध्व को श्वास लेने लगता है	

पुनः=फिर
आध्मायति=खरखराहट का शब्द करने लगता है
ततः=तिसके पीछे
आध्मातः=वायु से धौंकनी की तरह फूला हुआ
मृतः=मरा हुआ
शेते=सोता है

भावार्थ ।

आर्त्तभाग फिर द्वितीय प्रश्न करता है, हे याज्ञवल्क्य ! जब यह ज्ञानी पुरुष ग्रह अतिग्रहरूप मृत्यु से छूट कर मरता है तब उस मरे हुये पुरुष से सब इन्द्रियां वासना सहित ऊपर को जाती हैं या नहीं ? याज्ञवल्क्य ने उत्तर में कहा कि इन्द्रियां ऊपर को नहीं जाती हैं उसी में लीन होजाती हैं, और वह ज्ञानी आनन्दपूर्वक देह को त्यागता है, और सोया हुआ सा प्रतीत होताहै ॥ ११ ॥

मन्त्रः १२

याज्ञवल्क्येति होवाच यत्रायं पुरुषो म्रियते किमेनं न जहातीति नामेत्यनन्तं वै नामानन्ता विश्वेदेवा अनन्तमेव स तेन लोकं जयति ॥

पदच्छेदः ।

याज्ञवल्क्य, इति, ह, उवाच, यत्र, अयम्, पुरुषः, म्रियते, किम्, एनम्, न, जहाति, इति, नाम, इति, अनन्तम्, वै, नाम, अनन्ताः, विश्वे, देवाः, अनन्तम्, एव, सः, तेन, लोकम्, जयति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
आर्त्तभागः	आर्त्तभाग ने
इति	इस प्रकार
उवाच	कहा कि
याज्ञवल्क्य	हे याज्ञवल्क्य !
यत्र	जिस समय
अयम्	यह
पुरुषः	ज्ञानी पुरुष
म्रियते	मरता है
+ तर्हि	तब
किम्	कौनसा पदार्थ
एनम्	इस विद्वान् को
न	नहीं
जहाति	त्यागता है
इति	ऐसा
+ मम प्रश्नः	मेरा प्रश्न है
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने

+ उवाच=उत्तर दिया कि
नाम=नाम
+ न जहाति=नहीं त्यागता है
नाम=नाम
अनन्तम्=अनन्त है
विश्वेदेवाः=विश्वेदेव
अनन्ताः=अनन्त हैं
तेन=तिस कारण
सः=वह पुरुष
अनन्तम्=नित्य ब्रह्म
लोकम्=लोक को
जयति=जीतता है यानी
प्राप्त होताहै

भावार्थ।

आर्तभाग सम्बोधन करके फिर पूंछता है कि हे याज्ञवल्क्य ! जब ज्ञानी पुरुष मर जाता है, तब क्या छोड़ जाता है ? इसके उत्तर में याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि अपने पीछे अपना नाम छोड़ जाता है, यानी जो जो श्रेष्ठ कार्य करता है जिस के कारण वह प्रसिद्ध होजाता है, उस अपने नाम का छोड़ जाता है, जैसे पाणिनि ऋषि की बनाई अष्टाध्यायी के पठन पाठन का प्रचार रहने से पाणिनि का नाम अभीतक चला जाता है, इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष के मरने के पीछे उसका नाम बना रहता है, चूंकि नाम अनन्त हैं और लोक भी अनन्त हैं, और उनके अभिमानी देवता भी अनन्त हैं, इस लिये वह विद्वान् जिसने अनेक शुभ कार्यों करके अनेक नाम अपने पीछे छोड़ा है, उन नामों करके अनेक देवताओं के लोकों के अविनाशी लोक को वह जीतता है यानी प्राप्त होताहै ॥ १२ ॥

मन्त्रः १३

याज्ञवल्क्येति होवाच यत्रास्य पुरुषस्य मृतस्याग्निं वागप्येति वातं प्राणश्चक्षुरादित्यं मनश्चन्द्रं दिशः श्रोत्रं पृथिवीᳬं शरीरमाकाशमात्मौषधीर्लोमानि वनस्पतीन्केशा अप्सु लोहितं च रेतश्च निधीयते क्वायं तदा पुरुषो भवतीत्याहर सोम्य हस्तमार्त्तभागावामेवैतस्य वेदिष्यावो नावेतत्सजन इति तौ होत्क्रम्य मन्त्रयाञ्चक्राते तौ ह यदूचतुः कर्म हैव तदूचतुरथ यत्प्रशशᳬंसतुः कर्म हैव तत्प्रशशᳬं

स्तुः पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेनेति ततो ह जारत्कारव आर्त्तभाग उपरराम ॥

इति द्वितीयं ब्राह्मणम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

याज्ञवल्क्य, इति, ह, उवाच, यत्र, अस्य, पुरुषस्य, मृतस्य, अग्निम्, वाक्, अप्येति, वातम्, प्राणः, चक्षुः, आदित्यम्, मनः, चन्द्रम्, दिशः, श्रोत्रम्, पृथिवीम्, शरीरम्, आकाशम्, आत्मा, ओषधीः, लोमानि, वनस्पतीन्, केशाः, अप्सु, लोहितम्, च, रेतः, च, निधीयते, क, अयम्, तदा, पुरुषः, भवति, इति, आहर, सोम्य, हस्तम्, आर्त्तभाग, आवाम्, एव, एतस्य, वेदिष्यावः, नौ, एतत्, सजने, इति, तौ, ह, उत्क्रम्य, मन्त्रयाञ्चक्राते, तौ, ह, यत्, ऊचतुः, कर्म, ह, एव, तत्, ऊचतुः, अथ, यत्, प्रशशंसतुः, कर्म, ह, एव, तत्, प्रशशंसतुः, पुण्यः, वै, पुण्येन, कर्मणा, भवति, पापः, पापेन, इति, ततः, ह, जारत्कारवः, आर्त्तभागः, उपरराम ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ आर्त्तभागः	आर्त्तभाग ने
इति	इस प्रकार
उवाच	कहा
याज्ञवल्क्य	हे याज्ञवल्क्य !
यत्र	जिस काल में
अस्य	इस
मृतस्य	मरे हुये
पुरुषस्य	ज्ञानी पुरुष की
वाक्	वागिन्द्रियशक्ति
अग्निम्	अग्नि में
अप्येति	प्रवेश कर जाती है
प्राणः	प्राण
वातम्	बाह्यवायु में
चक्षुः	नेत्र
आदित्यम्	सूर्य में
मनः	मन
चन्द्रम्	चन्द्रमा में
श्रोत्रम्	कर्ण
दिशः	दिशा में
आत्मा	शरीर का आकाश
आकाशम्	बाह्य आकाश में
शरीरम्	शारीरक पार्थिवभाग
पृथिवीम्	पृथ्वी में
लोमानि	रोवां
ओषधीः	औषधी में
केशाः	केश
वनस्पतीन्	वनस्पति में
च	और
लोहितम्	रक्त यानी रजोगुण जलीयभाग

रेतः=वीर्य
अप्सु=जल में
निधीयते=जा मिलते हैं
तदा=तब
अयम्=यह
पुरुषः=पुरुष
क्व=किस आधार पर
भवति=स्थित रहता है ?
+ तदुत्तरे=इसके उत्तर में
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
उवाच=कहा
सोम्य आर्त्तभाग=हे सौम्य, आर्त्तभाग !
+ त्वम्=तू
+ माम्=मुझको
हस्तम्=हाथ
आहर=दे
आवाम्=हम तुम
एतस्य वेदितव्यम्=इस जानने योग्य को
एव=अवश्य
वेदिष्यावः=जानेंगे
एतत्=यह वस्तु
नौ=हमारे-तुम्हारे
+ निर्णेतुम्=निश्चय करने के लिये
सजने=जनसमूह में
न=नहीं
शक्यते=शक्य है
ह=तब
तौ=दोनों
उत्क्रम्य=उठ कर
+ एकान्तम्=एकान्त जगह में
+ गत्वा=जा कर
मन्त्रयाञ्चक्राते=विचार करते भये
+ च=और
+ विचार्य=विचार करके
यत्=जो कुछ
ऊचतुः=उन दोनों ने कहा
+ तत्=वह
कर्म ह एव=कर्मही को कहा
अथ=इसके पीछे
यत्=जो कुछ
प्रशशंसतुः=प्रशंसा करते भये
तत्=वह
कर्म=कर्मकीही
प्रशशंसतुः=प्रशंसा करते भये
हि=क्योंकि
वै=निश्चय से
पुण्येन=पुण्यजनक कर्म से
पुण्यः=पुण्य
च=और
पापेन=पापजनक कर्म से
पापः=पाप
भवति=होता है
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुन कर
ततः=तत्पश्चात्
जारत्कारवः=जरत्कारु गोत्र का
आर्त्तभागः=आर्त्तभाग
उपरराम=उपराम यानी चुप होता भया

भावार्थ ।

आर्त्तभाग ने बहुत कठिन प्रश्न किया, पर उनका यथार्थ उत्तर पाकर अति प्रसन्न हुआ. अब अद्वितीय प्रश्न करता है, यह कहता हुआ कि हे याज्ञवल्क्य ! जिस काल में इस मरे हुये पुरुष की वागिन्द्रिय शक्ति अग्नि में नष्ट होजाती है, और हृदयस्थ उष्णता चली जाती है प्राण बाह्यवायु में मिल जाता है, दर्शनशक्ति चक्षु आदित्य में चली जाती है, मन की वृत्ति चन्द्रमा में लय होजाती है, श्रवण शक्ति दिशाओं में मिल जाती है, शारीरक स्थूल पार्थिव भाग पृथ्वी के साथ जा मिलता है, शरीर के अभ्यन्तरीय आकाश, बाह्य आकाश में प्रवेश कर जाता है, शरीर के रोम औषधी में मिल जाते हैं, और शरीर के माथे के केश वनस्पति में प्रवेश कर जाते हैं, शरीर के रक्त और रक्त के साथ अन्यजलीय भाग वीर्य अथवा वीर्य के तुल्य अन्य पदार्थ जल में मिल जाते हैं अर्थात् जब कार्य कारण में लय होजाता है, तब यह पुरुष कहां और किस आधार पर रहता है ? हे याज्ञवल्क्य ! इसका उत्तर आप मुझको दें, याज्ञवल्क्य कहते हैं, हे प्रिय, आर्त्तभाग ! इस प्रश्न का उत्तर जनसमूहों में देना ठीक नहीं है, अपना हाथ हमको देव, उठो चलो, इस प्रश्न के विषय में जो कुछ विचारणीय है उसको हम तुम दोनों एकान्त में विचार करेंगे, इस प्रश्न के उत्तर को इस सभा में कोई नहीं समझेगा, इस लिये उसका कहना सभा के मध्य में अयोग्य है, इस पर वे दोनों कहीं एकान्त में जाकर विचार करने लगे और विचार करते करते ऐसा निश्चय किया कि कर्मही श्रेष्ठ है, कर्मकेही आश्रय पुरुष की स्थिति है, जबतक पुरुष कर्म करता रहेगा तबतक वह बना रहेगा, उसकी मुक्ति नहीं है, पुण्यजनक कर्म से पुण्य होताहै, और पापजनक कर्म से पाप होताहै, पुण्यकर्म मोक्ष का साधक है, और पापकर्म बन्ध

का कारण है, ऐसा यथार्थ उत्तर पाकर जरत्कारु का पुत्र आर्त्तभाग चुप होगया ॥ १३ ॥

इति द्वितीयं ब्राह्मणम् ॥ २ ॥

अथ तृतीयं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

अथ हैनं भुज्युर्लाह्यायनिः पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच मद्रेषु चरकाः पर्यव्रजाम ते पतञ्चलस्य काप्यस्य गृहानैम तस्यासीद्दुहिता गन्धर्वगृहीता तमपृच्छाम कोऽसीति सोऽब्रवीत्सुधन्वाङ्गिरस इति तं यदा लोकानामन्तानपृच्छामाथैनमब्रूम क्व पारिक्षिता अभवन्निति क्व पारिक्षिता अभवन्स त्वा पृच्छामि याज्ञवल्क्य क्व पारिक्षिता अभवन्निति ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, भुज्युः, लाह्यायनिः, पप्रच्छ, याज्ञवल्क्य, इति, ह, उवाच, मद्रेषु, चरकाः, पर्यव्रजाम, ते, पतञ्चलस्य, काप्यस्य, गृहान्, ऐम, तस्य, आसीत्, दुहिता, गन्धर्वगृहीता, तम्, अपृच्छाम, कः, असि, इति, सः, अब्रवीत्, सुधन्वा, आङ्गिरसः, इति, तम्, यदा, लोकानाम्, अन्तान्, अपृच्छाम, अथ, एनम्, अब्रूम, क्व, पारिक्षिताः, अभवन्, इति, क्व, पारिक्षिताः, अभवन्, सः, त्वा, पृच्छामि, याज्ञवल्क्य, क्व, पारिक्षिताः, अभवन्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
अथ	इसके पीछे
लाह्यायनिः	लाह्यायनि
भुज्युः	भुज्यु ने
इति	ऐसा
पप्रच्छ	प्रश्न किया
+ च	और
उवाच	कहा कि
याज्ञवल्क्य	हे याज्ञवल्क्य !
मद्रेषु	मद्रदेशों में
वयम्	हम सब

चरकाः=व्रत करने वाले विद्यार्थी होकर	यदा=जब
पर्यव्रजाम=पर्यटन करते भये	वयम्=हमलोगों ने
+ पुनः=फिर	लोकानाम्=लोकों के
ते=वे हमलोग	अन्तान्=अन्त को
काप्यस्य=कपिगोत्र वाले	अपृच्छाम=पूंछा
पतञ्चलस्य=पतञ्चल के	अथ=और
गृहान्=घर को	एनम्=उस से
ऐम=जाते भये	अब्रूम=कहा कि
तस्य=उस पतञ्चल की	पारिक्षिताः=परिक्षित वंश के लोग
दुहिता=कन्या	क=कहां
गन्धर्वगृहीता आसीत्=गन्धर्वगृहीत थी यानी उसको गन्धर्व लगा था	अभवन्=गये ?
तम्=उस गन्धर्व से	+ तदा=तब
+ वयम्=हम लोगों ने	+ सः=उसने
अपृच्छाम=पूंछा	+ अब्रवीत्=सब वृत्तान्त कहा
त्वम्=तू	+ इदानीम्=अब
कः=कौन	+ अहम्=मैं
असि=है	त्वा=तुझ याज्ञवल्क्य से
+ तदा=तब	पृच्छामि=पूंछता हूं कि
सः=उस गन्धर्व ने	पारिक्षिताः=परिक्षित वंश के लोग
इति=ऐसा	क=कहां
अब्रवीत्=कहा कि	अभवन्=गये ?
+ अहम्=मैं	याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
आङ्गिरसः=आङ्गिरस गोत्रवाला	पारिक्षिताः=परिक्षित वंश के लोग
सुधन्वा=सुधन्वानाम वाला हूं	क=कहां
तम्=उस गन्धर्व से	अभवन्=जाते भये ?
	इति=ऐसा मेरा प्रश्न है

भावार्थ ।

आर्त्तभाग के चुप होजाने पर लाह्यायनि भुज्युनामक ब्राह्मण याज्ञवल्क्य से पूंछता है कि अर्सा हुआ जब हम सब विद्यार्थी व्रताचरणपूर्वक मद्रदेश में विचरते थे, और काप्य पतञ्चल के घर पर

आये, वहां देखा कि उनकी कन्या गन्धर्वगृहीत हो रही थी, उस गन्धर्व से जो उसके शरीर विषे स्थित था, हमलोगों ने पूंछा, आप कौन हैं, आपका क्या नाम है ? उसने कहा मैं गन्धर्व हूं, मेरा नाम सुधन्वा है, आङ्गिरस गोत्र में उत्पन्न हुआ हूं, उससे हमलोगों ने अनेक लोकों के बारे में प्रश्न किया, इसका उत्तर उसने यथायोग्य दिया, जब हमलोगों ने उससे पूंछा कि हे गन्धर्व ! इस समय पारिक्षित यानी अश्वमेध यज्ञकर्त्ता के वंश वाले कहां हैं ? जो कुछ उसने उत्तर दिया वह मुझको मालूम है, आप कृपा करके बताइये कि पारिक्षित कहां पर हैं ? अगर आप ब्रह्मनिष्ठ हैं जैसा आप अपने को समझते हैं तो मेरे इस प्रश्न का उत्तर यथार्थ देंगे ॥ १ ॥

मन्त्रः २

स होवाचोवाच वै सोऽगच्छन्वै ते तद्यत्राश्वमेधयाजिनो गच्छन्तीति क न्वश्वमेधयाजिनो गच्छन्तीति द्वात्रिंᳬशतं वै देवरथाह्न्यान्ययं लोकस्तᳬ समन्तं पृथिवी द्विस्तावत्पर्येति ताᳬ समन्तं पृथिवीं द्विस्तावत्समुद्रः पर्येति तद्यावती क्षुरस्य धारा यावद्वा मक्षिकायाः पत्रं तावानन्तरेणाकाशस्तानिन्द्रः सुपर्णो भूत्वा वायवे प्रायच्छत्तान्वायुरात्मनि धित्वा तत्रागमयद्यत्राश्वमेधयाजिनोभवन्नित्येवमिव वै स वायुमेव प्रशशᳬस तस्माद्वायुरेव व्यष्टिर्वायुः समष्टिरपपुनर्मृत्युं जयति य एवं वेद ततो ह भुज्युर्लाह्यायनिरुपरराम ॥

इति तृतीयं ब्राह्मणम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, उवाच, वै, सः, अगच्छन्, वै, ते, तत्, यत्र, अश्वमेधयाजिनः, गच्छन्ति, इति, क, नु, अश्वमेधयाजिनः, गच्छन्ति, इति, द्वात्रिंशतम्, वै, देवरथाह्न्यानि, अयम्, लोकः, तम्, समन्तम्, पृथिवी, द्विः, तावत्, पर्येति, ताम्, समन्तम्, पृथिवीम्, द्विः, तावत्, समुद्रः, पर्येति, तत्, यावती, क्षुरस्य, धारा, यावत्, वा, मक्षिकायाः, पत्रम्, तावान्, अन्तरेण, आकाशः, तान्, इन्द्रः, सुपर्णः, भूत्वा,

वायवे, प्रायच्छत्, तान्, वायुः, आत्मनि, धित्वा, तत्र, अगमयत्, यत्र, अश्वमेधयाजिनः, अभवन्, इति, एवम्, इव, वै, सः, वायुम्, एव, प्रशशंस, तस्मात्, वायुः, एव, व्यष्टिः, वायुः, समष्टिः, अप, पुनः, मृत्युम्, जयति, यः, एवम्, वेद, ततः, ह, भुज्युः, लाह्यायनिः, उपरराम ॥

अन्वयः	पदार्थाः
ह	तब
सः	वह याज्ञवल्क्य
उवाच	कहते भये कि
+ चरक	हे चरक !
सः	वह गन्धर्व
वै	निश्चय करके
+ त्वाम्	तुझ से
इति	ऐसा
उवाच	पारिक्षितों का हाल कहता भया कि
यत्र	जहां
अश्वमेध-याजिनः	अश्वमेध करने वाले
गच्छन्ति	जाते हैं
तत्	वहां
ते	वे पारिक्षित
वै	निस्संदेह
अगच्छन्	जाते भये
इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	सुन कर
नु	मैंने प्रश्न किया कि
अश्वमेध-याजिनः	अश्वमेध करने वाले
क्व	कहां
गच्छन्ति	जाते हैं ?
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने

अन्वयः	पदार्थाः
+ उवाच	उत्तर दिया कि
भुज्यु	हे भुज्यु !
देवरथाह्न्यानि	सूर्यका रथ एक दिन रात में जितने देश में जाता है
तस्य	उसका
द्वात्रिंशतम्	बत्तीसगुना
अयम्	यह
लोकः	लोक यानी भारतवर्ष है
+ अतःपरम्	इसके उपरान्त
+ परमलोकः	अन्तरिक्ष लोक है
तम्	उसको
तावद् द्विः	उतनाही द्विगुण प्रमाणवाला
समन्तम्	चारों तरफ़ से
पृथिवी	पृथ्वी
पर्येति	घेरे है
+ च	और
ताम्	उस
पृथिवीम्	पृथ्वी को
समन्तम्	चारों तरफ़ से
तावत्	उतनाही
द्विः	दूने प्रमाणवाला
समुद्रः	समुद्र
पर्येति	घेरे है
तत्	ऐसा होने पर

अन्तरेण=उसके अन्दर
आकाशः=आकाश व्याप्त है
+ सः=वह
तावान्=उतना ही सूक्ष्म है
यावत्=जितनी
क्षुरस्य=छूरा की
धारा=धार यानी अग्रभाग
वा=और
यावत्=जितना
मक्षिकायाः=मक्षिका का
पत्रम्=पंख सूक्ष्म है
+ तत्र=वहां
इन्द्रः=परमात्मा
सुपर्णः=पक्षी
भूत्वा=हो कर
तान्=उन अश्वमेध यज्ञ करने वालों को
वायवे=वायु के
प्रायच्छत्=सिपुर्द करता भया
वायुः=वायु
तान्=उनको
आत्मनि=अपने में
धित्वा=रख कर
तत्र=वहां
अगमयत्=ले जाता भया
तत्र=वहां
अश्वमेधयाजिनः=अश्वमेध कर्ता
अभवन्=जाते हैं
एवंइववै=इसी प्रकार
सः=वह गन्धर्व
वायुम्एव=वायु कोही
प्रशशंस=प्रशंसा करता भया
तस्मात्=इस लिये
वायुः=वायु
+ एव=ही
व्यष्टिः=व्यष्टिरूप है
वायुः=वायु
एव=ही
समष्टिः=समष्टिरूप है
+भुज्यु=हे भुज्यु !
एवम्=इस प्रकार
यः=जो
वेद=जानता है
+ सः=वह
पुनः=फिर
मृत्युम्=मृत्यु को
अपजयति=जीतता है
ततःह=इस प्रकार याज्ञवल्क्य के उत्तर पाने पर
लाह्यायनिः=लाह्य का पुत्र
भुज्युः=भुज्यु
उपरराम=चुप होगया

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज बोले कि हे लाह्यायनि, भुज्यु ! आप सुनो मैं कहता हूं. उस गन्धर्व ने आप से इस प्रकार कहा, पारिक्षित वहां गये जहां अश्वमेधयज्ञ के करनेवाले जाते हैं, वह लोक कैसा है ? उसको

भी तुम सुनो, जितना सूर्यदेव का रथ एक दिन रात्रि में निरन्तर जाता आता है, उसके ऊपर अन्तरिक्षलोक है, उस लोक के चारों तरफ़ द्विगुण परिमाणवाला पृथ्वीलोक है, उस पृथ्वी के चारों तरफ़ द्विगुण परिमाणयुक्त समुद्र विद्यमान है, उन दोनों यानी अन्तरिक्ष और पृथ्वीलोक के मध्य में आकाश व्याप्त है, वह इतना सूक्ष्म है जितना छुरा का अग्रभाग और मक्षिका का पर होताहै, ऐसे अति-सूक्ष्म और दुर्विज्ञेय देश में परमात्मा पक्षी के आकार में होकर उन पारिक्षितों को वायु अभिमानी देवता के सिपुर्द करता भया और वह वायु उन्हें अपने में रख कर वहां ले गया जहां अश्वमेधकर्ता रहते थे. इस उत्तर के देने से याज्ञवल्क्य महाराज ने वायु की प्रशंसा की इस लिये सारा ब्रह्माण्ड और उसके अभ्यन्तर सारी सृष्टि, व्यष्टि और समष्टि वायु करके व्याप्त है जो विद्वान् पुरुष वायु या प्राण को इस प्रकार जानता है और उसकी उपासना करता है वह मृत्यु को जय करता है और अजर, अमर होजाता है. ऐसा सुन कर लाह्यायनि भुज्यु चुप होगया ॥ २ ॥

इति तृतीयं ब्राह्मणम् ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

अथ हैनमुषस्तश्चाक्रायणः पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच यत्साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म य आत्मा सर्वान्तरस्तं मे व्याचक्ष्वेत्येष त आत्मा सर्वान्तरः कतमो याज्ञवल्क्य सर्वान्तरो यः प्राणेन प्राणिति स त आत्मा सर्वान्तरो योऽपानेनापानिति स त आत्मा सर्वान्तरो यो व्यानेन व्यानिति स त आत्मा सर्वान्तरो य उदानेनोदानिति स त आत्मा सर्वान्तर एष त आत्मा सर्वान्तरः ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, उपस्तः, चाक्रायणः, पप्रच्छ, याज्ञवल्क्य, इति, ह, उवाच, यत्, साक्षात्, अपरोक्षात्, ब्रह्म, यः, आत्मा, सर्वान्तरः, तम्, मे, व्याचक्ष्व, इति, एषः, ते, आत्मा, सर्वान्तरः, कतमः, याज्ञवल्क्य, सर्वान्तरः, यः, प्राणेन, प्राणिति, सः, ते, आत्मा, सर्वान्तरः, यः, अपानेन, अपानिति, सः, ते, आत्मा, सर्वान्तरः, यः, व्यानेन, व्यानिति, सः, ते, आत्मा, सर्वान्तरः, यः, उदानेन, उदानिति, सः, ते, आत्मा, सर्वान्तरः, एषः, ते, आत्मा, सर्वान्तरः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
अथ ह	तत्पश्चात्
चाक्रायणः	चक्र का पुत्र
उपस्तः	उपस्त
एनम्	उस याज्ञवल्क्य से
पप्रच्छ	पूछता भया
+ च	और
इति	ऐसा
उवाच	कहता भया कि
+ याज्ञवल्क्य	हे याज्ञवल्क्य !
यत्	जो
साक्षात्	साक्षात्
अपरोक्षात्	अपरोक्ष
ब्रह्म	ब्रह्म है
यः	जो
आत्मा	आत्मा
सर्वान्तरः	सब के अभ्यन्तर है
तम्	उसको
मे	मेरे लिये
व्याचक्ष्व	कह
इति	ऐसा
श्रुत्वा	सुन कर
याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
उवाच	उत्तर दिया कि
एषः	यह
ते	तेरा
आत्मा	आत्मा
सर्वान्तरः	सब के अभ्यन्तर विराजमान है
+ पुनः	फिर
+ उपस्तः	उपस्त ने
आह	कहा
याज्ञवल्क्य	हे याज्ञवल्क्य !
+ असौ	यह
कतमः	कौनसा
सर्वान्तरः	आत्मा सर्वान्तर है
+ याज्ञवल्क्येन	याज्ञवल्क्य ने
+ उत्तरम्	उत्तर
+ दत्तम्	दिया कि
यः	जो आत्मा
प्राणेन	प्राणवायु करके
प्राणिति	चेष्टा करता है
सः	वही

ते=तेरा
आत्मा=आत्मा
सर्वान्तरः=सर्वान्तर्यामी है
यः=जो
अपानेन=अपान वायु करके
अपानिति=चेष्टा करता है
सः=वह
ते=तेरा
आत्मा=आत्मा
सर्वान्तरः=सर्वान्तर्यामी है
यः=जो
व्यानेन=व्यान वायु करके
व्यानिति=चेष्टा करता है
सः=वह

ते=तेरा
आत्मा=आत्मा
सर्वान्तरः=सर्वान्तर्यामी है
यः=जो
उदानेन=उदान वायु करके
उदानिति=चेष्टा करता है
सः=वह
ते=तेरा
आत्मा=आत्मा
सर्वान्तरः=सर्वान्तर्यामी है
एषः=ऐसा कहा हुआ
ते=तेरा
आत्मा=आत्मा
सर्वान्तरः=सर्वान्तर्यामी है

भावार्थ ।

जब लाह्यायनि भुज्यु चुप होगया तब चक्र के पुत्र उपस्त ब्राह्मण ने याज्ञवल्क्य महाराज से पूंछना आरम्भ किया कि हे याज्ञवल्क्य ! जो प्रत्यक्ष ब्रह्म है, और जो सब के अभ्यन्तर है, उसको मेरे प्रति कहिये. यह सुनकर याज्ञवल्क्य महाराज उत्तर देते हैं. हे उपस्त ! तेरा हृदयगत आत्मा सब में विराजमान है, इस उत्तर को पाकर सन्तुष्ट न होकर उपस्त फिर याज्ञवल्क्य से पूंछता है. हे याज्ञवल्क्य ! कौनसा आत्मा सर्वान्तर है, याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया. हे उपस्त ! सुन जो प्राण वायु करके चेष्टा करता है वही तेरा आत्मा सर्वान्तर है, जो अपान वायु करके चेष्टा करता है वही तेरा आत्मा सर्वान्तर है, जो व्यान वायु करके चेष्टा करता है वही तुम्हारा आत्मा सर्वान्तर है, जो उदान वायु करके चेष्टा करता है वही तुम्हारा आत्मा सर्वान्तर है, यह तेरा आत्मा सब के अभ्यन्तर स्थित है ॥ १ ॥

मन्त्रः २

सहोवाचोपस्तश्चाक्रायणो यथा विब्रूयादसौ गौरसावश्वइत्ये-

वमेवैतद् व्यपदिष्टं भवति यदेव साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म य आत्मा सर्वान्तरस्तं मे व्याचक्ष्वेत्येष त आत्मा सर्वान्तरः कतमो याज्ञवल्क्य सर्वान्तरः । न दृष्टेर्द्रष्टारं पश्येर्न श्रुतेः श्रोतारꣳ शृणुया न मतेर्मन्तारं मन्वीथा न विज्ञातेर्विज्ञातारं विजानीयाः । एष त आत्मा सर्वान्तरो तोन्यदार्त्तं ततो होषस्तश्चाक्रायण उपरराम ॥

इति चतुर्थं ब्राह्मणम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, उषस्तः, चाक्रायणः, यथा, विब्रूयात्, असौ, गौः, असौ, अश्वः, इति, एवम्, एव, एतद्, व्यपदिष्टम्, भवति, यत्, एव साक्षात्, अपरोक्षात्, ब्रह्म, यः, आत्मा, सर्वान्तरः, तम्, मे, व्याचक्ष्व, इति, एषः, ते, आत्मा, सर्वान्तरः, कतमः, याज्ञवल्क्य, सर्वान्तरः, न, दृष्टेः, द्रष्टारम्, पश्येः, न, श्रुतेः, श्रोतारम्, शृणुयाः, न, मतेः, मन्तारम्, मन्वीथाः, न, विज्ञातेः, विज्ञातारम्, विजानीयाः, एषः, ते, आत्मा, सर्वान्तरः, अतः, अन्यत्, आर्त्तम्, ततः, ह, उपस्तः, चाक्रायणः, उपरराम ॥

अन्वयः	पदार्थाः
ह=तब	
चाक्रायणः=चक्र का पुत्र	
सः=वह	
उषस्तः=उपस्त	
उवाच=कहता भया कि	
+ याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !	
यथा=जैसे	
+ कश्चित्=कोई	
विब्रूयात्=कहे कि	
असौ=यह	
गौः=गौ है	

अन्वयः	पदार्थाः
असौ=यह	
अश्वः=अश्व है	
एवम् एव=उसी प्रकार	
एतत्=यह	
व्यपदिष्टम्=आप करके कहा हुआ	
ब्रह्म=ब्रह्म	
भवति=होता है	
+ परन्तु=परन्तु	
+ त्वम्=आप	
न=नहीं	

+ दर्शयते= दिखाते हो अर्थात् जैसे कोई सामने की वस्तु को दिखा कर कहता है कि यह गौ है, यह घोड़ा है ऐसी आप ने आत्मा के दिखाने की प्रतिज्ञा की है सो अब आप दिखावें मैं प्रश्न करता हूं

+ याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
यत्=जो
एव=निश्चय करके
साक्षात्=प्रत्यक्ष
+ च=और
अपरोक्षात्=साक्षी है
+ च=और
यः=जो
सर्वान्तरः=सबका अन्तर्यामी
आत्मा=आत्मा है
तम्=उसको
मे=मेरे लिये
आचक्ष्व=आप कहें
इति=ऐसा
मम प्रश्नः=मेरा प्रश्न है
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
+ उवाच=उत्तर दिया कि
एषः=यह
ते=तेरा
आत्मा=आत्मा
एव=ही
सर्वान्तरः=सबका अन्तर्यामी है
+ पुनः=फिर
+ उपस्तेन=उपस्त ने
+ प्रश्नः=प्रश्न
+ कृतः=किया कि
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
कतमः=कौनसा
सर्वान्तरः=सर्वान्तर्यामी आत्मा है?
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
+ आह=कहा
+ उपस्त=हे उपस्त !
+ शृणु=तू सुन
दृष्टेः=दर्शनशक्ति के
द्रष्टारम्=द्रष्टा को
न=नहीं
पश्येः=तू देख सक्ता है
श्रुतेः=श्रवणशक्ति के
श्रोतारम्=सुनने वाले को
न शृणुयाः=तू नहीं सुन सक्ता है
मतेः=मननशक्ति के
मन्तारम्=मनन करने वाले को
न मन्वीथाः=नहीं तू मनन कर सक्ता है
च=और
विज्ञातेः=विज्ञानशक्ति के
विज्ञातारम्=विज्ञाता को
न विजानीयाः=नहीं तू जान सक्ता है
एषः=यही
ते=तेरा
आत्मा=आत्मा
सर्वान्तरः=सर्वान्तर्यामी है
अतः=इससे
अन्यत्=और सब

आर्त्तम्=दुःखरूप है	चाक्रायणः=चक्र का पुत्र
ह=तब	उषस्तः=उषस्त
ततः=उत्तर पाने के पीछे	उपरराम=उपरत होता भया

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य के उत्तर को पाकर, सन्तुष्ट न होकर उपस्त फिर प्रश्न करता है, हे याज्ञवल्क्य ! आपने ऐसा कहा था कि मैं आत्मा को ऐसा स्पष्ट जानता हूं जैसे कोई कहे कि यह गौ है, यह घोड़ा है, परन्तु आप ऐसा नहीं दिखाते हैं, अब आप आत्मा को प्रत्यक्ष करके बतावें, मैं पुनः आप से पूंछता हूं, जो सबका आत्मा है, जो सब के मध्य में विराजमान है, उसे अच्छी तरह समझा कर बतावें. ऐसा सुन कर याज्ञवल्क्य उत्तर देते हैं, हे उपस्त ! जो आत्मा सबके अन्दर विराजमान है, वही तेरा आत्मा है, वह दोनों एकही हैं, भेद आत्मा में नहीं है, केवल शरीरों में है, फिर उपस्त प्रश्न करता है वह कौन सा आत्मा है ? जो सर्वान्तर्यामी है, उषस्त ऋषि के पूर्वोक्त प्रश्न को सुन कर याज्ञवल्क्य और रीति से कहते हैं, हे उपस्त ! सुन दर्शनशक्ति के द्रष्टा को तू गौ अश्वादिक की तरह नहीं देख सक्ता है, यानी जिस शक्ति करके दर्शनशक्ति अपने सामने के पदार्थों को देखती है उसे अपने पीछे स्थित हुई शक्ति को वह दर्शनशक्ति नहीं देख सकती है, इसी प्रकार हे उषस्त ! जो श्रवणशक्ति का श्रोता है उसको तू नहीं सुन सकता है, अर्थात् जिस शक्ति करके श्रवणशक्ति बाह्य वस्तु के शब्दों को सुनती है उस शक्ति को श्रवणशक्ति नहीं सुन सक्ती है, हे उपस्त ! मननशक्ति के मन्ता को तू मनन नहीं कर सक्ता है, अर्थात् जिस शक्ति करके मन मनन करता है उस शक्ति को मनन-शक्ति मनन नहीं कर सक्ती है, हे उषस्त ! विज्ञानशक्ति के विज्ञाता को तुम नहीं जान सकते हो, अर्थात् हे उषस्त ! उस शक्ति को विज्ञान शक्ति नहीं जान सकती है जो दृष्टि का द्रष्टा है, श्रुति का श्रोता है,

मति का मन्ता है, विज्ञप्ति का विज्ञाता है, वही तेरा आत्मा है, वही सब के अन्दर विराजमान है. इस आत्मविज्ञान से अतिरिक्त जो वस्तु है, वह दुःख मय है, ऐसा सुन कर चक्र का पुत्र उपस्त चुप होगया ॥ २ ॥

इति चतुर्थं ब्राह्मणम् ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

अथ हैनं कहोलः कौषीतकेयः पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच यदेव साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म य आत्मा सर्वान्तरस्तं मे व्याचक्ष्वेत्येष त आत्मा सर्वान्तरः । कतमो याज्ञवल्क्य सर्वान्तरो योऽशनायापिपासे शोकं मोहं जरां मृत्युमत्येति । एवं वै तमात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति या ह्येव पुत्रैषणा सा वित्तैषणा या वित्तैषणा सा लोकैषणोभे ह्येते एषणे एव भवतः । तस्माद्ब्राह्मणः पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेत् । बाल्यं च पाण्डित्यं च निर्विद्याथ मुनिरमौनं च मौनं च निर्विद्याथ । ब्राह्मणः स ब्राह्मणः केन स्याद्येन स्यात्तेनेदृश एवातोऽन्यदार्तं ततो ह कहोलः कौषीतकेय उपरराम ॥

इति पंचमं ब्राह्मणम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, कहोलः, कौषीतकेयः, पप्रच्छ, याज्ञवल्क्य, इति, ह, उवाच, यत्, एव, साक्षात्, अपरोक्षात्, ब्रह्म, यः, आत्मा, सर्वान्तरः, तम्, मे, व्याचक्ष्व, इति, एषः, ते, आत्मा, सर्वान्तरः, कतमः, याज्ञवल्क्य, सर्वान्तरः, यः, अशनायापिपासे, शोकम्, मोहम्, जराम्, मृत्युम्, अत्येति, एतम्, वै, तम्, आत्मानम्, विदित्वा, ब्राह्मणाः, पुत्रैषणायाः, च, वित्तैषणायाः, च, लोकैषणायाः, च, व्युत्थाय, अथ, भिक्षाचर्यम्, चरन्ति, या, हि, एव, पुत्रैषणा, सा, वित्तैषणा, या, वित्तैषणा, सा, लोकैषणा, उभे, हि, एते, एषणे, एव, भवतः, तस्मात्,

ब्राह्मणः, पाण्डित्यम्, निर्विद्य, बाल्येन, तिष्ठासेत्, बाल्यम्, च, पाण्डित्यम्, च, निर्विद्य, अथ, मुनिः, अमौनम्, च, मौनम्, च, निर्विद्य, अथ, ब्राह्मणः, सः, ब्राह्मणः, केन, स्यात्, येन, स्यात्, तेन, ईदृशः, एव, अतः, अन्यत्, आर्त्तम्, ततः, ह, कहोलः, कौषीतकेयः, उपरराम ॥

अन्वयः — पदार्थाः

अथ ह=इसके पीछे
कौषीतकेयः=कुषीतक का पुत्र
कहोलः=कहोल
पप्रच्छ=प्रश्न करता भया
ह=और
इति=ऐसा
उक्त्वा=कह कर
उवाच=सम्बोधन किया कि
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
यत्=जो
एव=निश्चय करके
साक्षात्=साक्षात्
+ च=और
अपरोक्षात्=प्रत्यक्ष
ब्रह्म=ब्रह्म है
+ च=और
यः=जो
आत्मा=आत्मा
सर्वान्तरः=सब के अभ्यन्तर है
तम्=उस आत्मा को
मे=मेरे लिये
व्याचक्ष्व=कहिये
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
+ उवाच=कहा

अन्वयः — पदार्थाः

+ कहोल=हे कहोल !
एषः=यही हृदयस्थ
ते=तेरा
आत्मा=आत्मा
सर्वान्तरः=सर्वान्तर्यामी है
+ पुनः=फिर
+ कहोलः=कहोल ने
पप्रच्छ=पूंछा कि
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
+ सः=वह
कतमः=कौनसा आत्मा
सर्वान्तरः=सर्वान्तर्यामी है ?
+ एषः=यह
+ मम प्रश्नः=मेरा प्रश्न है
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
उवाच=कहा
यः=जो आत्मा
अशनाया-पिपासे=भूख प्यास को
शोकम्=शोक
मोहम्=मोह को
जराम्=जरा
मृत्युम्=मृत्यु को
अत्येति=उल्लङ्घन करके
विद्यमान है

+ सः एव=वही
+ ते आत्मा=तेरा आत्मा है
+ सः एव=वही
सर्वान्तरः=सब के अभ्यन्तर है
वै=निश्चय करके
तम्=उसी
एतम्=इस
आत्मानम्=आत्मा को
विदित्वा=जान कर
अथ=और
पुत्रैषणायाः च=पुत्र की इच्छा से
वित्तैषणायाः=वित्त की इच्छा से
लोकैषणायाः=लोककी इच्छा से
व्युत्थाय=छुटकारा पा कर
ब्राह्मणाः=ब्राह्मण
भिक्षाचर्यम्=भिक्षाव्रत को
चरन्ति=करते हैं
या पुत्रैषणा=जो पुत्र की इच्छा है
सा=वही
हि एव=निश्चय करके
वित्तैषणा=द्रव्य की इच्छा है
सा=वही
लोकैषणा=लोक की इच्छा है
उभे=ये दोनों निकृष्ट
एषणे=इच्छायें एक दूसरे के बाद
एव भवतः=अवश्य होती हैं
तस्मात्=इस लिये
ब्राह्मणः=ब्राह्मण
पाण्डित्यम्=शास्त्रसम्बन्धीज्ञानको
निर्विद्य=त्याग कर
बाल्येन=ज्ञान विज्ञान शक्ति के आश्रित होकर
तिष्ठासेत्=रहने की इच्छा करे
तत्पश्चात्=इसके पीछे
बाल्यम्=ज्ञान विज्ञान
च=और
पाण्डित्यम्=शास्त्रीयज्ञान को
निर्विद्य=त्याग करके
सः=वह ब्राह्मण
मुनिः=मननशील मुनि
भवति=होता है
च पुनः=और फिर
अमौनम् च मौनम् = ज्ञान, विज्ञान और मननवृत्ति को
निर्विद्य=त्याग करके
ब्राह्मणः=ब्रह्मवित्
भवति=होता है
सः=वह
ब्राह्मणः=ब्राह्मण
येन=जिस
केन=किसी साधन करके
स्यात्=हो
तेन=उसी साधन करके
ईदृशः=ऐसा कहे हुये प्रकार ब्रह्मवेत्ता
स्यात्=होता है
अतः=इस लिये
अन्यत्=और सब साधन
आर्त्तम्=दुःखरूप है
ततः ह=याज्ञवल्क्य महाराज से उत्तर पाने के पीछे
कौषीतकेयः=कुषीतक का पुत्र
कहोलः=कहोल
उपरराम=उपरत होता भया

भावार्थ ।

जब चाक्रायण उषस्त चुप होगया, तदनन्तर कहोल ब्राह्मण याज्ञवल्क्य से प्रश्न करने लगा यह कहता हुआ कि, हे याज्ञवल्क्य ! जो ब्रह्म साक्षात् आत्मा के नाम से पुकारा जाता है, और जो सब प्राणियों के अभ्यन्तर में स्थित है, उस ब्रह्म के विषय में मैं आपका व्याख्यान सुनना चाहता हूं. इसके उत्तर में याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे कहोल ! वह ब्रह्म तुम्हारा आत्माही है, वही सब के अभ्यन्तर स्थित है, वही अन्तर्यामी है, इसको सुन कर उषस्तवत् कहोल ने पूंछा हे याज्ञवल्क्य ! वह कौनसा आत्मा सर्वान्तर है ? याज्ञवल्क्य कहते हैं, हे कहोल ! जो आत्मा क्षुधा पिपासा से रहित है; जो शोक, मोह, जरा, मृत्यु से रहित है; वही आपका आत्मा है, वही सर्वान्तर है, वही सब का अन्तर्यामी है. हे कहोल ! जब पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा से रहित होकर ब्राह्मण की वृत्ति आत्माकार होती है, यानी लगातार अपने चैतन्य आत्मा की तरफ चला करती है, तब केवल शरीर निर्वाहार्थ भिक्षावृत्ति वह करता है. हे कहोल ! ये तीनों इच्छायें एकही हैं, ये तीनों निकृष्ट इच्छायें हैं, इनको त्याग कर शास्त्रसम्बन्धी ज्ञान का आश्रय लेवे फिर उसको भी त्याग करके ज्ञान विज्ञान शक्ति के आश्रय होवे और अपने ज्ञान के बल करके स्थित होवे. जब वह ब्राह्मण ऐसा करता है, तब वह ब्राह्मण मुनि कहलाता है, अर्थात् अपने वास्तविकरूप का मनन करता है, और करते करते कुछ काल के पीछे अमौन होजाता है, तब वह ब्रह्मवित् होता है. ऐसे ज्ञान से अतिरिक्त और साधन दुःखरूप हैं. याज्ञवल्क्य से ऐसा उत्तर पाकर और उसके तात्पर्य को समझ कर, कुषीतक का पुत्र कहोल स्तब्ध होता भया ॥ १ ॥

इति पञ्चमं ब्राह्मणम् ॥ ५ ॥

अथ षष्ठं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

अथ हैनं गार्गी वाचक्नवी पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच यदिदᳬं सर्वमप्स्वोतं च प्रोतं च कस्मिन्नु खल्वाप ओताश्च प्रोताश्चेति वायौ गार्गीति कस्मिन्नु खलु वायुरोतश्च प्रोतश्चेत्यन्तरिक्षलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खल्वन्तरिक्षलोका ओताश्च प्रोताश्चेति गन्धर्व-लोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खलु गन्धर्वलोका ओताश्च प्रोताश्चे-त्यादित्यलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खल्वादित्यलोका ओताश्च प्रोताश्चेति चन्द्रलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खलु चन्द्रलोका ओताश्च प्रोताश्चेति नक्षत्रलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खलु नक्षत्रलोका ओताश्च प्रोताश्चेति देवलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खलु देवलोका ओताश्च प्रोताश्चेतीन्द्रलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खल्विन्द्रलोका ओताश्च प्रोताश्चेति प्रजापतिलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खलु प्रजापतिलोका ओताश्च प्रोताश्चेति ब्रह्मलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खलु ब्रह्मलोका ओताश्च प्रोताश्चेति स होवाच गार्गि मातिप्राक्षीर्मा ते मूर्धा व्यप-प्तदनतिप्रश्न्यां वै देवतामतिपृच्छसि गार्गि मातिप्राक्षीरिति ततो ह गार्गी वाचक्नव्युपरराम ॥

इति षष्ठं ब्राह्मणम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, गार्गी, वाचक्नवी, पप्रच्छ, याज्ञवल्क्य, इति, ह, उवाच, यत्, इदम्, सर्वम्, अप्सु, ओतम्, च, प्रोतम्, च, कस्मिन्, नु, खलु, आपः, ओताः, च, प्रोताः, च, इति, वायौ, गार्गि, इति, कस्मिन्, नु, खलु, वायुः, ओतः, च, प्रोतः, च, इति, अन्तरिक्षलो-केषु, गार्गि, इति, कस्मिन्, नु, खलु, अन्तरिक्षलोकाः, ओताः, च, प्रोताः, च, इति, गन्धर्वलोकेषु, गार्गि, इति, कस्मिन्, नु, खलु, गन्ध-र्वलोकाः, ओताः, च, प्रोताः, च, इति, आदित्यलोकेषु, गार्गि, इति,

कस्मिन्, नु, खलु, आदित्यलोकाः, ओताः, च, प्रोताः, च, इति, चन्द्रलोकेषु, गार्गि, इति, कस्मिन्, नु, खलु, चन्द्रलोकाः, ओताः, च, प्रोताः, च, इति, नक्षत्रलोकेषु, गार्गि, इति, कस्मिन्, नु, खलु, नक्षत्र-लोकाः, ओताः, च, प्रोताः, च, इति, देवलोकेषु, गार्गि, इति, कस्मिन्, नु, खलु, देवलोकाः, ओताः, च, प्रोताः, च, इति, इन्द्रलोकेषु, गार्गि, इति, कस्मिन्, नु, खलु, इन्द्रलोकाः, ओताः, च, प्रोताः, च, इति, प्रजापतिलोकेषु, गार्गि, इति, कस्मिन्, नु, खलु, प्रजापतिलोकाः, ओताः, च, प्रोताः, च, इति, ब्रह्मलोकेषु, गार्गि, इति, कस्मिन्, नु, खलु, ब्रह्मलोकाः, ओताः, च, प्रोताः, च, इति, सः, ह, उवाच, गार्गि, मा, अतिप्राक्षीः, मा, ते, मूर्धा, व्यपप्तत्, अनतिप्रश्न्याम्, वै, देवताम्, अतिपृच्छसि, गार्गि, मा, अतिप्राक्षीः, इति, ततः, ह, गार्गी, वाचक्नवी, उपरराम ॥

अन्वयः पदार्थाः

अथ ह=इसके पीछे
वाचक्नवी=वचक्नुकी कन्या
गार्गी=गार्गी
एनम्=इस याज्ञवल्क्य से
पप्रच्छ=प्रश्न करती भई
च=और
उवाच=बोली कि
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
तत्=जो
इदम्=यह
सर्वम्=सब दृश्यमान वस्तु
अप्सु=जलमें
ओतम्=ओत
च=और
प्रोतम् च=प्रोत है
नु=तो

अन्वयः पदार्थाः

आपः=जल
कस्मिन्=किसमें
खलु=निश्चय करके
ओताः=ओत
च=और
प्रोताः च=प्रोत हैं
इति=यह मेरा प्रश्न है
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
+ उवाच=उत्तर दिया कि
गार्गि=हे गार्गि !
वायौ=वायु में जल ओत प्रोत है
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
+ सा=वह बोली
वायुः=वायु

कस्मिन्=किसमें
ओतः=ओत
च=और
प्रोतः च=प्रोत है
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
+ सः=वह याज्ञवल्क्य
+ उवाच=बोले कि
गार्गि=हे गार्गि !
अन्तरिक्ष-लोकेषु=अन्तरिक्ष लोक में वह ओत प्रोत है
इति श्रुत्वा=यह सुन करके
सा=वह गार्गी
+ पप्रच्छ=बोली
कस्मिन्नु=किसमें
खलु=निश्चय करके
अन्तरिक्षलोकाः=अन्तरिक्ष लोक
ओताः=ओत
च=और
प्रोताः च=प्रोत हैं
इति=इस पर
सः=वह याज्ञवल्क्य
+ उवाच=बोले
गार्गि=हे गार्गि !
गन्धर्वलोकेषु=गन्धर्वलोकों में वह
ओत प्रोत हैं
इति=इस पर
गार्गी=गार्गी
+ उवाच=बोली
कस्मिन्=किसमें
नु खलु=निश्चय करके
गन्धर्वलोकाः=गन्धर्वलोक
ओताः=ओत
च=और
प्रोताः च=प्रोत हैं
इति=यह
+ श्रुत्वा=सुन कर
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
+ आह=कहा
गार्गि=हे गार्गि !
चन्द्रलोकेषु=चन्द्रलोकों में वह
ओत प्रोत हैं
इति=इस
गार्गी=गार्गी
उवाच=बोली
चन्द्रलोकाः=चन्द्रलोक
कस्मिन्=किसमें
नु खलु=निश्चय करके
ओताः=ओत
च=और
प्रोताः च=प्रोत हैं
इति=ऐसा होने पर
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
उवाच=उत्तर दिया कि
+ गार्गि=हे गार्गि !
नक्षत्रलोकेषु=नक्षत्रलोकों में वह
ओत प्रोत हैं
इति=ऐसा उत्तर पाने पर
सा=वह गार्गी
+ उवाच=बोली
नक्षत्रलोकाः=नक्षत्रलोक
कस्मिन्=किस में
ओताः=ओत

च=और
प्रोताः च=प्रोत हैं
इति=ऐसा प्रश्न होने पर
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
आह=उत्तर दिया
गार्गि=हे गार्गि !
देवलोकेषु=देवलोकों में वह ओत प्रोत हैं
इति=यह सुन कर
गार्गी=गार्गी ने
पुनः पप्रच्छ=फिर पूंछा
कस्मिन्नु=किसमें
खलु=निश्चय करके
देवलोकाः=देवलोक
ओताः=ओत
च=और
प्रोताः च=प्रोत हैं
इति=इस पर
+ सः=वह याज्ञवल्क्य
उवाच=बोला
गार्गि=हे गार्गि !
इन्द्रलोकेषु=इन्द्रलोकों में वह ओत प्रोत हैं
इति=ऐसा उत्तर पाने पर
गार्गी=गार्गी ने
+ पुनः=फिर
पप्रच्छ=पूंछा
कस्मिन्=किस में
नु खलु=निश्चय करके
इन्द्रलोकाः=इन्द्रलोक
ओताः=ओत
च=और
प्रोताः च=प्रोत हैं
इति=यह सुन कर
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
+ उवाच=कहा
गार्गि=हे गार्गि !
प्रजापति-लोकेषु=प्रजापति लोकों में वह ओत प्रोत हैं
इति=यह सुन कर
गार्गी=गार्गी
+ उवाच=बोली
प्रजापति-लोकाः=प्रजापति लोक
कस्मिन्=किसमें
नु खलु=निश्चय करके
ओताः=ओत
च=और
प्रोताः च=प्रोत हैं
इति=ऐसा प्रश्न सुन कर
+ सः=वह याज्ञवल्क्य
उवाच=बोले
गार्गि=हे गार्गि !
ब्रह्मलोकेषु=ब्रह्मलोकों में वह ओत प्रोत हैं
इति=ऐसा उत्तर पाने पर
गार्गी=गार्गी
उवाच=बोली
ब्रह्मलोकाः=ब्रह्मलोक
कस्मिन्=किसमें
ओताः=ओत
च=और
प्रोताः च=प्रोत हैं
इति=ऐसा प्रश्न होने पर

याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य	अनतिप्रश्न्याम्=जो देवता अति प्रश्न किये जाने योग्य नहीं है
ह=स्पष्ट	देवताम्=उस देवता के प्रति
उवाच=कहते भये कि	अतिपृच्छसि=बारम्बार तू पूंछती है
गार्गि=हे गार्गि !	गार्गि=हे गार्गि !
मा=मत	इति=इस प्रकार
मा=मुझसे	मा=मत
अतिप्राक्षीः=अधिक पूंछ	अतिप्राक्षीः=अधिक पूंछ
अन्यथा=नहीं तो	ततः ह=तब
ते=तेरा	वाचक्नवी=वचक्नु की कन्या
मूर्धा=मस्तक	गार्गी=गार्गी
व्यपप्तत्=गिरपड़ेगा	उपरराम=चुप होगई

भावार्थ ।

जब कहोल चुप होगया तब उसके पीछे श्रीमती ब्रह्मवादिनी वाचक्नवी गार्गी याज्ञवल्क्य महाराज से प्रश्न करने लगी, हे याज्ञवल्क्य ! जो यह सब वस्तु दिखाई देती है, वह जलमें ओत प्रोत है यानी जिस प्रकार कपड़े में ताना बाना सूत एक दूसरे से ग्रथित रहते हैं वैसेही सब जल में दृश्यमान पदार्थ ग्रथित हैं, ऐसा शास्त्र कहता है, आप कृपा करके बतलाइये कि वह जल किसमें ओत प्रोत है, याज्ञ-वल्क्य इसके उत्तर में कहते हैं, हे गार्गि ! वह जल वायु में ओत प्रोत है, हे याज्ञवल्क्य ! वायु किसमें ओत प्रोत है, हे गार्गि ! वह वायु अन्तरिक्षलोक में ओत प्रोत है, हे याज्ञवल्क्य ! अन्तरिक्षलोक किसमें ओत प्रोत है, हे गार्गि ! वह अन्तरिक्षलोक गन्धर्वलोक में ओत प्रोत है, हे याज्ञवल्क्य ! गन्धर्वलोक किसमें ओत प्रोत है, हे गार्गि ! वह गन्धर्व-लोक आदित्यलोक में ओत प्रोत है, हे याज्ञवल्क्य ! आदित्यलोक किसमें ओत प्रोत है, हे गार्गि ! वह आदित्यलोक चन्द्रलोक में ओत प्रोत है, हे याज्ञवल्क्य ! वह चन्द्रलोक किसमें ओत प्रोत है, हे गार्गि ! वह चन्द्रलोक नक्षत्रलोक में ओत प्रोत है, हे याज्ञवल्क्य ! वह नक्षत्रलोक

किसमें ओत प्रोत है, हे गार्गि ! वह नक्षत्रलोक देवलोक में ओत प्रोत है, हे याज्ञवल्क्य ! वह देवलोक किसमें ओत प्रोत है, हे गार्गि ! वह देवलोक इन्द्रलोक में ओत प्रोत है, हे याज्ञवल्क्य ! वह इन्द्रलोक किसमें ओत प्रोत है, हे गार्गि ! वह इन्द्रलोक प्रजापतिलोक में ओत प्रोत है, हे याज्ञवल्क्य ! वह प्रजापतिलोक किसमें ओत प्रोत है, हे गार्गि ! वह प्रजापतिलोक ब्रह्मलोक में ओत प्रोत है, हे याज्ञवल्क्य ! वह ब्रह्मलोक किसमें ओत प्रोत है, यह सुन कर याज्ञवल्क्य महाराज बोले कि, हे गार्गि ! तू अतिप्रश्न करती है, ब्रह्मवेत्ताओं से अतिप्रश्न करना उचित नहीं है, यदि तू अतिप्रश्न करेगी तो वेग मस्तक तेरे धड़ से गिरजायगा, हे गार्गि ! ब्रह्मलोक से परे कोई लोक नहीं है, सबका आधार ब्रह्म है. याज्ञवल्क्य से ऐसा उत्तर पाकर गार्गी चुप होगई ॥ १ ॥

इति षष्ठं ब्राह्मणम् ॥ ६ ॥

अथ सप्तमं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

अथ हैनमुद्दालक आरुणिः पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच मद्रे-ष्ववसाम पतञ्चलस्य काप्यस्य गृहेषु यज्ञमधीयानास्तस्यासीद्भार्या गन्धर्वगृहीता तमपृच्छाम कोऽसीति सोऽब्रवीत्कबन्ध आथर्वण इति सोऽब्रवीत्पतञ्चलं काप्यं याज्ञिकाꣳश्च वेत्थ नु त्वं काप्य तत्सूत्रं येनायं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि संदृब्धानि भवन्तीति सोऽब्रवीत्पतञ्चलः काप्यो नाहं तद्भगवन्वेदेति सोऽब्रवी-त्पतञ्चलं काप्यं याज्ञिकाꣳश्च वेत्थ नु त्वं काप्य तमन्तर्यामिणं य इमं च लोकं परं च लोकꣳ सर्वाणि च भूतानि योऽन्तरो यमय-तीति सोऽब्रवीत्पतञ्चलः काप्यो नाहं तं भगवन्वेदेति सोऽब्रवीत्

पतञ्चलं काप्यं याज्ञिकाᳬंश्च यो वै तत्काप्य सूत्रं विद्यात्तं चान्तर्यामिणमिति स ब्रह्मवित्स लोकवित्स देववित्स वेदवित्स भूतवित्स आत्मवित्स सर्वविदिति तेभ्योऽब्रवीत्तदहं वेद तच्चेत्त्वं याज्ञवल्क्य सूत्रमविद्वाᳬंस्तं चान्तर्यामिणं ब्रह्मगवीरुदजसे मूर्धा ते विपतिष्यतीति वेद वा अहं गौतम तत्सूत्रं तं चान्तर्यामिणमिति यो वा इदं कश्चिद् ब्रूयाद्वेद वेदेति यथा वेत्थ तथा ब्रूहीति ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, उद्दालकः, आरुणिः, पप्रच्छ, याज्ञवल्क्य, इति, ह, उवाच, मद्रेषु, अवसाम, पतञ्चलस्य, काप्यस्य, गृहेषु, यज्ञम्, अधीयानाः, तस्य, आसीत्, भार्या, गन्धर्वगृहीता, तम्, अपृच्छाम, कः, असि, इति, सः, अब्रवीत्, कबन्धः, आथर्वणः, इति, सः, अब्रवीत्, पतञ्चलम्, काप्यम्, याज्ञिकान्, च, वेत्थ, नु, त्वम्, काप्य, तत्, सूत्रम्, येन, अयम्, च, लोकः, परः, च, लोकः, सर्वाणि, च, भूतानि, संदृब्धानि, भवन्ति, इति, सः, अब्रवीत्, पतञ्चलः, काप्यः, न, अहम्, तत्, भगवन्, वेद, इति, सः, अब्रवीत्, पतञ्चलम्, काप्यम्, याज्ञिकान्, च, वेत्थ, नु, त्वम्, काप्य, तम्, अन्तर्यामिणम्, यः, इमम्, च, लोकम्, परम्, च, लोकम्, सर्वाणि, च, भूतानि, यः, अन्तरः, यमयति, इति, सः, अब्रवीत्, पतञ्चलः, काप्यः, न, अहम्, तम्, भगवन्, वेद, इति, सः, अब्रवीत्, पतञ्चलम्, काप्यम्, याज्ञिकान्, च, यः, वै, तत्, काप्य, सूत्रम्, विद्यात्, तम्, च, अन्तर्यामिणम्, इति, सः, ब्रह्मवित्, सः, लोकवित्, सः, देववित्, सः, वेदवित्, सः, भूतवित्, सः, आत्मवित्, सः, सर्ववित्, इति, तेभ्यः, अब्रवीत्, तत्, अहम्, वेद, तत्, चेत्, त्वम्, याज्ञवल्क्य, सूत्रम्, अविद्वान्, तम्, च, अन्तर्यामिणम्, ब्रह्मगवीः, उदजसे, मूर्धा, ते, विपतिष्यति, इति, वेद, वै, अहम्, गौतम, तत्, सूत्रम्, तम्, च, अन्तर्यामिणम्, इति, यः, वै, इदम्, कश्चित्, ब्रूयात्, वेद, वेद, इति, यथा, वेत्थ, तथा, ब्रूहि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
अथ ह	गार्गी के चुप होने पर	कबन्धः	कबन्धनामक हूं
आरुणिः	अरुण का पुत्र	इति	इसके पीछे
उद्दालकः	उद्दालक ने	सः	उस गन्धर्व ने
एनम् ह	इस याज्ञवल्क्य से	काप्यम्	कपिगोत्रवाले
पप्रच्छ	प्रश्न किया	पतञ्चलम्	पतञ्चल
+ च	और	च	और
उवाच	बोला कि	याज्ञिकान्	उसके शिष्यों से
याज्ञवल्क्य	हे याज्ञवल्क्य !	अब्रवीत्	पूंछा
+ वयम्	हमलोग	काप्य	हे काप्य !
काप्यस्य	कपिगोत्र के	नु	क्या
पतञ्चलस्य	पतञ्चल के	त्वम्	तू
गृहेषु	घर	तत्	उस
यज्ञम्	यज्ञशास्त्र को	सूत्रम्	सूत्र को
अधीयानाः	पढ़ते हुये	वेत्थ	जानता है ?
मद्रेषु	मद्रदेशों में	येन	जिस करके
अवसाम	विचरते थे	अयम्	यह
तस्य	उसकी	लोकः	लोक
भार्या	स्त्री	च	और
गन्धर्वगृहीता	गन्धर्वगृहीत	परः	पर
आसीत्	थी	लोकः	लोक
तम्	उस गन्धर्व से	च	और
अपृच्छाम	हमलोगोंने पूंछा कि	सर्वाणि	संपूर्ण
+ त्वम्	तू	भूतानि	प्राणी
कः	कौन	संदृब्धानि भवन्ति	गुथे हैं
असि	है ?	इति	ऐसा प्रश्न
इति	तब	+ श्रुत्वा	सुन कर
सः	वह गन्धर्व	सः	वह
अब्रवीत्	बोला कि	काप्यः	कपिगोत्रवाला
+ अहम्	मैं	पतञ्चलः	पतञ्चल
आथर्वणः	अथर्वा का पुत्र	अब्रवीत्	बोला कि

अहम्=मैं
तत्=उस सूत्रात्मा को
भगवन्=हे पूज्य !
न=नहीं
वेद=जानता हूं
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुन कर
सः=वह गन्धर्व
काप्यम्=कपिगोत्रवाले
पतञ्चलम्=पतञ्चलसे
च=और
याज्ञिकान्=हम याज्ञिकों से
अब्रवीत्=प्रश्न करता भया
काप्य=हे कपिगोत्रवाले !
नु=क्या
त्वम्=तू
तम्=उस
अन्तर्यामिणम्=अन्तर्यामी को
यः=जो
इमम्=इस
लोकम्=लोक को
च=और
परम्=पर
लोकम्=लोक को
यमयति=नियम में रखता है
च=और
यः=जो
अन्तरः=अन्तर्यामी
सर्वाणि=सब
भूतानि=भूतों को
यमयति=नियम में रखता है
वेत्थ=जानता है

इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुन कर
सः=वह
काप्यः=कपिगोत्रवाला
पतञ्चलः=पतञ्चल
अब्रवीत्=बोला कि
अहम्=मैं
भगवन्=हे पूज्य !
तम्=उस अन्तर्यामी को
न=न
वेद=जानता हूं
इति=ऐसा
श्रुत्वा=सुन कर
सः=वह गन्धर्व
काप्यम्=कपिगोत्र के
पतञ्चलम्=पतञ्चल से
च=और
याज्ञिकान्=हम याज्ञिकों से
अब्रवीत्=बोला कि
काप्य=हे कपिगोत्रवाले !
यः=जो
वै=निश्चय करके
तत्=उस
सूत्रम्=सूत्र
च=और
तम्=उस
अन्तर्यामिणम्=अन्तर्यामी को
विद्यात्=जानजावे तो
सः=वह
ब्रह्मवित्=ब्रह्मवित्
सः=वह
लोकवित्=लोकवित्

सः=वह
देववित्=देववित्
सः=वह
वेदवित्=वेदवित्
सः=वह
भूतवित्=भूतवित्
सः=वह
आत्मवित्=आत्मवित्
सः=वह
सर्ववित्=सर्ववित्
+ भवति=होता है
इति=इसके पीछे
यत्=जो कुछ
गन्धर्वः=गन्धर्व ने
तेभ्यः=उन लोगों से
अब्रवीत्=कहा
तत्=उस सबको
अहम्=मैं
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
वेद=जानता हूं
चेत्=अगर
त्वम्=तू
तत्=उस
सूत्रम्=सूत्र को
च=और
तम्=उस
अन्तर्यामिणम्=अन्तर्यामी को
अविद्वान्=नहीं जानता हुआ
ब्रह्मगवीः=ब्राह्मणों की गौओं को
उदजसे=लिये जाता है सो
ते=तेरा
मूर्धा=मस्तक
विपतिष्यति=गिरपड़ेगा
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुन कर
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने कहा कि
गौतम=हे गौतम !
अहम्=मैं
तत्=उस
सूत्रम्=सूत्र आत्मा को
च=और
तम्=उस
अन्तर्यामिणम्=अन्तर्यामी को
वै=भली प्रकार
वेद=जानता हूं
इति=तब
+ गौतमः=गौतम ने
+ आह=कहा कि
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
यः कश्चित्=जो कोई यानी सब कोई
इदम्=यह
ब्रूयात्=कहते हैं कि
वेद=मैं जानता हूं
वेद=मैं जानता हूं
नु=क्या
त्वम्=तुम
तथा=वैसा
ब्रूयात्=कहोगे
यथा=जैसा
वेत्थ=जानते हो
+ यदि ब्रूयात्=अगर कहोगे तो
ब्रूहि=कहिये

भावार्थ ।

जब याज्ञवल्क्य महाराज को दुर्धर्ष और अजय विद्वान् पाकर प्रश्न करने से गार्गी उपरत होगई, तब अरुण ऋषि के पुत्र उद्दालक ने याज्ञवल्क्य से प्रश्न करना आरम्भ किया, ऐसा सम्बोधन करता हुआ कि, हे याज्ञवल्क्य ! हम लोग एक बार कपिनाम के गोत्र में उत्पन्न हुये पतञ्चलनामक विद्वान् के गृह गये, और यज्ञशास्त्र पढ़ने के निमित्त वहां ठहरे, उनकी भार्या गन्धर्वगृहीत थी, उस गन्धर्व से हमलोगों ने पूंछा कि आप कौन हैं ? उसने उत्तर दिया कि मैं अथर्वा ऋषि का पुत्र हूं, मेरा नाम कबन्ध है, इसके पीछे उस गन्धर्व ने कपिगोत्र विषे उत्पन्न हुये पतञ्चल और यज्ञशास्त्र के अध्ययन करनेवाले हमलोगों से पूंछा, ऐसा सम्बोधन करता हुआ कि हे पतञ्चल ! तू उस सूत्र को जानता है जिस करके यह दृश्यमान लोक और इसका सूक्ष्मकारण, और परलोक और उसका सूक्ष्मकारण और समस्त जीव जन्तु सब ग्रथित हैं, इसके उत्तर में काप्य पतञ्चल ने कहा हे भगवन् ! उसको मैं नहीं जानता हूं, फिर उस गन्धर्व ने काप्य पतञ्चल और हम यज्ञशास्त्र के अध्ययन करनेवालों से पूंछा हे काप्य ! क्या तू उस अन्तर्यामी को जानता है ? जिस करके यह दृश्यमान लोक अपने कारण सहित और सब भूत जो उसमें विराजमान हैं ग्रथित होरहे हैं ? काप्य पतञ्चल ने कहा हे पूज्यपाद, भगवन् ! मैं उसको नहीं जानता हूं, जब गन्धर्व ने अपने दोनों प्रश्नों का उत्तर नहीं पाया, तब उसने काप्य पतञ्चल और यज्ञशास्त्र के अध्ययन करनेवाले हम लोगों से कहा कि हे पतञ्चल ! जो विद्वान् उस सूत्र को और उस अन्तर्यामी पुरुष को अच्छी प्रकार जानता है वह ब्रह्मवित्, भूः, भुवः, स्वः लोकवित्, वह अग्नि, सूर्य आदि देववित्, वह ऋक्, यजुः, साम, अथर्ववेदवित्, वह भूतवित्, वह आत्मवित्, वह सर्ववित् कहलाता है, यानी सब का ज्ञाता होता है, हे काप्य, पतञ्चल ! जब आप उस सूत्र

को और अन्तर्यामी को नहीं जानते हैं तब अध्यापकवृत्ति कैसे करते हैं ? इस पर पतञ्चल और हमलोगों ने कहा, यदि आप उस सूत्र को और अन्तर्यामी को जानते हैं, तो हमारे लिये कहें, इसके उत्तर में उस गन्धर्व ने कहा मैं जानता हूं, फिर उस सूत्र और अन्तर्यामी का उपदेश हमलोगों से किया. हे याज्ञवल्क्य ! मैं उस गन्धर्व के उपदेश किये हुये विज्ञान को जानता हूं, यदि आप उस सूत्र और उस अन्तर्यामी को न जानते हुये ब्रह्मवेत्ता निमित्त आई हुई गौओं को उन ब्रह्मवेत्ताओं का निरादर करके ले गये हैं तो आपका मस्तक अवश्य गिर जायगा, इसके उत्तर में याज्ञवल्क्य कहते हैं कि, हे गौतम ! मैं उस सूत्र को और उस अन्तर्यामी को भली प्रकार जानता हूं, इस पर उद्दालक ऋषि कहते हैं कि ऐसा सबही कहते हैं, मैं जानता हूं, मैं जानता हूं. यदि आप जैसा जानते हैं तो वैसा कहें, अर्थात् गर्जने से क्या प्रयोजन है, यदि आप जानते हैं तो उस विषय को कहें ॥ १ ॥

मन्त्रः २

स होवाच वायुर्वै गौतम तत्सूत्रं वायुना वै गौतम सूत्रेणायं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि संदृब्धानि भवन्ति तस्माद्वै गौतम पुरुषं प्रेतमाहुर्व्यस्रंसिषतास्याङ्गानीति वायुना हि गौतम सूत्रेण संदृब्धानि भवन्तीत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्यान्तर्यामिणं ब्रूहीति ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, वायुः, वै, गौतम, तत्, सूत्रम्, वायुना, वै, गौतम, सूत्रेण, अयम्, च, लोकः, परः, च, लोकः, सर्वाणि, च, भूतानि, संदृब्धानि, भवन्ति, तस्मात्, वै, गौतम, पुरुषम्, प्रेतम्, आहुः, व्यस्रंसिपत, अस्य, अङ्गानि, इति, वायुना, हि, गौतम, सूत्रेण, संदृब्धानि, भवन्ति, इति, एवम्, एव, एतत्, याज्ञवल्क्य, अन्तर्यामिणम्, ब्रूहि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
सः	वह याज्ञवल्क्य	उवाच	बोले कि
ह	स्पष्ट	गौतम	हे गौतम !

तत्=वह
सूत्रम्=सूत्र
वै=निश्चय करके
वायुः=वायु है
गौतम=हे गौतम !
वायुना=वायुरूप
सूत्रेण=सूत्र करके
वै=ही
अयम्=यह
लोकः च=लोक
च=और
परः च=पर
लोकः=लोक
+ च=और
सर्वाणि=सब
भूतानि=प्राणी
संदृब्धानि भवन्ति=ग्रथित हैं
तस्मात्=इस लिये
गौतम=हे गौतम !
प्रेतम्=मरे हुये
पुरुषम्=पुरुष को
वै=निस्सन्देह
आहुः=कहते हैं कि
अस्य=इसके
अङ्गानि=अङ्ग
व्यस्रंसिषत=ढीले होगये हैं
हि=क्योंकि
गौतम=हे गौतम !
वायुना=वायुरूप
सूत्रेण=सूत्र करके
संदृब्धानि भवन्ति=सब अङ्ग ग्रथित होते हैं
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुन कर
गौतमः=गौतम ने
आह=कहा
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
एतत्=यह विज्ञान
एवम् एव=ऐसाही है जैसा आप कहते हैं
+ अथ=अब
अन्तर्यामिणम्=अन्तर्यामी को
ब्रूहि=आप कहें

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य ने कहा हे गौतम ! आप सुनें, मैं कहता हूं. वायु ही वह सूत्र है, जिसको गन्धर्व ने आप से कहा था, वायुरूप सूत्र करके ही कारण सहित यह दृश्यमान लोक, और आकाश विषे स्थित दृश्यादृश्य संपूर्ण लोक, प्राणी और पदार्थ जो उनके अन्दर हैं, ग्रथित हैं, हे गौतम ! जब पुरुष मृत्यु को प्राप्त होजाता है, तब उसके मृतक शरीर को देखकर मनुष्य कहते हैं, कि इस पुरुष के सब अवयव ढीले पड़गये हैं, जैसे माला में से सूत्र के निकल जाने पर उसके मणि इधर

उधर गिर पड़ते हैं, इस उदाहरण से आपको मालूम होसक्ता है कि वायुरूप सूत्र करके ही सब पदार्थ ग्रथित हैं, ऐसा सुन कर गौतम उद्दालक कहते हैं कि, हे याज्ञवल्क्य ! यह विज्ञान ऐसाही है जैसा आपने कहा है, हे याज्ञवल्क्य ! आप कृपा करके अन्तर्यामी विषय के प्रश्न का उत्तर देवें ॥ २ ॥

मन्त्रः ३

यः पृथिव्यां तिष्ठन्पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥

पदच्छेदः ।

यः, पृथिव्याम्, तिष्ठन्, पृथिव्याः, अन्तरः, यम्, पृथिवी, न, वेद, यस्य, पृथिवी, शरीरम्, यः, पृथिवीम्, अन्तरः, यमयति, एषः, ते, आत्मा, अन्तर्यामी, अमृतः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
यः	जो
पृथिव्याम्	पृथ्वी में
तिष्ठन्	स्थित है
+यः	जो
पृथिव्याः	पृथ्वी के
अन्तरः	बाहर है
यम्	जिसको
पृथिवी	पृथ्वी
न	नहीं
वेद	जानती है
यस्य	जिसका
शरीरम्	शरीर
पृथिवी	पृथ्वी है
यः	जो
अन्तरः	पृथ्वी के बाहर भीतर रहकर
पृथिवीम्	पृथ्वी को
यमयति	स्व व्यापार में लगाकर शासन करता है
एषः	वही
ते	तेरा
अमृतः	मरणधर्मरहित
आत्मा	आत्मा
अन्तर्यामी	अन्तर्यामी है

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे गौतम ! जो पृथ्वी में रहता हुआ वर्त्तमान है वही अन्तर्यामी है, गौतम कहते हैं, हे याज्ञवल्क्य !

पृथ्वी में जो सब पदार्थ रहते हैं क्या सबही अन्तर्यामी हैं ? याज्ञवल्क्य कहते हैं, हे गौतम ! ऐसा नहीं, जो पृथ्वी के अन्तर है, जो पृथ्वी के बाहर है, जो पृथ्वी के ऊपर है, जो पृथ्वी के नीचे है, जिसको पृथ्वी नहीं जानती है, जो पृथ्वी को जानता है, जिसका पृथ्वी शरीर है, जो पृथ्वी के बाहर भीतर रहकर पृथ्वी को उसके व्यापार में लगाता है और जो अविनाशी है, निर्विकार है, और जो तुम्हारा और सब का आत्मा है, वही हे गौतम ! अन्तर्यामी है ॥ ३ ॥

मन्त्रः ४

योऽप्सु तिष्ठन्नद्भ्योऽन्तरो यमापो न विदुर्यस्यापः शरीरं योऽपोन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥

पदच्छेदः ।

यः, अप्सु, तिष्ठन्, अद्भ्यः, अन्तरः, यम्, आपः, न, विदुः, यस्य, आपः, शरीरम्, यः, अपः, अन्तरः, यमयति, एषः, ते, आत्मा, अन्तर्यामी, अमृतः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
यः=जो		आपः=जल है	
अप्सु=जल में		यः=जो	
तिष्ठन्=रहता है		अन्तरः=जलके अभ्यन्तर रह कर	
+ च=और		अपः=जल को	
अद्भ्यः=जल के		यमयति=स्वव्यापार में लगाता है	
अन्तरः=बाहर भी स्थित है		एषः=वही	
यम्=जिसको		ते=तेरा	
आपः=जल		अमृतः=अविनाशी	
न=नहीं		आत्मा=आत्मा	
विदुः=जानते हैं		अन्तर्यामी=अन्तर्यामी है	
+ च=और			
यस्य=जिसका			
शरीरम्=शरीर			

भावार्थ ।

हे गौतम ! जो जल में रहता है, और जो जल के बाहर भी है, जिसको जल नहीं जानता है, और जिसका शरीर जल है, और जो जल के बाहर भीतर रह कर उसको शासन करता है, वही तुम्हारा आत्मा है, वही अविनाशी है, वही निर्विकार है, यही वह अन्तर्यामी है ॥ ४ ॥

मन्त्रः ५

योऽग्नौ तिष्ठन्नग्नेरन्तरो यमग्निर्न वेद यस्याग्निः शरीरं योऽग्निमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥

पदच्छेदः ।

यः, अग्नौ, तिष्ठन्, अग्नेः, अन्तरः, यम्, अग्निः, न, वेद, यस्य, अग्निः, शरीरम्, यः, अग्निम्, अन्तरः, यमयति, एषः, ते, आत्मा, अन्तर्यामी, अमृतः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
यः	जो	शरीरम्	शरीर
अग्नौ	अग्नि में	अग्निः	अग्नि है
तिष्ठन्	रहता है	यः	जो
+ च	और	अन्तरः	अग्नि के भीतर रह कर
+ यः	जो	अग्निम्	अग्नि को
अग्नेः	अग्नि के	यमयति	शासन करता है
अन्तरः	भीतर स्थित है	एषः	वही
यम्	जिसको	ते	तेरा
अग्निः	अग्नि	अमृतः	अविनाशी
न	नहीं	आत्मा	आत्मा
वेद	जानता है	अन्तर्यामी	अन्तर्यामी है
यस्य	जिसका		

भावार्थ ।

हे गौतम ! और भी सुनो, जो अग्नि के अन्दर और बाहर स्थित

है, जो अग्नि का शरीर है, जिसको अग्नि नहीं जानता है, और जो अग्नि को जानता है, और जो अग्नि के बाहर भीतर रह कर अग्नि को शासन करता है, जो अमृतरूप आपका आत्मा है यही वह अन्तर्यामी है ॥ ५ ॥

मन्त्रः ६

योऽन्तरिक्षे तिष्ठन्नन्तरिक्षादन्तरो यमन्तरिक्षं न वेद यस्यान्तरिक्षꣳ शरीरं योऽन्तरिक्षमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥

पदच्छेदः ।

यः, अन्तरिक्षे, तिष्ठन्, अन्तरिक्षात्, अन्तरः, यम्, अन्तरिक्षम्, न, वेद, यस्य, अन्तरिक्षम्, शरीरम्, यः, अन्तरिक्षम्, अन्तरः, यमयति, एषः, ते, आत्मा, अन्तर्यामी, अमृतः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
यः	जो	शरीरम्	शरीर
अन्तरिक्षे	आकाश में	अन्तरिक्षम्	आकाश है
तिष्ठन्	स्थित है	यः	जो
+ च	और	अन्तरः	आकाश में रह कर
+ यः	जो	अन्तरिक्षम्	आकाश को
अन्तरिक्षात्	आकाश के	यमयति	नियमबद्ध करता है
अन्तरः	बाहर है	एषः	वही
यम्	जिसको	ते	तेरा
अन्तरिक्षम्	आकाश	अमृतः	अविनाशी
न	नहीं	आत्मा	आत्मा
वेद	जानता है	अन्तर्यामी	अन्तर्यामी है
यस्य	जिसका		

भावार्थ ।

हे गौतम ! जो अन्तरिक्ष में रहता है, और जो अन्तरिक्ष के बाहर स्थित है, जिसको अन्तरिक्ष नहीं जानता है, और जो अन्तरिक्ष को जानता है, जिसका शरीर अन्तरिक्ष है, और जो अन्तरिक्ष के बाहर

भीतर स्थित होकर अन्तरिक्ष को शासन करता है, और जो आपका अविनाशी आत्मा है, यही वह अन्तर्यामी है ॥ ६ ॥

मन्त्रः ७

यो वायौ तिष्ठन् वायोरन्तरो यं वायुर्न वेद यस्य वायुः शरीरं यो वायुमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥

पदच्छेदः ।

यः, वायौ, तिष्ठन्, वायोः, अन्तरः, यम्, वायुः, न, वेद, यस्य, वायुः, शरीरम्, यः, वायुम्, अन्तरः, यमयति, एषः, ते, आत्मा, अन्तर्यामी, अमृतः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
यः=जो		वायुः=वायु है	
वायौ=वायु में		यः=जो	
तिष्ठन्=स्थित है		अन्तरः=वायु के अभ्यन्तर रह कर	
+ यः=जो		वायुम्=वायु को	
वायोः=वायु के		यमयति=नियमबद्ध करता है	
अन्तरः=बाहर है		एषः=वही	
यम्=जिसको		ते=तेरा	
वायुः=वायु		अमृतः=अविनाशी	
न=नहीं		आत्मा=आत्मा	
वेद=जानता है		अन्तर्यामी=अन्तर्यामी है	
यस्य=जिसका			
शरीरम्=शरीर			

भावार्थ ।

जो वायु के बाहर भीतर रहता है, जिसको वायु नहीं जानता है, और जो वायु को जानता है, जिसका वायु शरीर है, जो वायु के भीतर बाहर रह कर वायु को शासन करता है, जो आपका अविनाशी निर्विकार आत्मा है, यही वह अन्तर्यामी है ॥ ७ ॥

मन्त्रः ८

यो दिवि तिष्ठन्दिवोऽन्तरो यं द्यौर्न वेद यस्य द्यौः शरीरं यो दिवमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥

पदच्छेदः ।

यः, दिवि, तिष्ठन्, दिवः, अन्तरः, यम्, द्यौः, न, वेद, यस्य, द्यौः, शरीरम्, यः, दिवम्, अन्तरः, यमयति, एषः, ते, आत्मा, अन्तर्यामी, अमृतः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
यः=जो		शरीरम्=शरीर	
दिवि=स्वर्ग में		द्यौः=स्वर्ग है	
तिष्ठन्=स्थित है		यः=जो	
+ च=और		अन्तरः=स्वर्ग में रह कर	
+ यः=जो		दिवम्=स्वर्ग को	
दिवः=स्वर्ग के		यमयति=नियमबद्ध करता है	
अन्तरः=बाहर है		एषः=वही	
यम्=जिसको		ते=तेरा	
द्यौः=स्वर्ग		अमृतः=अविनाशी	
न=नहीं		आत्मा=आत्मा	
वेद=जानता है		अन्तर्यामी=अन्तर्यामी है	
यस्य=जिसका			

भावार्थ ।

जो द्युलोक में स्थित है, जो द्युलोक के बाहर है, जिसको द्युलोक नहीं जानता है, और जो द्युलोक को जानता है, जिसका शरीर द्युलोक है, और जो द्युलोक के बाहर भीतर स्थित रह कर द्युलोक को शासन करता है, और जो अविनाशी आपका आत्मा है, यही वह अन्तर्यामी है ॥ ८ ॥

मन्त्रः ९

य आदित्ये तिष्ठन्नादित्यादन्तरो यमादित्यो न वेद यस्यादित्यः शरीरं य आदित्यमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥

पदच्छेदः ।

यः, आदित्ये, तिष्ठन्, आदित्यात्, अन्तरः, यम्, आदित्यः, न, वेद, यस्य, आदित्यः, शरीरम्, यः, आदित्यम्, अन्तरः, यमयति, एषः, ते, आत्मा, अन्तर्यामी, अमृतः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
यः=जो		शरीरम्=शरीर	
आदित्ये=सूर्य में		आदित्यः=सूर्य है	
तिष्ठन्=स्थित है		यः=जो	
+ यः=जो		अन्तरः=सूर्य के भीतर रह कर	
आदित्यात्=सूर्य के		आदित्यम्=सूर्य को	
अन्तरः=बाहर है		यमयति=नियमबद्ध करता है	
यम्=जिसको		एषः=वही	
आदित्यः=सूर्य		ते=तेरा	
न=नहीं		अमृतः=अविनाशी	
वेद=जानता है		आत्मा=आत्मा	
यस्य=जिसका		अन्तर्यामी=अन्तर्यामी है	

भावार्थ ।

जो आदित्य के भीतर बाहर रह कर स्थित रहता है, जिसको आदित्य नहीं जानता है, जो आदित्य को जानता है, जिसका शरीर आदित्य है, जो आदित्य के भीतर बाहर रह कर आदित्य को शासन करता है, और जो अविनाशी आपका आत्मा है, यही वह अन्तर्यामी है ॥ ९ ॥

मन्त्रः १०

यो दिक्षु तिष्ठन्दिग्भ्योऽन्तरो यं दिशो न विदुर्यस्य दिशः शरीरं यो दिशोऽन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥

पदच्छेदः ।

यः, दिक्षु, तिष्ठन्, दिग्भ्यः, अन्तरः, यम्, दिशः, न, विदुः, यस्य, दिशः, शरीरम्, यः, दिशः, अन्तरः, यमयति, एषः, ते, आत्मा, अन्तर्यामी, अमृतः ॥

अन्वयः पदार्थाः

यः=जो
दिक्षु=दिशाओं में
तिष्ठन्=स्थित है
यः=जो
दिग्भ्यः=दिशाओं के
अन्तरः=बाहर है
यम्=जिसको
दिशः=दिशायें
न=नहीं
विदुः=जानती हैं
यस्य=जिसका
शरीरम्=शरीर

अन्वयः पदार्थाः

दिशः=दिशायें हैं
यः=जो
अन्तरः=दिशाओं के भीतर रह कर
दिशः=दिशाओं को
यमयति=नियमबद्ध करता है
एषः=वही
ते=तेरा
अमृतः=अविनाशी
आत्मा=आत्मा
अन्तर्यामी=अन्तर्यामी है

भावार्थ ।

जो दिशाओं के अभ्यन्तर रहता है, जो दिशाओं के बाहर है, जिसको दिशायें नहीं जानती हैं, जो दिशाओं को जानता है, जिस का शरीर दिशायें हैं, जो दिशाओं के भीतर बाहर स्थित होकर दिशाओं का शासन करता है, जो आपका आत्मा है, जो अमृतरूप है, यही वह अन्तर्यामी है ॥ १० ॥

मन्त्रः ११

यश्चन्द्रतारके तिष्ठंश्चन्द्रतारकादन्तरो यं चन्द्रतारकं न वेद यस्य चन्द्रतारकंशरीरं यश्चन्द्रतारकमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥

पदच्छेदः ।

यः, चन्द्रतारके, तिष्ठन्, चन्द्रतारकात्, अन्तरः, यम्, चन्द्र-तारकम्, न, वेद, यस्य, चन्द्रतारकम्, शरीरम्, यः, चन्द्रतारकम्, अन्तरः, यमयति, एषः, ते, आत्मा, अन्तर्यामी, अमृतः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
यः	जो
चन्द्रतारके	चन्द्रतारों में
तिष्ठन्	स्थित है
+ यः	जो
चन्द्रतारकात्	चन्द्रतारों के
अन्तरः	बाहर है
यम्	जिसको
चन्द्रतारकम्	चन्द्रतारे
न	नहीं
वेद	जानते हैं
यस्य	जिसका
शरीरम्	शरीर
चन्द्रतारकम्	चन्द्र और तारे हैं
यः	जो
अन्तरः	चन्द्र और तारों के अभ्यन्तर रह कर
चन्द्रतारकम्	चन्द्र तारों को
यमयति	नियमबद्ध करता है
एषः	यही
ते	तेरा
अमृतः	अविनाशी
आत्मा	आत्मा
अन्तर्यामी	अन्तर्यामी है

भावार्थ ।

जो चन्द्रमा और तारों के भीतर बाहर स्थित है, जिसको चन्द्रमा और तारे नहीं जानते हैं, जो चन्द्रमा और तारों को जानता है, जिस का शरीर चन्द्रमा और तारे हैं, जो चन्द्रमा और तारों के भीतर रह कर उनको शासन करता है, जो आपका आत्मा है, जो अमृतरूप है, यही वह अन्तर्यामी है ॥ ११ ॥

मन्त्रः १२

य आकाशे तिष्ठन्नाकाशादन्तरो यमाकाशो न वेद यस्याकाशः शरीरं य आकाशमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥

पदच्छेदः ।

यः, आकाशे, तिष्ठन्, आकाशात्, अन्तरः, यम्, आकाशः, न, वेद, यस्य, आकाशः, शरीरम्, यः, आकाशम्, अन्तरः, यमयति, एषः, ते, आत्मा, अन्तर्यामी, अमृतः ॥

अन्वयः पदार्थाः	अन्वयः पदार्थाः
यः=जो	आकाशः=आकाश है
आकाशे=आकाश में	यः=जो
तिष्ठन्=स्थित है	अन्तरः=आकाश के अभ्यन्तर रह कर
+ यः=जो	आकाशम्=आकाश को
आकाशात्=आकाश से	यमयति=नियमबद्ध करता है
अन्तरः=बाहर है	एषः=वही
यम्=जिसको	ते=तेरा
आकाशः=आकाश	अमृतः=अविनाशी
न=नहीं	आत्मा=आत्मा
वेद=जानता है	अन्तर्यामी=अन्तर्यामी है
यस्य=जिसका	
शरीरम्=शरीर	

भावार्थ ।

जो आकाश के भीतर बाहर स्थित है, जिसको आकाश नहीं जानता है, जो आकाश को जानता है, जिसका शरीर आकाश है, जो आकाश के भीतर बाहर रह कर उसको शासन करता है, जो आपका आत्मा है, जो अमृतस्वरूप है, यही वह अन्तर्यामी है ॥ १२ ॥

मन्त्रः १३

यस्तमसि तिष्ठꣳस्तमसोऽन्तरो यं तमो न वेद यस्य तमः शरीरं यस्तमोऽन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥

पदच्छेदः ।

यः, तमसि, तिष्ठन्, तमसः, अन्तरः, यम्, तमः, न, वेद, यस्य, तमः, शरीरम्, यः, तमः, अन्तरः, यमयति, एषः, ते, आत्मा, अन्तर्यामी, अमृतः ॥

अन्वयः पदार्थाः	अन्वयः पदार्थाः
यः=जो	+ यः=जो
तमसि=अन्धकार में	तमसः=अन्धकार के
तिष्ठन्=स्थित है	अन्तरः=बाहर है

यम् तमः=जिसको अन्धकार
न वेद=नहीं जानता है
यस्य=जिसका
शरीरम्=शरीर
तमः=तम है
यः=जो
अन्तरः=अन्धकार के भीतर बाहर रह कर
तमः=अन्धकार को
यमयति=नियमबद्ध करता है
एषः=वही
ते=तेरा
अमृतः=अविनाशी
आत्मा=आत्मा
अन्तर्यामी=अन्तर्यामी है

भावार्थ ।

जो तमके भीतर बाहर रहता है, जिसको तम नहीं जानता है, जो तमको जानता है, जिसका शरीर तम है, जो तम के अन्तर और बाहर रह कर उसको शासन करता है, जो अमृतस्वरूप है, और जो आपका आत्मा है, यही वह अन्तर्यामी है ॥ १३ ॥

मन्त्रः १४

यस्तेजसि तिष्ठंस्तेजसोऽन्तरो यं तेजो न वेद यस्य तेजः शरीरं यस्तेजोऽन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृत इत्यधिदैवतमथाधिभूतम् ॥

पदच्छेदः ।

यः, तेजसि, तिष्ठन्, तेजसः, अन्तरः, यम्, तेजः, न, वेद, यस्य, तेजः, शरीरम्, यः, तेजः, अन्तरः, यमयति, एषः, ते, आत्मा, अन्तर्यामी, अमृतः, इति, अधिदैवतम्, अथ, अधिभूतम् ॥

अन्वयः पदार्थाः

यः=जो
तेजसि=तेज में
तिष्ठन्=स्थित है
+ यः=जो
तेजसः=तेज के
अन्तरः=बाहर है
यम्=जिसको
तेजः=तेज
न=नहीं
वेद=जानता है

यस्य=जिसका	अमृतः=अविनाशी
शरीरम्=शरीर	आत्मा=आत्मा
तेजः=तेज है	अन्तर्यामी=अन्तर्यामी है
यः=जो	इति=इस प्रकार
अन्तरः=तेज के भीतर रह कर	अधिदैवतम्=देवता के उद्देश्य से अन्तर्यामी विषय कहा है
तेजः=तेज को	अथ=अब
यमयति=नियमबद्ध करता है	अधिभूतम्=भौतिक विषय कहेंगे
एषः=वही	
ते=तेरा	

भावार्थ।

जो तेज के भीतर बाहर रहता है, जिसको तेज नहीं जानता है, जो तेज को जानता है, जिसका शरीर तेज है, जो तेज के भीतर बाहर स्थित रह कर उसको शासन करता है, जो आपका आत्मा है, जो अमृतस्वरूप है, यही वह अन्तर्यामी है इस प्रकार अधिदैव का वर्णन होकर अधिभूत का प्रारंभ होता है ॥ १४ ॥

मन्त्रः १५

यः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्सर्वेभ्यो भूतेभ्योऽन्तरो यꣳ सर्वाणि भूतानि न विदुर्यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरं यः सर्वाणि भूतान्यन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृत इत्यधिभूतमथाध्यात्मम् ॥

पदच्छेदः।

यः, सर्वेषु, भूतेषु, तिष्ठन्, सर्वेभ्यः, भूतेभ्यः, अन्तरः, यम्, सर्वाणि, भूतानि, न, विदुः, यस्य, सर्वाणि, भूतानि, शरीरम्, यः, सर्वाणि, भूतानि, अन्तरः, यमयति, एषः, ते, आत्मा, अन्तर्यामी, अमृतः, इति, अधिभूतम्, अथ, अध्यात्मम् ॥

अन्वयः पदार्थाः	अन्वयः पदार्थाः
यः=जो	सर्वेभ्यः=सब
सर्वेषु=सब	भूतेभ्यः=प्राणियों के
भूतेषु=प्राणियों में	अन्तरः=बाहर है
तिष्ठन्=स्थित है	यम्=जिसको
यः=जो	सर्वाणि=सब

भूतानि=प्राणी
न=नहीं
विदुः=जानते हैं
यस्य=जिसका
शरीरम्=शरीर
सर्वाणि=सब
भूतानि=प्राणी हैं
यः=जो
अन्तरः=प्राणियों के अभ्यन्तर रह कर
सर्वाणि=सब
भूतानि=प्राणियों को
यमयति=नियमबद्ध करता है
एषः=वही
ते=तेरा
अमृतः=अविनाशी
आत्मा=आत्मा
अन्तर्यामी=अन्तर्यामी है
इति=इस प्रकार
अधिभूतम्=अधिभूत का वर्णन होचुका
अथ=अब
अध्यात्मम्=अध्यात्म का वर्णन होगा

भावार्थ ।

जो सब भूतों में रहता है, जो सब भूतों के बाहर भी स्थित है, जिसको सब भूत नहीं जानते हैं, जो सब भूतों को जानता है, जिस का शरीर सब भूत हैं, जो सब भूतों के भीतर बाहर रह कर उनको शासन करता है, जो अमृतस्वरूप है, जो निर्विकार है, जो आपका आत्मा है, यही वह अन्तर्यामी है, इस प्रकार अधिभूत का वर्णन होकर अध्यात्म का आरम्भ होता है ॥ १५ ॥

मन्त्रः १६

यः प्राणे तिष्ठन्प्राणादन्तरो यं प्राणो न वेद यस्य प्राणः शरीरं यः प्राणमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥

पदच्छेदः ।

यः, प्राणे, तिष्ठन्, प्राणात्, अन्तरः, यम्, प्राणः, न, वेद, यस्य, प्राणः, शरीरम्, यः, प्राणम्, अन्तरः, यमयति, एषः, ते, आत्मा, अन्तर्यामी, अमृतः ॥

अन्वयः पदार्थाः | अन्वयः पदार्थाः

यः=जो
प्राणे=प्राण में
तिष्ठन्=स्थित है
+ यः=जो

प्राणात्=प्राण के
अन्तरः=बाहर है
यम्=जिसको
प्राणः=प्राण
न=नहीं
वेद=जानता है
यस्य=जिसका
शरीरम्=शरीर
प्राणः=प्राण है
यः=जो
अन्तरः=प्राण में रह कर
प्राणम्=प्राण को
यमयति=नियमबद्ध करता है
एषः=वही
ते=तेरा
अमृतः=अविनाशी
आत्मा=आत्मा
अन्तर्यामी=अन्तर्यामी है

भावार्थ ।

जो प्राण के अन्तर रहता है, और बाहर भी रहता है, जिस को प्राण नहीं जानता है, जो प्राण को जानता है, जिसका शरीर प्राण है, जो प्राण के भीतर बाहर रह कर उसको शासन करता है, जो आपका आत्मा है, जो अविनाशी है, यही वह अन्तर्यामी है ॥ १६ ॥

मन्त्रः १७

यो वाचि तिष्ठन्वाचोऽन्तरो यं वाङ् न वेद यस्य वाक् शरीरं यो वाचमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥

पदच्छेदः ।

यः, वाचि, तिष्ठन्, वाचः, अन्तरः, यम्, वाक्, न, वेद, यस्य, वाक्, शरीरम्, यः, वाचम्, अन्तरः, यमयति, एषः, ते, आत्मा, अन्तर्यामी, अमृतः ॥

अन्वयः पदार्थाः

यः=जो
वाचि=वाणी में
तिष्ठन्=स्थित है
+ यः=जो
वाचः=वाणी के
अन्तरः=बाहर है
यम्=जिसको
वाणी=वाणी
न=नहीं
वेद=जानती है
यस्य=जिसका
शरीरम्=शरीर
वाक्=वाणी है
यः=जो

अन्तरः=वाणी में रह कर
वाचम्=वाणी को
यमयति=नियमबद्ध करता है
एषः=वही
ते=तेरा
अमृतः=अविनाशी
आत्मा=आत्मा
अन्तर्यामी=अन्तर्यामी है

भावार्थ ।

जो वाणी के अन्तर स्थित है, जो वाणी के बाहर स्थित है, जिसको वाणी नहीं जानती है, जो वाणी को जानता है, जिसका शरीर वाणी है, जो वाणी के भीतर बाहर रह कर वाणी को शासन करता है, जो आपका आत्मा है, जो अमृतस्वरूप है, यही वह अन्तर्यामी है ॥ १७ ॥

मन्त्रः १८

यश्चक्षुषि तिष्ठंश्चक्षुषोऽन्तरो यं चक्षुर्न वेद यस्य चक्षुः शरीरं यश्चक्षुरन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥

पदच्छेदः ।

यः, चक्षुषि, तिष्ठन्, चक्षुषः, अन्तरः, यम्, चक्षुः, न, वेद, यस्य, चक्षुः, शरीरम्, यः, चक्षुः, अन्तरः, यमयति, एषः, ते, आत्मा, अन्तर्यामी, अमृतः ॥

अन्वयः पदार्थाः

यः=जो
चक्षुषि=नेत्र में
तिष्ठन्=स्थित है
+ यः=जो
चक्षुषः=नेत्र के
अन्तरः=बाहर है
यम्=जिसको
चक्षुः=नेत्र
न=नहीं
वेद=जानता है
यस्य=जिसका
शरीरम्=शरीर
चक्षुः=नेत्र है
यः=जो
अन्तरः=नेत्र में रह कर
चक्षुः=नेत्र को
यमयति=नियमबद्ध करता है
एषः=वही
ते=तेरा
अमृतः=अविनाशी
आत्मा=आत्मा
अन्तर्यामी=अन्तर्यामी है

भावार्थ ।

जो चक्षु के अन्तर स्थित है, जो चक्षु के बाहर स्थित है, जिसको चक्षु नहीं जानता है, जो चक्षु को जानता है, जिसका शरीर चक्षु है, जो चक्षु के भीतर बाहर रह कर उसको शासन करता है, जो आपका आत्मा है, जो अविनाशी है, यही वह अन्तर्यामी है ॥ १८ ॥

मन्त्रः १९

यः श्रोत्रे तिष्ठञ्छ्रोत्रादन्तरो यꣳ श्रोत्रं न वेद यस्य श्रोत्रꣳ शरीरं यः श्रोत्रमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥

पदच्छेदः ।

यः, श्रोत्रे, तिष्ठन्, श्रोत्रात्, अन्तरः, यम्, श्रोत्रम्, न, वेद, यस्य, श्रोत्रम्, शरीरम्, यः, श्रोत्रम्, अन्तरः, यमयति, एषः, ते, आत्मा, अन्तर्यामी, अमृतः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
यः	जो	श्रोत्रम्	कर्ण है
श्रोत्रे	कर्ण में	यः	जो
तिष्ठन्	स्थित है	अन्तरः	कर्ण के अभ्यन्तर रह कर
+ यः	जो	श्रोत्रम्	कर्ण को
श्रोत्रात्	कर्ण के	यमयति	नियमबद्ध करता है
अन्तरः	बाहर है	एषः	यही
यम्	जिसको	ते	तेरा
श्रोत्रम्	कर्ण	अमृतः	अविनाशी
न	नहीं	आत्मा	आत्मा
वेद	जानता है	अन्तर्यामी	अन्तर्यामी है
यस्य	जिसका		
शरीरम्	शरीर		

भावार्थ ।

जो श्रोत्र के अभ्यन्तर स्थित है, जो श्रोत्र के बाहर स्थित है, जिसको श्रोत्र नहीं जानता है, जो श्रोत्र को जानता है, जो श्रोत्र के

अभ्यन्तर और बाहर स्थित होकर श्रोत्र को शासन करता है, जो आप का आत्मा है, जो अमृतस्वरूप है, यही वह अन्तर्यामी है ॥ १९ ॥

मन्त्रः २०

यो मनसि तिष्ठन्मनसोऽन्तरो यं मनो न वेद यस्य मनः शरीरं यो मनोऽन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥

पदच्छेदः ।

यः, मनसि, तिष्ठन्, मनसः, अन्तरः, यम्, मनः, न, वेद, यस्य, मनः, शरीरम्, यः, मनः, अन्तरः, यमयति, एषः, ते, आत्मा, अन्तर्यामी, अमृतः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
यः=जो		शरीरम्=शरीर	
मनसि=मन में		मनः=मन है	
तिष्ठन्=स्थित है		यः=जो	
+ यः=जो		अन्तरः=मन में रह कर	
मनसः=मन के		मनः=मनको	
अन्तरः=बाहर है		यमयति=नियमबद्ध करता है	
यम्=जिसको		एषः=वही	
मनः=मन		ते=तेरा	
न=नहीं		अमृतः=अविनाशी	
वेद=जानता है		आत्मा=आत्मा	
यस्य=जिसका		अन्तर्यामी=अन्तर्यामी है	

भावार्थ ।

जो मन के बाहर भीतर स्थित है, जिसको मन नहीं जानता है, जो मनको जानता है, जिसका शरीर मन है, जो मन के भीतर बाहर रह कर मनको शासन करता है, जो आपका आत्मा है, जो अमृतस्वरूप है, यही वह अन्तर्यामी है ॥ २० ॥

मन्त्रः २१

यस्त्वचि तिष्ठंस्त्वचोऽन्तरो यं त्वङ् न वेद यस्य त्वक् शरीरं यस्त्वचमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥

पदच्छेदः ।

यः, त्वचि, तिष्ठन्, त्वचः, अन्तरः, यम्, त्वक्, न, वेद, यस्य, त्वक्, शरीरम्, यः, त्वचम्, अन्तरः, यमयति, एषः, ते, आत्मा, अन्तर्यामी, अमृतः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
यः=जो		शरीरम्=शरीर	
त्वचि=त्वचा में		त्वक्=त्वचा है	
तिष्ठन्=स्थित है		यः=जो	
+ यः=जो		अन्तरः=त्वचा में रह कर	
त्वचः=त्वचा के		त्वचम्=त्वचा को	
अन्तरः=बाहर है		यमयति=नियमबद्ध करता है	
यम्=जिसको		एषः=वही	
त्वक्=त्वचा		ते=तेरा	
न=नहीं		अमृतः=अविनाशी	
वेद=जानती है		आत्मा=आत्मा	
यस्य=जिसका		अन्तर्यामी=अन्तर्यामी है	

भावार्थ ।

जो त्वचा के भीतर बाहर रहता है, जिसको त्वचा नहीं जानती है, जो त्वचा को जानता है, जिसका शरीर त्वचा है, जो त्वचा के भीतर बाहर रह कर त्वचा को शासन करता है, जो आपका आत्मा है, जो अमृतस्वरूप है, यही वह अन्तर्यामी है ॥ २१ ॥

मन्त्रः २२

यो विज्ञाने तिष्ठन्विज्ञानादन्तरो यं विज्ञानं न वेद यस्य विज्ञानꣳ शरीरं यो विज्ञानमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥

पदच्छेदः ।

यः, विज्ञाने, तिष्ठन्, विज्ञानात्, अन्तरः, यम्, विज्ञानम्, न, वेद, यस्य, विज्ञानम्, शरीरम्, यः, विज्ञानम्, अन्तरः, यमयति, एषः, ते, आत्मा, अन्तर्यामी, अमृतः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
यः=जो		शरीरम्=शरीर	
विज्ञाने=विज्ञान में		विज्ञानम्=विज्ञान है	
तिष्ठन्=स्थित है		यः=जो	
यः=जो		अन्तरः=विज्ञान में रह कर	
विज्ञानात्=विज्ञान के		विज्ञानम्=विज्ञान को	
अन्तरः=बाहर है		यमयति=नियमबद्ध करता है	
यम्=जिसको		एषः=वही	
विज्ञानम्=विज्ञान		ते=तेरा	
न=नहीं		अमृतः=अविनाशी	
वेद=जानता है		आत्मा=आत्मा	
यस्य=जिसका		अन्तर्यामी=अन्तर्यामी है	

भावार्थ ।

जो विज्ञान के अन्तर स्थित है, जो विज्ञान के बाहर स्थित है, जिसको विज्ञान नहीं जानता है, जो विज्ञान को जानता है, जिसका शरीर विज्ञान है, जो विज्ञान के भीतर बाहर स्थित होकर विज्ञान को शासन करता है, जो आपका आत्मा है, जो अमृतस्वरूप है, वही वह अन्तर्यामी है ॥ २२ ॥

मन्त्रः २३

यो रेतसि तिष्ठन् रेतसोऽन्तरो यꣳ रेतो न वेद यस्य रेतः शरीरं यो रेतोऽन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतोऽदृष्टो द्रष्टाऽश्रुतः श्रोतामतो मन्ताविज्ञातो विज्ञाता नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा नान्योऽतोऽस्ति श्रोता नान्योऽतोऽस्ति मन्ता नान्योऽतोऽस्ति विज्ञातैष त आत्मान्तर्याम्यमृतोऽतोऽन्यदार्त्तं ततो होद्दालक आरुणिरुपरराम ॥

इति सप्तमं ब्राह्मणम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

यः, रेतसि, तिष्ठन्, रेतसः, अन्तरः, यम्, रेतः, न, वेद, यस्य, रेतः, शरीरम्, यः, रेतः, अन्तरः, यमयति, एषः, ते, आत्मा, अन्तर्यामी, अमृतः, अदृष्टः, द्रष्टा, अश्रुतः, श्रोता, अमतः, मन्ता, अविज्ञातः, विज्ञाता,

न, अन्यः, अतः, अस्ति, द्रष्टा, न, अन्यः, अतः, अस्ति, श्रोता, न, अन्यः, अतः, अस्ति, मन्ता, न, अन्यः, अतः, अस्ति, विज्ञाता, एषः, ते, आत्मा, अन्तर्यामी, अमृतः, अतः, अन्यत्, आर्त्तम्, ततः, ह, उद्दालकः, आरुणिः, उपरराम ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
यः	जो	+ एषः	यही
रेतसि	वीर्य में	अश्रुतः	अश्रुत होता हुआ
तिष्ठन्	स्थित है	श्रोता	श्रोता है
+ यः	जो	एषः	यही
रेतसः	वीर्य के	अमतः	अमत होता हुआ
अन्तरः	बाहर है	मन्ता	मन्ता है यानी मनन करने वाला है
यम्	जिसको	+ एषः	यही
रेतः	वीर्य	अविज्ञातः	अविज्ञात होता हुआ
न	नहीं	विज्ञाता	विज्ञाता है
वेद	जानता है	अतः	इससे
यस्य	जिसका	अन्यः	अन्य कोई
शरीरम्	शरीर	द्रष्टा	द्रष्टा
रेतः	वीर्य है	न	नहीं
यः	जो	अस्ति	है
अन्तरः	वीर्य में रह कर	अतः	इससे
रेतः	वीर्य को	अन्यः	अन्य कोई
यमयति	नियमबद्ध करता है	श्रोता	श्रोता
एषः	वही	न	नहीं
ते	तेरा	अस्ति	है
आत्मा	आत्मा	अतः	इससे
अमृतः	अविनाशी अमृतस्वरूप है	अन्यः	अन्य कोई
+ एषः	यही	मन्ता	मन्ता
अदृष्टः	अदृष्ट होता हुआ	न	नहीं
द्रष्टा	द्रष्टा है	अस्ति	है

अतः=इससे
अन्यः=अन्य कोई
विज्ञाता=विज्ञाता
न=नहीं
अस्ति=है
+ एषः=यही
ते=तेरा
अमृतः=अविनाशी
आत्मा=आत्मा
अन्तर्यामी=अन्तर्यामी है
अतः=इससे
अन्यत्=पृथक् और सब
आर्तम्=दुःखरूप है
ततः ह=इसके पीछे स्पष्ट
आरुणिः=अरुण का पुत्र
उद्दालकः=उद्दालक
उपरराम=चुप होता भया

भावार्थ ।

जो वीर्य के भीतर बाहर स्थित है, जिसको वीर्य नहीं जानता है, जो वीर्य को जानता है, जिसका शरीर वीर्य है, जो वीर्य के भीतर बाहर रह कर वीर्य को शासन करता है, वही अदृष्ट होता हुआ द्रष्टा है, वही अश्रुत होता हुआ श्रोता है, वही अमन्ता होता हुआ मनन करने वाला है, और अविज्ञात होता हुआ विज्ञात है, वही आपका आत्मा है, वही अमृतस्वरूप है, इससे पृथक् और कोई द्रष्टा नहीं है, इससे पृथक् कोई दूसरा श्रोता नहीं है, इससे अन्य कोई मन्ता नहीं है, इससे अन्य कोई विज्ञाता नहीं है, यही तेरा अविनाशी आत्मा अन्तर्यामी है, इससे पृथक् और सब दुःखरूप है, इसके पीछे अरुण का पुत्र उद्दालक चुप होता भया ॥ २३ ॥

इति सप्तमं ब्राह्मणम् ॥ ७ ॥

अथाष्टमं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

अथ ह वाचक्नव्युवाच ब्राह्मणा भगवन्तो हन्ताहमिमं द्वौ प्रश्नौ प्रक्ष्यामि तौ चेन्मे वक्ष्यति न जातु युष्माकमिमं कश्चिद्ब्रह्मोद्यं जेतेति पृच्छ गार्गीति ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, वाचक्नवी, उवाच, ब्राह्मणाः, भगवन्तः, हन्त, अहम्, इमम्, द्वौ, प्रश्नौ, प्रक्ष्यामि, तौ, चेत्, मे, वक्ष्यति, न, जातु, युष्माकम्, इमम्, कश्चित्, ब्रह्मोद्यम्, जेता, इति, पृच्छ, गार्गि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
अथ ह	इसके बाद
वाचक्नवी	गार्गी
उवाच	बोली कि
ब्राह्मणाः भगवन्तः	हे पूज्य, ब्राह्मणो !
हन्त	यदि आपकी अनुमति हो तो
इमम्	इन याज्ञवल्क्य से
द्वौ	दो
प्रश्नौ	प्रश्न
अहम्	मैं
प्रक्ष्यामि	पूछूंगी
चेत्	अगर
+ सः	वह
मे	मेरे
तौ	उन दोनों प्रश्नों का
वक्ष्यति	उत्तर देंगे तो
युष्माकम्	आपलोगों में
कश्चित्	कोई भी
इमम्	इस
ब्रह्मोद्यम्	ब्रह्मवादी याज्ञवल्क्य को
जातु	कभी
न	न
जेता	जीत पावेगा
इति	इस प्रकार
+ श्रुत्वा	सुन कर
+ ब्राह्मणाः	ब्राह्मण
+ आहुः	बोले कि
गार्गि	हे गार्गि !
पृच्छ	तुम पूछो
इति	ऐसा सबों ने कहा

भावार्थ ।

आरुणि उद्दालक के चुप होने पर वह प्रसिद्धा वाचक्नवी गार्गी बोली कि हे ब्रह्मवेत्ताओ ! हे परमपूज्य, महात्माओ ! यदि आपलोगों की आज्ञा हो तो मैं इन याज्ञवल्क्य महाराज से दो प्रश्न पूछूं, हे ब्राह्मणो ! यदि वह उन मेरे दोनों प्रश्नों का उत्तर कह देंगे तो मुझको निश्चय होजायगा कि आपलोगों में से कोई भी ब्रह्मवादी याज्ञवल्क्य महाराज को जीत नहीं सकेगा, गार्गी के इस वचन को सुन कर सब ब्राह्मण प्रसन्न होते हुये बोले कि, हे गार्गि ! तुम अपनी इच्छानुसार याज्ञवल्क्य से अवश्य प्रश्न करो ॥ १ ॥

मन्त्रः २

सा होवाचाहं वै त्वा याज्ञवल्क्य यथा काश्यो वा वैदेहो वोग्रपुत्र उज्ज्यं धनुरधिज्यं कृत्वा द्वौ बाणवन्तौ सपत्नातिव्याधिनौ हस्ते कृत्वोपोत्तिष्ठेदेवमेवाहं त्वा द्वाभ्यां प्रश्नाभ्यामुपोदस्थां तौ मे ब्रूहीति पृच्छ गार्गीति ॥

पदच्छेदः ।

सा, ह, उवाच, अहम्, वै, त्वा, याज्ञवल्क्य, यथा, काश्यः, वा, वैदेहः, वा, उग्रपुत्रः, उज्ज्यम्, धनुः, अधिज्यम्, कृत्वा, द्वौ, बाणवन्तौ, सपत्नातिव्याधिनौ, हस्ते, कृत्वा, उपोत्तिष्ठेत्, एवम्, एव, अहम्, त्वा, द्वाभ्याम्, प्रश्नाभ्याम्, उपोदस्थाम्, तौ, मे, ब्रूहि, इति, पृच्छ, गार्गि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
सा ह	वह गार्गी
उवाच	बोली कि
याज्ञवल्क्य	हे याज्ञवल्क्य !
यथा	जैसे
काश्यः	काशी
वा	अथवा
वैदेहः	विदेह के
उग्रपुत्रः	शूरवीरवंशी राजा
उज्ज्यम्	प्रत्यञ्चारहित
धनुः	धनुष् को
अधिज्यम् कृत्वा	प्रत्यञ्चा चढ़ा करके
सपत्नातिव्याधिनौ	शत्रु के वेधन करने वाले
बाणवन्तौ	तीक्ष्णाग्र बाणों को
हस्ते	हाथ में
कृत्वा	लेकर
उपोत्तिष्ठेत्	शत्रुहनन के लिये उपस्थित होवे
एवम् एव	वैसेही
अहम्	मैं
त्वा	तुम्हारे निकट
द्वाभ्याम्	दो
प्रश्नाभ्याम्	प्रश्नों के वास्ते
उपोदस्थाम्	उपस्थित हूं
तौ	उन दोनों प्रश्नों के उत्तर को
मे	मेरे लिये
ब्रूहि	कहिये
इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	सुन कर
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
+ आह	कहा कि
गार्गि	हे गार्गि !
पृच्छ इति	तुम उन प्रश्नों को पूछो

भावार्थ ।

हे याज्ञवल्क्य ! वह मेरे दो प्रश्न कैसे हैं सो सुनिये. जैसे काशी अथवा विदेह के शूरवीरवंशी राजा प्रत्यञ्चारहित धनुष् पर प्रत्यञ्चा चढ़ा करके शत्रु के हनन के लिये उपस्थित होवें वैसेही मैं आपके सामने आपके पराजय के निमित्त दो प्रश्नों को लेकर उपस्थित हूं, आप उन दोनों प्रश्नों के उत्तर को मेरे लिये कहिये, ऐसा सुन कर याज्ञवल्क्य ने कहा हे गार्गि ! तुम उन प्रश्नों को प्रसन्नतापूर्वक मुझ से पूछो, इसके उत्तर में गार्गी कहती है, आप घबड़ाइये नहीं, मैं अवश्य पूछूंगी ॥ २ ॥

मन्त्रः ३

सा होवाच यदूर्ध्वं याज्ञवल्क्य दिवो यदवाक्पृथिव्या यदन्तरा द्यावापृथिवी इमे यद्भूतं च भवच्च भविष्यच्चेत्याचक्षते कस्मिꣳ-स्तदोतं च प्रोतं चेति ॥

पदच्छेदः ।

सा, ह, उवाच, यत्, ऊर्ध्वम्, याज्ञवल्क्य, दिवः, यत्, अवाक्, पृथिव्याः, यत्, अन्तरा, द्यावापृथिवी, इमे, यत्, भूतम्, च, भवत्, च, भविष्यत्, च, इति, आचक्षते, कस्मिन्, तत्, ओतम्, च, प्रोतम्, च, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
सा	वह गार्गी
ह	स्पष्ट
उवाच	पूछती भई कि
याज्ञवल्क्य	हे याज्ञवल्क्य !
यत्	जो
दिवः	द्युलोक के
ऊर्ध्वम्	ऊपर है
यत्	जो
पृथिव्याः	पृथ्वीलोक के
अवाक्	नीचे है
यदन्तरा	जिसके बीच में
इमे	ये
द्यावापृथिवी	द्युलोक और पृथ्वी लोक हैं

यत्=जिसको	आचक्षते=कहते हैं
+ पुरुषाः=पुरुष	तत्=वह सब
भूतम्=भूत	कस्मिन्=किसमें
च=और	ओतम्=ओत
भवत्=वर्त्तमान	च=और
च=और	प्रोतम् इति=प्रोत है ऐसा प्रश्न किया
भविष्यत्=भविष्यत्	

भावार्थ ।

तदनन्तर वह गार्गी पूछती है कि, हे याज्ञवल्क्य ! जो द्युलोक के ऊपर है, जो पृथ्वीलोक के नीचे है, और जो द्युलोक और पृथ्वी लोक के मध्य में है, और जिसको लोक भूत, वर्त्तमान, भविष्यत् नाम करके कहते हैं, हे याज्ञवल्क्य ! वह सब किस में ओत प्रोत है, यानी किसके आश्रित है, यह मेरा प्रथम प्रश्न है, आप इसका उत्तर दें ॥ ३ ॥

मन्त्रः ४

स होवाच यदूर्ध्वं गार्गि दिवो यदवाक् पृथिव्या यदन्तरा द्यावापृथिवी इमे यद्भूतं च भवच्च भविष्यच्चेत्याचक्षत आकाशे तदोतं च प्रोतं चेति ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, यत्, ऊर्ध्वम्, गार्गि, दिवः, यत्, अवाक्, पृथिव्याः, यदन्तरा, द्यावापृथिवी, इमे, यत्, भूतम्, च, भवत्, च, भविष्यत्, च, इति, आचक्षते, आकाशे, तत्, ओतम्, च, प्रोतम्, च, इति ॥

अन्वयः पदार्थाः	अन्वयः पदार्थाः
सः=वह याज्ञवल्क्य	यत्=जो
ह=स्पष्ट	दिवः=द्युलोक के
उवाच=कहता भया कि	ऊर्ध्वम्=ऊपर है
गार्गि=हे गार्गि !	यत्=जो

पृथिव्याः=पृथ्वीलोक के	भविष्यत्=भविष्यत्
अवाक्=नीचे है	इति=करके
यदन्तरा=जिसके बीच में	आचक्षते=कहते हैं
इमे=ये	तत्=वह सब
द्यावापृथिवी=द्युलोक और पृथ्वी लोक हैं	आकाशे=आकाश में
यत्=जिसको	ओतम्=ओत
पुरुषाः=पुरुष	च=और
भूतम्=भूत	प्रोतम्=प्रोत है
भवत्=वर्त्तमान	इति=ऐसा उत्तर दिया

भावार्थ ।

गार्गी के प्रश्न को सुन कर याज्ञवल्क्य महाराज बोले हे गार्गि ! जो द्युलोक के ऊपर है, जो पृथ्वीलोक के नीचे है, और जो द्युलोक और पृथ्वीलोक के मध्य में है, और जिसको विद्वान्लोग भूत, वर्तमान, भविष्यत् नाम करके कहते हैं वह सब आकाश में प्रथित हैं अर्थात् आकाश में ओतप्रोत हैं, हे गार्गि ! यह तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है ॥ ४ ॥

मन्त्रः ५

सा होवाच नमस्तेऽस्तु याज्ञवल्क्य यो म एतं व्यवोचोऽपरस्मै धारयस्वेति पृच्छ गार्गीति ॥

पदच्छेदः ।

सा, ह, उवाच, नमः, ते, अस्तु, याज्ञवल्क्य, यः, मे, एतम्, व्यवोचः, अपरस्मै, धारयस्व, इति, पृच्छ, गार्गि, इति ॥

अन्वयः पदार्थाः	अन्वयः पदार्थाः
सा=वह गार्गी	नमः=नमस्कार
ह=फिर स्पष्ट	अस्तु=होवै
उवाच=कहती भई कि	यः=जिसने
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !	मे=मेरे
ते=आपके लिये	एतम्=इस प्रश्न को

व्यवोचः=यथायोग्य कहा	+ श्रुत्वा=सुन कर
+ अधुना=अब	+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
+ मम=मेरे	+ आह=कहा कि
अपरस्मै=दूसरे प्रश्न के लिये	गार्गि=हे गार्गि !
धारयस्व=अपने को तैयार करो	पृच्छ इति=तुम पूछो
इति=ऐसा	

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज के समीचीन उत्तर को सुन कर गार्गी अतिप्रसन्न हुई, और विनयपूर्वक बोली कि, हे याज्ञवल्क्य ! आपको मेरा नमस्कार है, आपने मेरे पहिले प्रश्न का उत्तर विशेषरूप से व्याख्यान किया है, मेरे दूसरे प्रश्न के लिये आप अपने को दृढ़तापूर्वक तैयार करें, गार्गी के इस वचन को सुन कर याज्ञवल्क्य कहते हैं, हे गार्गि ! तुम अपने दूसरे प्रश्न को भी पूछो, मैं उत्तर देनेको तैयार हूं ॥ ५ ॥

मन्त्रः ६

सा होवाच यदूर्ध्वं याज्ञवल्क्य दिवो यदवाक् पृथिव्या यदन्तरा द्यावापृथिवी इमे यद्भूतं च भवच्च भविष्यच्चेत्याचक्षते कस्मिꣲस्तदोतं च प्रोतं चेति ॥

पदच्छेदः ।

सा, ह, उवाच, यत्, ऊर्ध्वम्, याज्ञवल्क्य, दिवः, यत्, अवाक्, पृथिव्याः, यदन्तरा, द्यावापृथिवी, इमे, यत्, भूतम्, च, भवत्, च, भविष्यत्, च, इति, आचक्षते, कस्मिन्, तत्, ओतम्, च, प्रोतम्, च, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
सा=वह गार्गी		यत्=जो	
ह=स्पष्ट		ऊर्ध्वम्=ऊपर है	
उवाच=बोली कि		यत्=जो	
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !		पृथिव्याः=पृथ्वीलोक से	
दिवः=द्युलोक से		अवाक्=नीचे है	

यदन्तरा=जिसके बीच में	भविष्यत्=भविष्यत्
इमे=ये	आचक्षते=कहते हैं
द्यावापृथिवी=द्युलोक और पृथ्वी लोक स्थित है	तत्=वह सब
च=और	कस्मिन्=किसमें
यत्=जिसको	ओतम्=ओत
पुरुषाः=पुरुष	च=और
भूतम्=भूत	प्रोतम्=प्रोत है यानी किसमें ग्रथित है
भवत्=वर्त्तमान	इति=इस प्रकार गार्गी का प्रश्न हुआ
च=और	

भावार्थ।

याज्ञवल्क्य महाराज की आज्ञा पा करके गार्गी बोली कि, हे याज्ञवल्क्य! जो दिवलोक के ऊपर है, जो पृथ्वीलोक के नीचे है, और जो दिवलोक और पृथ्वीलोक के मध्य में है, और जिसको विद्वान् लोग भूत, वर्त्तमान, भविष्यत् नाम से कहते हैं, वह सब किसमें ओत प्रोत है यानी किसमें ग्रथित है, इस प्रकार गार्गी का प्रश्न हुआ ॥ ६ ॥

मन्त्रः ७

स होवाच यदूर्ध्वं गार्गि दिवो यदवाक् पृथिव्या यदन्तरा द्यावापृथिवी इमे यद्भूतं च भवच्च भविष्यच्चेत्याचक्षत आकाश एव तदोतं च प्रोतं चेति कस्मिन्नु खल्वाकाश ओतश्च प्रोतश्चेति ॥

पदच्छेदः।

सः, ह, उवाच, यत्, ऊर्ध्वम्, गार्गि, दिवः, यत्, अवाक्, पृथिव्याः, यदन्तरा, द्यावापृथिवी, इमे, यत्, भूतम्, च, भवत्, च, भविष्यत्, च, इति, आचक्षते, आकाशे, एव, तत्, ओतम्, च, प्रोतम्, च, इति, कस्मिन्, नु, खलु, आकाशः, ओतः, च, प्रोतः, च, इति ॥

अन्वयः पदार्थाः	अन्वयः पदार्थाः
सः=वह याज्ञवल्क्य	उवाच=बोले कि
ह=स्पष्ट	गार्गि=हे गार्गि !

यत्=जो
दिवः=द्युलोक के
ऊर्ध्वम्=ऊपर है
यत्=जो
पृथिव्याः=पृथ्वीलोक के
अवाक्=नीचे है
यदन्तरा=जिसके बीच में
इमे=ये
द्यावापृथिवी=द्युलोक और पृथ्वी-लोक स्थित हैं
यत्=जिसको
पुरुषाः=लोग
भूतम्=भूत
भवत्=वर्त्तमान
च=और
भविष्यत्=भविष्यत् नाम से
आचक्षते=कहते हैं
तत्=वह सब
आकाशे=आकाश में
ओतम्=ओत
च=और
प्रोतं च=प्रोत हैं
इति=ऐसा सुन कर
नु=फिर गार्गी ने प्रश्न किया कि
आकाशः=आकाश
कस्मिन्=किसमें
खलु=निश्चय करके
ओतः=ओत
च=और
प्रोतः च=प्रोत हैं
इति=इस प्रकार प्रश्न किया

भावार्थ ।

गार्गी का प्रश्न सुनकर याज्ञवल्क्य बोले कि हे गार्गि ! जो दिव-लोक के ऊपर है, और जो पृथ्वीलोक के नीचे है, और जो दिव-लोक और पृथ्वीलोक के मध्य में है, और जिसको विद्वान्लोग भूत, वर्त्तमान, भविष्यत् नाम से कहते हैं, वह सब आकाश में ओत प्रोत है अर्थात् आकाश के आश्रय है, ऐसा सुनकर गार्गी पुनः पूछती है कि, हे याज्ञवल्क्य ! वह आकाश किसमें ओत प्रोत है. इसका उत्तर आप मुझसे सविस्तार कहें ॥ ७ ॥

मन्त्रः ८

स होवाचैतद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्यस्थूलमनण्व-ह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवाय्वनाकाशमसङ्गमरसम-गन्धमचक्षुष्कमश्रोत्रमवागमनोतेजस्कमप्राणममुखममात्रमनन्तरम-बाह्यं न तदश्नाति किंचन न तदश्नाति कश्चन ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, एतत्, वै, तत्, अक्षरम्, गार्गि, ब्राह्मणाः, अभिवदन्ति, अस्थूलम्, अनणु, अह्रस्वम्, अदीर्घम्, अलोहितम्, अस्नेहम्, अच्छायम्, अतमः, अवायुः, अनाकाशम्, असङ्गम्, अरसम्, अगन्धम्, अचक्षुष्कम्, अश्रोत्रम्, अवाक्, अमनः, अतेजस्कम्, अप्राणम्, अमुखम्, अमात्रम्, अनन्तरम्, अबाह्यम्, न, तत्, अश्नाति, किंचन, न, तत्, अश्नाति, कश्चन ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
सः	वह याज्ञवल्क्य	अश्रोत्रम्	श्रोत्ररहित है
ह	स्पष्ट	अवाक्	वाणीरहित है
उवाच	कहते भये कि	अमनः	मनरहित है
गार्गि	हे गार्गि !	अतेजस्कम्	तेजरहित है
तत्	वह	अप्राणम्	प्राणरहित है
एतत्	यह	अमुखम्	मुखरहित है
अक्षरम्	अविनाशी है	अमात्रम्	परिमाणरहित है
अस्थूलम्	न वह स्थूल है	अनन्तरम्	अन्तररहित है
अनणु	न वह सूक्ष्म है	अबाह्यम्	बाह्यरहित है
अह्रस्वम्	न वह छोटा है	न	न
अदीर्घम्	न वह बड़ा है	तत्	वह
अलोहितम्	न वह लाल है	किंचन	कुछ
अस्नेहम्	न वह संसारी जीववत् स्नेहवाला है	अश्नाति	खाता है
अच्छायम्	न उसका प्रतिबिम्ब है	च	और
अतमः	वह तमरहित है	न	न
अवायुः	वायुरहित है	कश्चन	कोई पदार्थ
अनाकाशम्	आकाशरहित है	तत्	उसको
असङ्गम्	असङ्ग है	अश्नाति	खाता है
अरसम्	स्वादरहित है	गार्गि	हे गार्गि !
अगन्धम्	गन्धरहित है	इति	इस प्रकार
अचक्षुष्कम्	नेत्ररहित है	ब्राह्मणाः	ब्रह्मवेत्ता
		अभिवदन्ति	कहते हैं

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य बोले हे गार्गि ! जिसमें सब ओत प्रोत हैं वह अविनाशी है, वह न स्थूल है, न सूक्ष्म है, न छोटा है, न बड़ा है, न वह लाल है, न वह संसारी जीव की तरह पर स्नेहवाला है, वह आवरण-रहित है, तमरहित है, वायुरहित है, स्वादरहित है, गन्धरहित है, नेत्ररहित है, श्रोत्ररहित है, वाणीरहित है, मनरहित है, तेजरहित है, प्राणरहित है, मुखरहित है, परिमाणरहित है, अन्तररहित है, बाह्यरहित है, न वह कुछ खाता है, न उसको कोई खाता है, हे गार्गि ! जिसमें आकाश भी ओत प्रोत है, उसको ब्रह्मवेत्ता इस प्रकार कहते हैं ॥ ८ ॥

मन्त्रः ९

एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठत एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि द्यावापृथिव्यौ विधृते तिष्ठत एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि निमेषा मुहूर्त्ता अहोरात्राण्यर्धमासा मासा ऋतवः संवत्सरा इति विधृतास्तिष्ठन्त्येतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि प्राच्योऽन्या नद्यः स्यन्दन्ते श्वेतेभ्यः पर्वतेभ्यः प्रतीच्योऽन्या यां यां च दिशमन्वेतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि ददतो मनुष्याः प्रशꣳसन्ति यजमानं देवा दर्वीं पितरोऽन्वायत्ताः ॥

पदच्छेदः ।

एतस्य, वा, अक्षरस्य, प्रशासने, गार्गि, सूर्याचन्द्रमसौ, विधृतौ, तिष्ठतः, एतस्य, वा, अक्षरस्य, प्रशासने, गार्गि, द्यावापृथिव्यौ, विधृते, तिष्ठतः, एतस्य, वा अक्षरस्य, प्रशासने, गार्गि, निमेषाः, मुहूर्त्ताः, अहोरात्राणि, अर्धमासाः, मासाः, ऋतवः, संवत्सराः, इति, विधृताः, तिष्ठन्ति, एतस्य, वा, अक्षरस्य, प्रशासने, गार्गि, प्राच्यः, अन्याः, नद्यः, स्यन्दन्ते, श्वेतेभ्यः, पर्वतेभ्यः, प्रतीच्यः, अन्याः, याम्, याम्, च, दिशम्, अनु, एतस्य, वा, अक्षरस्य, प्रशासने, गार्गि, ददतः, मनुष्याः, प्रशंसन्ति, यजमानम्, देवाः, दर्वीम्, पितरः, अन्वायत्ताः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
गार्गि	हे गार्गि !
वा	निश्चय करके
एतस्य	इसी
अक्षरस्य	अक्षर के
प्रशासने	आज्ञा में
सूर्याचन्द्रमसौ	सूर्य और चन्द्र
विधृतौ	नियमित होकर
तिष्ठतः	स्थित हैं
वा	और
वा	निश्चय करके
एतस्य	इसी
अक्षरस्य	अक्षर के
प्रशासने	आज्ञा में
गार्गि	हे गार्गि !
द्यावापृथिव्यौ	स्वर्ग और पृथ्वी
विधृते	नियमित होकर
तिष्ठतः	स्थित हैं
एतस्य	इसी
अक्षरस्य	अक्षर के
प्रशासने	आज्ञा में
गार्गि	हे गार्गि !
निमेषाः	निमेष
मुहूर्त्ताः	मुहूर्त्त
अहोरात्राणि	दिन रात
अर्धमासाः	अर्धमास
ऋतवः	ऋतु
संवत्सराः	संवत्सरादि
विधृताः	नियमित हुये
इति	इस प्रकार
तिष्ठन्ति	स्थित हैं
गार्गि	हे गार्गि !

अन्वयः	पदार्थाः
एतस्य	इसी
अक्षरस्य	अक्षर के
प्रशासने	आज्ञा में
नद्यः	कुछ नदियां
श्वेतेभ्यः	श्वेत यानी बरफवाले
पर्वतेभ्यः	पहाड़ों से निकल कर
प्राच्यः	पूर्व दिशा को
स्यन्दन्ते	बहती हैं
अन्याः	कुछ नदियां
प्रतीच्यः	पश्चिम दिशा को
+ स्यन्दन्ते	बहती हैं
याम्	जिस
याम्	जिस
दिशम्	दिशा को
अनु	जाती हैं
+ ताम्	उस
+ ताम्	उस
दिशम्	दिशा को
न	नहीं
व्यभिचरन्ति	छोड़ती हैं
गार्गि	हे गार्गि !
वै	निश्चय करके
एतस्य	इसी
अक्षरस्य	अक्षर की
प्रशासने	आज्ञा में
मनुष्याः	मनुष्य
ददतः	दान देनेवालों की
प्रशंसन्ति	प्रशंसा करते हैं
+ च	और
देवाः	देवता
यजमानम्	यजमान के

अन्वायत्ताः=अनुगामी होते हैं
+ च=और
पितरः=पितरलोग
दर्वीम्=दर्वीहोम के
अन्वायत्ताः=आधीन होते हैं

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य कहते हैं, हे गार्गि ! इसी अक्षर की आज्ञा से सूर्य और चन्द्रमा नियमित होकर स्थित हैं, इसी अक्षर की आज्ञा से द्युलोक और पृथ्वीलोक नियमित होकर स्थित हैं, हे गार्गि ! इसी अक्षर की आज्ञा से निमेष, मुहूर्त्त, दिन, रात, मास, अर्धमास, ऋतु, संवत्सरादिक नियमित होकर स्थित हैं, हे गार्गि ! इसी अक्षर की आज्ञा से कोई कोई नदियां बरफवाले पहाड़ से निकल कर पूर्व को बहती हैं, और कोई कोई नदियां पश्चिम को भी बहती हैं इसी अक्षर की आज्ञा को पा करके जिस जिस दिशा को जो जो नदियां बहती हैं उस उस दिशा को वह नहीं छोड़ती हैं, हे गार्गि ! इसी अक्षर की आज्ञा से मनुष्य-गण दानी की प्रशंसा करते हैं, देवता यजमान के अनुगामी होते हैं, और पितरलोग दिये हुये दर्वी पिण्ड को ग्रहण करते हैं, इस अक्षर की महिमा अपार है ॥ ९ ॥

मन्त्रः १०

यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वास्मिँल्लोके जुहोति यजते तपस्तप्यते बहूनि वर्षसहस्राण्यन्तवदेवास्य तद्भवति यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वास्माल्लोकात्प्रैति स कृपणोऽथ य एतदक्षरं गार्गि विदित्वास्माल्लोकात्प्रैति स ब्राह्मणः ॥

पदच्छेदः ।

यः, वा, एतत्, अक्षरम्, गार्गि, अविदित्वा, अस्मिन्, लोके, जुहोति, यजते, तपः, तप्यते, बहूनि, वर्षसहस्राणि, अन्तवत्, एव, अस्य, तत्, भवति, यः, वा, एतत्, अक्षरम्, गार्गि, अविदित्वा, अस्मात्, लोकात्, प्रैति, सः, कृपणः, अथ, यः, एतत्, अक्षरम्, गार्गि, विदित्वा, अस्मात्, लोकात्, प्रैति, सः, ब्राह्मणः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
गार्गि	हे गार्गि !	एतत्	इस
यः	जो	अक्षरम्	अक्षर को
वै	निश्चय करके	अविदित्वा	न जान कर
एतम्	इस	अस्मात्	इस
अक्षरम्	अक्षर को	लोकात्	लोक से
अविदित्वा	न जान कर	प्रैति	मर कर जाता है
अस्मिन्	इस	सः	वह
लोके	लोक में	कृपणः	कृपण होता है
जुहोति	होम या यज्ञ करता है	अथ	और
यजते	पूजा करता है	यः	जो
बहूनि	अनेक	गार्गि	हे गार्गि !
वर्षसहस्राणि	सहस्रों वर्ष तक	एतत्	इस
तपः तप्यते	तप करता है	अक्षरम्	अक्षर को
अस्य	उसका	विदित्वा	जान कर
तत्	यह सब कर्म	अस्मात्	इस
अन्तवत्	नाश	लोकात्	लोक से
एव	अवश्य	प्रैति	जाता है
भवति	होता है	सः	वह
गार्गि	हे गार्गि !	ब्राह्मणः	ब्राह्मण
यः	जो	+ भवति	होता है

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज फिर कहते हैं, हे गार्गि ! सुनो जो पुरुष इस अक्षर को न जानकर इस लोक में होम या यज्ञादि करता है या पूजा करता है या सहस्रों वर्ष तक तप करता है उसका वह सब कर्म निष्फल होता है, और हे गार्गि ! जो पुरुष इस अक्षर को न जानकर इस लोक से मर कर चला जाता है वह जब फिर संसार में उत्पन्न होता है, तो बड़ा कृपण दरिद्र होता है, पर हे गार्गि ! जो इस अक्षर को जानकर इस लोक से प्रयाण करता है वह ब्राह्मण होता है यानी ब्रह्म के तुल्य होजाता है ॥ १० ॥

मन्त्रः ११

तद्वा एतदक्षरं गार्ग्यदृष्टं द्रष्टृश्रुतꣳ श्रोत्रमतं मन्त्रविज्ञातं विज्ञातृ नान्यदतोस्ति द्रष्टृ नान्यदतोस्ति श्रोतृ नान्यदतोस्ति मन्तृ नान्यद-तोस्ति विज्ञात्रेतस्मिन्नु खल्वक्षरे गार्ग्याकाश ओतश्च प्रोतश्चेति ॥

पदच्छेदः ।

तत्, वा, एतत्, अक्षरम्, गार्गि, अदृष्टम्, द्रष्टृ, अश्रुतम्, श्रोतृ, अमतम्, मन्तृ, अविज्ञातम्, विज्ञातृ, न, अन्यत्, अतः, अस्ति, द्रष्टृ, न, अन्यत्, अतः, अस्ति, श्रोतृ, न, अन्यत्, अतः, अस्ति, मन्तृ, न, अन्यत्, अतः, अस्ति, विज्ञातृ, एतस्मिन्, नु, खलु, अक्षरे, गार्गि, आकाशः, ओतः, च, प्रोतः, च, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
गार्गि=	हे गार्गि !
तत् वै=	वही
एतत्=	यह
अक्षरम्=	अक्षर
अदृष्टम्=	अदृष्ट होते हुये
द्रष्टृ=	द्रष्टा है
अश्रुतम्=	अश्रुत होते हुये भी
श्रोतृ=	श्रोता है
अमतम्=	मनन इन्द्रिय का अविषय होते हुये भी
मन्तृ=	मनन करनेवाला है
अविज्ञातम्=	अविज्ञात होते हुये भी
विज्ञातृ=	जाननेवाला है
अतः=	इससे पृथक्
अन्यत्=	और कोई दूसरा
द्रष्टृ=	देखनेवाला
न=	नहीं
अस्ति=	है
अतः=	इससे पृथक्
अन्यत्=	दूसरा कोई
विज्ञातृ=	जाननेवाला
न=	नहीं
अस्ति=	है
एतस्मिन्=	इसी
अक्षरे=	अक्षर में
नु खलु=	निश्चय करके
गार्गि=	हे गार्गि !
आकाशः=	आकाश
ओतः=	ओत
च=	और
प्रोतः च=	प्रोत है

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज फिर बोले, हे गार्गि ! वही यह अक्षर अदृष्ट

होते हुये भी द्रष्टा है, अर्थात् इस अक्षर को किसी ने नेत्र से नहीं देखा है, क्योंकि वह दृष्टि का अविषय है; परंतु वह स्वयं सब का द्रष्टा है, यानी देखनेवाला है, यही अक्षर अश्रुत होता हुआ भी श्रोता है, यानी वह किसी के श्रोत्र इन्द्रिय का विषय नहीं है, परन्तु सबका सुननेवाला है, वही अक्षर परमात्मा मनन इन्द्रिय का अविषय होते हुये भी सब का मनन करनेवाला है, हे गार्गि ! वही अन्तर्यामी आत्मा सब को अविज्ञात होते हुये भी सब का विज्ञाता है, हे गार्गि ! इससे पृथक् कोई दूसरा मनन करनेवाला नहीं है, हे गार्गि ! इससे पृथक् कोई दूसरा जाननेवाला नहीं है, हे गार्गि ! निश्चय करके इस अविनाशी परमात्मा में आकाश ओत प्रोत है ॥ ११ ॥

मन्त्रः १२

मन्येध्वं यदस्मान्नमस्कारेण मुच्येध्वं न वै जातु युष्माकमिमं कश्चिद्ब्रह्मोद्यं जेतेति ततो ह वाचक्नव्युपरराम ॥

॥ इत्यष्टमं ब्राह्मणम् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

मन्येध्वम्, यत्, अस्मात्, नमस्कारेण, मुच्येध्वम्, न, वै, जातु, युष्माकम्, इमम्, कश्चित्, ब्रह्मोद्यम्, जेता, इति, ततः, ह, वाचक्नवी, उपरराम ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
+ सा	वह गार्गी	यत्	जो
+ ह	स्पष्ट	अस्मात्	इस याज्ञवल्क्य से
+ उवाच	बोली कि	नमस्कारेण	नमस्कार करके
+ भगवन्तः ब्राह्मणाः	हे मेरे पूज्य ब्राह्मणो !	मुच्येध्वम्	आपलोग छुटकारा पाजावें
+ तत् एव	यही	वै	निस्सन्देह
+ बहु	बहुत	युष्माकम्	आपलोगों में से
मन्येध्वम्	मानने के योग्य हैं यानी कुशल समझना चाहिये	कश्चित्	कोई भी
		इमम्	इस
		ब्रह्मोद्यम्	ब्रह्मवादी याज्ञवल्क्य को

जातु=कभी	+उक्त्वा=कहकर
न=नहीं	ततः=फिर
जेता=जीत सकेगा	वाचक्नवी=गार्गी
इति=इसप्रकार	उपरराम=उपराम होती भई

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज के उत्तरको सुनकर, सबकी तरफ सम्बोधन करके गार्गी बोली कि, हे मेरे पूज्यब्राह्मणो ! यदि आपलोगों का छुटकारा याज्ञवल्क्य महाराज से नमस्कार करके होजावे तो कुशल समझिये, हे ब्राह्मणो ! आपलोगों में से कोई ऐसा नहीं है जो याज्ञवल्क्य महाराज को जीतसके इसप्रकार कह करके और उपराम होकर वह गार्गी बैठगई ॥ १२ ॥

इत्यष्टमं ब्राह्मणम् ॥ ८ ॥

अथ नवमं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

अथ हैनं विदग्धः शाकल्यः पप्रच्छ कति देवा याज्ञवल्क्येति स हैतयैव निविदा प्रतिपेदे यावन्तो वैश्वदेवस्य निविद्युच्यन्ते त्रयश्च त्री च शता त्रयश्च त्री च सहस्रेत्योमिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्क्येति त्रयस्त्रिꣳशदित्योमिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्क्येति षडित्योमिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्क्येति त्रय इत्योमिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्क्येति द्वावित्योमिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्क्येत्यध्यर्द्ध इत्योमिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्क्येत्येक इत्योमिति होवाच कतमे ते त्रयश्च त्री च शता त्रयश्च त्री च सहस्रेति ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, विदग्धः, शाकल्यः, पप्रच्छ, कति, देवाः, याज्ञवल्क्य, इति, सः, ह, एतया, एव, निविदा, प्रतिपेदे, यावन्तः, वैश्वदेवस्य, निविदि, उच्यन्ते, त्रयः, च, त्री, च, शता, त्रयः, च, त्री, च,

सहस्र, इति, ओम्, इति, ह, उवाच, कति, एव, देवाः, याज्ञवल्क्य, इति, त्रयस्त्रिंशत्, इति, ओम्, इति, ह, उवाच, कति, एव, देवाः, याज्ञवल्क्य, इति, षट्, इति, ओम्, इति, ह, उवाच, कति, एव, देवाः, याज्ञवल्क्य, इति, त्रयः, इति, ओम्, इति, ह, उवाच, कति, एव, देवाः, याज्ञवल्क्य, इति, द्वौ, इति, ओम्, इति, ह, उवाच, कति, एव, देवाः, याज्ञवल्क्य, इति, अध्यर्द्धः, इति, ओम्, इति, ह, उवाच, कति, एव, देवाः, याज्ञवल्क्य, इति, एकः, इति, ओम्, इति, ह, उवाच, कतमे, ते, त्रयः, च, त्री, च, शता, त्रयः, च, त्री, च, सहस्र, इति ॥

अन्वयः पदार्थाः

अथ ह=इस के उपरान्त
शाकल्यः=शाकलका पुत्र
विदग्धः=विदग्ध
एनम्=उसी याज्ञवल्क्य से
इति=इसप्रकार
पप्रच्छ=पूछता भया कि
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
कति=कितने
देवाः=देव हैं
इति=यह मेरा प्रश्न है
सः=उस याज्ञवल्क्य ने
ह=स्पष्ट
एतया निविदा=इस मंत्रसमूह के विभागद्वारा
प्रतिपेदे=उत्तर दिया कि
यावन्तः=जितने
वैश्वदेवस्य=विश्वेदेवों के
निविदि=मन्त्रों में
+ सन्ति=लिखे हैं
तावन्तः=उतने ही
उच्यन्ते=कहे जाते हैं

अन्वयः पदार्थाः

+ च=और
इमाः=ये
त्रयः=तीन
च=और
त्री=तीन
च=और
त्रयः=तीन
शता=सौ
च=और
त्री=तीन
सहस्र=हजार हैं
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
+ शाकल्यः आह=शाकल्य विदग्धने कहा
ओम्=हां ठीक है
+ पुनः=फिर
+ सः=शाकल्य विदग्ध ने
+ पप्रच्छ=पूछा कि
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !

कति एव=इनके अन्तर्गत
कितने
देवाः=देव हैं
इति=इसपर
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
+ आह=उत्तर दिया
त्रयस्त्रिंशत्=तेंतीस हैं
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
शाकल्यः=शाकल्य ने
आह=कहा
ओम्=हां ठीक है
पुनः=फिर
+ शाकल्यः=शाकल्य विदग्ध ने
उवाच=कहा कि
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
कति एव=उनके अन्तर्गत
कितने
देवाः=देवता हैं
इति=इसपर
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
+ आह=उत्तर दिया
षट्=छः हैं
इति=ऐसा सुनकर
शाकल्यः=शाकल्य ने
आह=कहा
ओम्=हां ठीक है
पुनः=फिर
+ शाकल्यः=शाकल्य ने
उवाच=पूछा
+ याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
कति एव=कितने उनके अन्तर्गत

देवाः=देवता हैं
इति=ऐसा सुन कर
याज्ञवल्क्यः ह=याज्ञवल्क्य ने स्पष्ट
उवाच=कहा
त्रयः=तीन देवता हैं
इति=इस पर
शाकल्यः=शाकल्य ने
+ आह=कहा
ओम्=हां ठीक है
+ शाकल्यः=शाकल्य ने
उवाच=पूछा
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
कति एव=कितने उसके
अन्तर्गत
देवाः=देवता हैं
इति=ऐसा सुन कर
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
ह=स्पष्ट
उवाच=कहा
द्वौ=दो हैं
इति=ऐसा सुन कर
+ शाकल्यः=शाकल्य ने
+ आह=कहा
ओम्=हां ठीक है
+ पुनः=फिर
+ शाकल्यः=शाकल्य ने
उवाच=पूछा
+ याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
कति एव=उसके अन्तर्गत
कितने
+ देवाः=देवता हैं
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने

+ आह=कहा
अध्यर्द्धः=अध्यर्द्ध है
शाकल्यः=शाकल्य विदग्ध ने
उवाच=कहा
ओम्=हां ठीक है
इति=ऐसा सुनकर
+ पुनः=फिर
+ शाकल्यः=शाकल्य ने
उवाच=पूछा
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
+ कतिएव=उस के अन्तर्गत कितने
देवाः=देवता हैं
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
उवाच=उत्तर दिया
एकः=एक है
इति=इसपर
+ शाकल्यः=शाकल्य ने
+ पुनः=फिर
+ पप्रच्छ=पूछा
कतिएव=उसके अन्तर्गत कितने देवता हैं
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
उवाच=कहा
ते=वे
त्रयः=तीन
च=और
त्री=तीन
च=और
त्री=तीन
शता=सौ
च=और
त्रयः=तीन
सहस्त्र=हजार हैं
+ शाकल्यः=शाकल्य ने
+ पुनः=फिर
+ पप्रच्छ=पूछा
कतमे एव=उसके अन्तर्गत कौनसे देवता हैं

भावार्थ ।

तिसके पीछे शाकल्यऋषि के पुत्र विदग्ध ने कहा हे याज्ञवल्क्य ! मैं तुम से पूछता हूं, आप बताइये कि कितने देवता हैं, इसके उत्तर में याज्ञवल्क्य कहते हैं, हे विदग्ध ! जितने विश्वेदेवसम्बन्धी मन्त्रों में देवता लिखे हैं, उतने ही हैं, और उनकी संख्या तीन और तीनसौ और तीन और तीन हजार है. इस उत्तर को सुनकर विदग्ध ने कहा हां ठीक है, जितनी देवसंख्या आप कहते हैं उतनीही है. फिर शाकल्य ने पूछा हे याज्ञवल्क्य ! उनके अन्तर्गत कितने देवता हैं; ऐसा सुन

कर याज्ञवल्क्य ने कहा, हे विदग्ध ! उनके अन्तर्गत तेंतीस देवता हैं, ऐसा सुनकर शाकल्य विदग्ध ने कहा हां ठीक है, फिर शाकल्य विदग्ध ने पूछा हे याज्ञवल्क्य ! उन तेंतीसों के अन्तर्गत कितने देवता हैं, ऐसा सुनकर याज्ञवल्क्य ने कहा हे विदग्ध ! छः देवता हैं, इसको सुनकर शाकल्यने कहा हां ठीक है, फिर शाकल्य ने पूछा हे याज्ञवल्क्य ! उनके अन्तर्गत कितने देवता हैं, याज्ञवल्क्य ने कहा तीन हैं फिर शाकल्यने पूछा उन तीन के अन्तर्गत कितने देवता हैं, याज्ञवल्क्य ने कहा दो हैं, फिर शाकल्यने पूछा हे याज्ञवल्क्य ! उन दो के अन्तर्गत कितने देवता हैं, याज्ञवल्क्य ने कहा, हे विदग्ध ! उस दो के अन्तर्गत अध्यर्द्ध देवता है यानी वह सूक्ष्म वायुरूप सत्ता है जिसके रहने पर सब स्थावर जंगम पदार्थ परमवृद्धि को प्राप्त होते रहते हैं, और यही कारण है कि उस वायुदेव को अध्यर्द्ध कहते हैं, शाकल्यने कहा हां ठीक है, तदनन्तर विदग्ध ने पूछा हे याज्ञवल्क्य ! उसके अन्तर्गत कितने देवता हैं, याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया एक है, शाकल्य ने फिर पूछा कि उसके अन्तर्गत कितने देवता हैं, याज्ञवल्क्य ने कहा वे तीन और तीनसौ और तीन हज़ार हैं, फिर विदग्ध पूछता है, हे याज्ञवल्क्य ! वे तीन और तीनसौ और तीन और तीनसहस्र कौन देवता हैं ॥ १ ॥

मन्त्रः २

स होवाच महिमान एवैषामेते त्रयस्त्रिंशत्त्वेव देवा इति कतमे ते त्रयस्त्रिंशदित्यष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्यास्त एकत्रिंशदिन्द्रश्चैव प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिंशाविति ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, महिमानः, एव, एषाम्, एते, त्रयस्त्रिंशत्, तु, एव, देवाः, इति, कतमे, ते, त्रयस्त्रिंशत. इति, अष्टौ, वसवः, एकादश,

रुद्राः, द्वादश, आदित्याः, ते, एकत्रिंशत्, इन्द्रः, च, एव, प्रजापतिः, च, त्रयस्त्रिंशौ, इति ॥

अन्वयः पदार्थाः

सः=वह याज्ञवल्क्य
ह=स्पष्ट
उवाच=बोले कि
एषाम्=इनमें से
एव=निश्चय करके
एते=ये
त्रयस्त्रिंशत्=तेतीस देवता
महिमानः=महिमा के योग्य हैं
+ विदग्धः=विदग्ध ने
+ पृच्छति=पूछा कि
ते=वे
कतमे=कौनसे
त्रयस्त्रिंशत्=तेतीस
देवाः एव=देवता हैं
इति=इस पर
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
+ आह=उत्तर दिया
अष्टौ=आठ
वसवः=वसु
एकादश=ग्यारह
रुद्राः=रुद्र
द्वादश=बारह
आदित्याः=सूर्य
इति=इस प्रकार
एकत्रिंशत्=एक तीस हुये
च=और
इन्द्रः=इन्द्र
च=और
प्रजापतिः=प्रजापति
इति=लेकर
त्रयस्त्रिंशौ=तेतीस हुये

भावार्थ ।

तब याज्ञवल्क्य बोले कि, हे विदग्ध ! इन में से निश्चय करके केवल तेतीस देवता महिमा के योग्य हैं, विदग्ध ने फिर याज्ञवल्क्य से पूछा कि वे कौन तेतीस देवता हैं, यह सुन कर याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, हे विदग्ध ! आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह सूर्य मिलाकर एकतीस हुये, बत्तीसवां इन्द्र है, तेतीसवां प्रजापति है ॥ २ ॥

मन्त्रः ३

कतमे वसव इत्यग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षं चादित्यश्च द्यौश्च चन्द्रमाश्च नक्षत्राणि चैते वसव एतेषु हीदꣳ सर्वꣳ हितमिति तस्माद्वसव इति ॥

पदच्छेदः ।

कतमे, वसवः, इति, अग्निः, च, पृथिवी, च, वायुः, च, अन्तरिक्षम्, च, आदित्यः, च, द्यौः, च, चन्द्रमाः, च, नक्षत्राणि, च, एते, वसवः, एतेषु, हि, इदम्, सर्वम्, हितम्, इति, तस्मात्, वसवः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
+ विदग्धः	विदग्ध	च	और
+ पृच्छति	पूछता है कि	नक्षत्राणि च	नक्षत्र
ते	वे	एते	ये
कतमे	कौन से	वसवः	आठ वसु हैं
वसवः	आठ वसु हैं	एतेषु	इन्हीं वसुओं में
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य	इदम्	दृश्यमान
+ वक्ति	कहते हैं कि	सर्वम्	सब जगत्
अग्निः	अग्नि	हितम्	स्थित है
पृथिवी	पृथ्वी	तस्मात्	इस लिये
वायुः	वायु	वसवः	वसु यानी अपने ऊपर सब को बसाये हुये हैं
अन्तरिक्षम् च	आकाश	इति	ऐसा
आदित्यः च	सूर्य	कथ्यन्ते	कहे जाते हैं
द्यौः च	स्वर्ग		
चन्द्रमाः	चन्द्रमा		

भावार्थ ।

विदग्ध फिर पूछते हैं, हे याज्ञवल्क्य ! वे आठ वसु कौन कौन हैं, याज्ञवल्क्य कहते हैं, हे विदग्ध ! सुनो अग्नि, पृथिवी, वायु, आकाश, सूर्य, स्वर्ग, चन्द्रमा, नक्षत्र यही आठ वसु हैं, इन्हीं आठ वसुओं में दृश्यमान सब जगत् स्थित है, इस लिये वसु इस कारण कहलाते हैं कि वे अपने ऊपर जीवमात्र को बसाये हुये हैं ॥ ३ ॥

मन्त्रः ४

कतमे रुद्रा इति दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशस्ते यदास्माच्छरीरान्मर्त्यादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति तद्यद्रोदयन्ति तस्माद्रुद्रा इति ॥

पदच्छेदः।

कतमे, रुद्राः, इति, दश, इमे, पुरुषे, प्राणाः, आत्मा, एकादशः, ते, यदा, अस्मात्, शरीरात्, मर्त्यात्, उत्क्रामन्ति, अथ, रोदयन्ति, तत्, यत्, रोदयन्ति, तस्मात्, रुद्राः, इति ॥

अन्वयः पदार्थाः

+ विदग्धः=विदग्ध
+ पृच्छति=फिर पूछता है
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
+ ते=वे ग्यारह
कतमे=कौन से
रुद्राः=रुद्र हैं
इति=इस पर
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य
+ वदति=कहते हैं कि
पुरुषे=पुरुष के विषे
इमे=ये
दश=दश
प्राणाः=पांच कर्मेन्द्रिय और पांच ज्ञानेन्द्रिय
च=और
एकादशः=ग्यारहवां
आत्मा=मन
+ एते=येही
रुद्राः=ग्यारह रुद्र हैं
यदा=जब
ते=वे रुद्र
अस्मात्=इस
मर्त्यात्=मरणधर्मवाले
शरीरात्=शरीर से
उत्क्रामन्ति=निकलते हैं
अथ=तब
रोदयन्ति=मरने वाले के सम्बन्धियों को रुलाते हैं
यत्=चूंकि
तत्=मरण समय में
+ ते=वे
रोदयन्ति=रुलाते हैं
तस्मात्=इस लिये
रुद्राः=वे रुद्र
इति=करके
कथ्यन्ते=कहे जाते हैं

भावार्थ।

विदग्ध फिर पूछते हैं, हे याज्ञवल्क्य ! वे ग्यारह रुद्र कौन कौन हैं, इनके नाम आप बतावें. याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं, हे विदग्ध ! जो पुरुष के विषय पांच कर्मेन्द्रिय, पांच ज्ञानेन्द्रिय, एक मन है येही ग्यारह रुद्र हैं. जब वह रुद्र इस मरणधर्मवाले शरीर से निकलते हैं तब मरने वाले के सम्बन्धियों को रुलाते हैं चूंकि मरणसमय में वे रुलाते हैं इस कारण वे रुद्र कहे जाते हैं ॥ ४ ॥

मन्त्रः ५

कतम आदित्या इति द्वादश वै मासाः संवत्सरस्यैत आदित्या एते हीदꣳ सर्वमाददाना यन्ति ते यदिदꣳ सर्वमाददाना यन्ति तस्मादादित्या इति ॥

पदच्छेदः ।

कतमे, आदित्याः, इति, द्वादश, वै, मासाः, संवत्सरस्य, एते, आदित्याः, एते, हि, इदम्, सर्वम्, आददानाः, यन्ति, ते, यत्, इदम्, सर्वम्, आददानाः, यन्ति, तस्मात्, आदित्याः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ विदग्धः	विदग्ध
पुनः	फिर
+ आह	पूछता है कि
याज्ञवल्क्य	हे याज्ञवल्क्य !
कतमे	वे कौन से
आदित्याः	बारह सूर्य हैं
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
+ उवाच	कहा कि
संवत्सरस्य	वर्ष के
द्वादश	बारह
मासाः	मास
वै	ही
एते	ये
+ द्वादश	बारह
आदित्याः	सूर्य हैं
एते हि	येही
इदम्	इस
सर्वम्	सब को
आददानाः	लिये हुये
यन्ति	गमन करते हैं
यत्	जब कि
आदित्याः	वे सूर्य
इदम् सर्वम्	इस सब को
आददानाः	ग्रहण करते हुये
यन्ति	चले जाते हैं
तस्मात्	इसी से
आदित्याः	आदित्य
इति	करके
+ कथ्यन्ते	वे कहे जाते हैं

भावार्थ ।

विदग्ध फिर पूछते हैं, हे याज्ञवल्क्य ! आप कृपा करके बताइये वे बारह सूर्य कौन कौन हैं इस पर याज्ञवल्क्य कहते हैं, हे विदग्ध ! संवत्सर के यानी वर्ष के जो बारह मास होते हैं, वेही बारह सूर्य हैं,

वेही इस संपूर्ण जगत् को लिये हुए गमन करते हैं, चूंकि वे सूर्य इस सब को ग्रहण किये हुये चलते हैं, इसी कारण वे आदित्य कहे जाते हैं ॥ ५ ॥

मन्त्रः ६

कतम इन्द्रः कतमः प्रजापतिरिति स्तनयित्नुरेवेन्द्रो यज्ञः प्रजापतिरिति कतमः स्तनयित्नुरित्यशनिरिति कतमो यज्ञ इति पशव इति ॥

पदच्छेदः ।

कतमः, इन्द्रः, कतमः, प्रजापतिः, इति, स्तनयित्नुः, एव, इन्द्रः, यज्ञः, प्रजापतिः, इति, कतमः, स्तनयित्नुः, इति, अशनिः, इति, कतमः, यज्ञः, इति, पशवः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ विदग्धः=विदग्ध	
+ पुनः=फिर	
+ आह=पूछता है कि	
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !	
इन्द्रः=इन्द्र	
कतमः=कौन है	
प्रजापतिः=प्रजापति	
कतमः=कौन है	
इति=ऐसा	
+ श्रुत्वा=सुन कर	
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य	
+ आह=बोले कि	
स्तनयित्नुः=स्तनयित्नु	
एव=ही	
इन्द्रः=इन्द्र है	
+ च=और	
यज्ञः=यज्ञ	
प्रजापतिः=प्रजापति है	

अन्वयः	पदार्थाः
इति=ऐसा	
+ श्रुत्वा=सुन कर	
+ विदग्धः=विदग्ध	
पुनः=फिर	
पृच्छति=पूछता है कि	
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !	
कतमः=कौन	
स्तनयित्नुः=स्तनयित्नु है	
इति=ऐसा प्रश्न	
+ श्रुत्वा=सुन कर	
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य	
+ आह=बोले कि	
अशनिः=विजली	
स्तनयित्नुः=स्तनयित्नु है	
इति=ऐसा उत्तर पाने पर	
+ पुनः=फिर	
शाकल्यः=विदग्ध	
उवाच=बोले	

भावार्थ ।

शाकल्य विदग्ध याज्ञवल्क्य से पूछते हैं कि, हे याज्ञवल्क्य ! जो आपने छः देवता गिनाये हैं वे कौन कौन हैं, याज्ञवल्क्य कहते हैं कि, हे विदग्ध ! अग्नि, पृथिवी, वायु, आकाश, सूर्य, स्वर्ग ये ही छः देवता हैं, इन्हीं के अधीन यह सब जगत् है ॥ ७ ॥

मन्त्रः ८

कतमे ते त्रयो देवा इतीम एव त्रयो लोका एषु हीमे सर्वे देवा इति कतमौ तौ द्वौ देवावित्यन्नं चैव प्राणश्चेति कतमोऽध्यर्द्ध इति योऽयं पवत इति ॥

पदच्छेदः ।

कतमे, ते, त्रयः, देवाः, इति, इमे, एव, त्रयः, लोकाः, एषु, हि, इमे, सर्वे, देवाः, इति, कतमौ, तौ, द्वौ, देवौ, इति, अन्नम्, च, एव, प्राणः, च, इति, कतमः, अध्यर्द्धः, इति, यः, अयम्, पवते, इति ॥

अन्वयः पदार्थाः	अन्वयः पदार्थाः
ते=वे	इमे=ये
त्रयः=तीन	सर्वे=सब
देवाः=देवता	देवाः=देवता
कतमे=कौन हैं	इति=अन्तर्गत हैं
इति=ऐसा प्रश्न	+ पुनः=फिर
+ श्रुत्वा=सुन कर	शाकल्यः=विदग्ध
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने	+ पप्रच्छ=पूछते हैं कि
+ आह=कहा कि	तौ=वे
+ ते=वे	द्वौ=दो
इमे=ये	देवौ=देवता
एव=ही	कतमौ=कौन हैं
त्रयः=तीनों	इति=इस पर
लोकाः=लोक हैं	+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
हि=क्योंकि	आह=उत्तर दिया
एषु=इनमें ही	+ तौ=वे दोनों देवता

एव=निश्चय करके
अन्नम्=अन्न
च=और
प्राणः=प्राण हैं
इति=इस उत्तर पर
+ पुनः=फिर
पप्रच्छ हि=पूछते हैं कि
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
अध्यर्द्धः=अध्यर्द्ध
कतमः=कौन देवता है
इति=इसको
+ श्रुत्वा=सुन कर
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
+ आह=कहा
यः=जो
अयम्=यह वायु
इति=ऐसा
पवते=चलता है
सः=वही यह अध्यर्द्ध है

भावार्थ ।

विदग्ध पूछते हैं कि, हे याज्ञवल्क्य ! आपने पहिले कहा था कि तीन देवता हैं, आप कृपा करके बताइये कि वे तीन देवता कौन कौन हैं, इस पर याज्ञवल्क्य कहते हैं, हे विदग्ध ! वे तीन देवता यही तीनों लोक हैं, क्योंकि वे सब देवता इन्हीं तीनों लोकों में रहते हैं, मतलब इसका यह है कि एक लोक पृथिवी है, उसमें अग्नि देवता रहता है, दूसरा लोक अन्तरिक्ष है, उसमें वायुदेवता रहता है, तीसरा लोक द्युलोक है, उसमें आदित्य देवता रहता है, यानी इन्हीं तीनों देवताओं में सबका अन्तर्भाव होता है, पहिले आठ देवताओं को छः देवताओं में अन्तर्भाव किया, फिर उन छहों को तीन में अन्तर्भाव किया, फिर विदग्ध पूछते हैं, हे याज्ञवल्क्य ! वे दोनों देवता कौन कौन हैं, जिस को आप पहिले कह आये हैं, याज्ञवल्क्य कहते हैं उन दोनों में से एक देवता प्राण है, दूसरा अन्न है, यहां पर प्राण शब्द से नित्य पदार्थ का ग्रहण है, और अन्न से अनित्य पदार्थ का ग्रहण है, अथवा पहिला कारणरूप है, दूसरा कार्यरूप है, इन्हीं दोनों में सब ओत-प्रोत हैं, इसके पश्चात् विदग्ध पूछते हैं हे याज्ञवल्क्य ! अध्यर्द्ध कौन है, याज्ञवल्क्य उत्तर देते हैं जो बहता है वह अध्यर्द्ध है, हे विदग्ध ! वायु को अध्यर्द्ध कहते हैं ॥ ८ ॥

मन्त्रः ६

तदाहुर्यदयमेक इवैव पवतेऽथ कथमध्यर्द्ध इति यदस्मिन्निदꣳ सर्वमध्यार्ध्नोत्तेनाध्यर्द्ध इति कतम एको देव इति प्राण इति स ब्रह्म त्यदित्याचक्षते ॥

पदच्छेदः ।

तत्, आहुः, यत्, अयम्, एकः, इव, एव, पवते, अथ, कथम्, अध्यर्द्धः, इति, यत्, अस्मिन्, इदम्, सर्वम्, अधि, आर्ध्नोत्, तेन, अध्यर्द्धः, इति, कतमः, एकः, देवः, इति, प्राणः, इति, सः, ब्रह्म, त्यत्, इति, आचक्षते ॥

अन्वयः	पदार्थाः
तत्	तिस विषय में
आहुः	विद्वान् कहते हैं कि
यत्	जब
अयम्	यह वायु
एकः	एक होता हुआ
एव	निश्चय करके
पवते	बहता है
अथ	तो प्रश्न है कि
सः	वह
अध्यर्द्धः	अध्यर्द्ध है
इव	ऐसा
कथम्	क्यों
आहुः	कहते हैं
इति	इस पर
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
आह	कहा कि
यत्	जिस कारण
अस्मिन्	इस वायु में ही
इदम्	यह दृश्यमान
सर्वम्	सब जगत्
आध्यार्ध्नोत्[1]	अधिक वृद्धि को प्राप्त होता है
तेन	तिस कारण
+ सः	वह
अध्यर्द्धः	अध्यर्द्ध
इति	नाम करके
+ कथ्यते	कहा जाता है
+ पुनः	फिर
+ विदग्धः	विदग्ध ने
+ आह	पूछा कि
+ सः	वह
एकः	एक
देवः	देव
कतमः	कौन है

---

१ अध्यार्ध्नोति=अधि+ऋद्धि, अधि=अधिक, ऋद्धि=वृद्धि, जो अधिक वृद्धि को करे, वह अध्यर्द्ध कहलाता है २ त्यत् और तत् ये दोनों शब्द एकही अर्थ के बोधक हैं।

इति=इस पर
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
आह=कहा
सः=वह
प्राणः=प्राण करके विख्यात है
सः=सोई प्राण
त्यत्=वह
ब्रह्म=ब्रह्म है
इति=ऐसा
आचक्षते=लोग कहते हैं

भावार्थ ।

तिस विषय में विदग्ध कहते हैं, हे याज्ञवल्क्य ! जब यह वायु एक होता हुआ बहता है तब उसको लोग अध्यर्द्ध क्यों कहते हैं. इसके उत्तर में याज्ञवल्क्य कहते हैं, हे विदग्ध ! जिस कारण इस वायु में ही यह सब दृश्यमान जगत् अधिक वृद्धि को प्राप्त होता है तिसी कारण उसको अध्यर्द्ध नाम करके कहते हैं. अध्यर्द्ध दो शब्दों से मिलकर बना है, अधि ऋद्धि=अधिका अर्थ आधिक्य है और ऋद्धि का अर्थ वृद्धि है. चूंकि वायु करके सबकी वृद्धि होती है इसलिये वायु को अध्यर्द्ध नाम से कहा है. फिर विदग्ध पूछते हैं कि, हे याज्ञवल्क्य ! वह एक देवता कौन है जिसको आपने पहिले कहा था. उस पर याज्ञवल्क्य कहते हैं, हे विदग्ध ! वह एक देवता प्राण है वही प्राण ब्रह्म है ऐसा लोक कहते हैं. इस मन्त्र में त्यत् शब्द का अर्थ तत् है यानी जो तत् है वही त्यत् है ॥ ६ ॥

मन्त्रः १०

पृथिव्येव यस्यायतनमग्निर्लोको मनो ज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्वस्यात्मनः परायणꣳ स वै वेदिता स्यात् । याज्ञवल्क्य वेद वा अहं तं पुरुषꣳ सर्वस्यात्मनः परायणं यमात्थ य एवायꣳ शारीरः पुरुषः स एष वदैव शाकल्य तस्य का देवतेत्यमृतमिति होवाच ॥

पदच्छेदः ।

पृथिवी, एव, यस्य, आयतनम्, अग्निः, लोकः, मनः, ज्योतिः, यः, वै, तम्, पुरुषम्, विद्यात्, सर्वस्य, आत्मनः, परायणम्, सः, वै, वेदिता, स्यात्, याज्ञवल्क्य, वेद, वा, अहम्, तम्, पुरुषम्, सर्वस्य,

आत्मनः, परायणम्, यम्, आत्थ, यः, एव, अयम्, शारीरः, पुरुषः, सः, एषः, वद, एव, शाकल्य, तस्य, का, देवता, इति, अमृतम्, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थाः
यस्य	जिस पुरुष का
आयतनम्	शरीर
एव	निश्चय करके
पृथिवी	पृथिवी है
लोकः	रूप
अग्निः	अग्नि है
मनः	मन
ज्योतिः	प्रकाश है
यः	जो
सर्वस्य	सब
आत्मनः	जीवों का
परायणम्	उत्तम आश्रय है
तम्	उस
पुरुषम्	पुरुष को
यः	जो
विद्यात्	जानता है
सः	वह
वै	अवश्य
याज्ञवल्क्य	हे याज्ञवल्क्य !
वेदिता	ज्ञाता
स्यात्	होता है
+ न अन्यः	दूसरा नहीं
+ इति श्रुत्वा	ऐसा सुनकर
याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य कहते हैं कि
यः	जो
सर्वस्य	सब के
आत्मनः	आत्मा का
परायणम्	परम आश्रय है
तम्	उस
पुरुषम्	पुरुष को
यम्	जिसको
आत्थ	तुम कहते हो
अहम्	मैं
वेद	जानता हूं
यः	जो
अयम्	यह
शारीरः	शरीरसम्बन्धी
पुरुषः	पुरुष है
सः	वही
एव	निश्चय करके
एषः	यह सबका आत्मा है
शाकल्य	हे शाकल्य !
एव	अवश्य
वद	तुम पूछो
+ पुनः	फिर
शाकल्यः	शाकल्य ने
आह	पूछा कि
तस्य	उस पुरुष का
देवता	देवता (कारण)
का	कौन है
+ इति श्रुत्वा	ऐसा सुन कर
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
ह	स्पष्ट
उवाच	कहा कि
अमृतम्	अमृत है यानी वीर्य है

भावार्थ ।

विदग्ध कहते हैं कि, हे याज्ञवल्क्य ! जिस पुरुष का शरीर पृथिवी है, रूप अग्नि है, मन प्रकाश है, जो सब जीवों का उत्तम आश्रय है, उस पुरुष को जो जानता है वह अवश्य हे याज्ञवल्क्य ! उस पुरुष का ज्ञाता होता है, दूसरा नहीं, क्या आप उस पुरुष को जानते हैं ? यदि आप जानते हैं तो मैं आपको अवश्य ब्रह्मवेत्ता मानूंगा. ऐसा सुन कर याज्ञवल्क्य कहते हैं, हे विदग्ध ! जो सब के आत्मा का परम आश्रय है, और जिसको तुम ऐसा कहते हो उस पुरुष को मैं जानता हूं, जो यह शरीरसम्बन्धी पुरुष है, वही निश्चय करके सब जीवमात्र का आश्रय है, हे विदग्ध ! तुम ठहरो मत, पूछते चले चलो, मैं तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देता चलूंगा, इस पर विदग्ध ने पूछा, हे याज्ञवल्क्य ! उस पुरुष का कारण कौन है, याज्ञवल्क्य ने कहा उसका कारण अमृत यानी वीर्य है ॥ १० ॥

मन्त्रः ११

काम एव यस्यायतनꣳ हृदयं लोको मनो ज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्वस्यात्मनः परायणꣳ स वै वेदिता स्यात् । याज्ञवल्क्य वेद वा अहं तं पुरुषꣳ सर्वस्यात्मनः परायणं यमात्थ य एवायं काममयः पुरुषः स एष वदैव शाकल्य तस्य का देवतेति स्त्रिय इति होवाच ॥

पदच्छेदः ।

कामः, एव, यस्य, आयतनम्, हृदयम्, लोकः, मनः, ज्योतिः, यः, वै, तम्, पुरुषम्, विद्यात्, सर्वस्य, आत्मनः, परायणम्, सः, वै, वेदिता, स्यात्, याज्ञवल्क्य, वेद, वै, अहम्, तम्, पुरुषम्, सर्वस्य, आत्मनः, परायणम्, यम्, आत्थ, यः, एव, अयम्, काममयः, पुरुषः, सः, एषः, वद, एव, शाकल्य, तस्य, का, देवता, इति, स्त्रियः, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
यस्य	=जिस पुरुष का	तम्	=उस
आयतनम्	=शरीर	पुरुषम्	=पुरुष को
कामः	=काम है	अहम्	=मैं
हृदयम्	=हृदय	वेद	=जानता हूं
लोकः	=रहने की जगह है	यम्	=जिसको
मनः	=मन	आत्थ	=तुम कहते हो
ज्योतिः	=प्रकाश है	यः	=जो
यः	=जो	एव	=निश्चय करके
सर्वस्य	=सब के	अयम्	=यह
आत्मनः	=जीवात्मा का	काममयः	=कामसम्बन्धी
परायणम्	=परम आश्रय है	पुरुषः	=पुरुष है
तम्	=उस	सः एव	=वही
पुरुषम्	=पुरुष को	एषः	=यह सब का आत्मा है
याज्ञवल्क्य	=हे याज्ञवल्क्य !	शाकल्य	=हे शाकल्य !
यः	=जो	वद	=तुम पूछो
विद्यात्	=जानता है	+ पुनः	=फिर
सः	=वही	+ शाकल्यः	=शाकल्य
वै	=निश्चय करके	+ आह	=बोले कि
सर्वस्य	=सब का	याज्ञवल्क्य	=हे याज्ञवल्क्य !
वेदिता	=ज्ञाता	तस्य	=उसका
स्यात्	=होता है	देवता	=देवता यानी कारण
+इति श्रुत्वा	=ऐसा सुन कर	का	=कौन है
याज्ञवल्क्यः	=याज्ञवल्क्य ने	इति	=इस पर
उवाच	=कहा	याज्ञवल्क्यः	=याज्ञवल्क्य ने
यः	=जो	ह	=स्पष्ट
सर्वस्य	=सबके	उवाच	=कहा कि
आत्मनः	=आत्मा का	स्त्रियः	=कामका कारण स्त्रियां हैं
परायणम्	=उत्तम आश्रय है		

भावार्थ ।

विदग्ध पूछते हैं कि, हे याज्ञवल्क्य ! जिस पुरुष का शरीर काम

है, हृदय रहने की जगह है, मन प्रकाश है, जो सब जीवात्मा का परम आश्रय है, जो उस पुरुष को जानता है, वह हे याज्ञवल्क्य ! सब का ज्ञाता है, हे याज्ञवल्क्य ! क्या तुम उस पुरुष को जानते हो ? यदि आप जानते हैं, तो मैं आपको सब का ज्ञाता मानूंगा, इस पर याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि जो सब के आत्मा का उत्तम आश्रय है, उस पुरुष को मैं जानता हूं, जिसके निसबत आप पूछते हैं उसको हे विदग्ध ! सुनो, जो यह कामसम्बन्धी पुरुष है वही जीवमात्र का उत्तम आश्रय है, हे विदग्ध ! और जो कुछ पूछने की इच्छा हो पूछो, शाकल्य विदग्ध फिर पूछते हैं, हे याज्ञवल्क्य ! उसका कारण कौन है, इस पर याज्ञवल्क्य जवाब देते हैं, हे विदग्ध ! काम का कारण स्त्रियां हैं ॥ ११ ॥

मन्त्रः १२

रूपाण्येव यस्यायतनं चक्षुर्लोको मनो ज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्वस्यात्मनः परायणꣳ स वै वेदिता स्यात् । याज्ञवल्क्य वेद वा अहं तं पुरुषꣳ सर्वस्यात्मनः परायणं यमात्थ य एवासावादित्ये पुरुषः स एष वदैव शाकल्य तस्य का देवतेति सत्यमिति होवाच ॥

पदच्छेदः ।

रूपाणि, एव, यस्य, आयतनम्, चक्षुः, लोकः, मनः, ज्योतिः, यः, वै, तम्, पुरुषम्, विद्यात्, सर्वस्य, आत्मनः, परायणम्, सः, वै, वेदिता, स्यात्, याज्ञवल्क्य, वेद, वै, अहम्, तम्, पुरुषम्, सर्वस्य, आत्मनः, परायणम्, यम्, आत्थ, यः, एव, असौ, आदित्ये, पुरुषः, सः, एषः, वद, एव, शाकल्य, तस्य, का, देवता, इति, सत्यम्, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
यस्य=जिस पुरुष का		आयतनम्=आश्रय है	
रूपाणि एव=रूपही		चक्षुः=नेत्रही	

लोकः=रहने की जगह है
मनः=मन ही
ज्योतिः=प्रकाश है
यः=जो
सर्वस्य=सब के
आत्मनः=आत्मा का
परायणम्=उत्तम आश्रय है
तम्=उस
पुरुषम्=पुरुषको
यः=जो
वै=निश्चय के साथ
विद्यात्=जानता है
सः=वह
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य
वेदिता=वेत्ता
स्यात्=होता है
+ इति श्रुत्वा=ऐसा सुनकर
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
उवाच=कहा
+ शाकल्य=हे विदग्ध !
यः=जो
सर्वस्य=सब के
आत्मनः=आत्मा का
परायणम्=परम आश्रय है
च=और
यम्=जिसको
त्वम्=तुम
सर्वस्य=सब
आत्मनः=जीवों का
परायणम्=परम आश्रय
आत्थ=कहते हो
तम्=उस पुरुष को
अहम्=मैं
वेद=जानता हूं
असौ=यही पुरुष
आदित्ये=सूर्य में है
सः=वही
एषः=यह
पुरुषः=पुरुष
+ अस्ति=है जो तुम्हारे विषे स्थित है
शाकल्य=हे शाकल्य !
वद एव=तुम पूछो ठहरो मत
इति=इस पर
+ शाकल्यः=शाकल्य ने
+ पप्रच्छ=पूछा
तस्य=उस पुरुष का
देवता=देवता यानी कारण
का=कौन है
इति=शाकल्य के इस प्रश्न पर
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
इति=ऐसा
ह=स्पष्ट
उवाच=कहा कि
तत्=वह
सत्यम्=ब्रह्म है

भावार्थ ।

विदग्ध फिर प्रश्न करते हैं कि, हे याज्ञवल्क्य ! जिस पुरुष का रूप ही आश्रय है, नेत्रही रहने की जगह है, मन ही प्रकाश है, जो

सबके आत्मा का उत्तम आश्रय है, जो उस पुरुष को निश्चय के साथ जानता है, वह हे याज्ञवल्क्य ! सबका वेत्ता होता है, क्या आप उस पुरुषको जानते हैं ? अगर आप जानते हैं तो मैं आपको सबका वेत्ता मानूंगा, ऐसा सुनकर याज्ञवल्क्य ने कहा हे विदग्ध ! जो सबके आत्मा का परम आश्रय है, और जिसको तुम सब जीवों का परम आश्रय कहते हो मैं उस पुरुषको जानता हूं वही पुरुष सूर्य है, वही पुरुष तुम्हारे विषे स्थित है, हे शाकल्य, विदग्ध ! पूछो और क्या पूछते हो, इसपर विदग्धने पूछा, उस पुरुष का कारण कौन है, इसके उत्तर में याज्ञवल्क्य कहते हैं कि इसका कारण ब्रह्म है ॥ १२ ॥

मन्त्रः १३

आकाश एव यस्यायतनꣳ श्रोत्रं लोको मनो ज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्वस्यात्मनः परायणꣳ स वै वेदिता स्यात् । याज्ञवल्क्य वेद वा अहं तं पुरुषꣳ सर्वस्यात्मनः परायणं यमात्थ य एवायꣳ श्रौत्रः प्रातिश्रुत्कः पुरुषः स एष वदैव शाकल्य तस्य का देवतेति दिश इति होवाच ॥

पदच्छेदः ।

आकाशः, एव, यस्य, आयतनम्, श्रोत्रम्, लोकः, मनः, ज्योतिः, यः, वै, तम्, पुरुषम्, विद्यात्, सर्वस्य, आत्मनः, परायणम्, सः, वै, वेदिता, स्यात्, याज्ञवल्क्य, वेद, वै, अहम्, तम्, पुरुषम्, सर्वस्य, आत्मनः, परायणम्, यम्, आत्थ, यः, एव, अयम्, श्रौत्रः, प्रातिश्रुत्कः, पुरुषः, सः, एषः, वद, एव, शाकल्य, तस्य, का, देवता, इति, दिशः, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
यस्य	=जिस पुरुष का	श्रोत्रम्	=कर्ण
आयतनम्	=आश्रय	लोकः	=रहनेकी जगह है
एव	=निश्चय करके	मनः	=मन
आकाशः	=आकाश है	ज्योतिः	=प्रकाश है

यः=जो
सर्वस्य=सब के
आत्मनः=आत्मा का
परायणम्=परम आश्रय है
तम्=उस
पुरुषम्=पुरुष को
यः=जो
वै=निश्चय करके
विद्यात्=जानता है
सः=वह
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
वेदिता=सब का ज्ञाता
स्यात्=होता है
+ इति श्रुत्वा=ऐसा सुन कर
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
उवाच=कहा
शाकल्य=हे शाकल्य !
यः=जो
सर्वस्य=सब के
आत्मनः=आत्मा का
परायणम्=परम आश्रय है
च=और
यम्=जिसको
त्वम्=तुम
इति=ऐसा
आत्थ=कहते हो
तम्=उस
पुरुषम्=पुरुष को
अहम्=मैं
वै=निस्संदेह
वेद=जानता हूं
अयम्=यह
श्रोत्रः=श्रोत्राभिमानी
प्रातिश्रुत्कः=श्रवण साक्षी
पुरुषः=पुरुष है
एषः=यही तुम्हारा आत्मा है
शाकल्य=हे शाकल्य !
वद एव=तुम पूछो
+ शाकल्यः=शाकल्य ने
+ आह=पूछा
तस्य=उसका
देवता=देवता यानी कारण
का=कौन है ?
इति=इस पर
उवाच ह=याज्ञवल्क्य ने कहा
दिशः=दिशा हैं

भावार्थ ।

शाकल्य निरूपण करते हैं कि हे याज्ञवल्क्य ! जिस पुरुष का शरीर आकाश है, कर्णगोलक रहने की जगह है, मन प्रकाश है, और जो सब जीवों का परम आश्रय है, उस पुरुष को जो भली प्रकार जानता है वही ज्ञानी होसकता है, यदि आप उस पुरुष को जानते हैं तो आपही ज्ञानी और सबमें श्रेष्ठ हैं, यह सुन कर याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, हे शाकल्य ! जिस पुरुष के बाबत आप कहते हैं और जो सब

जीवों का उत्तम आश्रय है और जो श्रोत्रसम्बन्धी पुरुप है उसको मैं निस्संदेह जानता हूं, हे शाकल्य ! वही श्रोत्रसम्बन्धी पुरुप तुम्हारा भी आत्मा है, हे शाकल्य ! जो तुम्हारी इच्छा हो पूछो ? मैं उस का उत्तर अवश्य दूंगा ऐसा सुन कर शाकल्य ने प्रश्न किया श्रोत्र-सम्बन्धी पुरुष का देवता यानी कारण कौन है ? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि दिशा हैं ॥ १३ ॥

मन्त्रः १४

तम एव यस्यायतनꣳ हृदयं लोको मनो ज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्वस्यात्मनः परायणꣳ स वै वेदिता स्यात् । याज्ञवल्क्य वेद वा अहं तं पुरुषꣳ सर्वस्यात्मनः परायणं यमात्थ य एवायं छाया-मयःपुरुषः स एष वदैव शाकल्य तस्य का देवतेति मृत्युरिति होवाच ॥

पदच्छेदः ।

तमः, एव, यस्य, आयतनम्, हृदयम्, लोकः, मनः, ज्योतिः, यः, वै, तम्, पुरुषम्, विद्यात्, सर्वस्य, आत्मनः, परायणम्, सः, वै, वेदिता, स्यात्, याज्ञवल्क्य, वेद, वै, अहम्, तम्, पुरुपम्, सर्वस्य, आत्मनः, परायणम्, यम्, आत्थ, यः, एव, अयम्, छायामयः, पुरुपः, सः, एपः, वद, एव, शाकल्य, तस्य, का, देवता, इति, मृत्युः, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
यस्य	जिस पुरुप का	परायणम्	परम आश्रय है
आयतनम्	आश्रय	तम्	उस
तमः	तम	पुरुषम्	पुरुप को
एव	ही है	यः	जो
हृदयम्	हृदय	विद्यात्	जानता है
लोकः	रहने की जगह है	याज्ञवल्क्य	हे याज्ञवल्क्य !
मनः	मन	सः	वह
ज्योतिः	प्रकाश है	वेदिता	सबका ज्ञाता
+ यः	जो	स्यात्	होता है
सर्वस्य	सब के	+ इति	ऐसा
आत्मनः	आत्मा का	+ श्रुत्वा	सुनकर

+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
+ आह=कहा
यः=जो
सर्वस्य=सबके
आत्मनः=आत्मा का
परायणम्=परम आश्रय है
+ च=और
यम्=जिसको
त्वम्=तुम
आत्थ=पूछते हो
तम्=उस
पुरुषम्=पुरुष को
वै=निस्सन्देह
अहम्=मैं
वेद=जानता हूं
अयम्=वह
एव=ही
छायामयः=अज्ञानसम्बन्धी पुरुष है
सः=वही
एषः=यह तुम्हारा पुरुष है
शाकल्य=हे शाकल्य !
एव=अवश्य
वद=पूछो
+ शाकल्यः=शाकल्य ने
+ आह=पूछा
तस्य=उसकी
देवता=देवता यानी कारण
का=कौन है
इति=इस पर
उवाच ह=याज्ञवल्क्य ने स्पष्ट उत्तर दिया कि
मृत्युः=मृत्यु है

भावार्थ ।

जिस पुरुष का शरीर तम है, हृदय रहने की जगह है, मन प्रकाश है, जो सब के आत्मा का परम आश्रय है, उस पुरुष को जो जानता है, वह सबका ज्ञाता होता है, क्या आप उस पुरुष को जानते हैं, अगर आप जानते हैं तो अवश्य आप ब्रह्मवित् हैं, और अगर नहीं जानते हैं तो वृथा अहंकार करते हैं, याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि मैं उस पुरुष को जानता हूं जो सब के आत्मा का परम आश्रय है, और जिसके निसबत तुम पूछते हो, हे शाकल्य ! वही पुरुष अज्ञान विषे स्थित है, वही तुम्हारे विषे स्थित है, हे शाकल्य ! यदि आप और कुछ पूछना चाहो तो पूछो, मैं उसका उत्तर दूंगा इस पर शाकल्य पूछते हैं हे याज्ञवल्क्य ! ऐसे तमसम्बन्धी पुरुष का देवता कौन है ? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि हे शाकल्य ! वह मृत्यु है ॥ १४ ॥

मन्त्रः १५

रूपाण्येव यस्यायतनं चक्षुर्लोको मनो ज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्वस्यात्मनः परायणꣳ स वै वेदिता स्यात् । याज्ञवल्क्य वेद वा अहं तं पुरुषꣳ सर्वस्यात्मनः परायणं यमात्थ य एवायमादर्शे पुरुषः स एष वदैव शाकल्य तस्य का देवतेत्यसुरिति होवाच ॥

पदच्छेदः ।

रूपाणि, एव, यस्य, आयतनम्, चक्षुः, लोकः, मनः, ज्योतिः, यः, वै, तम्, पुरुषम्, विद्यात्, सर्वस्य, आत्मनः, परायणम्, सः, वै, वेदिता, स्यात्, याज्ञवल्क्य, वेद, वै, अहम्, तम्, पुरुषम्, सर्वस्य, आत्मनः, परायणम्, यम्, आत्थ, यः, एव, अयम्, आदर्शे, पुरुषः, सः, एषः, वद, एव, शाकल्य, तस्य, का, देवता, इति, असुः, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थाः
यस्य	जिस पुरुष का
रूपाणि	रूप
एव	ही
आयतनम्	शरीर है
चक्षुः	नेत्रगोलक
लोकः	रहने की जगह है
मनः	मन
ज्योतिः	प्रकाश है
यः	जो
सर्वस्य	सब के
आत्मनः	आत्मा का
परायणम्	परम आश्रय है
यः	जो
तम्	उस
पुरुषम्	पुरुष को
विद्यात्	जानता है

अन्वयः	पदार्थाः
याज्ञवल्क्य	हे याज्ञवल्क्य !
सः वै	वह ही
वेदिता	सबका ज्ञाता
स्यात्	होता है
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
+ आह	कहा
यः	जो
सर्वस्य	सब के
आत्मनः	आत्मा का
परायणम्	परम आश्रय है
+ च	और
यम्	जिसको
त्वम्	तुम
इति	ऐसा
आत्थ	कहते हो
तम्	उस

पुरुषम्=पुरुष को
अहम्=मैं
वेद=जानता हूं
अयम्=वही
पुरुषः=पुरुष
आदर्शे=दर्पण विषे है
सः=वही
एषः=यह तुम्हारे विषे है
+शाकल्य=हे शाकल्य !
एव=अवश्य
वद=तुम पूछो
इति=इस पर
+ शाकल्यः=शाकल्य ने
+ पप्रच्छ=पूछा
तस्य=उस पुरुष का
देवता=देवता यानी कारण
का=कौन है ?
इति=यह सुन कर
उवाच ह=याज्ञवल्क्य ने स्पष्ट उत्तर दिया कि
असुः=प्राण है

भावार्थ ।

जिस पुरुष का रूपही शरीर है, नेत्रगोलक रहने की जगह है, मन प्रकाश है, जो सबके आत्मा का परम आश्रय है, ऐसे पुरुष को जो जानता है, वह सबका ज्ञाता होता है, याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि हे शाकल्य ! जो सबके आत्मा का परम आश्रय है, और जिसको तुम ऐसा कहते हो उस पुरुष को मैं भली प्रकार जानता हूं, वही पुरुष दर्पण विषे है, वही पुरुष तुम्हारे विषे है, हे शाकल्य ! जो कुछ पूछना हो पूछते चलो, मैं उत्तर दूंगा ऐसा सुन कर शाकल्य पूछते हैं कि उसका देवता कौन है ? यह सुन कर याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि उसका देवता प्राण है ॥ १५ ॥

मन्त्रः १६

आप एव यस्यायतनꣳ हृदयं लोको मनो ज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्वस्यात्मनः परायणꣳ स वै वेदिता स्यात्। याज्ञवल्क्य वेद वा अहं तं पुरुषꣳ सर्वस्यात्मनः परायणं यमात्थ य एवायमप्सु पुरुष स एष वदैव शाकल्य तस्य का देवतेति वरुण इति होवाच ॥

पदच्छेदः ।

आपः, एव, यस्य, आयतनम्, हृदयम्, लोकः, मनः, ज्योतिः, यः,

वै, तम्, पुरुषम्, विद्यात्, सर्वस्य, आत्मनः, परायणम्, सः, वै, वेदिता, स्यात्, याज्ञवल्क्य, वेद, वै, अहम्, तम्, पुरुषम्, सर्वस्य, आत्मनः, परायणम्, यम्, आत्थ, यः, एव, अयम्, अप्सु, पुरुषः, सः, एषः, वद, एव, शाकल्य, तस्य, का, देवता, इति, वरुणः, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थाः
यस्य	जिस पुरुष का
आपः	जल
एव	ही
आयतनम्	रहने की जगह है
हृदयम्	हृदय
लोकः	अह है
मनः	मन
ज्योतिः	प्रकाश है
यः	जो
सर्वस्य	सबके
आत्मनः	आत्मा का
परायणम्	परम आश्रय है
तम्	उस
पुरुषम्	पुरुष को
यः	जो
विद्यात्	जानता है
सः	वह
याज्ञवल्क्य	हे याज्ञवल्क्य !
वेदिता	सबका ज्ञाता
स्यात्	होता है
+ इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	सुन कर
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
+ आह	कहा
यः	जो
सर्वस्य	सबके
आत्मनः	आत्मा का
परायणम्	परम आश्रय है
+ च	और
यम्	जिसको
त्वम्	तुम
इति	ऐसा
आत्थ	कहते हो
तम्	उस
पुरुषम्	पुरुष को
अहम्	मैं
वै	अवश्य
वेद	जानता हूं
अयम्	वही
पुरुषः	पुरुष
अप्सु	जलविषे है
सः	वही
एषः	तुम्हारे विषे है
शाकल्य	हे शाकल्य !
एव	अवश्य
वद	पूछो
इति	इस पर
+ शाकल्यः	शाकल्यने

+ आह=पूछा कि	इति=ऐसा सुन कर
तस्य=उस पुरुष का	उवाच ह=याज्ञवल्क्य ने स्पष्ट उत्तर दिया कि
देवता=देवता यानी कारण	वरुणः=वरुण है
का=कौन है ?	

भावार्थ ।

जिस पुरुष के रहने की जगह जल है, हृदय ग्रह है, मन प्रकाश है, जो सबके आत्मा का परम आश्रय है, उस पुरुष को हे याज्ञवल्क्य ! जो जानता है वह सबका ज्ञाता होता है, यदि आप उस पुरुष को जानते हैं तो बताइये, ऐसा सुन कर याज्ञवल्क्य कहते हैं कि हे शाकल्य ! जो सबके आत्मा का परम आश्रय है, और जिसको तुम ऐसा कहते हो, उसको मैं अवश्य जानता हूँ, वही पुरुष जलविषे है और वही पुरुष तुम्हारे विषे है, हे शाकल्य ! और क्या पूछते हो, पूछो ? मैं उत्तर देने को तय्यार हूं, इस पर शाकल्य पूछते हैं कि उसका देवता कौन है ? याज्ञवल्क्य उत्तर देते हैं उसका देवता वरुण है ॥ १६ ॥

मन्त्रः १७

रेत एव यस्यायतनꣳ हृदयं लोको मनो ज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात्सर्वस्यात्मनः परायणꣳ स वै वेदिता स्यात् । याज्ञवल्क्य वेद वा अहं तं पुरुषꣳ सर्वस्यात्मनः परायणं यमात्थ य एवायं पुत्रमयः पुरुषः स एष वदैव शाकल्य तस्य का देवतेति प्रजापतिरिति होवाच ॥

पदच्छेदः ।

रेतः, एव, यस्य, आयतनम्, हृदयम्, लोकः, मनः, ज्योतिः, यः, वै, तम्, पुरुषम्, विद्यात्, सर्वस्य, आत्मनः, परायणम्, सः, वै, वेदिता, स्यात्, याज्ञवल्क्य, वेद, वै, अहम्, तम्, पुरुषम्, सर्वस्य, आत्मनः, परायणम्, यम्, आत्थ, यः, एव, अयम्, पुत्रमयः, पुरुषः, सः, एषः, वद, एव, शाकल्य, तस्य, का, देवता, इति, प्रजापतिः, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थाः
यस्य	जिस पुरुष का
रेतः	वीर्य
एव	ही
आयतनम्	रहने की जगह है
मनः	मन
ज्योतिः	प्रकाश है
यः	जो
सर्वस्य	सबके
आत्मनः	आत्मा का
परायणम्	परम आश्रय है
तम्	उस
पुरुषम्	पुरुष को
यः	जो
विद्यात्	जानता है
सः	वह
याज्ञवल्क्य वै	हे याज्ञवल्क्य ! निश्चय करके
वेदिता	सबका ज्ञाता
स्यात्	होता है
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
+ आह	उत्तर दिया कि
यम्	जिसको
सर्वस्य	सबके
आत्मनः	आत्माका
परायणम्	परम आश्रय
आत्थ	तुम कहते हो
तम्	उस
पुरुषम्	पुरुष को
अहम्	मैं
वै	भली प्रकार
वेद	जानता हूं
अयम्	वह
एव	ही
पुत्रमयः	पुत्रसम्बन्धी
पुरुषः	पुरुष है
सः	वही
एषः	तुम्हारे विषे है
शाकल्य	हे शाकल्य !
एव	अवश्य
वद	तुम पूछो
+ शाकल्यः	शाकल्य ने
+ आह	पूछा कि
तस्य	उसका
का	कौन
देवता	देवता यानी कारण है
इति	इस पर
याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
ह	स्पष्ट
उवाच	कहा कि
प्रजापतिः	प्रजापति है

भावार्थ ।

हे याज्ञवल्क्य ! जिस पुरुष के रहने की जगह वीर्य है, मन प्रकाश है, जो सबके आत्मा का परम आश्रय है, उस पुरुष को जो जानता है, वह हे याज्ञवल्क्य ! निश्चय करके सबका ज्ञाता होता है, क्या आप उस पुरुष को जानते हैं ? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया हे शाकल्य ! जिस

पुरुष को आप सबका परम आश्रय कहते हैं, उस पुरुष को म भली प्रकार जानता हूं, यह वही पुरुष जो तुम्हारे विषे स्थित है, और जो पुत्र विषे स्थित है, हे शाकल्य ! और जो पूछना हो पूछो, मैं उत्तर देने को तैयार हूं, इस पर शाकल्य पूछते हैं कि उसका देवता कौन है ? आप कृपा कर बताइये, याज्ञवल्क्य ने कहा कि उसका देवता प्रजापति है ॥ १७ ॥

मन्त्रः १८

शाकल्येति होवाच याज्ञवल्क्यस्त्वाᳬं स्विदिमे ब्राह्मणा अङ्गारावक्षयणमक्रता ३ इति ॥

पदच्छेदः ।

शाकल्य, इति, ह, उवाच, याज्ञवल्क्यः, त्वाम्, स्वित्, इमे, ब्राह्मणाः, अङ्गारावक्षयणम्, अक्रता, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने	इमे	इन
ह	स्पष्ट	ब्राह्मणाः	ब्राह्मणों ने
इति	ऐसा	त्वाम्	आपको
उवाच	कहा कि	अङ्गारावक्षयणम्	अँगीठी
शाकल्य	हे शाकल्य !	अक्रता इति	बना रक्खा है
स्वित्	क्यों		

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य ने स्पष्ट ऐसा कहा कि, हे शाकल्य ! क्यों इन ब्राह्मणों ने आपको अँगीठी बना रक्खा है, यानी मेरा उत्तररूपी जो वचन है वह अग्नि तुल्य है, और आप अँगीठी बने जा रहे हैं आप इसको समझलें ॥ १८ ॥

मन्त्रः १९

याज्ञवल्क्येति होवाच शाकल्यो यदिदं कुरुपञ्चालानां ब्राह्मणानत्यवादीः किं ब्रह्मविद्वानिति दिशो वेद सदेवाः सप्रतिष्ठा इति यद्दिशो वेत्थ सदेवाः सप्रतिष्ठाः ॥

पदच्छेदः ।

याज्ञवल्क्य, इति, ह, उवाच, शाकल्यः, यत्, इदम्, कुरुपञ्चालानाम्, ब्राह्मणान्, अत्यवादीः, किम्, ब्रह्म, विद्वान्, इति, दिशः, वेद सदेवाः, सप्रतिष्ठाः, इति, यत्, दिशः, वेत्थ, सदेवाः, सप्रतिष्ठाः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
याज्ञवल्क्य	हे याज्ञवल्क्य !
इति	ऐसा सम्बोधन करके
शाकल्यः	शाकल्य ने
ह	स्पष्ट
उवाच	कहा कि
यत्	जो
इदम्	यह
कुरुपञ्चालानाम्	कुरु और पञ्चाल के
ब्राह्मणान्	ब्राह्मणों को
अत्यवादीः	आपने कठोर वचन कहा है
किम्	क्या
ब्रह्म	ब्रह्म को
विद्वान् इति	आपने जानते हुये कहा है
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
+ आह	उत्तर दिया कि
यत्	जैसे
+ त्वम्	तुम
सदेवाः	देवता सहित
सप्रतिष्ठाः	स्थान सहित
दिशः	दिशाओं को
वेत्थ	जानते हो
ताः	उन्हीं
दिशः	दिशाओं को
सदेवाः	देवता सहित
सप्रतिष्ठाः	स्थान सहित
+ अहम्	मैं
वेद इति	जानता हूं

भावार्थ ।

शाकल्य कहते हैं, हे याज्ञवल्क्य ! आपने कुरुपञ्चाल के ब्रह्मवादियों को कहा है कि ये सब ब्राह्मण स्वयं डरकर तुमको अँगीठी बना रक्खा है. यदि आप ब्रह्मवेत्ता हैं तो यह आपका निरादर सहनीय है, यदि आप ब्रह्मवेत्ता नहीं हैं तो ऐसा निरादर असहनीय है, आपसे पूछता हूं क्या आप ब्रह्मको जानते हैं ? याज्ञवल्क्य उत्तर देते हैं, हे शाकल्य ! मैं नहीं कहसक्ता हूं कि मैं ब्रह्मको जानता हूं, और न यह कहसक्ता हूं कि ब्रह्मको नहीं जानता हूं क्योंकि जानना

और न जानना बुद्धि के धर्म हैं, मुझ आत्मा के नहीं हैं, मैं ब्रह्मनिष्ठ पुरुषों को बारंबार प्रणाम करता हूं, मैं पूर्वदिशाओं को और उनके देवता प्रतिष्ठा को जानता हूं जिनको आप भी जानते हैं, यदि उनके बारे में कुछ पूछना हो तो आप पूछें, शाकल्य क्रोध में आकर पूछते हैं. हे याज्ञवल्क्य ! यदि आप देवता सहित प्रतिष्ठा सहित दिशाओं को जानते हैं तो बताइये प्राची दिशा में कौन देवता है ॥ १९ ॥

मन्त्रः २०

किंदेवतोऽस्यां प्राच्यां दिश्यसीत्यादित्यदेवत इति स आदित्यः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति चक्षुषीति कस्मिन्नु चक्षुःप्रतिष्ठितमिति रूपेष्विति चक्षुषा हि रूपाणि पश्यति कस्मिन्नु रूपाणि प्रतिष्ठितानीति हृदय इति होवाच हृदयेन हि रूपाणि जानाति हृदये ह्येव रूपाणि प्रतिष्ठितानि भवन्तीत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य ॥

पदच्छेदः ।

किंदेवतः, अस्याम्, प्राच्याम्, दिशि, असि, इति, आदित्यदेवतः, इति, सः, आदित्यः, कस्मिन्, प्रतिष्ठितः, इति, चक्षुषि, इति, कस्मिन्, नु, चक्षुः, प्रतिष्ठितम्, इति, रूपेषु, इति, चक्षुषा, हि, रूपाणि, पश्यति, कस्मिन्, नु, रूपाणि, प्रतिष्ठितानि, इति, हृदये, इति, ह, उवाच, हृदयेन, हि, रूपाणि, जानाति, हृदये, हि, एव, रूपाणि, प्रतिष्ठितानि, भवन्ति, इति, एवम्, एव, एतत्, याज्ञवल्क्य ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ शाकल्यः	शाकल्य ने
+ आह	कहा
+ याज्ञवल्क्य	हे याज्ञवल्क्य !
अस्याम्	इस
प्राच्याम्	पूर्व
दिशि	दिशा में
किंदेवतः	कौन देवतावाले
असि	तुमहो यानी किस देवताको प्रधान मानते हो ?
इति	इस पर
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
+ आह	कहा कि

आदित्य-देवतः = { मैं पूर्व का सूर्यदेवता वाला हूं यानी पूर्व में सूर्यदेवता को प्रधान मानता हूं
+ शाकल्यः=शाकल्य ने
+ आह=पूछा कि
सः=वह
आदित्यः=सूर्य
कस्मिन्=किसमें
प्रतिष्ठितः=स्थित है
इति=इस पर
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
+ आह=कहा कि
चक्षुपि=नेत्र में स्थित है
इति=इस पर
+ शाकल्यः=शाकल्य ने
+ आह=पूछा कि
चक्षुः=नेत्र
नु कस्मिन्=किस में
प्रतिष्ठितम्=स्थित है ?
इति=इस पर
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
+ आह=कहा कि
रूपेषु=रूपमें है
हि=क्योंकि
+ जनः=पुरुष
चक्षुषा=नेत्र करके
इति=ही
रूपाणि=रूपों को
पश्यति=देखता है
+ पुनः=फिर
+ शाकल्यः=शाकल्य ने
+ आह=कहा
रूपाणि=रूप
कस्मिन्=किसमें
प्रतिष्ठितानि=स्थित है
नु=यह मेरा प्रश्न है
इति=इस पर
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
ह=स्पष्ट
उवाच=कहा कि
हृदये=हृदय में
हि=क्योंकि
हृदयेन=हृदय करके ही
रूपाणि=रूप को
+ जनः=पुरुष
जानाति=जानता है
हि=कारण यह है कि
हृदये=हृदय में
एव=ही
रूपाणि=रूप
प्रतिष्ठितानि=स्थित
भवन्ति=रहता है
+ शाकल्यः=शाकल्य ने
+ आह=कहा कि
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
एतत्=यह
एवम् एव=ऐसा ही
अस्ति इति=है जैसा तुम कहते हो

भावार्थ ।

शाकल्य पूछते हैं हे याज्ञवल्क्य ! आप पूर्व दिशा में किस देवता

को प्रधान मानते हैं ? इस पर याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया कि मैं सूर्य देवता को पूर्वदिशा का अधिपति मानता हूं, फिर शाकल्यने पूछा कि वह सूर्य किसमें स्थित है ? यह सुनकर याज्ञवल्क्य ने कहा वह सूर्य नेत्र में स्थित है, इस पर शाकल्य ने पूछा नेत्र किसमें स्थित है, याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया रूप में स्थित है, क्योंकि पुरुष रूप को नेत्र करके ही देखता है, फिर शाकल्य ने पूछा रूप किसमें स्थित है ? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि रूप हृदय में स्थित है, क्योंकि पुरुष रूप को हृदय करके ही जानता है, कारण इसका यह है कि रूप हृदय में ही रहता है, इस पर शाकल्य ने कहा कि हे याज्ञवल्क्य ! तुम सत्य कहते हो ॥ २० ॥

मन्त्रः २१

किंदेवतोऽस्यां दक्षिणायां दिश्यसीति यमदेवत इति स यमः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति यज्ञ इति कस्मिन्नु यज्ञः प्रतिष्ठित इति दक्षिणायामिति कस्मिन्नु दक्षिणा प्रतिष्ठितेति श्रद्धायामिति यदा ह्येव श्रद्धत्तेऽथ दक्षिणां ददाति श्रद्धायाᳬ ह्येव दक्षिणा प्रतिष्ठितेति कस्मिन्नु श्रद्धा प्रतिष्ठितेति हृदय इति होवाच हृदयेन हि श्रद्धां जानाति हृदये ह्येव श्रद्धा प्रतिष्ठिता भवतीत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य ॥

पदच्छेदः ।

किंदेवतः, अस्याम्, दक्षिणायाम्, दिशि, असि, इति, यमदेवतः, इति, सः, यमः, कस्मिन्, प्रतिष्ठितः, इति, यज्ञः, इति, कस्मिन्, नु, यज्ञः, प्रतिष्ठितः, इति, दक्षिणायाम्, इति, कस्मिन्, नु, दक्षिणा, प्रतिष्ठिता, इति, श्रद्धायाम्, इति, यदा, हि, एव, श्रद्धत्ते, अथ, दक्षिणाम्, ददाति, श्रद्धायाम्, हि, एव, दक्षिणा, प्रतिष्ठिता, इति, कस्मिन्, नु, श्रद्धा, प्रतिष्ठिता, इति, हृदये, इति, ह, उवाच, हृदयेन, हि, श्रद्धाम्, जानाति, हृदये, हि, एव, श्रद्धा, प्रतिष्ठिता, भवति, इति, एवम्, एव, एतत्, याज्ञवल्क्य ॥

अन्वयः	पदार्थाः
अस्याम्	इस
दक्षिणायाम्	दक्षिण
दिशि	दिशा में
+ त्वम्	तुम
किंदेवतः	किस देवतावाले यानी किस देवता को तुम दक्षिण दिशा का अधिपति मानते
असि	हो
इति	इस पर
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
+ आह	कहा कि
यमदेवतः	यमदेवतावाला मैं हूं यानी यम को अधिपति मानताहूं
+ शाकल्यः	शाकल्य ने
+ आह	फिर पूछा कि
सः	वह
यमः	यम देवता
कस्मिन्	किसमें
प्रतिष्ठितः	स्थित है
इति	इस पर
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
+ आह	कहा कि
यज्ञे	यम देवता यज्ञ में स्थित है यानी यम यज्ञ में पूज्य है
इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	सुन कर
+ शाकल्यः	शाकल्य ने
+ आह	पूछा कि
यज्ञः	यज्ञ
कस्मिन्	किसमें
प्रतिष्ठितः	स्थित है
नु	यह मेरा प्रश्न है
इति	इस पर
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
+ आह	कहा कि
दक्षिणायाम्	दक्षिणा में स्थित है
इति	इस पर
+ शाकल्यः	शाकल्य ने
+ आह	पूछा कि
दक्षिणा	दक्षिणा
कस्मिन्	किसमें
प्रतिष्ठिता	स्थित है
नु	यह मेरा प्रश्न है
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
+ आह	कहा कि
श्रद्धायाम्	श्रद्धा में स्थित है
हि	क्योंकि
यदा	जब
पुरुषः	पुरुष
श्रद्धत्ते	श्रद्धा करता है
अथ एव	तबही
दक्षिणाम्	दक्षिणा को
ददाति	देता है
हि	कारण यह है कि
श्रद्धायाम्	श्रद्धा में
दक्षिणा	दक्षिणा
एव	निश्चय करके
प्रतिष्ठिता	स्थित है
इति	इस पर

+ शाकल्यः=शाकल्य ने
+ आह=पूछा कि
श्रद्धा=श्रद्धा
कस्मिन्=किसमें
प्रतिष्ठिता=स्थित है
नु=यह मेरा प्रश्न है
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
उवाच ह=कहा कि
हृदये=श्रद्धा हृदय में स्थित है
हि=क्योंकि
+ जनः=पुरुष
हृदयेन=हृदय करके
एव=ही
श्रद्धाम्=श्रद्धा को
जानाति=जानता है
हि=कारण यह है कि
हृदये=हृदय में
श्रद्धा=श्रद्धा
प्रतिष्ठिता=स्थित
भवति=रहती है
इति=इस पर
शाकल्यः=शाकल्य ने
आह=कहा
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
एतत्=यह
एवम् एव=ऐसाही
अस्ति=है
इति=जैसा तुम कहते हो

भावार्थ ।

हे याज्ञवल्क्य ! इस दक्षिण दिशा में किस देवताको प्रधान मानते हो ? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि मैं यमदेवता को प्रधान मानता हूं, शाकल्य ने फिर पूछा कि वह यमदेवता किसमें स्थित है याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया वह यमदेवता यज्ञ में स्थित है यानी यज्ञ में उसका पूजन होता है फिर शाकल्य ने पूछा कि यज्ञ किसमें स्थित है याज्ञ-वल्क्य ने उत्तर दिया कि दक्षिणा में स्थित है क्योंकि बिना दक्षिणा के यज्ञ की पूर्ति नहीं होती है फिर शाकल्य ने पूछा कि दक्षिणा किसमें स्थित है, याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि श्रद्धा में स्थित है, क्योंकि जब पुरुष श्रद्धा करता है तभी दक्षिणा देता है, इसलिये दक्षिणा श्रद्धा में स्थित है फिर शाकल्य ने पूछा कि श्रद्धा किसमें स्थित है, याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि श्रद्धा हृदय में स्थित है, क्योंकि पुरुष हृदय करके ही श्रद्धा को जानता है, इसलिये हृदय में श्रद्धा स्थित है, इस पर शाकल्य ने कहा जैसा तुम कहते हो वैसाही है ॥ २१ ॥

मन्त्रः २२

किंदेवतोऽस्यां प्रतीच्यां दिश्यसीति वरुणदेवत इति स वरुणः कस्मिन्प्रतिष्ठित इत्यप्स्विति कस्मिन्न्वापः प्रतिष्ठिता इति रेतसीति कस्मिन्नु रेतः प्रतिष्ठितमिति हृदय इति तस्मादपि प्रतिरूपं जातमाहुर्हृदयादिव सृप्तो हृदयादिव निर्मित इति हृदये ह्येव रेतः प्रतिष्ठितं भवतीत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य ॥

पदच्छेदः ।

किंदेवतः, अस्याम्, प्रतीच्याम्, दिशि, असि, इति, वरुणदेवतः, इति, सः, वरुणः, कस्मिन्, प्रतिष्ठितः, इति, अप्सु, इति, कस्मिन्, नु, आपः, प्रतिष्ठिताः, इति, रेतसि, इति, कस्मिन्, नु, रेतः, प्रतिष्ठितम्, इति, हृदये, इति, तस्मात्, अपि, प्रतिरूपम्, जातम्, आहुः, हृदयात्, इव, सृप्तः, हृदयात्, इव, निर्मितः, इति, हृदये, हि, एव, रेतः, प्रतिष्ठितम्, भवति, इति, एवम्, एव, एतत्, याज्ञवल्क्य ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ शाकल्यः	शाकल्य ने
+ पप्रच्छ	पूछा कि
अस्याम्	इस
प्रतीच्याम्	पश्चिम
दिशि	दिशा में
त्वम्	तुम
किंदेवतः असि	किस देवतावाले हो यानी किस देवता को तुम पश्चिम दिशा का अधिपति मानते हो
इति	इस पर
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
+ आह	कहा कि

अन्वयः	पदार्थाः
वरुणदेवतः	वरुण देवतावाला हूं यानी वरुण को मैं अधिपति मानता हूं
इति	इस पर
+ शाकल्यः	शाकल्य ने
+ पप्रच्छ	पूछा कि
सः	वह
वरुणः	वरुण
कस्मिन्	किसमें
प्रतिष्ठितः	स्थित है
नु	यह मेरा प्रश्न है
इति	इस पर
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने

+ आह=कहा कि
अप्सु=जल में स्थित है
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुन कर
+ शाकल्यः=शाकल्य ने
+ आह=पूछा कि
आपः=जल
कस्मिन्=किस में
प्रतिष्ठिताः=स्थित है
नु=यह मेरा प्रश्न है
इति=इस पर
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
+ आह=उत्तर दिया कि
रेतसि=वीर्य में स्थित है
इति=इसके बाद
+ शाकल्यः=शाकल्य ने
+ आह=पूछा कि
रेतः=वीर्य
कस्मिन्=किस में
प्रतिष्ठितम्=स्थित है
नु=यह मेरा प्रश्न है
इति=इस पर
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
+ आह=कहा कि
हृदये इति=हृदय में स्थित है
अपि=और
तस्मात्=उसी हृदय से
जातम्=पैदाहुये पुत्र को
अनुरूपम्=पिता के सदृश
आहुः=कहते हैं
हि=क्योंकि
हृदयात् इव=हृदय से ही
सृप्तः=पुत्र निकला है
हृदयात् इव=हृदय से ही
निर्मितः=निर्माण हुआ है
+ च=और
हृदये=हृदय में
एव=ही
रेतः=वीर्य
प्रतिष्ठितम्=स्थित
भवति=रहता है
इति=ऐसा
श्रुत्वा=सुन कर
शाकल्यः=शाकल्य ने
आह=कहा
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
एतत्=यह
एवम् एव=ऐसाही है जैसा तुम कहते हो

भावार्थ ।

शाकल्य ने पूछा कि तुम पश्चिम दिशा में किस देवता को प्रधान मानते हो ? याज्ञवल्क्य ने कहा वरुणदेवता को प्रधान मानताहूं, शाकल्य ने पूछा वह वरुणदेवता किसमें स्थित है, इस पर याज्ञवल्क्य ने कहा वह जलविषे स्थित है, ऐसा सुनकर शाकल्य ने पूछा जल किसमें स्थित

है याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया वीर्य में स्थित है, फिर शाकल्य ने पूछा वीर्य किसमें स्थित है, याज्ञवल्क्य ने कहा वीर्य हृदय में स्थित है, और उसी हृदय से पैदाहुये पुत्र को पिता के सदृश कहते हैं, क्योंकि हृदय से ही पुत्र उत्पन्न हुआ है, हृदय से ही पुत्र निर्माण हुआ है, और हृदय में ही वीर्य स्थित रहता है, यह सुन कर शाकल्य ने कहा हे याज्ञवल्क्य ! जैसा तुम कहते हो वैसाही है ॥ २२ ॥

मन्त्रः २३

किंदेवतोऽस्यामुदीच्यां दिश्यसीति सोमदेवत इति स सोमः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति दीक्षायामिति कस्मिन्नु दीक्षा प्रतिष्ठितेति सत्य इति तस्मादपि दीक्षितमाहुः सत्यं वदेति सत्ये ह्येव दीक्षा प्रतिष्ठितेति कस्मिन्नु सत्यं प्रतिष्ठितमिति हृदय इति होवाच हृदयेन हि सत्यं जानाति हृदये ह्येव सत्यं प्रतिष्ठितं भवतीत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य ॥

पदच्छेदः ।

किंदेवतः, अस्याम्, उदीच्याम्, दिशि, असि, इति, सोमदेवतः, इति, सः, सोमः, कस्मिन्, प्रतिष्ठितः, इति, दीक्षायाम्, इति, कस्मिन्, नु, दीक्षा, प्रतिष्ठिता, इति, सत्ये, इति, तस्मात्, अपि, दीक्षितम्, आहुः, सत्यम्, वद, इति, सत्ये, हि, एव, दीक्षा, प्रतिष्ठिता, इति, कस्मिन्, नु, सत्यम्, प्रतिष्ठितम्, इति, हृदये, इति, ह, उवाच, हृदयेन, हि, सत्यम्, जानाति, हृदये, हि, एव, सत्यम्, प्रतिष्ठितम्, भवति, इति, एवम्, एव, एतत्, याज्ञवल्क्य ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
अस्याम्=इस		किं देवतः असि	कौन देवतावाले हो यानी किस देवता को तुम उत्तर दिशा का अधिपति मानते हो ?
उदीच्याम्=उत्तर			
दिशि=दिशा में			
त्वम्=तुम			

इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
+ आह=उत्तर दिया कि
सोमदेवतः=सोम देवतावाला हूं यानी चन्द्रमा को प्रधान मानता हूं
+ पुनः प्रश्नः=फिर शाकल्य का प्रश्न हुआ कि
सः=वह
सोमः=चन्द्रसम्बन्धी सोमलता
कस्मिन्=किस में
प्रतिष्ठितः=स्थित है ?
इति=इस पर
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
+ आह=उत्तर दिया कि
दीक्षायाम्=दीक्षा में स्थित है
इति=इस पर
+ शाकल्यः=शाकल्य ने
+ आह=पूछा
दीक्षा=दीक्षा
कस्मिन्=किसमें
प्रतिष्ठिता=स्थित है ?
नु=यह मेरा प्रश्न है
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुन कर
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
+ आह=कहा कि
सत्ये इति=सत्य में स्थित है
अपि=और
तस्मात्=इसी कारण
दीक्षितम्=दीक्षित यानी दीक्षा लेनेवाले को
सत्यम्=सत्य
आहुः=कहते हैं
त्वम्=तुम
सत्यम्=सत्य
वद=कहो
हि=क्योंकि
दीक्षा=दीक्षा
सत्ये=सत्य में
एव=ही
प्रतिष्ठिता=प्रतिष्ठित है
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुन कर
+ शाकल्यः=शाकल्य ने
+ आह=पूछा कि
सत्यम्=सत्य
कस्मिन्=किस में
प्रतिष्ठितम्=स्थित है
नु=यह मेरा प्रश्न है
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुन कर
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
ह उवाच=स्पष्ट उत्तर दिया
हृदये=हृदय में स्थित है
हि=क्योंकि
हृदयेन=हृदय करके
सत्यम्=सत्य को
+ पुरुषः=पुरुष
जानाति=जानता है
हि एव=इसी कारण
हृदये=हृदय में

सत्यम्=सत्य
प्रतिष्ठितम्=स्थित
+ भवति=रहता है
+ शाकल्य आह=शाकल्य ने कहा
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
एतत्=यह बात
एवम् एव=ऐसीही है जैसा तुम कहते हो

भावार्थ ।

शाकल्य पूछते हैं कि, हे याज्ञवल्क्य ! उत्तर दिशा में आप किस देवता को प्रधान मानते हैं ? यह सुन कर याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि चन्द्रमा देवता को प्रधान मानता हूं, फिर शाकल्य ने प्रश्न किया वह चन्द्रमासम्बन्धी सोमलता किसमें स्थित है ? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि दीक्षा में स्थित है, शाकल्य ने पूछा दीक्षा किसमें स्थित है याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया सत्य में, और इसी कारण दीक्षा लेनेवाले को सत्य भी कहते हैं, और यज्ञकर्म के आरम्भ में दीक्षा लेनेवाले को कहते हैं कि तुम सत्य बोलो क्योंकि, दीक्षा सत्य में ही स्थित है, फिर शाकल्य ने पूछा सत्य किसमें स्थित है ? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया सत्य हृदय में स्थित है, क्योंकि हृदय करकेही सत्य को पुरुष जानता है, और इसी कारण हृदय सत्य में स्थित है, इस पर शाकल्य ने कहा जो तुम कहते हो ठीक है ॥ २३ ॥

मन्त्रः २४

किंदेवतोऽस्यां ध्रुवायां दिश्यसीत्यग्निदेवत इति सोऽग्निः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति वाचीति कस्मिन्वाक्प्रतिष्ठितेति हृदय इति कस्मिन्नु हृदयं प्रतिष्ठितमिति ॥

पदच्छेदः ।

किंदेवतः, अस्याम्, ध्रुवायाम्, दिशि, असि, इति, अग्निदेवतः, इति, सः, अग्निः, कस्मिन्, प्रतिष्ठितः, इति, वाचि, इति, कस्मिन्, वाक्, प्रतिष्ठिता, इति, हृदये, इति, कस्मिन्, नु, हृदयम्, प्रतिष्ठितम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
अस्याम्=इस		+ श्रुत्वा=सुन कर	
ध्रुवायाम्=ध्रुव		+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने	
दिशि=दिशा में		+ आह=कहा कि	
+ त्वम्=तुम		वाचि इति=वाणी में अग्नि स्थितहै	
किंदेवतः=कौन देवतावाले हो यानी ध्रुव दिशाधिपति किसको मानते		+ शाकल्यः=शाकल्य ने	
असि=हो		+ पप्रच्छ=पूछा कि	
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने		वाक्=वाणी	
आह=कहा कि		कस्मिन्=किस में	
अग्निदेवतः=अग्नि देवतावाला हूं यानी ध्रुवदिशा के स्वामी अग्नि को मानता हूं		प्रतिष्ठिता=स्थित है	
इति=इस पर		+ इति श्रुत्वा=ऐसा सुन कर	
+ शाकल्यः=शाकल्य ने		याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने	
+ आह=पूछा		+ आह=उत्तर दिया	
सः=वह		हृदये=वाणी हृदय में स्थित है	
अग्निः=अग्नि		इति=इस पर	
कस्मिन्=किस में		पुनः=फिर	
प्रतिष्ठितः=स्थित है		शाकल्यः=शाकल्य ने	
इति=यह		उवाच=पूछा कि	
		हृदयम्=हृदय	
		कस्मिन्=किसमें	
		प्रतिष्ठितम्=स्थित है	

भावार्थ ।

शाकल्य ने पूछा ध्रुव दिशा में आप कौन देवता को प्रधान मानते हैं ? याज्ञवल्क्य ने कहा अग्निदेवता को, शाकल्य ने पूछा वह अग्नि किस में स्थित है ? यह सुन कर याज्ञवल्क्य ने कहा वाणी में स्थित है, फिर शाकल्य ने पूछा वाणी किस में स्थित है, याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया वाणी हृदय में स्थित है, इस पर शाकल्य ने पूछा हृदय किस में स्थित है ॥ २४ ॥

मन्त्रः २५

अहल्लिकेति होवाच याज्ञवल्क्यो यत्रैतदन्यत्रास्मन्मन्यासै यद्ध्येतदन्यत्रास्मत्स्याच्छ्वानो वैनदद्युर्वयांसि वैनद्विमथ्नीरन्निति ॥

पदच्छेदः ।

अहल्लिक, इति, ह, उवाच, याज्ञवल्क्यः, यत्र, एतत्, अन्यत्र, अस्मत्, मन्यासै, यत्, हि, एतत्, अन्यत्र, अस्मत्, स्यात्, श्वानः, वा, एनत्, अद्युः, वयांसि, वा, एनत्, विमथ्नीरन्, इति ॥

अन्वयः पदार्थाः	अन्वयः पदार्थाः
इति=ऐसा सुन कर	एतत्=यह आत्मा
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने	अस्मत्=इस शरीर से
ह=स्पष्ट	अन्यत्र=पृथक्
उवाच=कहा कि	स्यात्=हो तो
अहल्लिक=अरे निशाचर,	एनत्=इस शरीर को
+ शाकल्य=शाकल्य !	श्वानः=कुत्ते
यत्र=जब	अद्युः=खाडालें
इति=ऐसा	वा=और
मन्यासै मन्यसे=मानोगे कि	वयांसि=पक्षी
एतत्=यह आत्मा (हृदय)	एनत्=इस शरीर को
अस्मत्=इस हमारे देह से	वा=अवश्य
अन्यत्र=पृथक् है तो	अश्नीरन् इति=खाडालें
यत्=जो	

भावार्थ ।

ऐसा सुन कर याज्ञवल्क्य ने कहा अरे दुष्ट निशाचर, शाकल्य ! जब तुम ऐसा मानोगे कि यह हृदय इस हमारे शरीर से पृथक् है तो जो यह हृदय इस शरीर से पृथक् हो तो इस शरीर को कुत्ते और पक्षी खाजायँ ॥ २५ ॥

मन्त्रः २६

कस्मिन्नु त्वं चात्मा च प्रतिष्ठितौ स्थ इति प्राण इति कस्मिन्नु

प्राणः प्रतिष्ठित इत्यपान इति कस्मिन्न्वपानः प्रतिष्ठित इति व्यान इति कस्मिन्नु व्यानः प्रतिष्ठित इत्युदान इति कस्मिन्नूदानः प्रतिष्ठित इति समान इति स एष नेति नेत्यात्माऽगृह्यो न हि गृह्यतेऽशीर्यो न हि शीर्यतेऽसङ्गो न हि सज्यतेऽसितो न व्यथते न रिष्यति । एतान्यष्टावायतनान्यष्टौ लोका अष्टौ देवा अष्टौ पुरुषाः स यस्तान्पुरुषान्निरुह्य प्रत्युह्यात्यक्रामत्तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि तं चेन्मे न विवक्ष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति । तꣳह न मेने शाकल्यस्तस्य ह मूर्धा विपपातापि हास्य परिमोषिणोऽस्थीन्यपजह्रुरन्यन्मन्यमानाः ॥

पदच्छेदः ।

कस्मिन्, नु, त्वम्, च, आत्मा, च, प्रतिष्ठितौ, स्थः, इति, प्राणः, इति, कस्मिन्, नु, प्राणः, प्रतिष्ठितः, इति, अपाने, इति, कस्मिन्, नु, अपानः, प्रतिष्ठितः, इति, व्याने, इति, कस्मिन्, नु, व्यानः, प्रतिष्ठितः, इति, उदाने, इति, कस्मिन्, नु, उदानः, प्रतिष्ठितः, इति, समाने, इति, सः, एषः, न, इति, न, इति, आत्मा, अगृह्यः, न, हि, गृह्यते, अशीर्यः, न, हि, शीर्यते, असङ्गः, न, हि, सज्यते, असितः, न, व्यथते, न, रिष्यति, एतानि, अष्टौ, आयतनानि, अष्टौ, लोकाः, अष्टौ, देवाः, अष्टौ, पुरुषाः, सः, यः, तान्, पुरुषान्, निरुह्य, प्रत्युह्य, अत्यक्रामत्, तम्, तु, औपनिषदम्, पुरुषम्, पृच्छामि, तम्, चेत्, मे, न, विवक्ष्यसि, मूर्धा, ते, विपतिष्यति, इति, तम्, ह, न, मेने, शाकल्यः, तस्य, ह, मूर्धा, विपपात, अपि, ह, अस्य, परिमोषिणः, अस्थीनि, अपजह्रुः, अन्यत्, मन्यमानाः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ शाकल्यः	=शाकल्य ने
+ आह	=पूछा कि
त्वम्	=आप
च	=और
आत्मा च	=आपका आत्मा
कस्मिन्	=किस में

अन्वयः	पदार्थाः
प्रतिष्ठितौ	=स्थित
स्थः	=है
नु	=यह मेरा प्रश्न है
इति	=इस पर
+ याज्ञवल्क्यः	=याज्ञवल्क्य ने
+ आह	=उत्तर दिया

प्राणे=प्राण में है
+ पुनः=फिर
+ पप्रच्छ=शाकल्य ने पूछा कि
प्राणः=प्राण
कस्मिन्=किस में
प्रतिष्ठितः=स्थित है
इति=इस पर
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
+ आह=कहा कि
अपाने=अपान में है
इति=फिर
+ प्रश्नः=शाकल्य ने पूछा कि
अपानः=अपान
कस्मिन्=किस में
प्रतिष्ठितः=स्थित है
नु=यह मेरा प्रश्न है
इति=इस पर
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
उवाच=उत्तर दिया
व्याने=व्यान में
+ शाकल्यः=शाकल्य ने
+ उवाच=पूछा
व्यानः=व्यान
कस्मिन्=किस में
प्रतिष्ठितः=स्थित है
नु=यह मेरा प्रश्न है
इति=इस पर
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य
+ उत्तरम्=उत्तर
+ ददाति=देते हैं कि
उदाने=उदान में
इति=इस पर
उदानः=उदान
कस्मिन्=किस में
प्रतिष्ठितः=स्थित है
नु=यह मेरा प्रश्न है
इति=इस पर
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
उवाच=उत्तर दिया कि
समाने=समान में
यः=जो (वेद में)
न इति=नेति
न इति=नेति
इति=करके
+ निर्दिष्टः=कहा गया है
सः=वही
एषः=यह है
आत्मा=आत्मा
अगृह्यः=अग्राह्य है
हि=क्योंकि
सः=वह आत्मा
न=नहीं
गृह्यते=ग्रहण किया जा सक्ता है
+ सः=वह
अशीर्यः=क्षयरहित है
हि=क्योंकि
न शीर्यते=नहीं क्षीण किया जा सक्ता है
+ सः=वह
असङ्गः=सङ्गरहित है
हि=क्योंकि
सः=वह
न=नहीं
सज्यते=संग किया जासक्ता है

+ सः=वह
असितः=बन्धन रहित है
हि=क्योंकि
सः=वह
न=नहीं
व्यथते=पीड़ित हो सक्ता है
च=और
न=न
रिष्यति=नष्ट होसक्ता है
शाकल्य=हे शाकल्य !
अष्टौ=आठ
आयतनानि=स्थान पृथ्वी आदि हैं
अष्टौ=आठ
लोकाः=लोक अग्नि आदि हैं
अष्टौ=आठ
देवाः=देव अमृत आदि हैं
अष्टौ=आठ
पुरुषाः=पुरुष शरीर आदि हैं
सः=सो
यः=जो कोई
तान्=उन
पुरुषान्=पुरुषों को
निरुह्य=जानकर
+ च=और
प्रत्युह्य=अपने अन्तःकरण में रखकर
अत्यक्रामत्=अतिक्रमण करता है
तम्=उस
औपनिषदम् पुरुषम्=उपनिषत्सम्बन्धी तत्त्ववित्पुरुष को
जानासि=जानता है
पृच्छामि=मैं पूछता हूं
चेत्=अगर
तम्=उसको
मे=मुझसे
न=न
विवक्ष्यसि=कहेगा तू तो
ते=तेरा
मूर्धा=मस्तक
विपतिष्यति=सभा में गिरजायगा
शाकल्यः=शाकल्य
तम्=उस पुरुष को
न=नहीं
मेने=जानता भया
+ तस्मात्=इसलिये
तस्य=उसका
मूर्धा=मस्तक
ह=सबके सामने
विपपात=गिरपड़ा
अपि ह=और
अस्य=उसकी
अस्थीनि=हड्डियां यानी मृतक शरीर को
अन्यत्=और कुछ
मन्यमानाः=समझते हुये
परिमोषिणः=चोर
अपजह्रुः=लेकर भाग गये

भावार्थ ।

शाकल्यने फिर पूछा आप और आपका आत्मा यानी हृदय किस

में स्थित है ? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया प्राण में, फिर शाकल्य ने पूछा प्राण किस में स्थित है ? याज्ञवल्क्यने कहा अपान में, शाकल्य ने पूछा अपान किस में स्थित है ? याज्ञवल्क्यने कहा व्यान में, फिर शाकल्यने प्रश्न किया व्यान किसमें स्थित है, इस पर याज्ञवल्क्यने कहा उदान में, फिर शाकल्यने पूछा उदान किस में स्थित है ? याज्ञवल्क्यने कहा समान में, परन्तु हे शाकल्य ! आत्मा जिसमें सब स्थित हैं और जो वेद में "नेति नेति" करके कहा गया है वही यह आत्मा अग्राह्य है, क्योंकि वह ग्रहण नहीं किया जासक्ता है, वही क्षयरहित है क्योंकि वह क्षीण नहीं किया जासक्ता है, वह संगरहित है क्योंकि वह संग नहीं किया जासक्ता है, वह बन्धनरहित है क्योंकि वह पीड़ित नहीं होसक्ता है, और न नष्ट होसक्ता है, हे शाकल्य ! सुनो जो आठ स्थान पृथ्वी आदि हैं, आठ लोक अग्नि आदि हैं, आठ देव अमृत आदि हैं, आठ पुरुष शरीर आदि हैं जो कोई उन पुरुषों को जानकर और अन्तःकरण में रख कर उत्क्रमण करता है, यानी शरीर को त्यागता है तुम उस उपनिषद्तत्त्ववित्पुरुष को जानते हो, मैं तुमसे प्रश्न करता हूं अगर तुम उसको मुझ से नहीं कहोगे, तो तुम्हारा मस्तक सभा में गिरजायगा, शाकल्य उस पुरुषको नहीं जानता भया इसलिये उसका मस्तक सबके सामने गिरपड़ा, और चोरों ने उसके दाह के निमित्त उसको लेजाते हुये शरीर को देख कर और उसको और कुछ समझ कर उस शरीर को लेकर भाग गये ॥ २६ ॥

मन्त्रः २७

अथ होवाच ब्राह्मणा भगवन्तो यो वः कामयते स मा पृच्छतु सर्वे वा मा पृच्छत यो वः कामयते तं वः पृच्छामि सर्वान्वा वः पृच्छामीति ते ह ब्राह्मणा न दधृषुः ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, उवाच, ब्राह्मणाः, भगवन्तः, यः, वः, कामयते, सः, मा, पृच्छतु, सर्वे, वा, मा, पृच्छत, यः, वः, कामयते, तम्, वः, पृच्छामि, सर्वान्, वा, वः, पृच्छामि, इति, ते, ह, ब्राह्मणाः, न, दधृषुः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
अथ ह	तत्पश्चात्
उवाच	याज्ञवल्क्य बोले कि
भगवन्तः ब्राह्मणाः	हे पूज्य ब्राह्मणो !
वः	आपलोगों में
यः	जो कोई
कामयते	चाहता है
सः	वह
मा	मुझसे
पृच्छतु	प्रश्न करे
वा	या
सर्वे	सब कोई मिलकर
मा	मुझसे
पृच्छत	प्रश्न करें
+ अथवा	या
वः	आपलोगों में
यः	जो कोई
कामयते	चाहता हो
तम्	उससे
पृच्छामि	मैं प्रश्न करूं
वा	या
वः	आप
सर्वान्	सब जनों से
पृच्छामि	मैं प्रश्न करूं
इति	इस पर
ते	उन
ब्राह्मणाः	ब्राह्मणों ने
न	नहीं
दधृषुः	पूछने का साहस किया

भावार्थ ।

तत्पश्चात् याज्ञवल्क्य ने ब्राह्मणों को सम्बोधन करके कहा कि, हे पूज्य ब्राह्मणो ! आपलोगों में से जो कोई अकेला प्रश्न करना चाहता है, वह अकेला प्रश्न करे, या आप सबलोग मिलकर मुझ से प्रश्न करें या आपलोगों में से जो अकेला चाहता है उस अकेले से मैं प्रश्न करूं, या आप सब लोगों से मैं प्रश्न करूं, मैं हर तरह से प्रश्नोत्तर करने को तैयार हूं, इसमें उन ब्राह्मणों में से उत्तर देने का किसी को साहस नहीं हुआ ॥ २७ ॥

मन्त्रः २७–१

यथा वृक्षो वनस्पतिस्तथैव पुरुषोमृषा । तस्य लोमानि पर्णानि त्वगस्योत्पाटिका बहिः ॥

पदच्छेदः ।

यथा, वृक्षः, वनस्पतिः, तथा, एव, पुरुषः, अमृषा, तस्य, लोमानि, पर्णानि, त्वक्, अस्य, उत्पाटिका, बहिः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
+ पप्रच्छ	कहा
यथा	जैसे
वनस्पतिः	वनका पति
वृक्षः	वृक्ष है
तथैव	तैसे ही
पुरुषः	सब प्राणियों में पुरुष श्रेष्ठ है
अमृषा	इसमें सन्देह नहीं है
तस्य	उस पुरुष के
लोमानि	रोवें
पर्णानि	वृक्षके पत्तों के तुल्य हैं
च	और
अस्य	उस पुरुषका
इति	जैसे
बहिः	बाह्य
त्वक्	चर्म है
तथा एव	वैसेही
उत्पाटिका	वृक्ष का त्वचा है

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य ने कहा कि, हे ब्राह्मणो ! जैसे वन का पति वृक्ष है, वैसेही सब प्राणियों का पति पुरुष है, इसमें सन्देह नहीं कि उस पुरुष के रोवें वृक्ष के पत्तों के तुल्य हैं, और पुरुष का बाह्यचर्म वृक्ष के त्वचा के समान है ॥ २७–१ ॥

मन्त्रः २७–२

त्वच एवास्य रुधिरं प्रस्यन्दि त्वच उत्पटः । तस्मात्तदातृण्णात्प्रैति रसो वृक्षादिवाहतात् ॥

पदच्छेदः ।

त्वचः, एव, अस्य, रुधिरम्, प्रस्यन्दि, त्वचः, उत्पटः, तस्मात्, तदा, आतृण्णात्, प्रैति, रसः, वृक्षात्, इव, आहतात् ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
अस्य	उस पुरुष के	आहतात्	कटे हुये
त्वचः	चर्म से	वृक्षात्	वृक्ष से
रुधिरम्	रुधिर	रसः	रस निकलता है
प्रस्यन्दि	निकलता है	तस्मात्	उसी प्रकार
एव	वैसेही	आतृण्णात्	कटे हुये पुरुष से
त्वचः	वृक्षकी त्वचा से	तत्	वह खून
उत्पटः	गोंद निकलता है	प्रैति	निकलता है
इव	जैसे		

भावार्थ ।

जैसे पुरुष के चर्म से रुधिर निकलता है वैसेही वृक्ष के त्वचा से गोंद निकलता है और जैसे कटे हुये वृक्ष से रस निकलता है वैसेही कटे हुये पुरुष से रक्त निकलता है ॥ २७—२ ॥

मन्त्रः २७-३

मांꣳसान्यस्य शकराणि किनाटꣳ स्नाव तत्स्थिरम् । अस्थीन्यन्तरतो दारूणि मज्जा मज्जोपमा कृता ॥

पदच्छेदः ।

मांसानि, अस्य, शकराणि, किनाटम्, स्नाव, तत्, स्थिरम्, अस्थीनि, अन्तरतः, दारूणि, मज्जा, मज्जोपमा, कृता ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
इव	जैसे	इव	वैसे
अस्य	इस पुरुष के	अस्थीनि अन्तरतः	पुरुष के अन्तर हाड़ हैं
मांसानि	मांस	तथाएव	वैसेही
शकराणि	तह दरतह हैं	दारूणि	वृक्षके भीतर लकड़ी है
तत्	वैसेही	मज्जा	पुरुष का मज्जा
किनाटम्	वृक्षकी छाल	मज्जोपमा	मज्जा के तुल्य
स्नाव	पट्ठे की तरह	कृता	मानी गई है
स्थिरम्	स्थित है		

भावार्थ ।

जैसे पुरुष के मांस तह दरतह (परतदार) हैं वैसेही वृक्षकी छाल पट्ठे की तरह तह दरतह (परतदार) स्थित हैं और जैसे पुरुष के अन्तर हड्डी स्थित है वैसेही वृक्ष के भीतर लकड़ी स्थित है जैसे पुरुष के भीतर शरीर में मज्जा होताहै वैसेही वृक्ष में मज्जा होताहै ॥ २७-३ ॥

मन्त्रः २७-४

यद्वृक्षो वृक्णो रोहति मूलान्नवतरः पुनः। मर्त्यः स्विन्मृत्युना वृक्णः कस्मान्मूलात्प्ररोहति ॥

पदच्छेदः ।

यत्, वृक्षः, वृक्णः, रोहति, मूलात्, नवतरः, पुनः, मर्त्यः, स्वित्, मृत्युना, वृक्णः, कस्मात्, मूलात्, प्ररोहति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
यत्	जो	मृत्युना	मृत्यु करके
वृक्णः	काटा हुआ	वृक्णः	काटा हुआ
वृक्षः	वृक्ष है	मर्त्यः	मनुष्य
+ तस्मात्	उसके	कस्मात्	किस
मूलात्	जड़ से	मूलात्	मूल से
नवतरः	नवीन वृक्ष	प्ररोहति	उत्पन्न होता है
रोहति	उत्पन्न होता है	स्वित्	यह मेरा प्रश्न है

भावार्थ ।

हे ब्राह्मणो ! जो कटा हुआ वृक्ष है उसकी जड़ से नवीन वृक्ष उत्पन्न होते हैं यह आपको विज्ञात है तब बताइये मृत्यु करके कटा हुआ मनुष्य किस मूल यानी जड़ से उत्पन्न होता है यह मेरा प्रश्न है इसका उत्तर आप लोग दें ॥ २७-४ ॥

मन्त्रः २७-५

रेतस इति मा वोचत जीवतस्तत्प्रजायते । धानारुह इव वै वृक्षो-ऽञ्जसा प्रेत्य संभवः ॥

पदच्छेदः ।

रेतसः, इति, मा, वोचत, जीवतः, तत्, प्रजायते, धानारुहः, इव, वै, वृक्षः, अञ्जसा, प्रेत्य, संभवः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
रेतसः	मरे हुये पुरुष के वीर्य से	च	और
+ रोहति	पुरुष प्रादुर्भूत होता है	धानारुहः	बीज से उत्पन्न हुआ
इति	ऐसा	वृक्षः इव	वृक्ष
मा	नहीं	अञ्जसा	शीघ्र
वोचत	कह सक्ते हैं	प्रेत्य	नष्ट होकर
हि	क्योंकि	वै	भी
तत्	वह वीर्य	धानातः	बीज से
जीवतः	जीते हुये पुरुष से	संभवः	उत्पन्न हो आता है
प्रजायते	उत्पन्न होता है मरे से नहीं		

भावार्थ ।

अब वृक्ष और पुरुष की समानता दिखलाकर याज्ञवल्क्य प्रश्न करते हैं हे ब्राह्मणो ! जब जड़ छोड़ कर वृक्ष काटा जाता है तब पुनः मूलसे और नवीन वृक्ष उत्पन्न होता है यह आपलोग प्रत्यक्ष देखते हैं परन्तु जब मरणधर्मी पुरुष को मृत्यु मार लेता है तब फिर वह पुरुष किस मूल से उत्पन्न होता है यदि आप कहें कि वीर्य से मनुष्य उत्पन्न होता है तो यह बात ठीक नहीं है क्योंकि वीर्य तो जिंदा पुरुष में रहता है मरे हुये पुरुष में नहीं रहता है परन्तु कटे वृक्ष की जड़ तो बनी रहती है अथवा उसका वीर्य बना रहता है उससे दूसरा वृक्ष उत्पन्न हो आता है पर मनुष्य के मरजाने पर उसका कोई मूल कारण नहीं दीखता है जिससे उसकी उत्पत्ति कही जाय इसकी उत्पत्ति का वृक्षवत् कोई कारण होना चाहिये ॥ २७-५ ॥

मन्त्रः २७-६

यत्समूलमावृहेयुर्वृक्षं न पुनराभवेत् । मर्त्यः स्विन्मृत्युना वृक्णः कस्मान्मूलात्प्ररोहति ॥

पदच्छेदः ।

यत्, समूलम्, आवृहेयुः, वृक्षम्, न, पुनः, आभवत्, मर्त्यः, स्वित्, मृत्युना, वृक्णः, कस्मात्, मूलात्, प्ररोहति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
यत्	जो	मृत्युना वृक्णः	मृत्यु करके छिन्न किया हुआ
समूलम्	जड़ सहित	मर्त्यः	पुरुष
वृक्षम्	वृक्षको	कस्मात्	किस
आवृहेयुः	नष्ट करदें तो	मूलात्	मूल से
पुनः	फिर	प्ररोहति	उत्पन्न होता है
न	नहीं वह	स्वित्	यह मेरा प्रश्न है
आभवेत्	उत्पन्न होवे		
+ परम्	परन्तु		

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य कहते हैं कि, हे ब्राह्मणो ! जो वृक्ष जड़ सहित नष्ट कर दिया जाता है फिर उससे नवीन वृक्ष उत्पन्न नहीं होता है तब आप बताइये यह मृत्यु करके छिन्न हुआ पुरुष किस मूल से उत्पन्न होता है ॥ २७-६ ॥

मन्त्रः २७-७

जात एव न जायते को न्वेनं जनयेत् पुनः । विज्ञानमानन्दं ब्रह्म रातिर्दातुः परायणं तिष्ठमानस्य तद्विद इति ॥

इति नवमं ब्राह्मणम् ॥ ९ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि तृतीयोध्यायः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

जातः, एव, न, जायते, कः, नु, एनम्, जनयेत्, पुनः, विज्ञानम्, आनन्दम्, ब्रह्म, रातिः, दातुः, परायणम्, तिष्ठमानस्य, तद्विदः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
जातः	जो उत्पन्न हुआ है	विज्ञानम्	विज्ञानस्वरूप
सः	वह फिर जड़ काटे जाने बाद	आनन्दम्	आनन्दस्वरूप
एव	निःसंदेह	ब्रह्म	ब्रह्म है
न	नहीं	यः	जो
जायते	उत्पन्न होता है	रातिः	धन के
नु	तब यह मेरा प्रश्न है कि	दातुः	देनेवाले हैं यानी यज्ञकर्ता हैं
एनम्	इस मृतक पुरुष को	यः	जो
पुनः	फिर	तिष्ठमानस्य	ज्ञान में दृढ़ हैं
कः	कौन	च	और
जनयेत्	उत्पन्न करेगा जब किसी ब्राह्मण ने उत्तर नहीं दिया तब याज्ञवल्क्य ने स्वयं निम्न प्रकार उत्तर दिया	तद्विदः	जो ब्रह्म के जानने वाले हैं उनका
		ब्रह्म	ब्रह्म
		परायणम्	परमगति है
		इति	ऐसा उत्तर दिया

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य फिर पूछते हैं जो वृक्ष जड़से काटागया है वह फिर नहीं उत्पन्न होता है तब मृतक पुरुष कैसे उत्पन्न होगा यानी उसकी उत्पत्तिका कारण कौन हो सक्ता है. जब किसी ब्राह्मण ने इसका उत्तर नहीं दिया तब याज्ञवल्क्यने स्वतः कहा कि मरे हुये पुरुष की उत्पत्ति का कारण ज्ञानस्वरूप आनन्दस्वरूप ब्रह्म है वह यज्ञ करने वालों का और ब्रह्मज्ञानियों का परम आश्रय है ॥ २७-७ ॥

इति नवमं ब्राह्मणम् ॥ ९ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि भाषानुवादे तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ ३ ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ प्रथमं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

जनको ह वैदेह आसांचक्रेऽथ ह याज्ञवल्क्य आवव्राज । तꣳ होवाच याज्ञवल्क्य किमर्थमचारीः पशूनिच्छन्नण्वन्तानिति । उभयमेव सम्राडिति होवाच ॥

पदच्छेदः ।

जनकः, ह, वैदेहः, आसांचक्रे, अथ, ह, याज्ञवल्क्यः, आवव्राज, तम्, ह, उवाच, याज्ञवल्क्य, किमर्थम्, अचारीः, पशून्, इच्छन्, अण्वन्तान्, इति, उभयम्, एव, सम्राट्, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः पदार्थाः

यदा=जब
ह=प्रसिद्ध
वैदेहः=विदेहाधिपति
जनकः=राजा जनक
आसांचक्रे=गद्दीपर बैठे थे
अथ=तब
ह=प्रसिद्ध
याज्ञवल्क्यः=विद्वान् याज्ञवल्क्य
आवव्राज=आते भये
+ जनकः=राजा जनक ने
तम्=उन याज्ञवल्क्य से
ह=स्पष्ट
उवाच=प्रश्न किया कि
+ भगवन्तः=हे पूज्य ! आप
किमर्थम्=किस अर्थ
अचारीः=आये हैं
पशून्=पशुओं की
+ अथवा=अथवा
अण्वन्तान्=सूक्ष्म उपदेश देने के अर्थ
इच्छन्=इच्छा करते हुये
+ अचारीः=आये हैं
ह=तब
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
उवाच=कहा कि
सम्राट्=हे जनक !
उभयम्=दोनों के लिये
एव=निश्चय करके
+ अगमम्=आया हूं

भावार्थ ।

जब प्रसिद्ध विद्वान् विदेहपति राजा जनक गद्दी पर बैठे थे तब

प्रसिद्ध सर्व पूज्य विद्वान् याज्ञवल्क्य आते भये, उनको देखकर और उनका विधिवत् पूजन करके उनको आसन पर बैठाला, और प्रसन्न मुख से बोले कि हे महाराज, याज्ञवल्क्य ! आप किस निमित्त इस समय मेरे पास आये हैं, क्या पशु धन की इच्छा करके आये हैं, या अत्यन्त सूक्ष्म गुह्य वस्तु के विचारार्थ आये हैं, अर्थात् जो कुछ अन्य आचार्यों ने मुझको उपदेश किया है वह यथार्थ किया है और मैंने उसको यथार्थ समझा है इसके जानने के लिये आप पधारे हैं, राजा के इस वचन को सुनकर याज्ञवल्क्य ने कहा मैं दोनों के अर्थ आया हूं, अर्थात् पशुग्रहणार्थ और तत्त्वनिर्णयार्थ दोनों के लिये आया हूं ॥ १ ॥

मन्त्रः २

यत्ते कश्चिदब्रवीत्तच्छृणवामेत्यब्रवीन्मे जित्वा शैलिनिर्वाग्वै ब्रह्मेति यथा मातृमान्पितृमानाचार्यवान्ब्रूयात्तथा तच्छैलिनिरब्रवीद्वाग्वै ब्रह्मेत्यवदतो हि किꣳ स्यादित्यब्रवीत्तु ते तस्यायतनं प्रतिष्ठां न मेऽब्रवीदित्येकपाद्वा एतत्सम्राडिति स वै नो ब्रूहि याज्ञवल्क्य । वागेवायतनमाकाशः प्रतिष्ठा प्रज्ञेत्येनदुपासीत । का प्रज्ञता याज्ञवल्क्य । वागेव सम्राडिति होवाच । वाचा वै सम्राड् बन्धुः प्रज्ञायत ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानीष्टꣳ हुतमाशितं पायितमयं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि वाचैव सम्राट् प्रज्ञायन्ते वाग्वै सम्राट् परमं ब्रह्म नैनं वाग्जहाति सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति देवो भूत्वा देवानप्येति य एवं विद्वानेतदुपास्ते । हस्त्यृषभꣳ सहस्रं ददामीति होवाच जनको वैदेहः । स होवाच याज्ञवल्क्यः पिता मेऽमन्यत नाननुशिष्य हरेतेति ॥

पदच्छेदः ।

यत्, ते, कश्चित्, अब्रवीत्, तत्, शृणवाम, इति, अब्रवीत्, मे, जित्वा, शैलिनिः, वाक्, वै, ब्रह्म, इति, यथा, मातृमान्, पितृमान्,

आचार्यवान्, ब्रूयात्, तथा, तत्, शैलिनिः, अब्रवीत्, वाक्, वै, ब्रह्म, इति, अवदतः, हि, किम्, स्यात्, इति, अब्रवीत्, तु, ते, तस्य, आयतनम्, प्रतिष्ठाम्, न, मे, अब्रवीत्, इति, एकपाद्, वा, एतत्, सम्राट्, इति, सः, वै, नः, ब्रूहि, याज्ञवल्क्य, वाक्, एव, आयतनम्, आकाशः, प्रतिष्ठा, प्रज्ञा, इति, एनत्, उपासीत्, का, प्रज्ञता, याज्ञवल्क्य, वाक्, एव, सम्राट्, इति, ह, उवाच, वाचा, वै, सम्राट्, बन्धुः, प्रज्ञायते, ऋग्वेदः, यजुर्वेदः, सामवेदः, अथर्वाङ्गिरसः, इतिहासः, पुराणम्, विद्या, उपनिषदः, श्लोकाः, सूत्राणि, अनुव्याख्यानानि, व्याख्यानानि, इष्टम्, हुतम्, आशितम्, पायितम्, अयम्, च, लोकः, परः, च, लोकः, सर्वाणि, च, भूतानि, वाचा, एव, सम्राट्, प्रज्ञायन्ते, वाक्, वै, सम्राट्, परमम्, ब्रह्म, न, एनम्, वाक्, जहाति, सर्वाणि, एनम्, भूतानि, अभिक्षरन्ति, देवः, भूत्वा, देवान्, अपि, एति, यः, एवम्, विद्वान्, एतत्, उपास्ते, हस्त्यृषभम्, सहस्रम्, ददामि, इति, ह, उवाच, जनकः, वैदेहः, सः, ह, उवाच, याज्ञवल्क्यः, पिता, मे, अमन्यत, न, अननुशिष्य, हरेत, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ जनक	हे जनक !
कश्चित्	जिस किसी ने
ते	तुम्हारे लिये
यत्	जो कुछ
अब्रवीत्	कहा है
तत्	उसको
शृणवाम	मैं सुनना चाहता हूं
जनकः	जनक ने
उवाच	उत्तर दिया कि
शैलिनिः	शैलिनिका पुत्र
जित्वा	जित्वा ने
मे	मुझ से

अन्वयः	पदार्थाः
अब्रवीत्	कहा है कि
वाक्	वाणी
वै	ही
ब्रह्म	ब्रह्म है
इति	इस पर
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
+ उवाच	कहा
यथा	जैसे
मातृमान् पितृमान् आचार्यवान्	माता, पिता और गुरु करके सुशिक्षित पुरुष
+ शिष्याय	अपने शिष्य के लिये

ब्रूयात्=उपदेश करता है
तथा=वैसेही
शैलिनिः=शैलिनि ने
इति=ऐसा
अब्रवीत्=आपसे कहा है कि
वाक्=वाणीही
ब्रह्म=ब्रह्म है
हि=क्योंकि
अवदतः=गूंगे पुरुष से
किम्=क्या अर्थ
स्यात्=निकल सक्ता है
तु=परन्तु
तस्य=ब्रह्म के
आयतनम्=आश्रय
+ च=और
प्रतिष्ठाम्=प्रतिष्ठा को
तु=भी
अब्रवीत्=उसने कहा है
+ जनकः=जनक ने
+ आह=उत्तर दिया
मे=मुझसे
+ सः=उसने
न=नहीं
अब्रवीत्=कहा है
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुन कर
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
+ आह=कहा कि
इति=तब
+ सम्राट्=हे सम्राट् !
वै=निस्संदेह
एतत्=यह उपदेश

एकपात्=एक चरणवाला है
+ तस्मात्=इस लिये
तत्त्याज्यम्=वह त्याज्य है
हि=क्योंकि
एतत् उपासनम् एकम् चरणम् = यह एक चरण की उपासना है
इति=इस पर
+ जनकः=जनक ने
+ उवाच=कहा
इति=यदि ऐसा है तो
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
सः=वह आप
नः=मेरे लिये
ब्रूहि=आयतन और प्रतिष्ठाको कहें
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
+ आह=कहा कि
वाक्=वाणी
एव=निश्चय करके
आयतनम्=शरीर है
+ च=और
आकाशः=परमात्मा
प्रतिष्ठा=वाणी का आश्रय है
इति=इस प्रकार
प्रज्ञा=जाना हुआ
एनत्=उस ब्रह्म की
उपासीत=उपासना करे
+ जनकः=जनक ने
+ पप्रच्छ=कहा कि
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !

एतस्य=इसका
प्रज्ञता=शास्त्र
का=कौन है
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
+ उवाच ह=जवाब दिया कि
सम्राट्=हे जनक !
वाक्=वाणी
एव=निश्चय करके
प्रज्ञता=इसका शास्त्र है
हि=क्योंकि
सम्राट्=हे राजन् !
बन्धुः=सब सम्बन्धी
वै=निस्संदेह
वाचा=वाणी करके ही
प्रज्ञायते=जाने जाते हैं
+ च=और
ऋग्वेदः=ऋग्वेद
यजुर्वेदः=यजुर्वेद
सामवेदः=सामवेद
अथर्वाङ्गिरसः=अथर्वणवेद
इतिहासः=इतिहास
पुराणम्=पुराण
विद्याः=पशुविद्या वृक्षविद्या
उपनिषदः=ब्रह्मविद्या
श्लोकाः=मन्त्र
सूत्राणि=सूत्र और
अनुव्याख्यानानि=उनके भाष्य
व्याख्यानानि=छः प्रकार के व्याख्यान
इष्टम्=यज्ञसम्बन्धी धर्म
हुतम्=होमसम्बन्धी धर्म
आशितम्=अन्नसम्बन्धी दान
पायितम्=पान करने योग्य जलदान
अयम्=यह
लोकः=लोक
च=और
परः=पर
लोकः=लोक
+ च=और
सर्वाणि च=संपूर्ण
भूतानि=प्राणी
सम्राट्=हे जनक !
वाचा एव=वाणी करके ही
प्रज्ञायन्ते=जाने जाते हैं
सम्राट्=हे जनक !
वाक्=वाणी
वै=ही
परमम्=श्रेष्ठ
ब्रह्म=ब्रह्म है
+ यथोक्त-ब्रह्मवित्=जो ऊपर कहे हुये प्रकार ब्रह्मवेत्ता है
एनम्=उसको
वाक्=वाक्शास्त्र
न=नहीं
जहाति=त्यागता है
च=और
एनम्=उस ब्रह्मवेत्ता को
सर्वाणि=सब
भूतानि=प्राणी
अभिक्षरन्ति=रक्षा करते हैं
यः=जो कोई
एवम्=इस प्रकार
एतत्=इस ब्रह्म को

विद्वान्=जानता हुआ
उपासते=उसकी उपासना करता है
सः=वह
देवः=देवता
भूत्वा=होकर
देवान् अपि=शरीर पात के बाद देवताओं कोही
एति=प्राप्त होता है
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुन कर
वैदेहः=विदेहाधिपति
जनकः=राजा जनक
उवाच ह=बोले कि
याज्ञवल्क्यं=हे याज्ञवल्क्य !
हस्त्यृषभम्=हाथी के ऐसे सांड़ सहित
सहस्रम्=एक हजार गौओं को
ददामि=विद्या की दक्षिणा में मैं अर्पण करता हूं
इति=इसके जवाब में
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य महाराजने
ह=स्पष्ट
उवाच=कहा कि
सम्राट्=हे राजन् !
मे=मेरे
पिता=पिता
अमन्यत=उपदेश कर गये हैं कि
अननुशिष्य=शिष्य को भली-प्रकार बोध कराये और कृतार्थ किये विना
न हरेत=दक्षिणा न लेना चाहिये

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि हे जनक ! जिस किसी ने तुम्हारे लिये उपदेश किया है उसको मैं सुनना चाहता हूं, इस पर जनक महाराज ने जवाब दिया कि शिलिन ऋषि के पुत्र जित्वा ने मुझसे कहा है कि वाणीही ब्रह्म है, इस पर याज्ञवल्क्य ने कहा कि जित्वा ऋषि ने ठीक कहा है, जैसे माता पिता गुरु करके सुशिक्षित पुरुष अपने शिष्य को उपदेश करता है वैसेही जित्वा ने आपसे कहा है, निस्संदेह वाणी ब्रह्म है, क्योंकि विना वाणी के पुरुष गूंगा कहलाता है उससे लोगों का क्या अर्थ निकल सक्ता है परन्तु आप यह तो बताइये कि जित्वाने ब्रह्मके आश्रय और प्रतिष्ठा को भी बताया है, जनक महाराज ने उत्तर दिया कि इसका उपदेश तो मुझसे नहीं किया है, तब याज्ञ-वल्क्य ने कहा हे सम्राट् ! यह उपदेश एक चरण के ब्रह्मका है, इस

लिये यह त्यागने योग्य है क्योंकि एक चरण की उपासना निष्फल है, यह सुनकर जनक ने कहा कि यदि यह ऐसा है तो आप कृपा करके बताइये कि वाणी की आयतन और प्रतिष्ठा क्या है, इसपर याज्ञवल्क्य ने कहा हे राजन् ! वाणीही वाणी का आश्रय है और परमात्मा वाणी की प्रतिष्ठा है, इसप्रकार जानता हुआ वाणीरूपी ब्रह्मकी उपासना करे, जनक राजाने कहा, हे याज्ञवल्क्य ! वाणी जानने के लिये कौन शास्त्र है, याज्ञवल्क्य महाराजने उत्तर दिया; हे जनक ! वाणीही इसका शास्त्र है, क्योंकि हे राजन् ! वाणी करकेही बंधु, मित्र, अपने पराये, सब जाने जाते हैं, वाणी करकेही ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वण-वेद, इतिहास, पुराण, पशुविद्या, वृक्षविद्या, भूगोलविद्या, अध्यात्म-विद्या, श्लोकबद्ध काव्य, अतिसंक्षिप्त सारवाले सूत्र आदि सब जाने जाते हैं, और विविधयागसम्बन्धी धर्म, अन्नदान धर्म, पृथ्वीलोक, सूर्यलोक जो विद्यमान हैं, और उन लोकों के अन्दर आकाशादि महा-भूत, और उन महाभूतों में जो प्राणी आदि सृष्टि स्थित हैं, हे राजन् ! सब वाणी करकेही जानेजाते हैं, हे सम्राट् ! वाणीही परमब्रह्म है, जो कोई उपासक इसप्रकार जानते हुये वाणीरूपी शास्त्र का ध्यान करता है, उसको वाक्शास्त्र नहीं त्यागता है, उस उपासक की सब प्राणी रक्षा करते हैं, और वह उपासक अपूर्ववस्तुओं को पाता है, और फिर देवता होकर शरीर त्यागने के बाद देवरूप को प्राप्त होता है, ऐसा सुनकर विदेहपति राजा जनक बोले, हे याज्ञवल्क्य, महाराज ! हाथीके समान एक सांड़ सहित हजार गौओं को विद्या की दक्षिणा में अर्पण करताहूं, इसके उत्तर में याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे राजन् ! मेरे पिता का उपदेश है कि शिष्यको भलीप्रकार बोध कराये और कृतार्थ किये बिना दक्षिणा न लेना चाहिये ॥ २ ॥

मन्त्रः ३

यदेव ते कश्चिदब्रवीत्तच्छृणवामेत्यब्रवीन्म उदङ्कः शौल्बायनः

प्राणो वै ब्रह्मेति यथा मातृमान् पितृमानाचार्यवान्ब्रूयात्तथा तच्छौ-ल्वायनोऽब्रवीत् प्राणो वै ब्रह्मेत्यप्राणतो हि किथं स्यादित्यब्रवीत्तु ते तस्यायतनं प्रतिष्ठां न मेऽब्रवीदित्येकपाद्वा एतत्सम्राडिति स वै नो ब्रूहि याज्ञवल्क्य प्राण एवायतनमाकाशः प्रतिष्ठा प्रियमित्येतदु-पासीत का प्रियता याज्ञवल्क्य प्राण एव सम्राडिति होवाच प्राणस्य वै सम्राट् कामायायाज्यं याजयत्यप्रतिगृह्यस्य प्रतिगृह्णात्यपि तत्र वधाशङ्कं भवति यां दिशमेति प्राणस्यैव सम्राट्कामाय प्राणो वै सम्राट् परमं ब्रह्म नैनं प्राणो जहाति सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति देवो देवानप्येति य एवं विद्वानेतदुपास्ते हस्त्यृषभꣳ सहस्रं ददा-मीति होवाच जनको वैदेहः स होवाच याज्ञवल्क्यः पिता मेऽमन्यत नाननुशिष्य हरेतेति ॥

पदच्छेदः ।

यत्, एव, ते, कश्चित्, अब्रवीत्, तत्, शृणवाम, इति, अब्रवीत्, मे, उदङ्कः, शौल्वायनः, प्राणः, वै, ब्रह्म, इति, यथा, मातृमान्, पितृ-मान्, आचार्यवान्, ब्रूयात्, तथा, तत्, शौल्वायनः, अब्रवीत्, प्राणः, वै, ब्रह्म, इति, अप्राणतः, हि, किम्, स्यात्, इति, अब्रवीत्, तु, ते, तस्य, आयतनम्, प्रतिष्ठाम्, न, मे, अब्रवीत्, इति, एकपात्, वै, एतत्, सम्राट्, इति, सः, वै, नः, ब्रूहि, याज्ञवल्क्य, प्राणः, एव, आयतनम्, आकाशः, प्रतिष्ठा, प्रियम्, इति, एतत्, उपासीत, का, प्रियता, याज्ञवल्क्य, प्राणः, एव, सम्राट्, इति, ह, उवाच, प्राणस्य, वै, सम्राट्, कामाय, अयाज्यम्, याजयति, अप्रतिगृह्यस्य, प्रतिगृह्णाति, अपि, तत्र, वधाशङ्कम्, भवति, याम्, दिशम्, एति, प्राणस्य, एव, सम्राट्कामाय, प्राणः, वै, सम्राट्, परमम्, ब्रह्म, न, एनम्, प्राणः, जहाति, सर्वाणि, एनम्, भूतानि, अभिक्षरन्ति, देवः, देवान्, अपि, एति, यः, एवम्, विद्वान्, एतत्, उपास्ते, हस्त्यृषभम्, सहस्रम्, ददामि,

इति, ह, उवाच, जनकः, वैदेहः, सः, ह, उवाच, याज्ञवल्क्यः, पिता, मे, अमन्यत, न, अननुशिष्य, हरेत, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
सम्राट्	हे राजराजेश्वर जनक!
+ भवान्	आप
+ अनेकाचार्यसेवी	अनेक आचार्यों के सेवा करनेवाले हुये हैं
+ अतः	इसलिये
यत्	जो कुछ
कश्चित्	किसी आचार्य ने
ते	आपके लिये
अब्रवीत्	उपदेश किया है
तत्	उसको
अहम्	मैं
शृणवाम	सुनना चाहता हूं
इति	ऐसा
+ पृच्छामि	मेरा प्रश्न है
+ सम्राट्	जनक ने
+ आह	जवाब दिया कि
+ याज्ञवल्क्य	हे याज्ञवल्क्य !
शौल्वायनः	शुल्वका पुत्र
उदङ्कः	उदङ्क ने
मे	मुझसे
अब्रवीत्	कहा है कि
वै	निश्चय करके
प्राणः	प्राण
वै	ही
ब्रह्म	ब्रह्म है
इति	इसपर
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
+ आह	कहा कि
यथा	जैसे
मातृमान् पितृमान् आचार्यवान्	माता पिता गुरुकरके सुशिक्षित पुरुष
+ शिष्याय	अपने शिष्य से
ब्रूयात्	कहे
तथा	तैसेही
शौल्वायनः	शुल्वके पुत्र उदङ्कने
तत्	उस ब्रह्म को
अब्रवीत्	आपसे कहा है कि
वै	निस्संदेह
प्राणः	प्राण
ब्रह्म	ब्रह्म है
हि	क्योंकि
अप्राणतः	प्राणरहित पुरुष से
किम्	क्या लाभ
स्यात्	होसक्ता है
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
+ पप्रच्छ	फिर पूछा कि
तु	क्या
तस्य	उस ब्रह्म के
आयतनम्	आश्रय और
प्रतिष्ठाम्	प्रतिष्ठा को भी
अब्रवीत्	उदङ्क ने कहा है
+ सम्राट्	राजा ने
+ आह	कहा कि
मे	मुझसे
न	नहीं

अब्रवीत्=कहा है
इति=इसपर
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य
+ आह=बोले कि
सम्राट्=हे जनक !
एतत्=यह प्राणात्मक ब्रह्म की उपासना
एकपात्=एक चरणवाली
+ अब्रवीत्=आपसे कही है
इति=इसपर
सः=जनकने
+ आह=कहा
नः=हमारे लिये
याज्ञवल्क्य=हे ऋषे, याज्ञवल्क्य !
ब्रूहि=उस ब्रह्मको आपही कहें
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
+ आह=कहा
प्राणः=प्राण
एव=ही
आयतनम्=प्राण का आश्रय है
प्रतिष्ठाः=प्रतिष्ठा
आकाशः=ब्रह्म है
एतत्=इस प्राणरूप
प्रियम्=प्रियको
इति=ऐसा मानकर
उपासीत=उपासना करे
+ पुनः=फिर
+ जनकः=जनकने
+ आह=पूछा कि
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
प्रियता=प्रिय
का=क्या है
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
उवाच=जवाब दिया कि
सम्राट्=हे राजन् !
प्राणः एव=प्राणही
वै=निश्चय करके
+ प्रियता=प्रिय है
+ हि=क्योंकि
सम्राट्=हे सम्राट् !
प्राणस्य=प्राणके ही
कामाय=अर्थ
अयाज्यम्=पतितादिकों से भी
याजयति=यज्ञ कराते हैं
अप्रतिगृह्यस्य=अप्रति गृह्य पुरुष से
प्रतिगृह्णाति=दान लेते हैं
अपि=और
याम्=जिस
दिशाम्=दिशा में
वधाशङ्कम्=चोरादि करके अपने मरने का भय
भवति=होता है
तत्र=उस दिशामें भी
सम्राट्कामाय=सर्कारी काम के लिये
प्राणस्य एव=अपने प्राण के ही
प्रियत्वे=निमित्त
एति=जाते हैं
+ अतः=इसीसे
सम्राट्=हे राजन् !
प्राणः=प्राणही
वै=निश्चय करके
परमम्=परम
ब्रह्म=प्रियवस्तु है

एवम्=इसप्रकार
यः=जो
विद्वान्=विद्वान्
एतत्=इस ब्रह्मकी
उपास्ते=उपासना करता है
एनम्=उसको
प्राणः=प्राण
न=नहीं
जहाति=त्यागता है
एनम्=उसकी
सर्वाणि=सब
भूतानि=प्राणी
अभिक्षरन्ति=रक्षा करते हैं
+ च=और
+ सः=वह
देवः=देवरूप
+ भूत्वा=होकर
देवान् अपि=मरनेबाद देवताओं को ही
एति=प्राप्त होता है
+ एतत्=यह
+ श्रुत्वा=सुनकर

वैदेहः=वैदेह
जनकः=जनक
ह=स्पष्ट
उवाच=बोले कि
+ याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
हस्त्यृषभम्=सहित एक सांढ़ हाथी के समान
सहस्रम्=सहस्र गौओं को
ददामि=आपको देता हूं
+ तदा=तब
ह=प्रसिद्ध
सः=वह
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य
उवाच ह=बोले कि
मे=हमारे
पिता=पिता
इति=ऐसा
अमन्यत=उपदेश करगये हैं कि
अननुशिष्य=शिष्यको बोध कराये विना
न हरेत=नहीं धन लेना चाहिये

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज द्वितीय बार राजा जनक से पूछते हैं, हे सम्राट् ! जो कुछ आपसे किसी ने कहा है उसको मैं सुनना चाहता हूं, इसका उत्तर जनक महाराज देते हैं. हे याज्ञवल्क्य, महाराज ! शुल्ब के पुत्र उदङ्क ने मुझसे कहा है कि प्राणही ब्रह्म है, ऐसा सुन कर याज्ञवल्क्य महाराज ने कहा कि हे राजन् ! आपसे उदङ्क ऋषि ने वैसेही कहा है जैसे कोई पुरुष माता पिता गुरु करके सुशिक्षित होता हुआ अपने शिष्य के लिये कहता है, निस्संदेह प्राणही ब्रह्म है, क्योंकि प्राणरहित

पुरुष से क्या लाभ होसक्ता है, याज्ञवल्क्य महाराज ने फिर पूछा कि क्या उदङ्क आचार्य ने आपको प्राण के आयतन और प्रतिष्ठा को बताया है, इस पर राजा ने कहा कि उन्होंने मुझसे नहीं कहा, तब याज्ञवल्क्य महाराज बोले हे राजा जनक ! ये जो प्राणात्मक ब्रह्मकी उपासना है, वह केवल एक चरणवाली है, इस पर जनक महाराज ने कहा कि, हे हमारे पूज्य, आचार्य ! आपही कृपा करके ब्रह्म का उपदेश दें, इस पर याज्ञवल्क्य महाराज ने कहा, प्राणही प्राण का आश्रय है, और प्रतिष्ठा ब्रह्म है, इस प्राणरूपको प्रिय मान कर इसके गुणों का ध्यान करे, तब जनक महाराज ने पूछा, हे याज्ञवल्क्य, महाराज ! प्रिय क्या है, याज्ञवल्क्य महाराज ने उत्तर दिया प्राणही प्रिय है, क्योंकि प्राण के ही अर्थ पतित आदिकों से ही लोक यज्ञ कराते हैं, और अप्रतिगृह्य पुरुष से दान लेते हैं, और जिस दिशा में चोरादिकों करके मारे जाने का भय होता है उस दिशा में भी सर्कारी काम के लिये प्राण के ही निमित्त लोग जाते हैं इसी कारण हे राजन् ! प्राणही निश्चय करके परमप्रिय वस्तु है, हे राजा जनक ! इस प्रकार जानता हुआ जो विद्वान् प्राणात्मक ब्रह्मकी उपासना करता है उसको प्राण नहीं त्यागता है, यानी पूर्ण आयुतक जीता रहता है, और उसकी सब प्राणी रक्षा करते हैं, और वह देवरूप होकर मरने के पीछे देवताओं को ही प्राप्त होता है, यह सुनकर वैदेह राजा जनक बोले, हे याज्ञवल्क्य, महाराज ! सहस्र गौओं को, सहित एक सांड़ हाथी के समान मैं आपको ब्रह्मविद्या की दक्षिणा में देता हूं, तब वह प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य महाराज बोले कि हे राजा जनक ! हमारे पिता का उपदेश है कि शिष्य से विना बोध कराये हुये धन न लेना चाहिये ॥ ३ ॥

मन्त्रः ४

यदेव ते कश्चिदब्रवीत्तच्छृणवामेत्यब्रवीन्मे वर्कुर्वार्ष्णश्चक्षुर्वै

ब्रह्मेति यथा मातृमान् पितृमानाचार्यवान् ब्रूयात्तथा तद्वार्ष्णोऽब्रवीच्चक्षुर्वै ब्रह्मेत्यपश्यतो हि किंꣳ स्यादित्यब्रवीत्तु ते तस्यायतनं प्रतिष्ठां न मेऽब्रवीदित्येकपाद्वा एतत्सम्राडिति स वै नो ब्रूहि याज्ञवल्क्य चक्षुरेवायतनमाकाशः प्रतिष्ठा सत्यमित्येनदुपासीत का सत्यता याज्ञवल्क्य चक्षुरेव सम्राडिति होवाच चक्षुषा वै सम्राट् पश्यन्तमाहुरद्राक्षीरिति स आहाद्राक्षमिति तत्सत्यं भवति चक्षुर्वै सम्राट् परमं ब्रह्म नैनं चक्षुर्जहाति सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति देवो भूत्वा देवानप्येति य एवं विद्वानेतदुपास्ते हस्त्यृषभꣳ सहस्रं ददामीति होवाच जनको वैदेहः स होवाच याज्ञवल्क्यः पिता मेऽमन्यत नाननुशिष्य हरेतेति ॥

पदच्छेदः ।

यत्, एव, ते, कश्चित्, अब्रवीत्, तत्, शृणवाम, इति, अब्रवीत्, मे, वर्कुः, वार्ष्णः, चक्षुः, वै, ब्रह्म, इति, यथा, मातृमान्, पितृमान्, आचार्यवान्, ब्रूयात्, तथा, तत्, वार्ष्णः, अब्रवीत्, चक्षुः, वै, ब्रह्म, इति, अपश्यतः, हि, किम्, स्यात्, इति, अब्रवीत्, तु, ते, तस्य, आयतनम्, प्रतिष्ठाम्, न, मे, अब्रवीत्, इति, एकपात्, वै, एतत्, सम्राट्, इति, सः, वै, नः, ब्रूहि, याज्ञवल्क्य, चक्षुः, एव, आयतनम्, आकाशः, प्रतिष्ठा, सत्यम्, इति, एनत्, उपासीत, का, सत्यता, याज्ञवल्क्य, चक्षुः, एव, सम्राट्, इति, ह, उवाच, चक्षुषा, वै, सम्राट्, पश्यन्तम्, आहुः, अद्राक्षीः, इति, सः, आह, अद्राक्षम्, इति, तत्, सत्यम्, भवति, चक्षुः, वै, सम्राट्, परमम्, ब्रह्म, न, एनम्, चक्षुः, जहाति, सर्वाणि, एनम्, भूतानि, अभिक्षरन्ति, देवः, भूत्वा, देवान्, अपि, एति, यः, एवम्, विद्वान्, एतत्, उपास्ते, हस्त्यृषभम्, सहस्रम्, ददामि, इति, ह, उवाच, जनकः, वैदेहः, सः, ह, उवाच, याज्ञवल्क्यः, पिता, मे, अमन्यत, न, अननुशिष्य, हरेत, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
पप्रच्छ	जनक से पूछा कि
यत्	जो कुछ
कश्चित्	किसी आचार्य ने
ते	आप से
अब्रवीत्	कहा है
तत्	उसको
शृणवाम	मैं सुनना चाहता हूं
+ जनकः	जनक ने
+ आह	कहा
वार्ष्णः	वृष्णाचार्य के पुत्र
वर्कुः	वर्कु आचार्य ने
मे	मुझसे
अब्रवीत्	कहा है कि
चक्षुः	नेत्र
वै	ही
ब्रह्म	ब्रह्म है
इति	इस पर
याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
उवाच	कहा
यथा	जैसे
शिष्याय	शिष्य के लिये
मातृमान् पितृमान् आचार्यवान्	माता, पिता, गुरु करके सुशिक्षित पुरुष
ब्रूयात्	उपदेश करता है
तथा	तैसेही
वार्ष्णः	वर्कु ने
अब्रवीत्	आपसे कहा कि
तत्	वह
ब्रह्म	ब्रह्म

अन्वयः	पदार्थाः
चक्षुः	नेत्र
वै	ही है
हि	क्योंकि
अपश्यतः	नेत्रहीन पुरुष को
किम्	क्या
स्यात्	लाभ होसक्ता है
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य
+ पुनः	फिर
+ पप्रच्छ	पूछते भये कि
ते	आपसे
तस्य	उस ब्रह्म के
आयतनम्	आश्रय को
+ च	और
प्रतिष्ठाम्	प्रतिष्ठा को
अब्रवीत्	वर्कुने कहा है
+ जनकः	जनक ने
+ आह	उत्तर दिया कि
मे	मुझ से
न	नहीं
अब्रवीत्	कहा है
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
+ आह	कहा
सम्राट्	हे जनक !
एतत्	यह ब्रह्मकी उपासना
वै	निस्संदेह
एकपात्	एक चरणवाली है
इति	इस पर
+ जनकः	जनक ने
+ आह	कहा
याज्ञवल्क्य	हे याज्ञवल्क्य !
सः	प्रसिद्ध

+ त्वम्=आप
नः=हमसे
+ तत्=उस ब्रह्म को
ब्रूहि=उपदेश करो
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
आह=कहा कि
चक्षुः=चक्षु इन्द्रिय का
एव=निश्चय करके
आयतनम्=चक्षु इन्द्रिय गोलक आयतन है
आकाशः=और ब्रह्म
प्रतिष्ठा=प्रतिष्ठा है
इति=इस प्रकार
एतत्=इस चक्षु ब्रह्म को
सत्यम्=सत्य
+ मत्वा=मानकर
उपासीत=उपासना करे
+ जनकः=जनक
+ आह=बोले कि
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
सत्यता=सत्य
का=क्या है
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
+ उवाच=कहा
सम्राट्=हे जनक !
चक्षुः=नेत्र
एव=ही
+ सत्यम्=सत्य है
+ हि=क्योंकि
सम्राट्=हे जनक !
चक्षुषा=नेत्र करके ही
पश्यन्तम्=देखनेवाले पुरुष से
आहुः=लोग पूछते हैं कि
+ किम्=क्या
+ त्वम्=तुमने
अद्राक्षीः=देखा है
इति=इस पर
सः=वह द्रष्टा
आह=कहता है कि हां
+ अहम्=मैंने
अद्राक्षम्=देखा है
इति=तबही
तत्=उसका कथन
सत्यम्=सच
भवति=समझा जाता है
सम्राट्=हे राजन् !
यः=जो
विद्वान्=विद्वान्
एवम्=इस प्रकार
एतत्=इस ब्रह्म की
उपास्ते=उपासना करता है कि
चक्षुः=नेत्रही
परमम्=परम
ब्रह्म=ब्रह्म है
एनम्=उस ब्रह्मवेत्ता को
चक्षुः=नेत्र
न=नहीं
जहाति=त्यागता है
एनम्=इस ब्रह्मवेत्ता को
सर्वाणि=सब
भूतानि=प्राणी
अभिक्षरन्ति=रक्षा करते हैं
+ च=और
सः=वह

देवः=देवता
+ भूत्वा=होकर
देवान्=देवताओं को
अप्येति=प्राप्त होताहै
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुन कर
वैदेहः=विदेहपति
जनकः=जनक ने
उवाच=कहा
हस्त्यृषभम्=हाथी के समान एक साँड़ सहित
सहस्रम्=एक हजार गौओं को
+ त्वाम्=आपको
ददामि=दक्षिणा में देता हूं
ह=तब
सः=वह
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य
उवाच=बोले कि
मे=मेरे
पिता=पिता
अमन्यत=आज्ञा दे चुके हैं कि
+ शिष्यम्=शिष्य को
अननुशिष्य=बोध कराये विना
न हरेत=दक्षिणा नहीं लेना चाहिये

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज तृतीयवार पूछते हैं कि हे राजा जनक ! जो कुछ आपसे किसी ने कहा है उसको मैं सुनना चाहता हूं, जनक महाराज कहते हैं कि, वृष्णाचार्य के पुत्र वर्कुनामक आचार्य ने मुझको उपदेश किया है कि नेत्रही ब्रह्म है, इस पर याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि वर्कु आचार्य ने वैसेही आपको उपदेश किया है जैसे कोई पुरुष माता पिता गुरु करके सुशिक्षित होता हुआ अपने शिष्य के लिये उपदेश देता है, निःसंदेह नेत्रही ब्रह्म है, क्योंकि चक्षुहीन पुरुष को क्या लाभ होसक्ता है, फिर याज्ञवल्क्य महाराज पूछते हैं कि, हे राजा जनक ! क्या आपको वर्कु आचार्य ने ब्रह्म के आयतन और प्रतिष्ठा को भी बताया है ? इस पर जनक राजा ने उत्तर दिया कि यह तो मुझको नहीं बताया है, इस पर याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे सम्राट् ! यह उपासना एक चरण की है, अर्थात् तीन चरणों से हीन है, इसलिये निष्फल है, तब जनक महाराज ने कहा हे हमारे पूज्य, याज्ञवल्क्य, महाराज ! आपही हमको ब्रह्मकी उपासना का

उपदेश करें, तब याज्ञवल्क्य महाराज ने कहा, हे जनक! चक्षुइन्द्रिय का चक्षुगोलकही आयतन यानी शरीर है, और अन्त में ब्रह्मही इसका आश्रय है, इस चक्षुरात्मक प्रिय वस्तु को सत्य मानकर इसके गुणों का ध्यान करे, इस पर जनक ने कहा, हे याज्ञवल्क्य, महाराज! इसकी सत्यता क्या है, तब याज्ञवल्क्य महाराज बोले कि, हे जनक! चक्षु इन्द्रिय की सत्यता चक्षुही है, क्योंकि जब एक द्रष्टा और एक श्रोता विवाद करते हुये किसी वस्तु के निर्णय के लिये मध्यस्थ के पास जाते हैं, तो जिसने नेत्र से देखा है उससे वह मध्यस्थ पूछता है कि क्या तूने अपने नेत्रों से देखा है, इस पर अगर वह कहता है कि हां मैंने अपनी आंखों से देखा है तब उसका वाक्य सत्य माना जाता है, क्योंकि आंखों से देखी हुई वस्तु में व्यभिचार नहीं होसक्ता है, और जो यह कहता है कि मैंने नेत्रों से नहीं देखा है, पर कानों से सुना है तो उसकी बात ठीक नहीं समझी जाती है, क्योंकि इसमें संभव है कि वह असत्य हो, इस कारण चक्षुही सत्य है, और उसको सत्य मानकर उसके गुणों का ध्यान चक्षुरात्मक में करे, हे राजन्! चक्षुही परम आदरणीय प्रिय वस्तु है, जो विद्वान् इस प्रकार जानता हुआ नेत्रात्मक ब्रह्मकी उपासना करता है तो उस ब्रह्मवेत्ता को नेत्र नहीं त्यागता है यानी वह कभी अन्धा नहीं होता है, उसकी रक्षा सब प्राणी करते हैं, वह देवता होकर देवताओं को प्राप्त होता है, ऐसा सुनकर विदेहपति राजा जनक ने कहा मैं एक हजार गौओं को हस्ति तुल्य सांड़ सहित आपको दक्षिणा में देता हूं, तब वह याज्ञवल्क्य महाराज बोले कि मेरे पिता की आज्ञा है कि शिष्य से विना उसको बोध कराये दक्षिणा न लेना चाहिये ॥ ४ ॥

मन्त्रः ५

यदेव ते कश्चिदब्रवीत्तच्छृणवामेत्यब्रवीन्मे गर्दभीविपीतो भारद्वाजः श्रोत्रं वै ब्रह्मेति यथा मातृमान् पितृमानाचार्यवान्ब्रूयात्तथा

तद्भारद्वाजोऽब्रवीच्छ्रोत्रं वै ब्रह्मेत्यशृण्वतो हि किꣳ स्यादित्यब्रवीत्तु ते तस्यायतनं प्रतिष्ठां न मेऽब्रवीदित्येकपाद्वा एतत्सम्राडिति स वै नो ब्रूहि याज्ञवल्क्य श्रोत्रमेवायतनमाकाशः प्रतिष्ठानन्त इत्येनदुपासीत कानन्तता याज्ञवल्क्य दिश एव सम्राडिति होवाच तस्माद्वै सम्राडपि यां कां च दिशं गच्छति नैवास्या अन्तं गच्छत्यनन्ता हि दिशो दिशो वै सम्राट् श्रोत्रꣳ श्रोत्रं वै सम्राट् परमं ब्रह्म नैनꣳ श्रोत्रं जहाति सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति देवो भूत्वा देवानप्येति य एवं विद्वानेतदुपास्ते हस्त्यृषभꣳ सहस्रं ददामीति होवाच जनको वैदेहः स होवाच याज्ञवल्क्यः पिता मेऽमन्यत नाननुशिष्य हरेतेति ॥

पदच्छेदः ।

यत्, एव, ते, कश्चित्, अब्रवीत्, तत्, शृणवाम, इति, अब्रवीत्, मे, गर्दभीविपीतः, भारद्वाजः, श्रोत्रम्, वै, ब्रह्म, इति, यथा, मातृमान्, पितृमान्, आचार्यवान्, ब्रूयात्, तथा, तत्, भारद्वाजः, अब्रवीत्, श्रोत्रम्, वै, ब्रह्म, इति, अशृण्वतः, हि, किम्, स्यात्, इति, अब्रवीत्, तु, ते, तस्य, आयतनम्, प्रतिष्ठाम्, न, मे, अब्रवीत्, इति, एकपाद्, वै, एतत्, सम्राट्, इति, सः, वै, नः, ब्रूहि, याज्ञवल्क्य, श्रोत्रम्, एव, आयतनम्, आकाशः, प्रतिष्ठा, अनन्तः, इति, एनत्, उपासीत, का, अनन्तता, याज्ञवल्क्य, दिशः, एव, सम्राट्, इति, ह, उवाच, तस्मात्, वै, सम्राट्, अपि, याम्, काम्, च, दिशम्, गच्छति, न, एव, अस्याः, अन्तम्, गच्छति, अनन्ताः, हि, दिशः, दिशः, वै, सम्राट्, श्रोत्रम्, श्रोत्रम्, वै, सम्राट्, परमम्, ब्रह्म, न, एनम्, श्रोत्रम्, जहाति, सर्वाणि, एनम्, भूतानि, अभिक्षरन्ति, देवः, भूत्वा, देवान्, अपि, एति, यः, एवम्, विद्वान्, एतत्, उपास्ते, हस्त्यृषभम्, सहस्रम्, ददामि, इति, ह, उवाच, जनकः, वैदेहः, सः, ह, उवाच, याज्ञवल्क्यः, पिता, मे, अमन्यत, न, अननुशिष्य, हरेत, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ राजन्=	हे जनक !
यत्=	जो कुछ
कश्चित्=	किसी आचार्य ने
ते=	आपसे
अब्रवीत्=	कहा है
तत्=	उसको
शृणवाम=	मैं सुनना चाहता हूं
इति=	इस पर
+ जनकः=	राजा जनक ने
+ आह=	कहा कि
भारद्वाजः=	भारद्वाज गोत्रवाला
गर्दभीविपीतः=	गर्दभीविपीत आचार्य ने
मे=	मुझसे
अब्रवीत्=	कहा कि
श्रोत्रम्=	श्रोत्र
वै=	ही
ब्रह्म=	ब्रह्म है
इति=	इस पर
+ याज्ञवल्क्यः=	याज्ञवल्क्य ने
+ उवाच=	कहा कि
यथा=	जैसे
मातृमान् पितृमान् आचार्यवान्=	माता, पिता, गुरु करके सुशिक्षित पुरुष
+ शिष्याय=	अपने शिष्य प्रति
ब्रूयात्=	उपदेश करता है
तथा=	वैसेही
तत्=	उस ब्रह्म को
भारद्वाजः=	भारद्वाजगोत्रवाला गर्दभीविपीत ने

अन्वयः	पदार्थाः
अब्रवीत्=	आपसे कहा है कि
श्रोत्रम्=	श्रोत्र
वै=	ही
ब्रह्म=	ब्रह्म है
हि=	क्योंकि
अशृण्वतः=	न सुननेवाले पुरुषसे
किम्=	क्या लाभ
स्यात्=	होसक्ता है
इति=	इस पर
+ याज्ञवल्क्यः=	याज्ञवल्क्य ने
+ आह=	पूछा कि
+ राजन्=	हे जनक !
तु=	क्या
ते=	तुमसे
तस्य=	उस ब्रह्म के
आयतनम्=	आश्रय को
प्रतिष्ठाम्=	और प्रतिष्ठा को
अब्रवीत्=	भारद्वाज ने कहा है
+ जनकः=	जनक ने
+ आह=	उत्तर दिया
+ याज्ञवल्क्य=	हे याज्ञवल्क्य !
मे=	मुझसे
न=	नहीं
अब्रवीत्=	कहा है
इति=	इस पर
+ याज्ञवल्क्यः=	याज्ञवल्क्य ने
+ आह=	कहा
सम्राट्=	हे जनक !
एतत्=	यह ब्रह्मकीउपासना
एकपात्=	एक चरण वाली है
इति=	इस पर

+ जनकः=जनक ने
+ आह=कहा कि
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
सः=प्रसिद्ध
+ त्वम्=आप
नः=हमसे
ब्रूहि=उसके आयतन और प्रतिष्ठा को उपदेश करें
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
+ आह=कहा
श्रोत्रम्=श्रोत्र इन्द्रिय
एव=ही
आयतनम्=आश्रय है
आकाशः=ब्रह्म
प्रतिष्ठा=प्रतिष्ठा है
एतत्=यह श्रोत्ररूप
ब्रह्म=ब्रह्म
अनन्तः=अनन्त है
इति=ऐसा
मत्वा=मानकर
उपासीत=उपासना करे
+ जनकः=राजा जनक ने
+ आह=कहा
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
अनन्तता=अनन्तता
का=क्या है
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
उवाच=उत्तर दिया
सम्राट्=हे राजन् !
दिशः=दिशा
एव=ही
अनन्तता=अनन्तता है

तस्मात्=इसीसे
सम्राट्=हे राजन् !
याम्=जिस
काम्=किसी
दिशम्=दिशाको
गच्छति=आदमी जाता है
अस्याः=उस दिशा के
अन्तम्=अन्त को
न एव=नहीं
गच्छति=पहुँचता है
हि=क्योंकि
दिशः=दिशा
अनन्ताः=अनन्त हैं
सम्राट्=हे जनक !
दिशः=दिशा
श्रोत्रम्=कर्ण हैं
सम्राट्=हे राजन् !
श्रोत्रम्=कर्ण ही
परमम्=परम
ब्रह्म=ब्रह्म है
इति=ऐसे
एनम्=ब्रह्मवेत्ता को
श्रोत्रम्=कर्ण
न=नहीं
जहाति=त्यागता है
एनम्=इस ब्रह्मवेत्ता को
सर्वाणि=सब
भूतानि=प्राणी
अभिक्षरन्ति=रक्षा करते हैं
च=और
यः=जो
विद्वान्=विद्वान्

एवम्=कहे हुये प्रकार
एतत्=इस ब्रह्मकी
उपास्ते=उपासना करता है,
सः=वह
देवः=देवता
भूत्वा=होकर
देवान्=देवताओं को
अपि=ही मरने बाद
एति=प्राप्त होता है
वैदेहः=विदेहपति
जनकः=जनक ने
इति=ऐसा
श्रुत्वा=सुनकर
उवाच=कहा कि
हस्त्यृषभम्=हाथी के समान एक बैल सहित
सहस्रम्=एक हजार गौओं को
ददामि=दक्षिणा में आपको देता हूं
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
उवाच=कहा कि
मे=मेरे
पिता=पिता
अमन्यत=आज्ञा देगये हैं कि
शिष्यम्=शिष्य को
अननुशिष्य=बोध कराये विना
न हरेत इति=दक्षिणा नहीं लेना चाहिये

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज राजा जनक से फिर पूछते हैं कि, जिस किसी आचार्य ने आपसे जो कुछ कहा है उसको मैं सुनना चाहता हूं, इस पर जनक महाराज ने कहा कि, भारद्वाज गोत्रवाले गर्दभीविपीत आचार्य ने मुझसे कहा है कि श्रोत्रही ब्रह्म है, तब याज्ञवल्क्य महाराज ने कहा कि गर्दभीविपीत आचार्य ने वैसेही प्रेम के साथ आपको उपदेश किया है जैसे कोई पुरुष माता पिता गुरु करके सुशिक्षित होता हुआ अपने शिष्य प्रति उपदेश करता है, हे राजा जनक ! निस्सन्देह श्रोत्र इन्द्रिय ब्रह्म है, क्योंकि न सुननेवाले पुरुष को क्या लाभ होसक्ता है, फिर याज्ञवल्क्य महाराज पूछते हैं कि हे जनक ! क्या तुम से गर्दभीविपीत आचार्य ने श्रोत्रात्मक ब्रह्मकी उपासना का आयतन और प्रतिष्ठा भी कही है, इसके उत्तर में जनक महाराज कहते हैं कि, हे याज्ञवल्क्य, महाराज ! उन्होंने मुझसे यह नहीं कहा है, इस पर याज्ञवल्क्य ने कहा यह ब्रह्मकी उपासना एक चरणवाली

है, तब जनक महाराज ने कहा कि आप हमारे पूज्य आचार्य हैं, आप कृपा करके श्रोत्रब्रह्म के आयतन और प्रतिष्ठा का उपदेश देवें, तब याज्ञवल्क्य महाराज ने कहा कि श्रोत्र इन्द्रिय का आयतन श्रोत्र इन्द्रियही है, और परमात्मा उसका आश्रय है इस श्रोत्र ब्रह्मको अनन्त मान कर उपासना करे, जनक महाराज ने पूछा कि इसकी अनन्तता क्या है, याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं, हे राजन् ! इसकी अनन्तता दिशा हैं, क्योंकि जो कोई जिस किसी देश को जाता है उस देश का अन्त नहीं पाता है, इस लिये दिशायें अनन्त हैं, हे जनक ! दिशा श्रोत्र हैं, और श्रोत्र परम ब्रह्म है, ऐसा जो जानता है उस ब्रह्मवेत्ता को श्रोत्र नहीं त्यागता है, उस ब्रह्मवेत्ता की सब प्राणी रक्षा करते हैं, और जो विद्वान् इस कहे हुये प्रकार ब्रह्मकी उपासना करता है वह देवता होकर देवताओं कोही बाद मरने के प्राप्त होता है, ऐसा सुनकर विदेहपति जनक ने कहा कि, हे याज्ञवल्क्य, महाराज ! मैं आपको एक सहस्र गौओं को हाथी के समान सांड़ सहित देता हूं, इस पर याज्ञवल्क्य महाराज ने कहा कि, हे जनक ! मेरे पिता आज्ञा दे गये हैं कि शिष्य को विना बोध कराये दक्षिणा न लेना चाहिये ॥ ५ ॥

मन्त्रः ६

यदेव ते कश्चिदब्रवीत्तच्छृणवामेत्यब्रवीन्मे सत्यकामो जाबालो मनो वै ब्रह्मेति यथा मातृमान् पितृमानाचार्यवान्ब्रूयात्तथा तज्जाबालोऽब्रवीन्मनो वै ब्रह्मेत्यमनसो हि किꣳ स्यादित्यब्रवीत्तु ते तस्यायतनं प्रतिष्ठां न मेऽब्रवीदित्येकपाद्वा एतत्सम्राडिति स वै नो ब्रूहि याज्ञवल्क्य मन एवायतनमाकाशः प्रतिष्ठानन्द इत्येनदुपासीत कानन्दता याज्ञवल्क्य मन एव सम्राडिति होवाच मनसा वै सम्राट् स्त्रियमभिहार्यते तस्यां प्रतिरूपः पुत्रो जायते स आनन्दो मनो वै सम्राट् परमं ब्रह्म नैनं मनो जहाति सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति देवो भूत्वा देवानप्येति य एवं विद्वानेतदुपास्ते हस्त्यृषभꣳ सहस्रं

ददामीति होवाच जनको वैदेहः स होवाच याज्ञवल्क्यः पिता मेऽम-न्यत नाननुशिष्य हरेतेति ॥

पदच्छेदः ।

यत्, एव, ते, कश्चित्, अब्रवीत्, तत्, शृणवाम, इति, अब्रवीत्, मे, सत्यकामः, जाबालः, मनः, वै, ब्रह्म, इति, यथा, मातृमान्, पितृमान्, आचार्यवान्, ब्रूयात्, तथा, तत्, जाबालः, अब्रवीत्, मनः, वै, ब्रह्म, इति, अमनसः, हि, किम्, स्यात्, इति, अब्रवीत्, तु, ते, तस्य, आयतनम्, प्रतिष्ठाम्, न, मे, अब्रवीत्, इति, एकपाद्, वा, एतत्, सम्राट्, इति, सः, वै, नः, ब्रूहि, याज्ञवल्क्य, मनः, एव, आयतनम्, आकाशः, प्रतिष्ठा, आनन्दः, इति, एनत्, उपासीत, का, आनन्दता, याज्ञवल्क्य, मनः, एव, सम्राट्, इति, ह, उवाच, मनसा, वै, सम्राट्, स्त्रियम्, अभिहार्यते, तस्याम्, प्रतिरूपः, पुत्रः, जायते, सः, आनन्दः, मनः, वै, सम्राट्, परमम्, ब्रह्म, न, एनम्, मनः, जहाति, सर्वाणि, एनम्, भूतानि, अभिक्षरन्ति, देवः, भूत्वा, देवान्, अपि, एति, यः एवम्, विद्वान्, एतत्, उपास्ते, हस्त्यृषभम्, सहस्रम्, ददामि, इति, ह, उवाच, जनकः, वैदेहः सः, ह, उवाच, याज्ञवल्क्यः, पिता, मे, अमन्यत, न, अननुशिष्य, हरेत, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ राजन्	हे राजा जनक !
यत्	जो कुछ
कश्चित्	किसी आचार्य ने
ते	आपसे
अब्रवीत्	कहा है
तत्	उसको
शृणवाम	मैं सुनना चाहता हूं
इति	इस पर
+ जनकः	राजा जनक ने
+ आह	कहा कि
जाबालः	जबल का पुत्र
सत्यकामः	सत्यकामने
मे	मुझसे
अब्रवीत्	कहा कि
मनः वै	मनही
ब्रह्म	ब्रह्म है
इति	इस पर
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
+ उवाच	कहा कि
यथा	जैसे

मातृमान्, पितृमान्, आचार्यवान्=माता, पिता, गुरु करके सुशिक्षित पुरुष
शिष्याय=अपने शिष्य से
ब्रूयात्=कहता है
तथा=वैसेही
तत्=उस ब्रह्मकी उपासना को
जाबालः=सत्यकामने आपसे
अब्रवीत्=कहा है
वै=निश्चय करके
मनः=मन
ब्रह्म=ब्रह्म है
हि=क्योंकि
अमनसः=मनरहित पुरुष से
किम्=क्या लाभ
स्यात्=होसक्ता है
+ पुनः=फिर
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
+ आह=कहा
+ जनक=हे जनक !
तु=क्या
ते=आपसे
तस्य=उस ब्रह्म के
आयतनम्=आयतन और
प्रतिष्ठाम्=प्रतिष्ठा को भी
अब्रवीत्=सत्यकामने कहा है
+ जनकः=जनक ने
+ आह=कहा
+ याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
मे=मुझसे
न=नहीं
अब्रवीत्=कहा है
इति=इस पर
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
+ आह=कहा
सम्राट्=हे जनक !
एतत्=यह ब्रह्मकी उपासना
एकपाद्=एक चरणवाली है
इति=ऐसा
श्रुत्वा=सुनकर
+ जनकः=जनक ने
+ आह=कहा
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
सः=वह
+ त्वम्=आप
नः=हमको
ब्रूहि=विधिपूर्वक उपदेशकरें
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
आह=कहा
+ मनः=मन
+ एव=ही
आयतनम्=ब्रह्म का शरीर है
आकाशः=आकाश ही
प्रतिष्ठा=आश्रय है
मनः=मन
एव=ही
आनन्दः=आनन्द है
इति=इसी बुद्धि से
एनत्=इस ब्रह्म की
उपासीत=उपासना करे
सम्राट्=राजा जनक ने
उवाच=पूछा
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !

आनन्दता=आनन्द
का=क्या है
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
उवाच=उत्तर दिया
सम्राट्=हे जनक !
मनः=मन
एव=ही
आनन्दः=आनन्द है
+ हि=क्योंकि
सम्राट्=हे जनक !
मनसा=मन करके ही
स्त्रियम्=स्त्री के पास
अभिहार्यते=पुरुषलेजायाजाताहै
तस्याम्=उसी स्त्री में
प्रतिरूपः=पिता के सदृश
पुत्रः=लड़का
जायते=पैदा होता है
सः=वह लड़का
आनन्दः=आनन्द का कारण होता है
सम्राट्=हे राजन् !
मनः=मन
वै=ही
परमम्=परम
ब्रह्म=ब्रह्म है
यः=जो
एवम्=इस प्रकार
विद्वान्=जानता हुआ
एतत्=इस ब्रह्म की
उपास्ते=उपासना करता है
एनम्=उसको
मनः=मन
न=नहीं
जहाति=त्यागता है
एनम्=उस ब्रह्मवेत्ता को
सर्वाणि=सब
भूतानि=प्राणी
अभिक्षरन्ति=रक्षा करते हैं
च=और
सः=वह
देवः=देव
भूत्वा=होकर
देवान् अपि=देवताओं को ही
एति=प्राप्त होता है
इति=ऐसा
श्रुत्वा=सुनकर
वैदेहः=विदेहपति
जनकः=जनक
उवाच=बोले कि
हस्त्यृषभम् सहस्रम् = हाथीकेतुल्यएकसांड़ सहितहजारगौओंको
ददामि=मैं दक्षिणामें आपको देता हूं
इति=इस पर
सः=वह
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य
+ उवाच=बोले कि
+ सम्राट्=हे राजन् !
मे=हमारे
पिता=पिता
अमन्यत=कह गये हैं कि
+ शिष्यम्=शिष्य को
अननुशिष्य=बोध कराये विना
दक्षिणाम्=दक्षिणा को

इति=कभी न=नहीं	हरेत इति=लेना चाहिये

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज छठीं बार राजा जनक से पूछते हैं कि हे राजा जनक ! जिस किसी आचार्य ने आपसे जो कुछ कहा है उसको मैं सुनना चाहता हूं, यह सुनकर राजा जनक ने कहा कि जाबाल के पुत्र सत्यकाम ने कहा है कि मनही ब्रह्म है, इस पर याज्ञवल्क्य ने कहा यह ठीक है, आपको सत्यकाम ने वैसेही उपदेश दिया है जैसे कोई पुरुष माता पिता गुरु करके सुशिक्षित हुआ अपने शिष्य प्रति उपदेश करता है, निस्संदेह मनही ब्रह्म है, क्योंकि मनरहित पुरुष से क्या लाभ होसक्ता है, फिर याज्ञवल्क्य महाराज ने कहा हे सम्राट् जनक ! क्या आपसे सत्यकाम ने उस ब्रह्म के आयतन और प्रतिष्ठा को भी कहा है, सम्राट् ने उत्तर दिया कि मुझसे उन्होंने नहीं कहा, इस पर याज्ञवल्क्य ने जनक से कहा कि हे राजन् ! यह ब्रह्मकी उपासना एक चरणवाली है, पूरी नहीं है, ऐसा सुनकर जनक ने कहा हे प्रभो ! आपही हमको विधिपूर्वक उपदेश करें, याज्ञवल्क्य ने कहा सुनो कहता हूं मनही ब्रह्म का शरीर है, यानी रहने की जगह है, आकाश अथवा परमात्मा उसका आश्रय है, मनही आनन्द है, ऐसा जानकर इस ब्रह्मकी उपासना करे, राजा जनक ने फिर पूछा कि हे याज्ञवल्क्य ! आनन्द क्या है, याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया हे राजन् ! मनही आनन्द है, क्योंकि मनही की प्रेरणा करके पुरुष स्त्री के पास जाता है, उस स्त्री मेंही पिता के सदृश लड़का पैदा होता है, हे राजन् ! मनही परम ब्रह्म है, जो पुरुष इस प्रकार जानता हुआ ब्रह्मकी उपासना करता है, उसको मन नहीं त्यागता है, उस ब्रह्मवेत्ता की सब प्राणी रक्षा करते हैं, वह देव होकर देवता को ही प्राप्त होता है, ऐसा सुनकर विदेहपति जनक बोले हाथी के तुल्य एक सांड़ सहित हजार गौओं को

आपको दक्षिणा में देता हूं, इस पर याज्ञवल्क्य महाराज ने कहा हे राजन्! मेरे पिता कह गये हैं कि विना शिष्य को बोध कराय दक्षिणा कभी न लेना चाहिये ॥ ६ ॥

मन्त्रः ७

यदेव ते कश्चिदब्रवीत् तच्छृणवामेत्यब्रवीन्मे विदग्धः शाकल्यो हृदयं वै ब्रह्मेति यथा मातृमान् पितृमानाचार्यवान्ब्रूयात्तथा तच्छाकल्योऽब्रवीद्धृदयं वै ब्रह्मेत्यहृदयस्य हि किꣳ स्यादित्यब्रवीत्तु ते तस्यायतनं प्रतिष्ठां न मेऽब्रवीदित्येकपाद्वा एतत्सम्राडिति स वै नो ब्रूहि याज्ञवल्क्य हृदयमेवायतनमाकाशः प्रतिष्ठा स्थितिरित्येनदुपासीत का स्थितता याज्ञवल्क्य हृदयमेव सम्राडिति होवाच हृदयं वै सम्राट् सर्वेषां भूतानामायतनꣳ हृदयं वै सम्राट् सर्वेषां भूतानां प्रतिष्ठा हृदये ह्येव सम्राट् सर्वाणि भूतानि प्रतिष्ठितानि भवन्ति हृदयं वै सम्राट् परमं ब्रह्म नैनꣳ हृदयं जहाति सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति देवो भूत्वा देवानप्येति य एवं विद्वानेतदुपास्ते हस्त्यृषभꣳ सहस्रं ददामीति होवाच जनको वैदेहः स होवाच याज्ञवल्क्यः पिता मेऽमन्यत नाननुशिष्य हरेतेति ॥

इति प्रथमं ब्राह्मणम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

यत्, एव, ते, कश्चित्, अब्रवीत्, तत्, शृणवाम, इति, अब्रवीत्, मे, विदग्धः, शाकल्यः, हृदयम्, वै, ब्रह्म, इति, यथा, मातृमान्, पितृमान्, आचार्यवान्, ब्रूयात्, तथा, तत्, शाकल्यः, अब्रवीत्, हृदयम्, वै, ब्रह्म, इति, अहृदयस्य, हि, किम्, स्यात्, इति, अब्रवीत्, तु, ते, तस्य, आयतनम्, प्रतिष्ठाम्, न, मे, अब्रवीत्, इति, एकपाद्, वा, एतत्, सम्राट्, इति, सः, वै, नः, ब्रूहि, याज्ञवल्क्य, हृदयम्, एव, आयतनम्, आकाशः, प्रतिष्ठा, स्थितिः, इति, एनत्, उपासीत, का, स्थितता, याज्ञवल्क्य, हृदयम्, एव, सम्राट्, इति, ह, उवाच, हृदयम्, वै, सम्राट्, सर्वेषाम्, भूतानाम्, आयतनम्, हृदयम्, वै, सम्राट्, सर्वे-

याम्, भूतानाम्, प्रतिष्ठा, हृदये, हि, एव, सम्राट्, सर्वाणि, भूतानि, प्रतिष्ठितानि, भवन्ति, हृदयम्, वै, सम्राट्, परमम्, ब्रह्म, न, एनम्, हृदयम्, जहाति, सर्वाणि, एनम्, भूतानि, अभिक्षरन्ति, देवः, भूत्वा, देवान्, अपि, एति, यः, एवम्, विद्वान्, एतत्, उपास्ते, हस्त्यृषभम्, सहस्रम्, ददामि, इति, ह, उवाच, जनकः, वैदेहः, सः, ह, उवाच, याज्ञवल्क्यः, पिता, मे, अमन्यत, न, अननुशिष्य, हरेत, इति ॥

अन्वयः पदार्थाः

+ राजन्=हे जनक !
यत्=जो कुछ
कश्चित्=किसी आचार्य ने
ते=आपसे
अब्रवीत्=कहा है
तत्=उसको
शृणवाम=मैं सुनना चाहता हूं
इति=इस पर
जनकः=जनक ने
आह=कहा
शाकल्यः=शकल के पुत्र
विदग्धः=विदग्ध ने
मे=मुझसे
अब्रवीत्=कहा है कि
हृदयम् वै=हृदयही
ब्रह्म=ब्रह्म है
+ इति श्रुत्वा=ऐसा सुनकर
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
+ उवाच=कहा
यथा=जैसे
मातृमान् पितृमान् आचार्यवान्=माता, पिता, गुरु करके सुशिक्षित पुरुष

अन्वयः पदार्थाः

+ शिष्याय=अपने शिष्य से
ब्रूयात्=कहता है
तथा=तैसेही
तत्=उसको यानी हृदयस्थ ब्रह्मकी उपासना को
शाकल्यः=शकल के पुत्र विदग्ध ने
अब्रवीत्=आपसे कहा है
वै=निश्चय करके
हृदयम्=हृदय
वै=ही
ब्रह्म=ब्रह्म है
हि=क्योंकि
अहृदयस्य=हृदय रहित पुरुष को
किम्=क्या लाभ
स्यात्=होसक्ता है
पुनः=फिर
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
+ आह=कहा कि
+ जनक=हे जनक !
तु=क्या
ते=आपसे
तस्य=उस ब्रह्म के

आयतनम्=आयतन और
प्रतिष्ठाम्=प्रतिष्ठा को भी
अब्रवीत्=विदग्ध ने कहा है
+ जनकः=जनक ने
+ आह=कहा
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
मे न=मुझसे नहीं
अब्रवीत्=कहा है
इति=इस पर
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
आह=कहा
सम्राट्=हे जनक !
एतत्=यह ब्रह्मकी उपासना
एकपाद्=एक चरण वाली है
इति=इस पर
+ जनकः=जनक ने
+ आह=कहा
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
सः + त्वम्=आपही
+ तत्=उस उपासना को
नः=हमसे
ब्रूहि=कहें
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
+ आह=कहा
हृदयम्=हृदय
एव=ही
आयतनम्=आयतन है
आकाशः=परमात्माही
प्रतिष्ठा=आश्रय है
एनत्=यही ब्रह्म
स्थितिः=स्थिति है यानी
परम स्थान है

इति=ऐसी
एनत्=इस हृदयस्थ ब्रह्मकी
उपासीत=उपासना करे
सम्राट्=जनक ने
उवाच=कहा
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
स्थितता=स्थिति
का=क्या वस्तु है
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
उवाच=कहा
सम्राट्=हे राजन् !
हृदयम्=हृदय
एव=ही
+ एतस्य=इसकी
+ स्थितता=स्थिति है
हि=क्योंकि
सम्राट्=हे राजन् !
सर्वेषाम्=सब
भूतानाम्=प्राणियों का
आयतनम्=स्थान
हृदयम्=हृदय है
सम्राट्=हे राजन् !
हृदयम्=हृदय
वै=ही
सर्वेषाम्=सब
भूतानाम्=प्राणियों का
प्रतिष्ठा=आश्रय है
हि=क्योंकि
सम्राट्=हे जनक !
सर्वाणि=सब
भूतानि=प्राणी
हृदये=हृदय में

एव=ही
प्रतिष्ठितानि=स्थित
भवन्ति=हैं
सम्राट्=हे जनक !
हृदयम्=हृदय
वै=निस्सन्देह
परमम्=परम
ब्रह्म=ब्रह्म है
यः=जो
एवम्=इस प्रकार
विद्वान्=जानता हुआ
एतत्=इस ब्रह्म की
उपास्ते=उपासना करता है
एनम्=उसको
हृदयम्=हृदयात्मक ब्रह्म
न=नहीं
जहाति=त्यागता है
एनम्=इस ब्रह्मवेत्ता को
सर्वाणि=सब
भूतानि=प्राणी
अभिक्षरन्ति=रक्षा करते हैं
+ च=और
+ सः=वह
देवः=देवता
भूत्वा=होकर
देवान्=देवताओं को
अपि=ही
एति=प्राप्त होता है
इति=इस पर
वैदेहः=विदेहपति
जनकः=जनक
उवाच=बोले कि
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
हस्त्यृषभम्=हाथी के समान एक साँड़ सहित
सहस्रम्=हजार गौओं को
ददामि त्वाम्=दक्षिणा में आपको देता हूं
सः=वह
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य
उवाच=बोले कि
मे=हमारे
पिता=पिता
इति=ऐसा
अमन्यत=कह गये हैं कि
+ शिष्यम्=शिष्य को
अननुशिष्य=बोध कराये विना
+ दक्षिणाम्=दक्षिणा
न=नहीं
हरेत=ग्रहण करना चाहिये

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज सातवींबार राजा जनक से कहते हैं कि, जो कुछ किसी आचार्य ने आपसे कहा है उसको मैं सुनना चाहता हूं. इस पर राजा जनक ने कहा, शकल के पुत्र विदग्ध ने मुझसे कहा है कि हृदय ही ब्रह्म है, ऐसा सुनकर याज्ञवल्क्य ने कहा उन्हों ने ठीक

कहा है, जैसे कोई माता, पिता और गुरु करके सुशिक्षित पुरुष अपने प्रिय शिष्य प्रति उपदेश करता है वैसेही उन्होंने आपके प्रति कहा है, निस्सन्देह हृदयही ब्रह्म है, क्योंकि हृदयरहित पुरुष को क्या लाभ होसक्ता है, फिर याज्ञवल्क्य ने कहा कि हे जनक ! क्या आपसे विदग्ध आचार्य ने उस हृदय के आयतन और प्रतिष्ठा को भी कहा है ? जनक महाराज ने कहा, हे प्रभो ! उन्हों ने मुझसे यह नहीं कहा है, तब याज्ञवल्क्य ने कहा यह ब्रह्मकी उपासना एक चरण वाली है, पूरी नहीं है, इस पर जनक ने कहा हे हमारे पूज्य याज्ञवल्क्य, ब्रह्म-ऋषि ! आपही हमको उपदेश करें, याज्ञवल्क्य महाराज ने कहा सुनो, हृदयही उसका आयतन है, और आकाश अथवा परमात्माही उसका आश्रय है, यही ब्रह्मस्थिति है, यानी परम स्थान है, ऐसी बुद्धि करके इस हृदयस्थ ब्रह्मकी उपासना करे, ऐसा सुनकर जनक महाराज ने कहा हे याज्ञवल्क्य ! स्थिति क्या वस्तु है ? याज्ञवल्क्य ने कहा, हे राजन् ! हृदयही इसकी स्थिति है, क्योंकि सब प्राणियों का स्थान हृदयही है, हे राजन् ! हृदयही सब प्राणियों का आश्रय है, क्योंकि हे राजा जनक ! सब प्राणी हृदय में ही स्थित हैं, हे जनक ! हृदय निस्सन्देह परमब्रह्म है, जो विद्वान् इस प्रकार जानता हुआ इस ब्रह्मकी उपासना करता है, उसको हृदयात्मक ब्रह्म नहीं त्यागता है, इस ब्रह्म-वेत्ता की सब प्राणी रक्षा करते हैं, वह देवताओं को प्राप्त होता है, इस पर विदेहपति जनक बोले कि मैं आपको हाथी के समान एक सांड़ सहित एक हजार गौओं को दक्षिणा में देता हूं, याज्ञवल्क्य महाराज ने कहा कि मेरे पिता कह गये हैं कि शिष्य को विना बोध कराये दक्षिणा नहीं ग्रहण करना चाहिये ॥ ७ ॥

इति प्रथमं ब्राह्मणम् ॥ १ ॥

अथ द्वितीयं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

जनको ह वैदेहः कूर्चादुपावसर्पन्नुवाच नमस्तेऽस्तु याज्ञवल्क्यानुमाशाधीति स होवाच यथा वै सम्राण्महान्तमध्वानमेष्यन्रथं वा नावं वा समाददीतैवमेवैताभिरुपनिषद्भिः समाहितात्मास्येवं वृन्दारक आढ्यः सन्नधीतवेद उक्तोपनिषत्क इतो विमुच्यमानः क गमिष्यसीति नाहं तद्भगवन् वेद यत्र गमिष्यामीत्यथ वै तेऽहं तद्वक्ष्यामि यत्र गमिष्यसीति ब्रवीतु भगवानिति ॥

पदच्छेदः ।

जनकः, ह, वैदेहः, कूर्चात्, उपावसर्पन्, उवाच, नमः, ते, अस्तु, याज्ञवल्क्य, अनुमाशाधि, इति, सः, ह, उवाच, यथा, वै, सम्राट्, महान्तम्, अध्वानम्, एष्यन्, रथम्, वा, नावम्, वा, समाददीत, एवम्, एव, एताभिः, उपनिषद्भिः, समाहितात्मा, असि, एवम्, वृन्दारकः, आढ्यः, सन्, अधीतवेदः, उक्तोपनिषत्कः, इतः, विमुच्यमानः, क, गमिष्यसि, इति, न, अहम्, तत्, भगवन्, वेद, यत्र, गमिष्यामि, इति, अथ, वै, ते, अहम्, तत्, वक्ष्यामि, यत्र, गमिष्यसि, इति, ब्रवीतु, भगवान्, इति ॥

अन्वयः पदार्थाः	अन्वयः पदार्थाः
वैदेहः=विदेहपति	मा=मुझको
जनकः=राजा जनक	+ त्वम्=आप
कूर्चात्=सिंहासन से उठकर	अनुशाधि=उपदेश दें
उपावसर्पन्=याज्ञवल्क्य के पास जाकर	इति=तब
उवाच=बोले कि	सः=वह याज्ञवल्क्य
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !	उवाच=बोले कि
ते=आपके लिये	सम्राट्=हे राजन् !
नमः=मेरा नमस्कार	यथा=जैसे
अस्तु=होवे	महान्तम्=बहुत दूर
	अध्वानम्=मार्ग का

प्रयन्=जानेवाला पुरुष
रथम्=रथ
वा=या
नावम्=नाव को
समाददीत=ग्रहण करता है
एवम् एव=उसी प्रकार
एताभिः=इन कहे हुये
उपनिषद्भिः=ज्ञान विज्ञान करके
समाहितात्मा=आपका आत्मा
असि=संयुक्त है
+ च=और
एवम्=वैसेही
त्वम्=आप
वृन्दारकः=लोगोंकरकेपूज्यऔर
आढ्यः=धनाढ्य
सन्=होने पर भी
अधीतवेदः=वेदों को पढ़े हो
उक्तोपनिषत्कः=उपनिषदों का ज्ञान आपसे कहा गयाहै
+ ब्रूहि=तुम कहो कि
इतः=इस देह से
मुच्यमानः=मुक्त होते हुये
क=कहां को
गमिष्यसि=जावोगे
इति=इस पर
+ जनकः=जनक ने
+ आह=कहा
भगवन्=हे पूज्य याज्ञवल्क्य!
यत्र=जहां
गमिष्यामि=मैं जाऊंगा
तत्=उसको
अहम्=मैं
न=नहीं
वेद=जानता हूं
अथ=तब
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
उवाच=जवाब दिया कि
तत्=उसको
ते=आपसे
वै=अवश्य
वक्ष्यामि=मैं कहूंगा
यत्र=जहां
गमिष्यसि=आप जायँगे
इति=इस पर
जनकः=जनक ने
आह=कहा
भगवान्=हे भगवन्!
+ त्वम्=आप
इति=ऐसा अवश्य
ब्रवीतु=कहें

भावार्थ ।

विदेहपति राजा जनक महाराज सिंहासन से उठकर याज्ञवल्क्य महाराज के पास जाकर बोले कि, हे याज्ञवल्क्य, महाराज! आपको मेरा नमस्कार होवे, मुझको आप कृपा करके उपदेश देवें, इसके उत्तर में याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे राजन्! जैसे बहुत दूर मार्ग का चलने वाला पुरुष रथ या नाव को ग्रहण करता यानी आश्रय

लेता है उसी प्रकार इन कहे हुये ज्ञान विज्ञान करके आपका आत्मा संयुक्त है, और लोगों करके पूज्य और धनाढ्य होने पर भी वेदों को आपने पढ़ा है, और ऋषि लोगों ने उपनिषदों का ज्ञान आपसे कहा है, आप बताइये इस देह को त्यागते हुये कहां को जाओगे, इस पर राजा जनक ने कहा हे पूज्य, याज्ञवल्क्य, महाराज ! जहां मैं जाऊंगा उसको मैं नहीं जानता हूं तब याज्ञवल्क्य महाराज ने कहा उसको मैं आपसे अवश्य कहूंगा जहां आप जायँगे. इसको सुनकर राजा जनक ने कहा, हे भगवन् ! आप उसको अवश्य कहें ॥ १ ॥

मन्त्रः २

इन्धो ह वै नामैष योयं दक्षिणेक्षन्पुरुषस्तं वा एतमिन्धꣳ सन्तमिन्द्र इत्याचक्षते परोक्षेणैव परोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः ॥

पदच्छेदः ।

इन्धः, ह, वै, नाम, एषः, यः, अयम्, दक्षिणे, अक्षन्, पुरुषः, तम्, वा, एतम्, इन्धम्, सन्तम्, इन्द्रः, इति, आचक्षते, परोक्षेण, एव, परोक्षप्रियाः, इव, हि, देवाः, प्रत्यक्षद्विषः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
यः=जो		सन्तम्=सत्य	
अयम्=यह		पुरुषम्=पुरुष	
दक्षिणे=दहिने		इन्धम्=इन्ध को	
अक्षन्=आंख में		इन्द्रः=इन्द्र	
पुरुषः=पुरुष है		इति=करके	
एषः ह=यही		परोक्षेण=परोक्ष नाम से	
वै=निस्सन्देह		एव=ही	
इन्धः नाम=इन्ध नाम से प्रसिद्ध है		आहुः=पुकारते हैं	
तम्=उसी		हि=क्योंकि	
वै=प्रसिद्ध		देवाः=देवगण	
एतम्=इस			

परोक्षप्रियाः इव =परोक्ष प्रिय
+ सन्तः=होते हैं
+ च=और

प्रत्यक्षद्विषः=प्रत्यक्ष वस्तु से द्वेष करने वाले
+ भवन्ति=होते हैं

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे जनक ! जो यह दहिनी आंख में पुरुष दीखता है वह इन्ध नामसे प्रसिद्ध है, इसी इन्धको परोक्ष नाम इन्द्र करके पुकारते हैं, क्योंकि देवगण परोक्षप्रिय होते हैं, और प्रत्यक्षप्रिय नहीं होते हैं, जो गुप्त अथवा अव्यक्त है (स्पष्ट न हो उसको परोक्ष कहते हैं, और जो व्यक्त हो अथवा स्पष्ट हो अथवा प्रसिद्ध हो उसको प्रत्यक्ष कहते हैं) वेदों में इन्द्र नाम बहुधा आया है, इन्ध ऐसा नाम नहीं आया है, इन्ध गुप्त नाम है, इसीसे इसकी शोभा है, इसी प्रकार जीवात्मा भी शरीर में गुप्त व्यापक है, इसी कारण वह भी शोभायमान है, परमात्मा भी जगत्रूपी महाशरीर में गुप्त व्यापक है, इस लिये वह भी बड़ी शोभा का देनेवाला है, इसी परमात्मा के निकट अपृथक् जो आत्मा है और वह हृदयाकाश विषे स्थित है उसी के पास आपको जाना होगा ॥ २ ॥

मन्त्रः ३

अथैतद्वामेऽक्षणि पुरुषरूपमेषास्य पत्नी विराट् तयोरेष संस्तावो य एषोन्तर्हृदय आकाशोथैनयोरेतदन्नं य एषोन्तर्हृदये लोहितपिण्डोथैनयोरेतत्प्रावरणं यदेतदन्तर्हृदये जालकमिवाथैनयोरेषा सृतिः संचरणी यैषा हृदयादूर्ध्वा नाड्युच्चरति यथा केशः सहस्रधा भिन्न एवमस्यैता हिता नाम नाड्योन्तर्हृदये प्रतिष्ठिता भवन्त्येताभिर्वा एतदास्रवदास्रवति तस्मादेष प्रविविक्ताहारतर इवैव भवत्यस्माच्छारीरादात्मनः ॥

पदच्छेदः ।

अथ, एतत्, वामे, अक्षणि, पुरुषरूपम्, एषा, अस्य, पत्नी, विराट्,

तयोः, एषः, संस्तावः, यः, एषः, अन्तर्हृदये, आकाशः, अथ, एनयोः, एतत्, अन्नम्, यः, एषः, अन्तर्हृदये, लोहितपिण्डः, अथ, एनयोः, एतत्, प्रावरणम्, यत्, एतत्, अन्तर्हृदये, जालकम्, इव, अथ, एनयोः, एषा, सृतिः, संचरणी, या, एषा, हृदयात्, ऊर्ध्वा, नाड़ी, उच्चरति, यथा, केशः, सहस्रधा, भिन्नः, एवम्, अस्य, एताः, हिताः, नाम, नाड्यः, अन्तर्हृदये, प्रतिष्ठिताः, भवन्ति, एताभिः, वा, एतत्, आस्रवत्, आस्रवति, तस्मात्, एषः, प्रविविक्ताहारतरः, इव, एव, भवति, अस्मात्, शारीरात्, आत्मनः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
अथ	इसके उपरान्त
यत् एतत्	जो यह
पुरुषरूपम्	पुरुषाकार
वामे	बायें
अक्षणि	नेत्र में
+ अस्ति	प्रतीत होती है
एषा	यह
अस्य	उस पुरुष की
विराट्	विराट् नामक
पत्नी	स्त्री है
+ च	और
यः	जो
एषः	यह
अन्तर्हृदये	हृदय के भीतर
आकाशः	आकाश है
एषः	सोई
तयोः	उन दोनों स्त्री पुरुष के
संस्तावः	मिलापकी जगह है
यः	जो
एषः	यह
अन्तर्हृदये	हृदय के भीतर
लोहितपिण्डः	लाल मांसपिण्ड है
एतत्	यही
एनयोः	इन दोनों का
अन्नम्	अन्न है
अथ	और
यत्	जो
एतत्	यह
अन्तर्हृदये	हृदय के भीतर
जालकम् इव	जालकी तरह फैला चादर है
एतत्	यही
एनयोः	उनका
प्रावरणम्	ओढ़ना है
+ च	और
या	जो
एषा	यह
हृदयात्	हृदय से
ऊर्ध्वा	ऊपर
नाडी	नाड़ी
उच्चरति	जाती है
एषा	यही

अनयोः=इन दोनों के
संचरणी=गमन का
सृतिः=मार्ग है
यथा=जैसे
केशः=एक केश
सहस्रधा=सहस्र
भिन्नः=टुकड़ा किया हुआ
+ सूक्ष्मः=अति सूक्ष्म
+ भवति=होता है
एवम्=इसी तरह
अस्य=इस देह की
हिताः नाम=हित नामवाली
नाड्यः=अतिसूक्ष्म नाड़ियां हैं
अन्तर्हृदये=हृदय के भीतर
प्रतिष्ठिताः=स्थित
भवन्ति=हैं

वै=निश्चय करके
एताभिः=इन नाड़ियों द्वारा
एतत्=यह अन्न रस
आस्रवत्=जाता हुआ
आस्रवति=सब जगह पहुँचता है
तस्मात्=इसी कारण
एषः=यह जीवात्मा
अस्मात्=इस
शारीरात्=शारीरी
आत्मनः=आत्मा से अर्थात् स्थूल देह की अपेक्षा
प्रविविक्ताहारतरः=अतिशुद्धआहारवाला
इव एव=निस्सन्देह
भवति=होता है

भावार्थ ।

इसके उपरान्त यह पुरुषाकार व्यक्ति जो बायें नेत्र में प्रतीत होती है यह उस पुरुष की विराट् नामक स्त्री है, और जो हृदय के भीतर आकाश है सोई दोनों यानी इन्द्र इन्द्राणी के मिलने की जगह है, और जो हृदय के भीतर लाल मांसपिण्ड है वही इन दोनों का अन्न है, और जो हृदय के मध्य में जाल के समान अनेक छिद्र युक्त चादर है यही उन दोनों के ओढ़ने का वस्त्र है, और जो हृदय से ऊपर नाड़ी गई है वही इन दोनों के गमन का मार्ग है, और आगे अनेक नाड़ियों का हाल बताते हैं, जैसे एक केश सहस्र टुकड़ा किया हुआ अतिसूक्ष्म होता है उसी तरह इस देह की हिता नामवाली अति सूक्ष्म नाड़ियां हृदय के भीतर हैं, इन्हीं नाड़ियों के द्वारा अन्नरस को प्राण सब जगह पहुँचाता है, इसी कारण यह जीवात्मा स्थूल देह की अपेक्षा अति शुद्धाहारी प्रतीत होता है ॥ ३ ॥

मन्त्रः ४

तस्य प्राची दिक्प्राञ्चः प्राणा दक्षिणा दिग्दक्षिणे प्राणाः प्रतीची दिक्प्रत्यञ्चः प्राणा उदीची दिगुदञ्चः प्राणा ऊर्ध्वा दिगूर्ध्वाः प्राणा अवाची दिगवाञ्चः प्राणाः सर्वा दिशः सर्वे प्राणाः स एष नेति नेत्यात्माऽगृह्यो न हि गृह्यतेऽशीर्यो न हि शीर्यतेऽसङ्गो न हि सज्यतेऽसितो न व्यथते न रिष्यत्यभयं वै जनक प्राप्तोऽसीति होवाच याज्ञवल्क्यः । स होवाच जनको वैदेहोऽभयं त्वा गच्छताद्याज्ञवल्क्य यो नो भगवन्नभयं वेदयसे नमस्तेऽस्त्विमे विदेहा अयमहमस्मि ॥

इति द्वितीयं ब्राह्मणम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

तस्य, प्राची, दिक्, प्राञ्चः, प्राणाः, दक्षिणा, दिक्, दक्षिणे, प्राणाः, प्रतीची, दिक्, प्रत्यञ्चः, प्राणाः, उदीची, दिक्, उदञ्चः, प्राणाः, ऊर्ध्वा, दिक्, ऊर्ध्वाः, प्राणाः, अवाची, दिक्, अवाञ्चः, प्राणाः, सर्वाः, दिशः, सर्वे, प्राणाः, सः, एषः, न, इति, न, इति, आत्मा, अगृह्यः, न, हि, गृह्यते, अशीर्यः, न, हि, शीर्यते, असङ्गः, न, हि, सज्यते, असितः न, व्यथते, न, रिष्यति, अभयम्, वै, जनक, प्राप्तः, असि, इति, ह, उवाच, याज्ञवल्क्यः, सः, ह, उवाच, जनकः, वैदेहः, अभयम्, त्वा, गच्छतात्, याज्ञवल्क्य, यः, नः, भगवन्, अभयम्, वेदयसे, नमः, ते, अस्तु, इमे, विदेहाः, अयम्, अहम्, अस्मि ॥

अन्वयः	पदार्थाः
तस्य	इस जीवात्मा के
प्राची	पूर्व
दिक्	दिशा में
प्राञ्चः	पूर्वगत
प्राणाः	प्राण हैं
+ तस्य	इस जीवात्मा के
दक्षिणे	दक्षिण दिशा में
दक्षिणाः	दक्षिण दिशा गत
प्राणाः	प्राण हैं
+ तस्य	इस जीवात्मा के
प्रतीची	पश्चिम
दिक्	दिशा में
प्रत्यञ्चः	पश्चिम गत
प्राणाः	प्राण हैं

+ तस्य=इसके
उदीची=उत्तर
दिक्=दिशा में
उदञ्चः=उत्तर गत
प्राणाः=प्राण हैं
+ तस्य=इसके
ऊर्ध्वा=ऊपर की
दिशा=दिशा में
ऊर्ध्वा=ऊपर गत
प्राणाः=प्राण हैं
तस्य=इस जीवात्मा के
अवाची=नीचे की
दिक्=दिशा में
अवाञ्चः=नीचे गत
प्राणाः=प्राण हैं
तस्य=इसके
सर्वाः=सब
दिशः=दिशाओं में
सर्वे=सब गत
प्राणाः=प्राण हैं
सः=वही
एषः=यह
आत्मा=आत्मा
नेति=नेति
नेति=नेति
+ इति=करके
+ उक्तः=कहा गया है
+ सः=वही
अगृह्यः=अग्राह्य है
हि=क्योंकि
+ सः=वह
न=नहीं
गृह्यते=ग्रहणकियाजासक्ताहै
+ सः=वही
अशीर्यः=अक्षय है
हि=क्योंकि
+ सः=वह
न=कभी नहीं
शीर्यते=क्षीण होता है
+ सः=वह
असङ्गः=सङ्ग रहित है
हि=क्योंकि
सः=वह
न=कहीं नहीं
सज्यते=आसक्त होता है
+ सः=वह
असितः=बन्धन रहित है
+ हि=क्योंकि
न=न
सः=वह
व्यथते=पीड़ित होता है
न रिष्यति=न हिंसित होता है
जनक=हे जनक !
वै=निश्चय करके
अभयम्=अभय पद को
प्राप्तः=तुम प्राप्त
असि=हो चुके हो
इति=ऐसा
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
उवाच ह=कहा
ह=तब
वैदेहः=विदेहपति
जनकः=जनक
उवाच=बोले कि

याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !	नमः=नमस्कार
त्वा=आपको भी	अस्तु=होवे
अभयम्=अभय पद	नृपे=हे नृपे !
गच्छतात्=प्राप्त होवे	इमे=यह
भगवन्=हे पूज्य !	विदेहाः=कुल विदेह देश
यः=जो आप	तवप्रति=आपके लिये हैं
नः=हमको	अयम्=यह
अभयम्=अभय ब्रह्म	अहम्=मैं
वेदयसे=सिखलाते हैं	अस्मि=आपका दास हूं
ते=आपके लिये	

भावार्थ ।

इस जीवात्मा की पूर्व दिशा में जो प्राण है वह पूर्व की ओर जाता है, और जो दक्षिण दिशा में प्राण है वह दक्षिण की ओर जाता है, और जो पश्चिम दिशा में प्राण है वह पश्चिम की ओर जाता है, इसके ऊर्ध्व दिशा में जो प्राण है वह ऊपर को जाता है, इसके नीचे की दिशा में जो प्राण है वह नीचे को जाता है, जो सब दिशाओं में प्राण है वह सब तरफ़ जाता है, ऐसी दशा में वह आत्मा वाणी करके नहीं कहा जा सक्ता है, यह आत्मा अगृह्य है, क्योंकि इसका ग्रहण नहीं हो सक्ता है, यह आत्मा अक्षय है, क्योंकि इसका नाश नहीं होता है, यह आत्मा असङ्ग है, क्योंकि इसका संग नहीं होता है, यह आत्मा बन्धरहित है, क्योंकि यह न व्यथित होता है न हिंसित होता है, ऐसा उपदेश देते हुये याज्ञवल्क्य बोले कि, हे राजा जनक ! आप निर्भयता को प्राप्त होगये हैं, जहां जाना था वहां पहुँच गये हैं अब आप क्या चाहते हैं ? इस पर राजा जनक ने कहा, हे याज्ञवल्क्य ! आपको भी अभय पद प्राप्त होवे, हे परम पूज्य ! जो आप हमको अभय ब्रह्म का उपदेश देते हैं, आपको हमारा नमस्कार हो, हे नृपे ! मैं संपूर्ण विदेह देश को आपके चरण कमल में अर्पण

करता हूं, मैं आपका दास उपस्थित हूं, आप जो आज्ञा दें, उसको करने को तैयार हूं ॥ ४ ॥

इति द्वितीयं ब्राह्मणम् ॥ २ ॥

अथ तृतीयं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

जनकꣳ ह वैदेहं याज्ञवल्क्यो जगाम स मेने न वदिष्य इत्यथ ह यज्जनकश्च वैदेहो याज्ञवल्क्यश्चाग्निहोत्रे समूदाते तस्मै ह याज्ञवल्क्यो वरं ददौ स ह कामप्रश्नमेव वव्रे तꣳ हास्मै ददौ तꣳ ह सम्राडेव पूर्वं पप्रच्छ ॥

पदच्छेदः ।

जनकम्, ह, वैदेहम्, याज्ञवल्क्यः, जगाम, सः, मेने, न, वदिष्ये, इति, अथ, ह, यत्, जनकः, च, वैदेहः, याज्ञवल्क्यः, च, अग्निहोत्रे, समूदाते, तस्मै, ह, याज्ञवल्क्यः, वरम्, ददौ, सः, ह, कामप्रश्नम्, एव, वव्रे, तम्, ह, अस्मै, ददौ, तम्, ह, सम्राट्, एव, पूर्वम्, पप्रच्छ ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ कदाचित्	एक समय
याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य
वैदेहम्	विदेहपति
जनकम्	राजा जनक के पास
जगाम	गये
इति	ऐसा
मेने	विचार करते हुये कि आज
+ किंचित्	कुछ
न	नहीं
वदिष्ये	कहूंगा
अथ	पर पहुँचने पर
यत्	जो कुछ
वैदेहः	विदेहपति
जनकः	राजा जनक
ह	श्रद्धापूर्वक
+ पप्रच्छ	पूछते थे
+ तत्	उसको
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य
+ प्रतिपेदे	कहते थे
+ कदाचित्	किसी समय पहिले
अग्निहोत्रे	अग्निहोत्र के विषय में
समूदाते	संवाद करते समय
ह	निश्चय करके

याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य महाराज ने
वरम्=प्रश्न करने का वरदान
ददौ=जनक को दिया
ह=तब
सः=उस राजा जनक ने
कामप्रश्नम्=इच्छानुसार प्रश्न करने का
वव्रे=वरदान मांगा
तदा=तब
अस्मै=उसके लिये
तम्=उस कामप्रश्न वर को
ददौ=याज्ञवल्क्य महाराज देते भये
ह=इसी कारण
सम्राट्=जनक ने
पूर्वम् एव=पहिलेही
पप्रच्छ=बिना आज्ञा पूछना आरंभ किया

भावार्थ।

एक समय याज्ञवल्क्य महाराज यह अपने मनमें ठानकर जनक महाराज के निकट चले कि आज मैं राजा को कुछ भी उपदेश नहीं दूंगा, केवल चुपचाप बैठा हुआ जो कुछ वह कहेंगे उसको सुनता रहूंगा, जब याज्ञवल्क्य महाराज राजा जनक के पास पहुँचे तब जनक ने जीवात्मा के बारे में प्रश्न किया, उसका उत्तर महाराज ने दिया इस पर शंका होती है कि जब याज्ञवल्क्य ने ठान लिया था कि मैं कुछ न कहूँगा तो फिर जनक के प्रश्न का उत्तर क्यों दिया इस शंका का समाधान यों करते हैं कि एक समय जब कर्मकाण्ड में सब कोई प्रवृत्त थे उस समय अग्निहोत्र के विषय में राजा जनक और अन्य राजा याज्ञवल्क्य महाराज और अन्य मुनिगण आपस में संवाद करने लगे, उस समय राजा जनक की निपुणता देख संतुष्ट हो याज्ञवल्क्य मुनि ने राजा से पूछा कि क्या तुम वर मांगते हो, राजा ने काम-प्रश्न रूप वर मांगा अर्थात् जब मैं चाहूं तब आपसे प्रश्न करूं, चाहे आप किसी दशा में हों, यह वर चाहता हूं, इस वरको याज्ञवल्क्य महाराज ने दिया, यह कहते हुये कि हे राजा जनक ! जब तुम चाहो मुझसे प्रश्न कर सक्ते हो, इसी कारण याज्ञवल्क्य महाराज को अपनी इच्छाविरुद्ध बोलना पड़ा ॥ १ ॥

मन्त्रः २

याज्ञवल्क्य किंज्योतिरयं पुरुष इति । आदित्यज्योतिः सम्राडिति होवाचादित्येनैवायं ज्योतिषास्ते पल्ययते कर्म कुरुते विपल्येतीत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य ॥

पदच्छेदः ।

याज्ञवल्क्य, किंज्योतिः, अयम्, पुरुषः, इति, आदित्यज्योतिः, सम्राट्, इति, ह, उवाच, आदित्येन, एव, अयम्, ज्योतिषा, आस्ते, पल्ययते, कर्म, कुरुते, विपल्येति, इति, एवम्, एव, एतत्, याज्ञवल्क्य ॥

अन्वयः	पदार्थाः
याज्ञवल्क्य	हे मुने !
अयम्	यह
पुरुषः	पुरुष यानी यह जीवात्मा
किंज्योतिः इति	किस ज्योति वाला है यानी उसको ज्योति कहां से आती है
+ याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
उवाच	जवाब दिया कि
सम्राट्	हे जनक !
आदित्यज्योतिः	यह पुरुष सूर्य के प्रकाश करके प्रकाश वाला है यानी इसको सूर्य से प्रकाश मिलता है
हि	क्योंकि
अयम्	यह पुरुष
आदित्येन ज्योतिषा	सूर्य के प्रकाश करके ही
आस्ते	बैठता है
पल्ययते	इधर उधर फिरता है
कर्म	कर्म
कुरुते	करता है
विपल्येति	कर्म करके फिर अपने स्थान पर वापस आता है
इति	इसपर
+ जनकः	जनक ने
+ आह	कहा
याज्ञवल्क्य	हे याज्ञवल्क्य !
एतत्	यह
एवम् एव	ऐसेही है यानी ठीक है

भावार्थ ।

राजा जनक प्रश्न करते हैं कि, हे मुने ! जो जीवात्मा शरीर विषे स्थित है, उसको प्रकाश कहां से मिलता है, यानी किसके प्रकाश करके वह प्रकाशित होता है ? इसके उत्तर में याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं

कि, हे जनक ! यह जीवात्मा सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है, यानी सूर्य के प्रकाश करके यह पुरुष अपना सारा काम करता है, इधर उधर बैठता है, और फिरता है, और कर्म करके फिर अपने स्थान को वापस आ जाता है, जनक महाराज ने ऐसा सुनकर कहा कि, यह ऐसाही है जैसा आपने कहा है ॥ २ ॥

मन्त्रः ३

अस्तमित आदित्ये याज्ञवल्क्य किंज्योतिरेवायं पुरुष इति चन्द्रमा एवास्य ज्योतिर्भवतीति चन्द्रमसैवायं ज्योतिषास्ते पल्ययते कर्म कुरुते विपल्येतीत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य ॥

पदच्छेदः ।

अस्तमिते, आदित्ये, याज्ञवल्क्य, किंज्योतिः, एव, अयम्, पुरुषः, इति, चन्द्रमाः, एव, अस्य, ज्योतिः, भवति, इति, चन्द्रमसा, एव, अयम्, ज्योतिषा, आस्ते, पल्ययते, कर्म, कुरुते, विपल्येति, इति, एवम्, एव, एतत्, याज्ञवल्क्य ॥

अन्वयः पदार्थाः

याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
आदित्ये=सूर्य के
अस्तमिते=डूबने पर
अयम्=यह
पुरुषः=पुरुष
एव=निश्चय करके
किंज्योतिः=किस प्रकाश वाला होता है यानी इसको प्रकाश कहां से मिलता है
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य बोले
अस्य=इस पुरुष को
चन्द्रमाः=चन्द्रमा
एव=ही
ज्योतिः=प्रकाश वाला
भवति=होता है यानी इसको प्रकाश चन्द्रमा से मिलता है
इति=क्योंकि
अयम्=यह पुरुष
चन्द्रमसा एव=चन्द्रमा ही के
ज्योतिषा=प्रकाश करके
आस्ते=बैठता है
पल्ययते=इधर उधर घूमता है
कर्म=कर्म
कुरुते=करता है

विपर्ल्येति=कर्म करके अपने स्थान को लौट आता है
इति=इस पर
जनकः=जनक
आह=बोले
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
एतत्=यह बात
एवम् एव=ऐसीही है यानी ठीक है

भावार्थ ।

जनक महाराज प्रश्न करते हैं कि, हे मुने ! जब सूर्य अस्त होजाता है, तब यह पुरुष किस के प्रकाश करके अपना व्यवहार करता है. याज्ञवल्क्य महाराज ने उत्तर दिया कि यह पुरुष चन्द्रमा के प्रकाश से प्रकाश वाला होता है, क्योंकि यह जीवात्मा चन्द्रमा के ही प्रकाश करके बैठता है, इधर उधर फिरता है, कर्म करता है, और कर्म करके अपने स्थान को लौट आता है. यह सुनकर जनक महाराज बोले, हे याज्ञवल्क्य ! यह ऐसाही है जैसा आपने कहा है ॥ ३ ॥

मन्त्रः ४

अस्तमित आदित्ये याज्ञवल्क्य चन्द्रमस्यस्तमिते किंज्योतिरेवायं पुरुष इत्यग्निरेवास्य ज्योतिर्भवतीत्यग्निनैवायं ज्योतिषास्ते पल्ययते कर्म कुरुते विपल्येतीत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य ॥

पदच्छेदः ।

अस्तमिते, आदित्ये, याज्ञवल्क्य, चन्द्रमसि, अस्तमिते, किंज्योतिः, एव, अयम्, पुरुषः, इति, अग्निः, एव, अस्य, ज्योतिः, भवति, इति, अग्निना, एव, अयम्, ज्योतिषा, आस्ते, पल्ययते, कर्म, कुरुते, विपर्ल्येति, इति, एवम्, एव, एतत्, याज्ञवल्क्य ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
याज्ञवल्क्य	हे याज्ञवल्क्य !	अयम्	यह
आदित्ये	सूर्य के	पुरुषः	पुरुष
अस्तमिते	अस्त होने पर	एव	निश्चय करके
चन्द्रमसि	चन्द्रमा के		
अस्तमिते	अस्त होने पर	किंज्योतिः	किस प्रकाश वाला

+ भवति= { होता है यानी किस के प्रकाशसे प्रकाशमान होता है
इति=इस पर
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य
+ आह=बोले
अस्य=इस पुरुष की
ज्योतिः=ज्योति
अग्निः=अग्नि
एव=ही
भवति=होती है
हि=क्योंकि
अयम्=यह पुरुष
अग्निना ज्योतिषा } =अग्नि के प्रकाश करके
एव=ही
आस्ते=बैठता है
पल्ययते=इधर उधर चलता फिरता है
कर्म=कर्म
कुरुते=करता है
विपल्येति= { कर्म करके अपनी जगह पर लौट आता है
+ इति श्रुत्वा=यह सुन कर
जनकः=जनक ने
आह=कहा
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
एतत्=यह
एवम् एव=ऐसेही है

भावार्थ ।

जनक महाराज ने प्रश्न किया कि, हे मुने ! जब सूर्य और चन्द्रमा दोनों अस्त होजाते हैं तब यह पुरुष किस के प्रकाश करके अपना व्यवहार करता है ? याज्ञवल्क्य महाराज ने उत्तर दिया कि यह पुरुष सूर्य और चन्द्रमा के अस्त होने पर अग्नि की ज्योति करके प्रकाशमान होता है यानी काम करने के योग्य होता है क्योंकि यह पुरुष अग्नि के प्रकाश करके बैठता है, इधर उधर फिरता है, कर्म करता है, और कर्म करके अपने स्थान पर वापस आ जाता है, ऐसा सुनकर जनक महाराज ने कहा, हे मुने ! यह ऐसाही है जैसा आपने कहा है ॥ ४ ॥

मन्त्रः ५

अस्तमित आदित्ये याज्ञवल्क्य चन्द्रमस्यस्तमिते शान्तेऽग्नौ किंज्योतिरेवायं पुरुष इति वागेवास्य ज्योतिर्भवतीति वाचैवायं ज्योतिषास्ते पल्ययते कर्म कुरुते विपल्येतीति तस्माद्वै सम्राडपि यत्र स्वः

पाणिर्न विनिर्ज्ञायतेथ यत्र वागुच्चरत्युपैव तत्र न्येतीत्येवमेवैतद्या-ज्ञवल्क्य ॥

पदच्छेदः ।

अस्तमिते, आदित्ये, याज्ञवल्क्य, चन्द्रमसि, अस्तमिते, शान्ते, अग्नौ, किंज्योतिः, एव, अयम्, पुरुषः, इति, वाक्, एव, अस्य, ज्योतिः, भवति, इति, वाचा, एव, अयम्, ज्योतिषा, आस्ते, पल्ययते, कर्म, कुरुते, विपल्येति, इति, तस्मात्, वै, सम्राट्, अपि, यत्र, स्वः, पाणिः, न, विनिर्ज्ञायते, अथ, यत्र, वाक्, उच्चरति, उप, एव, तत्र, न्येति, इति, एवम्, एव, एतत्, याज्ञवल्क्य ॥

अन्वयः	पदार्थाः
आदित्ये	सूर्य के
अस्तमिते	अस्त होने पर
चन्द्रमसि	चन्द्रमा के
अस्तमिते	अस्त होने पर
अग्नौ	अग्नि के
शान्ते	अस्त होने पर
याज्ञवल्क्य	हे ऋषे !
अयम्	यह
पुरुषः	पुरुष
किंज्योतिः	किस प्रकाश वाला होताहै यानी किसके प्रकाश से प्रकाश-मान होता है
यदा	जब
इति	ऐसा
+ जनकः	जनक ने
+ आह	पूछा
ह	तब
याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
उवाच	कहा कि
अस्य	इस पुरुष का
ज्योतिः	प्रकाश
एव	निश्चय करके
वाक्	वाणी है
हि	क्योंकि
अयम्	यह पुरुष
वाचा	वाणी करके
एव	ही
आस्ते	बैठता है
पल्ययते	गमन करता है
कर्म	कर्म
कुरुते	करता है
विपल्येति	कर्म करके अपने स्थान पर लौटता है
सम्राट्	हे जनक !
तस्मात् वै	इस लिये
यत्र	जहां
स्वः	अपना
पाणिः	हाथ भी

न=नहीं
विनिर्ज्ञायते=जाना जाता है यानी नहीं दीखता है
अथ=पर
यत्र=जहां
वाक्=वाणी
उच्चरति=उच्चरित होती है
तत्र=वहां यानी उस अन्धेरे में
उपन्येति=पुरुष वाणी करके पहुँचता है
इति श्रुत्वा=ऐसा सुन कर
जनकः=जनक ने
आह=कहा
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
एतत्=यह
एवम् एव=ऐसाही है जैसा आपने कहा है

भावार्थ ।

राजा जनक प्रश्न करते हैं, हे मुने ! जब सूर्य अस्त है, चन्द्रमा अस्त है, अग्नि भी नहीं है, तब यह पुरुष किस प्रकाश से प्रकाशवाला होताहै ? इस पर याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, इस पुरुष का प्रकाश वाणी करके होता है, क्योंकि यह जीवात्मा वाणी करके ही बैठता है, इधर उधर फिरता है, कर्म करता है, कर्म करके अपने स्थान को वापस आता है, इसलिये हे जनक ! जहां अपना हाथ भी नहीं दिखाई देता है, परन्तु जहां वाणी उच्चरित होती है वहां यानी उस अन्धेरे में पुरुष वाणी करके पहुँचता है, यह सुनकर राजा जनक ने कहा यह ऐसाही है जैसा आपने कहा है ॥ ५ ॥

मन्त्रः ६

अस्तमित आदित्ये याज्ञवल्क्य चन्द्रमस्यस्तमिते शान्तेऽग्नौ शान्तायां वाचि किंज्योतिरेवायं पुरुष इत्यात्मैवास्य ज्योतिर्भवतीत्यात्मनैवायं ज्योतिषास्ते पल्ययते कर्म कुरुते विपल्येतीति ॥

पदच्छेदः ।

अस्तमिते, आदित्ये, याज्ञवल्क्य, चन्द्रमसि, अस्तमिते, शान्ते, अग्नौ, शान्तायाम्, वाचि, किंज्योतिः, एव, अयम्, पुरुषः, इति, आत्मा, एव, अस्य, ज्योतिः, भवति, इति, आत्मना, एव, अयम्, ज्योतिषा, आस्ते, पल्ययते, कर्म, कुरुते, विपल्येति, इति ॥

अन्वयः पदार्थाः

याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
आदित्ये=सूर्य के
अस्तमिते=अस्त होने पर
चन्द्रमसि=चन्द्रमा के
अस्तमिते=अस्त होने पर
अग्नौ=अग्नि के
शान्ते=शान्त होने पर
वाचि=वाणी के
शान्तायाम्=बन्द होने पर
अयम्=यह
पुरुषः=पुरुष
एव=निश्चय करके
किंज्योतिः=किस प्रकाशवाला होताहै यानी किसके प्रकाश करके प्रकाशवाला होता है
इति=इस पर
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
उवाच=कहा कि
अस्य=इस पुरुष का
आत्मा=आत्मा

अन्वयः पदार्थाः

एव=ही
ज्योतिः=ज्योतिवाला
भवति=होताहै
हि=क्योंकि
अयम्=यह पुरुष
आत्मना=अपने ही
ज्योतिषा=प्रकाश करके
आस्ते=बैठता है
पल्ययते=इधर उधर फिरता है
कर्म=कर्म
कुरुते=करता है
विपल्येति=काम करके लौट आता है
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुन करके
+ जनकः=जनक ने
+ उवाच=कहा
+ याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
+ एतत्=यह
+ एवम् + एव=ऐसाही है जैसा आप कहते हैं

भावार्थ ।

राजा जनक प्रश्न करते हैं कि, हे मुने ! सूर्य के अस्त होने पर, चन्द्रमा के अस्त होने पर, अग्नि के शान्त होने पर, वाणी के बन्द होने पर यह पुरुष किसके प्रकाश करके प्रकाशवाला होता है ? इसके उत्तर में याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, इस पुरुष का आत्माही ज्योतिवाला है, क्योंकि यह पुरुष अपने ही प्रकाश करके बैठता है, इधर उधर फिरता है, कर्म करता है, और कर्म करके अपने स्थान को लौट आता है, ऐसा सुनकर जनक राजा ने कहा, हे मुने ! यह ऐसाही है ॥ ६ ॥

मन्त्रः ७

कतम आत्मेति योयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृद्यन्तर्ज्योतिः पुरुषः समानः सन्नुभौ लोकावनुसंचरति ध्यायतीव लेलायतीव स हि स्वप्नो भूत्वेमं लोकमतिक्रामति मृत्यो रूपाणि ॥

पदच्छेदः ।

कतमः, आत्मा, इति, यः, अयम्, विज्ञानमयः, प्राणेषु, हृदि, अन्तर्ज्योतिः, पुरुषः, समानः, सन्, उभौ, लोकौ, अनुसंचरति, ध्यायति, इव, लेलायति, इव, सः, हि, स्वप्नः, भूत्वा, इमम्, लोकम्, अति-क्रामति, मृत्योः, रूपाणि ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ जनकः	राजा जनक
+ पृच्छति	पूछते हैं
+ याज्ञवल्क्य	हे याज्ञवल्क्य
कतमः	कौनसा
सः	वह
आत्मा	आत्मा है
याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
उवाच	कहा
यः	जो
अयम्	यह
प्राणेषु	इन्द्रियों विषे
विज्ञानमयः	विज्ञानस्वरूप है
यः	जो
हृदि	बुद्धि विषे
अन्तर्ज्योतिः	अन्तर् प्रकाशवाला
पुरुषः	पुरुष है
सः हि	वही
समानः	बुद्धि रूप
सन्	होता हुआ
उभौ	दोनों
लोकौ	लोकों में
संचरति	फिरता है
ध्यायति इव	धर्म अधर्म का ध्यान करता है
लेलायति इव	अति अभिलाषा करता है
सः	वही
स्वप्नः	स्वप्न अवस्था में
भूत्वा	होकर
इमम्	इस
लोकम्	लोक को
मृत्योः	मृत्यु के
रूपाणि	रूप को यानी दुःख को
अतिक्रामति	उल्लङ्घन करता है

भावार्थ ।

राजा जनक पूछते हैं कि, हे याज्ञवल्क्य, महाराज ! आपने कहा है

इस पुरुष का आत्माही ज्योतिवाला है, यानी वह स्वयं ज्योतिःस्वरूप है, पर इस शरीर में इन्द्रिय और अन्तःकरण भी स्थित हैं, तो क्या वह ज्योतिःस्वरूप पुरुष उन इन्द्रियों और अन्तःकरण से उत्पन्न हुआ है, या इनसे वह कोई अतिरिक्त पुरुष है, आप कृपाकरके मुझे समझाकर कहें, कि क्या इन्द्रिय अथवा अन्तःकरण अथवा इन्द्रियसहित शरीर-समुदाय आत्मा है, या इनसे वह भिन्न है, इसके जवाब में याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं, जो इन्द्रियों विषे विज्ञानरूप से स्थित है और जो बुद्धि विषे अन्तः प्रकाशवाला पुरुष है, वही आत्मा है, अथवा जो मनके द्वारा सब इन्द्रियों के निकट जाकर उन सबको सजीवित कर प्रज्वलित करता है, और जैसे राजा अपने सहचारियों को लेकर इधर उधर विचरता है तद्वत् जो इन्द्रियों के साथ विचरनेवाला है वह आत्मा है, अथवा जो हृदय में रहता है और जिसके अभ्यन्तर सूर्यवत् स्वयं ज्योतिःस्वरूप सब शरीरों में रमण करता है वह आत्मा है, फिर शंका होती है कि वह जीवात्मा दीपक के समान यहांही लयभाव को प्राप्त होजाता है और इसका कोई अन्य लोक नहीं है, इस शंका का समाधान याज्ञवल्क्य महाराज करते हैं कि, वह जीवात्मा सामान्य रूप से दोनों लोकों में गमन करता है, अर्थात् देहादि से भिन्न कोई कर्त्ता भोक्ता है जो मरकर दूसरे जन्म में अपने कर्मफल को भोगता है, क्योंकि जिस समय यह जीवात्मा मूर्च्छित होकर और बेखबर होकर शरीर को त्यागने लगता है तो निज उपार्जित धर्म अधर्म को याद करने लगता है, यह सोचते हुये कि इन सबको मैं त्यागूंगा क्या ये सब मुझको फिर मिलेंगे ? ये कैसे जाना जाता है इस बात के जानने के लिये स्वप्न का दृष्टान्त आगे कहते हैं, हे राजन् ! जब पुरुष स्वप्न अवस्था को प्राप्त होता है तभी वह स्वप्न में देखता है कि मैं सुखी हूं, मुझमें किंचित् भी दुःख नहीं है, इसी तरह इस लोक में भी परलोक के सुख का अनुभव करता है, और समझता है कि परलोक कोई भिन्न

वस्तु है, याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, जो जागरण और स्वप्नावस्था में सामान्यरूप से विचरण करता है वही आत्मा है, और जैसे जागरणावस्था में और स्वप्नावस्था में कुछ भेद नहीं है वैसेही इस लोक और परलोक में भी कोई भेद नहीं है जो कुछ यहां कमाता है उसका फल वहां भोगता है ॥ ७ ॥

मन्त्रः ८

स वा अयं पुरुषो जायमानः शरीरमभिसंपद्यमानः पाप्मभिः सꣳसृज्यते स उत्क्रामन्म्रियमाणः पाप्मनो विजहाति ॥

पदच्छेदः ।

सः, वै, अयम्, पुरुषः, जायमानः, शरीरम्, अभिसंपद्यमानः, पाप्मभिः, संसृज्यते, सः, उत्क्रामन्, म्रियमाणः, पाप्मनः, विजहाति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
सः	सो	पाप्मभिः	अशुभ कर्मजन्य अधर्मों से
वै	निश्चय करके	संसृज्यते	संगत करता है
अयम्	यह	च	और
पुरुषः	पुरुष	सः	वही
जायमानः	उत्पन्न होता हुआ	म्रियमाणः	मरता हुआ
शरीरम्	शरीर को	उत्क्रामन्	ऊपर को जाता हुआ
अभिसंपद्यमानः	प्राप्त होता है	पाप्मनः	सब पापों को
च	और	विजहाति	छोड़ देता है

भावार्थ ।

यहां किसी पुण्यशाली पुरुष का व्याख्यान है, बहुत से पुण्यशाली पुरुष पूर्व पापजन्य दुःखों के भोगने के लियेही शरीर धारण करते हैं, ऐसे पुरुष जब एक शरीर को त्यागकर दूसरे शरीर में उत्पन्न होते हैं, तो अशुभकर्मजन्य अधर्मों से संयुक्त होते हैं परन्तु जब मरने को प्राप्त होते हैं तो ज्ञान से संपन्न होने के कारण सब पापों को इसी लोक में नष्ट कर देते हैं ॥ ८ ॥

मन्त्रः ९

तस्य वा एतस्य पुरुषस्य द्वे एव स्थाने भवत इदं च परलोकस्थानं च संध्यं तृतीयꣳ स्वप्नस्थानं तस्मिन्संध्ये स्थाने तिष्ठन्नेते उभे स्थाने पश्यतीदं च परलोकस्थानं च । अथ यथाक्रमोऽयं परलोकस्थाने भवति तमाक्रममाक्रम्योभयान्पाप्मन आनन्दाꣳश्च पश्यति स यत्र प्रस्वपित्यस्य लोकस्य सर्वावतो मात्रामपादाय स्वयं विहत्य स्वयं निर्माय स्वेन भासा स्वेन ज्योतिषा प्रस्वपित्यत्राऽयं पुरुषः स्वयं ज्योतिर्भवति ॥

पदच्छेदः ।

तस्य, वै, एतस्य, पुरुषस्य, द्वे, एव, स्थाने, भवतः, इदम्, च, परलोकस्थानम्, च, संध्यम्, तृतीयम्, स्वप्नस्थानम्, तस्मिन्, संध्ये, स्थाने, तिष्ठन्, एते, उभे, स्थाने, पश्यति, इदम्, च, परलोकस्थानम्, च, अथ, यथाक्रमः, अयम्, परलोकस्थाने, भवति, तम्, आक्रमम्, आक्रम्य, उभयान्, पाप्मनः, आनन्दान्, च, पश्यति, सः, यत्र, प्रस्वपिति, अस्य, लोकस्य, सर्वावतः, मात्राम्, अपादाय, स्वयम्, विहत्य, स्वयम्, निर्माय, स्वेन, भासा, स्वेन, ज्योतिषा, प्रस्वपिति, अत्र, अयम्, पुरुषः, स्वयम्, ज्योतिः, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
तस्य	उस
एतस्य	इस
पुरुषस्य	पुरुष यानी जीवात्मा के
द्वे	दो
एव	ही
स्थाने	स्थान
वै	अवश्य
भवतः	हैं
इदम्	एक तो यह लोक यानी जाग्रत् अवस्था
परलोकस्थानम्	दूसरा परलोक यानी सुषुप्ति अवस्था
च	और
तृतीयम्	तीसरा
संध्यम्	इन दोनों लोकों या अवस्थाओं को मिलानेवाला

स्वप्नस्थानम्=स्वप्नस्थान है
तस्मिन्=तिस
संध्ये=बीच के
स्थाने=स्थान में यानी स्वप्न में जाकर
एते=यह जीवात्मा
उभे=दोनों
स्थाने=स्थानोंको यानी
इदम्=इस जन्म
च=और
परलोकस्थानम्=आनेवाले जन्मसहित कर्मफलको
पश्यति=देखता है यानी भोगता है
च=और
अयम्=यही जीव
परलोकस्थाने=परलोक में
यथाक्रमः=कर्मानुसार फलाश्रय
भवति=होता है
+ पुनः=फिर
तम्=उसी
आश्रयम्=आश्रय को
आक्रम्य=ग्रहण करके
उभयान्=दोनों यानी
पाप्मनः=अधर्मजन्य दुःखोंको
च=और
आनन्दान्=धर्मजन्य सुखों को
पश्यति=भोगता है
+ पुनः=फिर
सः=वह जीवात्मा
यत्र=जब
प्रस्वपिति=सोता है
+ तत्र=तब
सर्वावतः=सर्व वासनासे युक्त
अस्य=इस
लोकस्य=जाग्रत् लोक के
मात्राम्=अंशको
अपादाय=लेकर
+ च पुनः=और फिर
स्वयम्=स्वतः
विहत्य=उसको मिटाकर
स्वयम्=अपने से ही
निर्माय=उसे निर्माणकर
स्वेन=अपने निज
भासा=प्रकाशकरके
+ च=और
स्वेन=अपने निज
ज्योतिषा=तेजकरके
प्रस्वपिति=बहुप्रकार स्वप्नकी क्रीडा को करता है
अत्र=इस अवस्था में
अयम्=यह
पुरुषः=जीवात्मा
स्वयम् ज्योतिः=स्वयंप्रकाश वाला
भवति=होता है

भावार्थ ।

पूर्व में जो कुछ कहागया है उसी को स्वप्न के दृष्टान्त से कहते हैं, इस जीवात्मा के रहने के दोही स्थान हैं, एक तो यह लोक और दूसरा

परलोक है अथवा एक जाग्रत्स्थान है, और दूसरा सुषुप्तिस्थान है, और इन दोनों की संधि तृतीय स्वप्नस्थान है, इस तृतीय स्थान में स्थित होकर यह जीवात्मा दोनों स्थानों को देखता है, और जैसे जन्म के अनन्तर मरण और मरण के अनन्तर जन्म होता है, वैसेही जागरण के अनन्तर स्वप्न और स्वप्न के अनन्तर जागरण होता है, और जैसे जागरण के और स्वप्न के मध्य में एक अवस्था होती है, वैसेही लोक और परलोक के मध्य एक संधि होती है, वही स्वप्नअवस्था है, उसीमें जीवात्मा इस जन्म और अग्रिम जन्म के कर्मफल को देखता है, और वही जीव परलोक में कर्मानुसार फलाश्रयवाला होता है, और फिर उसी आश्रय को ग्रहण करके दोनों यानी अधर्मजन्य दुःखों को और धर्मजन्य सुखों को भोगता है, और जब वह जीवात्मा सो जाता है तब सब वासनाओं से मुक्त होताहुआ जाग्रत्अवस्था के अंश को ग्रहण कर और फिर उसको मिटाकर अपने से ही निर्माण कर अपने निज प्रकाश करके बहुत प्रकार स्वप्नकी क्रीड़ा को करता है, इस अवस्था में यह जीवात्मा स्वयं प्रकाशवाला होता है, सूर्यादि ज्योतिकी अपेक्षा नहीं रखता है, अपनीही ज्योतिकी सहायता करके अनेक क्रीड़ा को करता है ॥ ९ ॥

मन्त्रः १०

न तत्र रथा न रथयोगा न पन्थानो भवन्त्यथ रथान्रथयोगान्पथः सृजते न तत्रानन्दा मुदः प्रमुदो भवन्त्यथानन्दान्मुदः प्रमुदः सृजते न तत्र वेशान्ताः पुष्करिण्यः। स्रवन्त्यो भवन्त्यथ वेशान्तान्पुष्करिणीः स्रवन्तीः सृजते स हि कर्त्ता ॥

पदच्छेदः ।

न, तत्र, रथाः, न, रथयोगाः, न, पन्थानः, भवन्ति, अथ, रथान्, रथयोगान्, पथः, सृजते, न, तत्र, आनन्दाः, मुदः, प्रमुदः, भवन्ति, अथ, आनन्दान्, मुदः, प्रमुदः, सृजते, न, तत्र, वेशान्ताः, पुष्करिण्यः,

स्रवन्त्यः, भवन्ति, अथ, वेशान्तान्, पुष्करिणीः, स्रवन्तीः, सृजते, सः, हि, कर्त्ता ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
तत्र=उस स्वप्नावस्था में		अथ=परन्तु	
न=न		आनन्दान्=आनन्द	
रथाः=रथादिक		मुदः=मोद	
भवन्ति=होते हैं		प्रमुदः=प्रमोद को	
न=न		सृजते=पैदा करलेता है	
रथयोगाः=घोड़े आदिक होते हैं		तत्र=उस स्वप्नावस्था में	
च=और		वेशान्ताः=सरोवर	
न=न		पुष्करिण्यः=तालाब	
पन्थानः=रास्ते होते हैं		स्रवन्त्यः=नदियां	
अथ=परन्तु		न=नहीं	
सः=वह जीवात्मा		भवन्ति=होती हैं	
रथान्=रथोंको		अथ=परन्तु	
रथयोगान्=घोड़ों को		वेशान्तान्=सरोवरों	
पथः=मार्गों को		+ च=और	
+ स्वक्रीडार्थम्=अपनी क्रीड़ा के लिये		पुष्करिणीः=तालावों	
सृजते=रचलेता है		+ च=और	
तत्र=उस स्वप्नावस्था में		स्रवन्तीः=नदियों को	
आनन्दाः=पुण्यजन्य आनन्द		सृजते=बनालेता है	
मुदः=हर्ष		हि=क्योंकि	
प्रमुदः=अतिहर्ष		सः=वह	
न=नहीं		+ स्वप्ने=स्वप्नावस्था में	
भवन्ति=होते हैं		कर्त्ता=कर्त्ता धर्त्ता है	

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे राजन् ! स्वप्नअवस्था में न रथादिक होते हैं, न घोड़े आदिक होते हैं, और न मार्ग होते हैं, परन्तु स्वप्नद्रष्टा रथोंको, घोड़ों को, मार्गों को अपनी क्रीड़ा के लिये रच लेता है, उसीतरह सामान्य सुख, पुत्रादिसम्बन्धी हर्ष, अतिहर्ष, स्वप्ना-

वस्था में नहीं होते हैं, परन्तु यह जीवात्मा आनन्द और मोद और प्रमोद को रचलेता है, और इसीप्रकार स्नान अथवा जलक्रीड़ा के लिये सरोवर, तालाव, नदियों को जो स्वप्नअवस्था में नहीं होती हैं यह जीवात्मा रचलेता है, क्योंकि स्वप्नअवस्था में वह पुरुष कर्त्ता धर्त्ता होता है ॥ १० ॥

मन्त्रः ११

तदेते श्लोका भवन्ति । स्वप्नेन शारीरमभिप्रहत्यासुप्तः सुप्ता-नभिचाकशीति । शुक्रमादाय पुनरेति स्थानꣳ हिरण्मयः पुरुष एकहꣳसः ॥

पदच्छेदः ।

तत्, एते, श्लोकाः, भवन्ति, स्वप्नेन, शारीरम, अभिप्रहत्य, असुप्तः, सुप्तान्, अभिचाकशीति, शुक्रम्, आदाय, पुनः, एति, स्थानम्, हिर-ण्मयः, पुरुषः, एकहंसः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
तत्	उस पूर्वोक्त विषय में
एते	ये आगेवाले
श्लोकाः	मन्त्र
प्रमाणाः	प्रमाण
भवन्ति	हैं
स्वप्नेन	स्वप्न के द्वारा
शारीरम्	पाञ्चभौतिक शरीर को
अभिप्रहत्य	इन्द्रियों के सहित चेष्टारहित करके
असुप्तः	स्वयम् जागताहुआ
सुप्तान्	अन्तःकरण की वृत्तिके आश्रित सब पदार्थों को
अभिचाकशीति	देखता है
+ च	और
पुनः	फिर
शुक्रम्	सब इन्द्रियों की तेज मात्रा को
आदाय	लेकर
स्थानम्	जागरित स्थान को
एति	जाता है
+ सः	वही
हिरण्मयः	प्रकाशमान
पुरुषः	सब पुरियों में रहनेवाला है
सः एव	वही
एकहंसः	अकेला लोकों में गमनागमन करनेवाला है

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं, हे राजा जनक ! यह जीवात्मा स्वप्न के द्वारा स्थूल पाञ्चभौतिक शरीर को और इन्द्रियों को चेष्टारहित करके स्वयं जागता हुआ अन्तःकरण की वृत्ति के सब पदार्थों को देखता है, यानी उसका साक्षी बनता है, इतना स्वप्नअवस्था का वर्णन करके याज्ञवल्क्य महाराज फिर कहते हैं कि, हे जनक राजा ! यह जीवात्मा इन्द्रियों के तेज को लिये हुये स्वप्नस्थान से जाग्रत्स्थान को आता है, यही प्रकाशमान होता हुआ सब पुरियों में रहनेवाला है, यही अकेला लोकों में गमनागमन करनेवाला है ॥ ११ ॥

मन्त्रः १२

प्राणेन रक्षन्नवरं कुलायं बहिष्कुलायादमृतश्चरित्वा । स ईयते-मृतो यत्र कामꣳ हिरण्मयः पुरुष एकहꣳसः ॥

पदच्छेदः ।

प्राणेन, रक्षन्, अवरम्, कुलायम्, बहिः, कुलायात्, अमृतः, चरित्वा, सः, ईयते, अमृतः, यत्र, कामम्, हिरण्मयः, पुरुषः, एकहंसः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
प्राणेन	प्राण करके	बहिश्चरित्वा	बाहर विचरता हुआ
अवरम्	अशुद्ध	अमृतः	अमृतरूप होता हुआ
कुलायम्	शरीर को	यत्र	जिस जिस विषय में
रक्षन्	रक्षा करता हुआ	कामम्	कामना की
अमृतः	मरण धर्म से रहित होता हुआ	ईयते	इच्छा करता है
हिरण्मयः	स्वयं ज्योतिःस्वरूप	तत्र	उसी उसी में
पुरुषः	सबशरीरोंमेंरहनेवाला	+ सः	वह
एकहंसः	अकेला लोकों में गमन करनेवाला जीवात्मा	एति	प्राप्त होता है

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे राजा जनक ! प्राण करके

अशुद्ध शरीर की रक्षा करता हुआ, मरणधर्म से रहित होता हुआ, स्वयं ज्योतिःस्वरूप, सब शरीरों में रहनेवाला, अकेला जो लोकों में गमन करनेवाला जीवात्मा है वह बाहर विचरता हुआ और अमृत-रूप होता हुआ जिस जिस विषय की कामना करता है उसी उसी को वह प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

मन्त्रः १३

स्वप्नान्त उच्चावचमीयमानो रूपाणि देवः कुरुते बहूनि । उतेव स्त्रीभिः सह मोदमानो जक्षदुतेवापि भयानि पश्यन् ॥

पदच्छेदः ।

स्वप्नान्ते, उच्चावचम्, ईयमानः, रूपाणि, देवः, कुरुते, बहूनि, उत, इव, स्त्रीभिः, सह, मोदमानः, जक्षत्, उत, इव, अपि, भयानि, पश्यन् ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
उच्चावचम्	अनेक ऊंच नीच योनियों को	जक्षत् इव	बन्धु मित्रादिकों के साथ हँसता हुआ या और कभी
ईयमानः	प्राप्त होता हुआ	स्त्रीभिः	स्त्रियों के
देवः	दिव्य गुणवाला जीवात्मा	सह	साथ
बहूनि	बहुत से	मोदमानः	रमण करता हुआ
रूपाणि	रूपों को	+ अथवा	अथवा
कुरुते	वासनावश उत्पन्न करता है	भयानि	भयजनक व्याघ्रसिंह आदि को
उत	और कभी	पश्यन्	देखता हुआ
इव	मानो	स्वप्नान्ते	स्वप्नस्थान में
		+ क्रीडमानः + भवति	क्रीड़ा करता है

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे राजा जनक ! यह दिव्य गुण-वाला जीवात्मा ऊंच नीच योनियों को प्राप्त होता हुआ अनेक रूपों को वासनावश उत्पन्न करता है, और उनके साथ विहार करता है,

कभी विद्वान् होकर शिष्य को पढ़ाता है, और कभी शिष्य बनकर पढ़ता है, कभी बन्धु मित्र आदिकों के साथ हँसता है, और कभी स्त्रियों के साथ रमण करता है, और कभी भयानक व्याघ्र सिंह आदि जीवों को देखता है, इस प्रकार यह स्वप्न में अनेक क्रीड़ा करता है ॥ १३ ॥

मन्त्रः १४

आराममस्य पश्यन्ति न तं पश्यति कश्चनेति । तं नायतं बोधयेदित्याहुः । दुर्भिषज्यꣳ हास्मै भवति यमेष न प्रतिपद्यते । अथो खल्वाहुर्जागरितदेश एवाऽस्यैष इति यानि ह्येव जाग्रत्पश्यति तानि सुप्त इत्यत्राऽयं पुरुषः स्वयं ज्योतिर्भवति सोऽहं भगवते सहस्रं ददाम्यत ऊर्ध्वं विमोक्षाय ब्रूहीति ॥

पदच्छेदः ।

आरामम्, अस्य, पश्यन्ति, न, तम्, पश्यति, कश्चन, इति, तम्, न, आयतम्, बोधयेत्, इति, आहुः, दुर्भिषज्यम्, ह, अस्मै, भवति, यम्, एषः, न, प्रतिपद्यते, अथो, खलु, आहुः, जागरितदेशे, एव, अस्य, एषः, इति, यानि, हि, एव, जाग्रत्, पश्यति, तानि, सुप्तः, इति, अत्र, अयम्, पुरुषः, स्वयम्, ज्योतिः, भवति, सः, अहम्, भगवते, सहस्रम्, ददामि, अतः, ऊर्ध्वम्, विमोक्षाय, ब्रूहि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
+ जनाः	=सब लोग	पश्यति	=देखता है
अस्य	=इस जीवात्मा के	+ यथा	=जैसे
आरामम्	=क्रीड़ास्थान को तो	+ शिशुः	=बालक
पश्यन्ति	=देखते हैं	+ क्रीडया निवार्यमाणः	=क्रीड़ा की समाप्ति पर
+ परन्तु	=परन्तु	+ उदास्ते	=उदास अप्रसन्न होजाता है
कश्चन	=कोई भी	+ तथा एवम्	=वैसेही
तम्	=उस जीवात्मा को	+ सुप्तात्	=स्वप्न से
+ अतिसूक्ष्मात्	=अतिसूक्ष्म होने के कारण	+ पुरुषःउत्थाय	=पुरुष उठ कर
न	=नहीं		

+ उदास्ते=अप्रसन्न होजाता है
+ अतः=इस लिये
आयतम्=सोये हुये पुरुष को
न=नहीं
बोधयेत्=जगाना चाहिये
इति=ऐसा
आहुः=कोई आचार्य कहते हैं
+ हि=क्योंकि
यम्=जिस देश में
एषः=यह पुरुष
न=नहीं
प्रतिपद्यते=जा सक्ता है
ह=निश्चय करके
अस्मै=उस देश के लिये
दुर्भिषज्यम् भवति } = चिकित्सा दुष्कर होजाती है
अथो=कोई आचार्य
खलु=निश्चय करके
आहुः=कहते हैं कि
अस्य=इस सोये पुरुष की
एषः=यह दशा
एव=निस्सन्देह
जागरितदेशे=जाग्रत् अवस्था की ऐसी है
हि=क्योंकि
यानि=जिनको
जाग्रत्=जागताहुआ
पश्यति=देखता है
तानि=उन्हीं को
सुप्तः=सोताहुआ
सम्राट्=हे राजन् !
अत्र=इस स्वप्नावस्था में
पश्यति=देखता है
अयम्=यह
पुरुषः=पुरुष
स्वयम्=स्वयम्
ज्योतिः=प्रकाशस्वरूप
भवति=होता है
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
जनकः=राजा जनक
उवाच=बोले कि
सः=वही
अहम्=मैं बोधित हुआ
भगवते=आप पूज्य के लिये
सहस्रम्=हजार गौओं को
ददामि=देताहूं
अतः=इसके
ऊर्ध्वम्=आगे
विमोक्षाय=मोक्ष विषयक
ब्रूहि=आप उपदेश करें

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे राजा जनक ! सब लोग जीवात्माकी क्रीड़ा को तो देखते हैं, पर कोई जीवात्मा को अतिसूक्ष्म होनेके कारण नहीं देखता है, जैसे शिशु क्रीड़ा करते करते जब निवा-

रण होजाता है, तब वह अप्रसन्न या उदासीन प्रतीत होता है, इसी प्रकार स्वप्न में क्रीड़ा करनेवाले जीवात्मा को जब कोई जगाता है तब अगर वह अच्छा स्वप्न देखता है तो जागने पर अप्रसन्न प्रतीत होता है, क्योंकि जो आनन्द उसको उस स्वप्न में मिल रहा था वह दूर होगया इस ख्याल से कोई कोई आचार्य कहते हैं कि सुषुप्त पुरुष को विशेष करके जब वह गाढ़ निद्रा में रहता है एकाएक न जगाना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से उसके शरीर को हानि पहुँचती है, और दूसरा पुरुष उसके पास उस अवस्था में न पहुँचने के कारण इस सोयेहुये पुरुष की दवाई नहीं करसक्ता है, कोई आचार्य ऐसा कहते हैं कि, जाग्रत् और स्वप्न में कोई भेद नहीं है, जिस पदार्थ को पुरुष जाग्रत् में देखता है, उसीको स्वप्न में भी देखता है, न जीवात्मा कहीं जाता है, न कहीं आता है, इसलिये सुषुप्त पुरुष के सहसा जगाने में कोई क्षति नहीं है, हे राजा जनक! स्वप्नअवस्था में यह पुरुष स्वयं प्रकाशरूप होता है, ऐसा सुनकर राजा जनक बोले हे मुने! मैं बोधित होताहुआ आप पूज्यपाद के लिये एक सहस्र गौओं को देताहूं, हे भगवन्! आप कृपा करके मुक्तिविषयक उपदेश मुझको करें ॥ १४ ॥

मन्त्रः १५

स वा एष एतस्मिन्संप्रसादे रत्वा चरित्वा दृष्ट्वैव पुण्यं च पापं च पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्याद्रवति स्वप्नायैव स यत्तत्र किंचित्पश्यत्यनन्वागतस्तेन भवत्यसङ्गो ह्ययं पुरुष इत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य सोऽहं भगवते सहस्रं ददाम्यत ऊर्ध्वं विमोक्षायैव ब्रूहीति ॥

पदच्छेदः ।

सः, वा, एषः, एतस्मिन्, संप्रसादे, रत्वा, चरित्वा, दृष्ट्वा, एव, पुण्यम्, च, पापम्, च, पुनः, प्रतिन्यायम्, प्रतियोनि, आद्रवति, स्वप्नाय, एव, सः, यत्, तत्र, किंचित्, पश्यति, अनन्वागतः, तेन, भवति, असङ्गः, हि, अयम्, पुरुषः, इति, एवम्, एव, एतत्, याज्ञवल्क्य,

सः, अहम्, भगवते, सहस्रम्, ददामि, अतः, ऊर्ध्वम्, विमोक्षाय, एव, ब्रूहि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
सः वै	वही
एषः	यह जीवात्मा
रत्वा	अन्दु स्त्री आदिकों से क्रीड़ा करके
चरित्वा	इधर उधर विचरकरके
पुण्यम्	पुण्यजन्य सुखको
च	और
पापम् च	पापजन्य दुःख को
एव	अवश्य
दृष्ट्वा	देखकर
एतस्मिन् संप्रसादे	इस सुषुप्ति अवस्था में
+ याति	जाता है
पुनः	फिर
प्रतिन्यायम्	जिस राहसे गयाथा उसके
प्रतियोनि	प्रतिकूल मार्गकरके
स्वप्नाय एव	स्वप्नस्थान के वास्ते
आद्रवति	लौट आता है
हि	क्योंकि
यत	जो
किंचित्	कुछ
सः	वह जीवात्मा
तत्र	स्वप्न में
पश्यति	देखता है
तेन	स्वप्नपदार्थ से
अनन्वागतः	अनुबद्ध नहीं
भवति	होता है
+ हि	क्योंकि
अयम्	यह
पुरुषः	पुरुष
+ वस्तुतः	वास्तव करके
असङ्गः	असङ्ग है
+ जनकः	जनक ने
+ आह	कहा
याज्ञवल्क्य	हे याज्ञवल्क्य महाराज !
एतत्	यह
एवम् एव	ऐसाही है जैसा आप कहते हैं
सः	वही
अहम्	मैं
भगवते	आप पूज्यके लिये
सहस्रम्	हजार गौओं को
ददामि	दक्षिणा में देताहूं
अतः	इससे
ऊर्ध्वम्	आगे
विमोक्षाय	मुक्ति के लिये
ब्रूहि इति	उपदेश दीजिये

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे राजा जनक ! यह जीवात्मा

स्वप्नअवस्था में बन्धु, मित्र, स्त्री आदिकों के साथ क्रीड़ा करके इधर उधर विचर करके पुण्यजन्य सुख को, पापजन्य दुःख को भोग करके सुषुप्तिअवस्था में जिसको संप्रसाद अवस्था भी कहते हैं प्रवेश करता है वहांपर जाग्रत् और स्वप्न में देखी वस्तु को भूलजाता है, और कुछ काल रहकर जिस मार्ग से गया था उसके प्रतिकूल मार्ग करके स्वप्नावस्था के लिये लौट आता है, क्योंकि जो कुछ वह स्वप्नात्मा स्वप्न में देखता है उस स्वप्नपदार्थ से वह नहीं बद्ध होता है, क्योंकि वह पुरुष वास्तव करके असङ्ग है, इसपर जनक महाराज कहते हैं कि, हे याज्ञवल्क्य, महाराज! यह ऐसाही है जैसा आपने कहा है, वही मैं आप पूज्य के लिये सहस्र गौओं को दक्षिणा में देताहूं, आप कृपा करके मुक्ति के लिये उपदेश दीजिये ॥ १५ ॥

मन्त्रः १६

स वा एष एतस्मिन्स्वप्ने रत्वा चरित्वा दृष्ट्वैव पुण्यं च पापं च पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्याद्रवति बुद्धान्तायैव स यत्तत्र किंचित्पश्यत्यनन्वागतस्तेन भवत्यसङ्गो ह्ययं पुरुष इत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य सोऽहं भगवते सहस्रं ददाम्यत ऊर्ध्वं विमोक्षायैव ब्रूहीति ॥

पदच्छेदः।

सः, वै, एषः, एतस्मिन्, स्वप्ने, रत्वा, चरित्वा, दृष्ट्वा, एव, पुण्यम्, च, पापम्, च, पुनः, प्रतिन्यायम्, प्रतियोनि, आद्रवति, बुद्धान्ताय, एव, सः, यत्, तत्र, किंचित्, पश्यति, अनन्वागतः, तेन, भवति, असङ्गः, हि, अयम्, पुरुषः, इति, एवम्, एव, एतत्, याज्ञवल्क्य, सः, अहम्, भगवते, सहस्रम्, ददामि, अतः, ऊर्ध्वम्, विमोक्षाय, एव, ब्रूहि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
सः वै=वही		एतस्मिन्=इस	
एषः=यह जीवात्मा		स्वप्ने=स्वप्न में	

रत्वा=मित्रों से रमण करके
चरित्वा=बहुत जगह विचर करके
पुण्यम् एव=पुण्यजन्य सुखको
च=और
पापम्=पापजन्य दुःख को
एव=अवश्य
दृष्ट्वा=भोग करके
पुनः=फिर पीछे
प्रतिन्यायम्=जिस क्रम से गया था उससे उलटा
प्रतियोनि=अपने स्थान के प्रति
बुद्धान्ताय=जाग्रदवस्था के लिये
आद्रवति=दौड़ता है
सः=वह जाग्रत् आत्मा
यत्=जो
किंचित्=कुछ
स्वप्ने=स्वप्न में
पश्यति=देखता है
तेन=तिस करके
सः=वह
अनन्वागतः=बद्ध नहीं
भवति=होता है
हि=क्योंकि
अयम्=यह
पुरुषः=पुरुष
हि=निस्सन्देह
असङ्गः=असङ्ग है
इति=इस पर
जनकः=राजा जनक ने
आह=कहा
+ याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
एतत्=यह
एव=निश्चय करके
एवम्=ऐसाही है
याज्ञवल्क्य=हे ऋषे !
सः=बोधित हुआ वही
अहम्=मैं
भगवते=आप पूज्य के लिये
सहस्रम्=हजार गौओं को
ददामि=आपके लिये अर्पण करता हूं ।
अतः=इससे
ऊर्ध्वम्=आगे
विमोक्षायैव=मुक्ति के लिये ही
ब्रूहि=उपदेश करिये

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे राजा जनक ! यह जीवात्मा स्वप्न में मित्रों से रमण करके बहुत जगह विचर करके और पुण्यजन्य सुखको, पापजन्य दुःख को भोग करके स्वप्न के दूर होजाने पर जिस मार्ग से यह गया था उसके प्रतिकूल मार्ग से अपने जाग्रत् स्थान के लिये दौड़ आता है, और जो कुछ कि स्वप्न में देखा है उस करके बद्ध नहीं होता है, क्योंकि यह पुरुष असङ्ग है, इस पर राजा जनक

कहते हैं कि, हे मुने, याज्ञवल्क्य ! निस्सन्देह यह ऐसाही है जैसा आपने कहा है, मैं आप पूज्य के लिये एक सहस्र गौओं को आपकी सेवा में अर्पण करता हूं, इसके आगे मुक्ति के प्रकरण को उठाइये, और उपदेश कीजिये ॥ १६ ॥

मन्त्रः १७

स वा एष एतस्मिन्बुद्धान्ते रत्वा चरित्वा दृष्ट्वैव पुण्यं च पापं च पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्याद्रवति स्वप्नान्तायैव ॥

पदच्छेदः ।

सः, वै, एषः, एतस्मिन्, बुद्धान्ते, रत्वा, चरित्वा, दृष्ट्वा, एव, पुण्यम्, च, पापम्, च, पुनः, प्रतिन्यायम्, प्रतियोनि, आद्रवति, स्वप्नान्ताय, एव ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
सः वै=वही		च=और	
एषः=यह जीवात्मा		पापम्=पाप को	
एतस्मिन्=इस		दृष्ट्वा=देख करके	
बुद्धान्ते=जाग्रत् अवस्था में		पुनः=फिर	
रत्वा=मित्रों से रमण करके		प्रतिन्यायम्=प्रत्यागमन से	
चरित्वा=बहुत जगह विचर करके		प्रतियोनि=अपने प्रतिकूल स्थान	
पुण्यम् च=पुण्य को		स्वप्नान्तायैव=स्वप्नअवस्था के लियेही	
		आद्रवति=दौड़ता है	

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे सम्राट् ! जाग्रत् अवस्था में मित्रों से रमण करके बहुत जगह विचर करके पुण्यजन्य सुख को और पापजन्य दुःख को भोग करके यह जीवात्मा फिर प्रत्यागमन से अपने स्थान स्वप्नावस्था के लिये दौड़ता है ॥ १७ ॥

मन्त्रः १८

तद्यथा महामत्स्य उभे कूले अनुसंचरति पूर्वं चाऽपरं चैवमेवाऽयं पुरुष एतावुभावन्तावनुसंचरति स्वप्नान्तं च बुद्धान्तं च ॥

पदच्छेदः ।

तत्, यथा, महामत्स्यः, उभे, कूले, अनुसंचरति, पूर्वम्, च, अपरम्, च, एवम्, एव, अयम्, पुरुषः, एतौ, उभौ, अन्तौ, अनुसंचरति, स्वप्नान्तम्, च, बुद्धान्तम्, च ॥

अन्वयः	पदार्थाः
तत्	ऊपर कहे हुये विषय में
+ दृष्टान्तः	दृष्टान्त है कि
यथा	जैसे
महामत्स्यः	बड़ी मछली
पूर्वम्	नदी के पूर्व
च	और
अपरम्	अपर
उभे	दोनों तीरों में
अनुसंचरति	फिरती रहती है
एवम्	इसी प्रकार
एव	निश्चय करके
अयम् एव	यह
पुरुषः	पुरुष
एव	निश्चय करके
एतौ	उन दोनों यानी
स्वप्नान्तम् च बुद्धान्तम् अन्तौ	स्वप्न के और जागरण के अन्त
उभौ	दोनों स्थानों को
अनुसंचरति	आता जाता रहता है

भावार्थ ।

हे राजा जनक ! ऊपर जो विषय कहा गया है, उस विषय में नीचे एक दृष्टान्त है उसको सुनो, मैं कहता हूं; जैसे मत्स्यराज नदी के दोनों तटों के बीच घूमा फिरा करता है कभी इस पार और कभी उस पार इसी प्रकार यह जीवात्मा कभी जागरण से स्वप्न को जाता है और कभी स्वप्न से जागरण को आता है ॥ १८ ॥

मन्त्रः १९

तद्यथास्मिन्नाकाशे श्येनो वा सुपर्णो वा विपरिपत्य श्रान्तः सꣳहत्य पक्षौ संलयायैव ध्रियत एवमेवाऽयं पुरुष एतस्मा अन्ताय धावति यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते न कंचन स्वप्नं पश्यति ॥

पदच्छेदः ।

तत्, यथा, अस्मिन्, आकाशे, श्येनः, वा, सुपर्णः, वा, विपरि-

पत्य, श्रान्तः, संहत्य, पक्षौ, संलयाय, एव, ध्रियते, एवम्, एव, अयम्, पुरुषः, एतस्मै, अन्ताय, धावति, यत्र, सुप्तः, न, कंचन, कामम्, कामयते, न, कंचन, स्वप्नम्, पश्यति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
तत्=	यह पुरुष स्वप्नान्त और बुद्धान्त स्थानों को छोड़ सुषुप्ति अवस्था को चाहता है इसमें	एवम् एव=	इसी प्रकार
+ दृष्टान्तः=	दृष्टान्त दिया जाता है कि	अयम्=	यह
यथा=	जैसे	पुरुषः=	जीवात्मा
आकाशे=	आकाश में	एतस्मै=	इस
श्येनः=	बाज	अन्ताय=	सुषुप्ति स्थान के लिये
वा=	अथवा	धावति=	दौड़ता है
सुपर्णः=	गरुड़	यत्र=	जिसमें
विपरिपत्य=	उड़ कर	सुप्तः=	वह सोया हुआ
श्रान्तः=	थका हुआ	कंचन=	किसी
संलयाय=	विश्राम के लिये	कामम्=	विषय की
पक्षौ=	अपने दोनों पक्षों को	न=	नहीं
संहत्य=	फैलाकर	कामयते=	इच्छा करता है
ध्रियते=	अपने घोंसले में जाकर बैठता है	+ च=	और
		न कंचन=	न किसी
		स्वप्नम्=	स्वप्न को
		पश्यति=	देखता है

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे राजा जनक ! जैसे पुरुष स्वप्न अवस्था से जाग्रत्‌अवस्था में जाता है, या जैसे जाग्रत्‌अवस्था से स्वप्न अवस्था को जाता है, या जैसे स्वप्न से सुषुप्ति में जाता है, इसके विषय में नीचे दृष्टान्त दियाजाता है, आप सुनें, मैं कहताहूं, हे राजन् ! जैसे आकाश में श्येन (बाज) नामक पक्षी अथवा गरुड़ जीविकार्थ या केवल क्रीड़ार्थ उड़ते उड़ते थक जाता है और विश्राम के लिये अपने

दोनों पक्षों को पसारेहुये अपने घोंसले में जाकर बैठ जाता है, उसी प्रकार यह जीवात्मा जाग्रत् और स्वप्नअवस्था में अनेक कार्य करता हुआ जब विश्राम नहीं पाता है, तब वह इस प्रसिद्ध सुषुप्तिअवस्था के लिये दौड़ता है, जिसमें पहुँचकर न किसी वस्तु की इच्छा करता है, और न स्वप्न को देखता है, यह अवस्था उसको अतिसुखदायी होती है ॥ १६ ॥

मन्त्रः २०

ता वा अस्यैता हिता नाम नाड्यो यथा केशः सहस्रधा भिन्न-स्तावताऽणिम्ना तिष्ठन्ति शुक्लस्य नीलस्य पिङ्गलस्य हरितस्य लोहि-तस्य पूर्णा अथ यत्रैनं घ्नन्तीव जिनन्तीव हस्तीव विच्छाययति गर्तमिव पतति यदेव जाग्रद्भयं पश्यति तदत्राऽविद्यया मन्यतेऽथ यत्र देव इव राजेवाऽहमेवेदꣳ सर्वोऽस्मीति मन्यते सोऽस्य परमो लोकः ॥

पदच्छेदः ।

ताः, वा, अस्य, एताः, हिताः, नाम, नाड्यः, यथा, केशः, सह-स्रधा, भिन्नः, तावता, अणिम्ना, तिष्ठन्ति, शुक्लस्य, नीलस्य, पिङ्गलस्य, हरितस्य, लोहितस्य, पूर्णाः, अथ, यत्र, एनम्, घ्नन्ति, इव, जिनन्ति, इव, हस्ती, इव, विच्छाययति, गर्तम्, इव, पतति, यत्, एव, जाग्रत्, भयम्, पश्यति, तत्, अत्र, अविद्यया, मन्यते, अथ, यत्र, देवः, इव, राजा, इव, अहम्, एव, इदम्, सर्वः, अस्मि, इति, मन्यते, सः, अस्य, परमः, लोकः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
अस्य=इस स्वप्नद्रष्टा पुरुषकी		च=और	
ताः=वे		यथा=जैसे	
एताः=ये		केशः=एक बालके	
नाम=प्रसिद्ध		सहस्रधा=हजार टुकड़े	
हितानाड्यः=हितानामक नाड़ियां हैं		भिन्नः=भिन्न भिन्न अतिसूक्ष्म	

+ भवति=होते हैं
तथा=तैसेही
तावता=उसीतरह
+ एताः=ये नाड़ियां भी
अणिम्ना=अतिसूक्ष्मता के साथ
तिष्ठन्ति=शरीर में स्थित हैं
च=और
ताः=वे
शुक्लस्य=सफेद
नीलस्य=नीले
पिङ्गलस्य=पीले
हरितस्य=हरे
लोहितस्य=लालरङ्गोंके रसोंकरके
पूर्णाः=परिपूर्ण हैं
अथ=अब
यत्र=जिस स्वप्नावस्था में
अविद्याकारणात्=अविद्या के कारण
+ प्रतीतिः भवति=यह प्रतीत होता है कि
एनम्=इस स्वप्नद्रष्टा को
इव=मानो
+ चोराः=चोर
घ्नन्ति=मार रहे हैं
इव=मानो
जिनन्ति=कोई अपने वश में कर रहे हैं
इव=मानो
हस्ती=हाथी
विच्छाययति=भगाये लियेजाता है
इव=मानो
+ एषः=यह
गर्तम्=किसी गढ़े में
पतति=गिर रहा है
+ सम्राट्=हे राजन् !
जाग्रत्=जाग्रत् अवस्था में
यत्=जो जो वस्तु
एव=निश्चय सहित
पश्यति=देखता है
तत्=उसी उसी को
अत्र=स्वप्नमें भी
अविद्यया मन्यते=अविद्या के कारण सत्य मानता है यहां तक निकृष्टस्वप्न का वर्णन है आगे उत्तम स्वप्न को कहते हैं
अथ=और
यत्र=जिस समय
+ स्वप्नद्रष्टा=स्वप्न का देखनेवाला
मन्यते=मानता है कि
अहम् इव=मैं विद्वान् के ऐसा हूं
देवः इव=देव के समान हूं
अहम्=मैं
राजा=राजा हूं
इदम्=यह सब दृश्यमात्र
अहम् एव=मैं ही हूं
तदा=तब
अस्य=इस जीवात्मा का
सः=वह
परमः=श्रेष्ठ
लोकः=अवस्था है

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे राजा जनक ! जीवात्मा की क्रीड़ा के लिये इस शरीर में बहुत सी प्रसिद्ध नाड़ियां हैं, वे हितानाम करके कही जाती हैं, क्योंकि वे हित करनेवाली हैं, ये नाड़ियां एक बाल के सहस्र टुकड़ों के एक टुकड़े के बराबर अतिसूक्ष्म हैं, और ये नाड़ियां नीले, पीले, श्वेत, हरित और लोहित रंगकी हैं, हे जनक ! जिस स्वप्न अवस्था में अविद्या के कारण स्वप्नद्रष्टा को ऐसा प्रतीत होता है कि मानो कोई उसको मार रहा है, मानो कोई उसको अपने वश में कर रहा है, मानो हाथी उसको भगा रहा है, हे राजन् ! यह जीवात्मा जागता हुआ जो जो भयादिक देखता है उसी उसी को स्वप्न अवस्था में भी देखता है, और अज्ञानता के कारण उसको उस अवस्था में सत्य मानता है, हे जनक ! यह निकृष्ट स्वप्न का वर्णन है, आगे उत्तम स्वप्न को सुनो मैं कहता हूं, हे राजा जनक ! जिस स्वप्न में स्वप्नद्रष्टा देखता है कि मैं विद्वान् हूं, मैं राजा हूं, मेरे पास सब प्रजा निर्णय के लिये आती है, मैं निग्रह अनुग्रह करने में समर्थ हूं, जब वह इस प्रकार स्वप्ने में देखता है, तब बड़े आनन्द को प्राप्त होता है, और यह फल जाग्रत् अवस्था में शुभ विचार का है, जिसको वह स्वप्ने में देखता है ॥ २० ॥

मन्त्रः २१

तद्वा अस्यैतदतिच्छन्दा अपहतपाप्माऽभयꣳ रूपम् । तद्यथा प्रियया स्त्रिया संपरिष्वक्तो न बाह्यं किंचन वेद नान्तरमेवमेवाऽयं पुरुषः प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्तो न बाह्यं किंचन वेद नान्तरं तद्वा अस्यैतदाप्तकाममात्मकाममकामꣳ रूपꣳ शोकान्तरम् ॥

पदच्छेदः ।

तत्, वा, अस्य, एतत्, अतिच्छन्दाः, अपहतपाप्म, अभयम्, रूपम्, तत्, यथा, प्रियया, स्त्रिया, संपरिष्वक्तः, न, बाह्यम्, किंचन,

वेद, न, अन्तरम्, एवम्, एव, अयम्, पुरुषः, प्राज्ञेन, आत्मना, संपरिष्वक्तः, न, बाह्यम्, किंचन, वेद, न, अन्तरम्, तत्, वा, अस्य, एतत्, आप्तकामम्, आत्मकामम्, अकामम्, रूपम्, शोकान्तरम् ॥

अन्वयः पदार्थाः

अस्य=इस सुषुप्त पुरुष का
तत्=वही
एतत्=यह
रूपम्=रूप
अतिच्छन्दाः=कामरहित
अपहतपाप्म=पाप पुण्यरहित
अभयम्=भयरहित
\+ अस्ति=है
तत्=इस विषय में
\+ दृष्टान्तः=दृष्टान्त दिखाया जाता है
यथा=जैसे
\+ स्वप्रियया=निज प्यारी
स्त्रिया=स्त्री के साथ
संपरिष्वक्तः=आलिङ्गित हुआ
\+ पुरुषः=पुरुष
बाह्यम्=बाहरी वस्तु को
किंचन=कुछ भी
न=नहीं
वेद=जानता है
च=और
न=न
अन्तरम्=आन्तरिक वस्तु को
\+ वेद=जानता है
एवम् एव=इसी प्रकार
अयम्=यह

अन्वयः पदार्थाः

पुरुषः=सुषुप्त पुरुष
आत्मना=अपने
प्राज्ञेन=विज्ञान आनन्द से
संपरिष्वक्तः + सन्=आलिङ्गित होता हुआ
न=न
किंचन=किसी
बाह्यम्=बाहरी वस्तु को
वेद=जानता है
च=और
न=न
अन्तरम्=आन्तरिक वस्तु को
वेद=जानता है
तत् वै=इसी कारण
अस्य=इस पुरुष का
एतत्=यह
रूपम्=सुषुप्तावस्थारूप
वै=निश्चय करके
आप्तकामम्=प्राप्तकाम है यानी इस अवस्था में सब कामना प्राप्त हैं
एतत्=यह
आत्मकामम्=आत्मकाम है यानी इसमें केवल ब्रह्मकी प्राप्ति की कामना बाकी है
अकामम्=कामरहित है

\+ च=और | शोकान्तरम्=शोकरहित भी है

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे राजा जनक ! इस सुषुप्त पुरुष का यह वक्ष्यमाण रूप कामरहित, पापरहित, भयरहित है, इसी विषय में एक दृष्टान्त देते हैं, उसको सुनो, जैसे कोई पुरुष स्वप्रिया भार्या से आलिङ्गित होता हुआ किसी बाहरी वस्तु को नहीं जानता है, इसी के अनुसार सुषुप्ति अवस्था में सुखभोक्ता पुरुष ज्ञान और आनन्द से युक्त होता हुआ न वह बाहरी किसी वस्तु को उस अपनी अवस्था में जानता है, न आन्तरिक किसी वस्तु को जानता है, इसी कारण इस पुरुष का सुषुप्ति अवस्थासम्बन्धी रूप निश्चय करके आप्तकाम है, यानी इसमें सब कामनायें प्राप्त हैं, अकाम भी वह है यानी ब्रह्मकी कामना से इतर और कोई उसकी कामना नहीं है, और वह शोकान्त भी है, क्योंकि वह शोकरहित है ॥ २१ ॥

मन्त्रः २२

अत्र पितापिता भवति मातामाता लोका अलोका देवा अदेवा वेदा अवेदाः । अत्र स्तेनोऽस्तेनो भवति भ्रूणहाऽभ्रूणहा चाण्डालोऽचाण्डालः पौल्कसोऽपौल्कसः श्रमणोऽश्रमणस्तापसोऽतापसोऽनन्वागतं पुण्येनान्वागतं पापेन तीर्णो हि तदा सर्वाञ्छोकान्हृदयस्य भवति ॥

पदच्छेदः ।

अत्र, पिता, अपिता, भवति, माता, अमाता, लोकाः, अलोकाः, देवाः, अदेवाः, वेदाः, अवेदाः, अत्र, स्तेनः, अस्तेनः, भवति, भ्रूणहा, अभ्रूणहा, चाण्डालः, अचाण्डालः, पौल्कसः, अपौल्कसः, श्रमणः, अश्रमणः, तापसः, अतापसः, अनन्वागतम्, पुण्येन, अनन्वागतम्, पापेन, तीर्णः, हि, तदा, सर्वान्, शोकान्, हृदयस्य, भवति ॥

अन्वयः पदार्थाः

अत्र=गाढ़ी सुषुप्ति में

पिता=पिता

अपिता भवति=पितृसम्बन्ध से मुक्त होता है

माता=माता

अमाता + भवति=मातृसम्बन्ध से मुक्त होती है

लोकाः=अभिलषित लोक

अलोकाः +भवन्ति=अलोक होजाते हैं यानी किसी स्वर्गादिलोक की इच्छा नहीं रहती है

देवाः=देवता

अदेवाः=अदेवता होजाते हैं यानी किसी देवता का आश्रय नहीं रहता है

वेदाः=वेद

अवेदाः भवन्ति=अवेद होजाते हैं यानी वेद पढ़ने की इच्छा नहीं रहती है

अत्र=इस अवस्था में

स्तेनः=चोर

अस्तेनः=अचोर

भवति=होजाता है

भ्रूणहा=गर्भपातकी

अभ्रूणहा + भवति=अगर्भपातकीहोजाताहै

चाण्डालः=महानीच पतित चाण्डाल भी

अन्वयः पदार्थाः

अचाण्डालः=अचाण्डाल

+ भवति=होजाता है

पौल्कसः=शूद्रसे क्षत्रियक्षेत्र में उत्पन्न पुरुष

अपौल्कसः=अपने जातिदोष से मुक्त

+ भवति=होजाता है

श्रमणः=संन्यासी

अश्रमणः=असंन्यासी

+ भवति=होजाता है,

तापसः=तपस्वी

अतापसः=अतपस्वी

भवति=होजाता है

एतत्=इस सुषुप्त पुरुष का रूप

पुण्येन=पुण्य करके

अनन्वागतम्=असंबद्ध है

पापेन=पाप करके

अनन्वागतम्=असंबद्ध है

हि=क्योंकि

तदा=उस अवस्था में

+ पुरुषः=पुरुष

हृदयस्य=हृदय के

सर्वान्=सब

शोकान्=शोकों को

तीर्णः=पार करनेवाला

भवति=होता है यानी उसके पास कोई शोक नहीं आता है

भावार्थ।

याज्ञवल्क्य कहते हैं कि, हे राजा जनक ! गाढ़ सुषुप्ति अवस्था में

जीवात्मा को किसी पदार्थ का बोध नहीं रहता है, इसीको विस्तार पूर्वक दिखलाते हैं, पिता पितृसम्बन्ध से रहित होजाता है यानी जो पिता पुत्र का घनिष्ठसम्बन्ध है उसका ज्ञान सुषुप्तपुरुष को नहीं रहता है, न पुत्रको पिता का, न पिताको पुत्र का कुछ अनुभव होता है इसी प्रकार माता मातृसम्बन्ध से रहित होती है यानी न माता को पुत्र का ज्ञान और न पुत्र को माता का ज्ञान रहता है. पुरुष को जाग्रत्अवस्था में बाद मरने के अच्छे लोकों को यानी स्वर्गादि लोकों को प्राप्त होऊं ऐसी इच्छा रहती है पर इस अवस्था में यहभी इच्छा नहीं रहती है. देवता अदेवता होजाते हैं यानी किसी देवता का आश्रय नहीं रहता है, वेद अवेद होजाता है यानी वेद पढ़ने की इच्छा नहीं रहती है इस अवस्था में चोर अचोर होजाता है यानी चोर को चोरी करने का ज्ञान किंचित्मात्र भी नहीं रहता है. गर्भपातकी को अपने गर्भपातक अधर्म का ज्ञान नहीं होता है, महानीच, पतित, चाण्डाल भी अचाण्डाल होजाता है, शूद्र के वीजकरके क्षत्रियक्षेत्र में उत्पन्न हुआ पुरुष अपने जातिदोष से मुक्त हुआ रहता है, संन्यासी भी असंन्यासी हुआ दीखता है, तपस्वी अतपस्वी हुआ दीखता है, पुण्य करके असम्बद्ध और पाप करके असम्बद्ध होता है, क्योंकि उस अवस्था में पुरुष हृदय के सब शोकों को पार करजाता है यानी उसके पास कोई शोक नहीं आता है ॥ २२ ॥

मन्त्रः २३

यद्वै तन्न पश्यति पश्यन् वै तन्न पश्यति न हि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात् । न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यत्पश्येत् ॥

पदच्छेदः ।

यत्, वै, तत्, न, पश्यति, पश्यन्, वै, तत्, न, पश्यति, न, हि, द्रष्टुः, दृष्टेः, विपरिलोपः, विद्यते, अविनाशित्वात्, न, तु, तत्, द्वितीयम्, अस्ति, ततः, अन्यत्, विभक्तम्, यत्, पश्येत् ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
+ सः	वह जीवात्मा	हि	क्योंकि
तत्	उस सुषुप्तावस्था में	द्रष्टुः	देखनेवाले जीवात्मा की
न	नहीं	दृष्टेः	दर्शनशक्तिका
पश्यति	देखता है	विपरिलोपः	नाश
यत्	जो	अविनाशित्वात्	अविनाशी होनेके कारण
इति	ऐसा	न	नहीं
+ मन्यसे	आप मानते हैं	विद्यते	होता है
तत्	सो	तु	परन्तु
+ न	नहीं	तत्	उस सुषुप्तिअवस्था में
+ यथार्थः	ठीक है	ततः	उससे
+ सः	वह जीवात्मा	अन्यत्	और कोई
वै	निश्चय करके	विभक्तम्	पृथक्
पश्यन्	देखता हुआ	द्वितीयम्	दूसरी वस्तु
न	नहीं	न	नहीं है
पश्यति	देखता है यानी वह अपने को और अपने साथियों को देखता है औरों को नहीं देखता है	यत्	जिसको
		सः	वह
		पश्येत्	देखे

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे जनक ! आप ऐसा मानते हैं कि जीवात्मा सुषुप्तिअवस्था में नहीं देखता है सो ठीक नहीं है, यह आत्मा उस अवस्था में भी देखता हुआ विद्यमान है, यानी जो उसका स्वरूप आनन्द है, और अज्ञान जिस करके वह आवृत है दोनों को अनुभव करता है, क्योंकि जब सोकरके पुरुष उठता है तब पूछनेपर कहता है कि ऐसा आनन्द से सोया कि खबर न रही, यदि उसको आनन्द और अज्ञान का अनुभव सुषुप्ति में न होता तो जाग्रत् होनेपर उसको स्मृतिज्ञान न होता, स्मृतिज्ञान करकेही जाना जाता है कि जीवात्मा सुषुप्ति अवस्था में जो वस्तु वहां स्थित रहती हैं उनको वह

देखता है, और जो नहीं रहती हैं उनको वह नहीं देखता है, दर्शन-शक्ति तो उसको उस अवस्था में भी अवश्य है, क्योंकि द्रष्टा अविनाशी है इसलिये उसकी दर्शनशक्ति भी सदा विद्यमान रहती है, ऐसा होनेपर प्रश्न उठता है कि अन्य वस्तु को क्यों नहीं देखता है इसका उत्तर यही है कि उस आत्मा से अतिरिक्त कोई अन्य वस्तु नहीं है, जिसको वह सुषुप्ति अवस्था में देखे ॥ २३ ॥

मन्त्रः २४

यद्वै तन्न जिघ्रति जिघ्रन्वै तन्न जिघ्रति न हि घ्रातुर्घ्रातेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यज्जिघ्रेत् ॥

पदच्छेदः ।

यत्, वै, तत्, न, जिघ्रति, जिघ्रन्, वै, तत्, न, जिघ्रति, न, हि, घ्रातुः, घ्रातेः, विपरिलोपः, विद्यते, अविनाशित्वात्, न, तु, तद्, द्वितीयम्, अस्ति, ततः, अन्यत्, विभक्तम्, यत्, जिघ्रेत् ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ सः	वह जीवात्मा
तत्	उस सुषुप्ति अवस्था में
न	नहीं
जिघ्रति	सूंघता है
यत्	जो
इति	ऐसा
+ मन्यसे	आप मानते हैं
तत्	सो
+ न	नहीं
+ यथार्थः	ठीक है
+ सः	वह जीवात्मा
वै	निश्चय करके
जिघ्रन्	सूंघता हुआ
न	नहीं
जिघ्रति	सूंघता है
हि	क्योंकि
घ्रातुः	सूंघनेवाले जीवात्माकी
घ्रातेः	घ्राणशक्ति का
विपरिलोपः	नाश
अविनाशित्वात्	अविनाशी होनेके कारण
न	नहीं
विद्यते	होता है
तु	परन्तु
तत्	उस सुषुप्तिअवस्था में
ततः	उससे
अन्यत्	और कोई
विभक्तम्	पृथक्

द्वितीयम्=दूसरी वस्तु	+ सः=वह
न=नहीं है	पश्येत्=देखे
यत्=जिसको	

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे राजा जनक ! जो आप ऐसा मानते हैं कि सुषुप्ति अवस्था में जीवात्मा नहीं सूंघता है सो ठीक नहीं है, यह जीवात्मा उस अवस्था में भी विद्यमान है, और उसकी घ्राण-शक्ति भी विद्यमान है, चूंकि वह जीवात्मा अविनाशी है, इसलिये उस की घ्राणशक्ति भी नाशरहित है परन्तु वह उस अवस्था में क्यों नहीं सूंघता है इसका कारण यह है कि उससे पृथक् कोई दूसरी वस्तु सूंघने के लिये वहां स्थित नहीं है जिसको वह सूंघे ॥ २४ ॥

मन्त्रः २५

यद्वै तन्न रसयते रसयन्वै तन्न रसयते न हि रसयितू रसयते-र्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यद्रसयेत् ॥

पदच्छेदः ।

यत्, वै, तत्, न, रसयते, रसयन्, वै, तत्, न, रसयते, न, हि, रसयितुः, रसयतेः, विपरिलोपः, विद्यते, अविनाशित्वात्, न, तु, तत्, द्वितीयम्, अस्ति, ततः, अन्यत्, विभक्तम्, यत्, रसयेत् ॥

अन्वयः पदार्थाः	अन्वयः पदार्थाः
+ सः=वह जीवात्मा	+ न=नहीं
तत्=उस सुषुप्तावस्था में	+ यथार्थः=ठीक है
न=नहीं	+ सः=वह जीवात्मा
रसयते=स्वाद लेता है	वै=निश्चय करके
यत्=जो	रसयन्=स्वाद लेता हुआ
इति=ऐसा	न=नहीं
+ मन्यसे=आप मानते हैं	रसयते=स्वाद लेता है
तत्=सो	हि=क्योंकि

रसयितुः=रस लेनेवाले जीवात्मा के
रसयतेः=रसज्ञानशक्ति का
विपरिलोपः=नाश
अविनाशित्वात्=आत्मा के अविनाशी होनेके कारण
न=नहीं
विद्यते=होता है
तु=परन्तु
तत्=उस सुषुप्तावस्था में
ततः=उससे
अन्यत्=और कोई
विभक्तम्=पृथक्
द्वितीयम्=दूसरी वस्तु
न=नहीं है
यत्=जिसको
+ सः=वह
रसयेत्=स्वाद लेवे

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे राजा जनक ! अगर आप ऐसा मानते हैं कि जीवात्मा सुषुप्तिअवस्था में नहीं स्वाद लेता है सो ठीक नहीं है, यह जीवात्मा उस अवस्था में भी विद्यमान रहता है, और उसकी स्वादग्रहणशक्ति भी विद्यमान रहती है, और जीवात्मा के अविनाशी होने के कारण उसकी स्वादग्रहणशक्ति भी नाशरहित होती है, इसलिये वह स्वाद लेसक्ता है परन्तु जब कोई स्वाद लेने का विषय वहां नहीं है, तो फिर किसका स्वाद वह जीवात्मा लेवे ॥ २५ ॥

मन्त्रः २६

यद्वै तन्न वदति वदन्वै तन्न वदति न हि वक्तुर्वक्तेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यद्वदेत् ॥

पदच्छेदः ।

यत्, वै, तत्, न, वदति, वदन्, वै, तत्, न, वदति, न, हि, वक्तुः, वक्तेः, विपरिलोपः, विद्यते, अविनाशित्वात्, न, तु, तत्, द्वितीयम्, अस्ति, ततः, अन्यत्, विभक्तम्, यत्, वदेत् ॥

अन्वयः पदार्थाः

+ सः=वह जीवात्मा
तत्=उस सुषुप्तावस्था में
न=नहीं
वदति=बोलता है
यत्=जो
इति=ऐसा

+ मन्यसे=आप मानते हैं
तत्=सो
+ न=नहीं
+ यथार्थः=ठीक है
+ सः=वह जीवात्मा
वै=निश्चय करके
वदन्=बोलता हुआ
न=नहीं
वदति=बोलता है
हि=क्योंकि
वक्तुः=जीवात्मा की
वक्तेः=वचनशक्ति का
विपरिलोपः=नाश
अविनाशित्वात्=आत्मा के अविनाशी होने के कारण
न=नहीं
विद्यते=होता है
तु=परन्तु
तत्=उस सुषुप्तावस्था में
ततः=उससे
अन्यत्=और कोई
विभक्तम्=पृथक्
द्वितीयम्=दूसरी वस्तु
न=नहीं है
यत्=जिसको
+ सः=वह
वदेत्=कहे

भावार्थ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे राजा जनक ! अगर आप ऐसा मानते हैं कि जीवात्मा सुषुप्तिअवस्था में नहीं बोलता है सो ठीक नहीं है, यह जीवात्मा उस अवस्था में भी विद्यमान रहता है, और उसकी वचनशक्ति भी विद्यमान रहती है, और जीवात्मा के अविनाशी होने के कारण उसकी वचनशक्ति भी नाशरहित रहती है इस लिये वह बोल सक्ता है, परन्तु जब वचन का कोई विषय वहां नहीं है तो किससे वह जीवात्मा बोले ॥ २६ ॥

मन्त्रः २७

यद्वै तन्न शृणोति शृण्वन्वै तन्न शृणोति न हि श्रोतुः श्रुतेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यच्छृणुयात् ॥

पदच्छेदः।

यत्, वै, तत्, न, शृणोति, शृण्वन्, वै, तत्, न, शृणोति, न, हि, श्रोतुः, श्रुतेः, विपरिलोपः, विद्यते, अविनाशित्वात्, न, तु, तत्,

द्वितीयम्, अस्ति, ततः, अन्यत्, विभक्तम्, यत्, शृणुयात् ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
+ सः=वह जीवात्मा		श्रुतेः=श्रवणशक्ति का	
तत्=उस सुषुप्तावस्था में		विपरिलोपः=नाश	
न=नहीं		अविनाशित्वात्=आत्मा के अविनाशी होने के कारण	
शृणोति=सुनता है		न=नहीं	
यत्=जो		विद्यते=होता है	
इति=ऐसा		तु=परन्तु	
+ मन्यसे=आप मानते हैं		तत्=उस सुषुप्तावस्था में	
तत्=सो		ततः=उससे	
+ न=नहीं		अन्यत्=और कोई	
+ यथार्थः=ठीक है		विभक्तम्=पृथक्	
+ सः=वह जीवात्मा		द्वितीयम्=दूसरी वस्तु	
वै=निःसन्देह		न=नहीं है	
शृण्वन्=सुनता हुआ		यत्=जिसको	
न=नहीं		+ सः=वह	
शृणोति=सुनता है		शृणुयात्=सुने	
हि=क्योंकि			
श्रोतुः=श्रोता जीवात्मा के			

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे राजा जनक ! अगर आप ऐसा मानते हैं कि जीवात्मा सुषुप्तिअवस्था में नहीं सुनता है सो ठीक नहीं है, यह जीवात्मा उस अवस्था में भी विद्यमान रहता है, और उसकी श्रवणशक्ति भी विद्यमान रहती है, और जीवात्मा के अविनाशी होने के कारण उसकी श्रवणशक्ति भी नाशरहित होती है, इस लिये वह सुन सक्ता है परन्तु जब कोई श्रवण का वहां विषय नहीं है तो किसको वह जीवात्मा श्रवण करे ॥ २७ ॥

मन्त्रः २८

यद्वै तन्न मनुते मन्वानो वै तन्न मनुते न हि मन्तुर्मतेर्विपरिलोपो

विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यन्मन्वीत ॥

पदच्छेदः ।

यत्, वै, तत्, न, मनुते, मन्वानः, वै, तत्, न, मनुते, न, हि, मन्तुः, मतेः, विपरिलोपः, विद्यते, अविनाशित्वात्, न, तु, तत्, द्वितीयम्, अस्ति, ततः, अन्यत्, विभक्तम्, यत्, मन्वीत ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
+ सः=वह जीवात्मा		मतेः=मननशक्ति का	
तत्=उस सुषुप्तावस्था में		विपरिलोपः=नाश	
न=नहीं		अविनाशित्वात्=आत्मा के अविनाशी होने के कारण	
मनुते=मानता है		न=नहीं	
यत्=जो		विद्यते=होता है	
इति=ऐसा		तु=परन्तु	
+ मन्यसे=आप मानते हैं		तत्=उस सुषुप्तावस्था में	
तत्=सो		ततः=उससे	
+ न=नहीं		अन्यत्=और कोई	
+ यथार्थः=ठीक है		विभक्तम्=पृथक्	
+ सः=वह जीवात्मा		द्वितीयम्=दूसरी वस्तु	
वै=निश्चय करके		न=नहीं है	
मन्वानः=मनन करता हुआ		यत्=जिसको	
न=नहीं		+ सः=वह	
मनुते=मनन करता है		मन्वीत=मनन करे	
हि=क्योंकि			
मन्तुः=मन्ता जीवात्मा की			

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे राजा जनक ! अगर आप ऐसा मानते हैं कि जीवात्मा सुषुप्ति अवस्था में नहीं मनन करता है सो ठीक नहीं है, यह जीवात्मा उस अवस्था में भी विद्यमान रहता है, और उसकी मननशक्ति भी विद्यमान रहती है, और जीवात्मा के अविनाशी होने के कारण उसकी मननशक्ति भी नाशरहित होती

है, इस लिये वह मनन कर सक्ता है, परन्तु जब कोई मन्तव्य विषय वहां नहीं है तो वह किसको मनन करे ॥ २८॥

मन्त्रः २९

यद्वै तन्न स्पृशति स्पृशन्वै तन्न स्पृशति न हि स्प्रष्टुः स्पृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यत्स्पृशेत् ॥

पदच्छेदः ।

यत्, वै, तत्, न, स्पृशति, स्पृशन्, वै, तत्, न, स्पृशति, न, हि, स्प्रष्टुः, स्पृष्टेः, विपरिलोपः, विद्यते, अविनाशित्वात्, न, तु, तत्, द्वितीयम्, अस्ति, ततः, अन्यत्, विभक्तम्, यत्, स्पृशेत् ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ सः	वह जीवात्मा
तत्	सुषुप्ति अवस्था में
न	नहीं
स्पृशति	स्पर्श करता है
यत्	जो
इति	ऐसा
+ मन्यसे	आप मानते हैं
तत्	सो
+ न	नहीं
+ यथार्थः	ठीक है
+ सः	वह जीवात्मा
वै	निश्चय करके
स्पृशन्	स्पर्श करता हुआ
न	नहीं
स्पृशति	स्पर्श करता है
हि	क्योंकि
स्प्रष्टुः	स्पर्श करने वाले जीवात्मा की
स्पृष्टेः	स्पर्शशक्ति का
विपरिलोपः	नाश
अविनाशित्वात्	आत्मा के अविनाश होने के कारण
न	नहीं
विद्यते	होता है
तु	परन्तु
तत्	उस सुषुप्तावस्था में
ततः	उससे
अन्यत्	और कोई
विभक्तम्	पृथक्
द्वितीयम्	दूसरी वस्तु
न	नहीं है
यत्	जिसको
+ सः	वह
स्पृशेत्	स्पर्श करे

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे राजा जनक ! अगर आप ऐसा मानते हैं कि जीवात्मा सुषुप्तिअवस्था में नहीं स्पर्श करता है सो ठीक नहीं है, यह जीवात्मा उस अवस्था में भी विद्यमान रहता है, और उसकी स्पर्शशक्ति भी विद्यमान रहती है, और जीवात्मा के अविनाशी होने के कारण उसकी स्पर्शशक्ति भी नाशरहित है, इसलिये वह स्पर्श करसक्ता है, परन्तु जब कोई स्पर्शशक्ति का विषय वहां नहीं है तो वह जीवात्मा किसको स्पर्श करे ॥ २६ ॥

मन्त्रः ३०

यद्वै तन्न विजानाति विजानन्वै तन्न विजानाति न हि विज्ञातु-र्विज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्य-द्विभक्तं यद्विजानीयात् ॥

पदच्छेदः ।

यत्, वै, तत्, न, विजानाति, विजानन्, वै, तत्, न, विजानाति, न, हि, विज्ञातुः, विज्ञातेः, विपरिलोपः, विद्यते, अविनाशित्वात्, न, तु, तत्, द्वितीयम्, अस्ति, ततः, अन्यत्, विभक्तम्, यत्, विजानीयात् ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ सः	वह जीवात्मा
तत्	उस सुषुप्तावस्था में
न	नहीं
विजानाति	जानता है
यत्	जो
इति	ऐसा
+ मन्यसे	आप मानते हैं
तत्	सो
+ न	नहीं
+ यथार्थः	ठीक है
+ सः	वह जीवात्मा
वै	निस्संदेह
विजानन्	जानता हुआ
न	नहीं
विजानाति	जानता है
हि	क्योंकि
विज्ञातुः	ज्ञाता जीवात्मा की
विज्ञातेः	ज्ञानशक्ति का
विपरिलोपः	नाश
अविनाशित्वात्	आत्माके अविनाशी होनेके कारण
न	नहीं

विद्यते=होता है	द्वितीयम्=दूसरी वस्तु
तु=परन्तु	न=नहीं है
तत्=उस सुषुप्तावस्था में	यत्=जिसको
ततः=उससे	+ सः=वह
अन्यत्=और कोई	विजानीयात्=जाने
विभक्तम्=पृथक्	

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे राजा जनक ! अगर ऐसा आप मानते हैं कि जीवात्मा सुषुप्ति अवस्था में नहीं जानता है, सो ठीक नहीं है, यह जीवात्मा उस अवस्था में भी विद्यमान रहता है, और उसकी ज्ञानशक्ति भी विद्यमान रहती है, और जीवात्मा के अविनाशी होनेके कारण उसकी ज्ञानशक्ति भी नाशरहित होती है, इसलिये वह जान सक्ता है परन्तु जब कोई ज्ञेयविषय वहां नहीं है तो किस वस्तु को वह जीवात्मा जाने ॥ ३० ॥

मन्त्रः ३१

यत्र वा अन्यदिव स्यात्तत्रान्योऽन्यत्पश्येदन्योऽन्यज्जिघ्रेदन्योऽन्यद्रसयेदन्योऽन्यद्वदेदन्योऽन्यच्छृणुयादन्योऽन्यन्मन्वीतान्योऽन्यत्स्पृशेदन्योऽन्यद्विजानीयात् ॥

पदच्छेदः ।

यत्र, वा, अन्यत्, इव, स्यात्, तत्र, अन्यः, अन्यत्, पश्येत्, अन्यः, अन्यत्, जिघ्रेत्, अन्यः, अन्यत्, रसयेत्, अन्यः, अन्यत्, वदेत्, अन्यः, अन्यत्, शृणुयात्, अन्यः, अन्यत्, मन्वीत, अन्यः, अन्यत्, स्पृशेत्, अन्यः, अन्यत्, विजानीयात् ॥

अन्वयः पदार्थाः	अन्वयः पदार्थाः
यत्र वै=जिस जागरित और स्वप्नअवस्था में	अन्यत् इव=अतिरिक्त और कोई वस्तु
+ आत्मनः=आत्मा से	स्यात्=होवे तो

तत्र=उस अवस्था में	अन्यः=अन्य पुरुष
अन्यः=अन्य पुरुष	अन्यत्=अन्य को
अन्यत्=अन्य वस्तु को	शृणुयात्=सुने
पश्येत्=देखे	अन्यः=अन्य पुरुष
अन्यः=अन्य पुरुष	अन्यत्=अन्य को
अन्यत्=अपने से अन्य वस्तुको	मन्वीत=माने
जिघ्रेत्=सूंघे	अन्यः=अन्य पुरुष
अन्यः=अन्य पुरुष	अन्यत्=अन्य को
अन्यत्=अन्य वस्तु का	स्पृशेत्=स्पर्श करे
रसयेत्=स्वाद लेवे	अन्यः=अन्य पुरुष
अन्यः=अन्य पुरुष	अन्यत्=अन्य को
अन्यत्=अन्य को	विजानीयात्=जाने
वदेत्=कहे	

भावार्थ ।

जिस जाग्रत् और स्वप्न अवस्था में आत्मा से अतिरिक्त और कोई वस्तु होवे तो उस अवस्था में अन्य पुरुष अन्य वस्तु को देखे, अन्य पुरुष अपने से अन्य वस्तु को सूंघे, अन्य पुरुष अन्य वस्तु का स्वाद लेवे, अन्य पुरुष अन्य वस्तु को कहे, अन्य पुरुष अन्य वस्तु को सुने, अन्य पुरुष अन्य वस्तु को माने, अन्य पुरुष अन्य वस्तु को स्पर्श करे, अन्य पुरुष अन्य वस्तु को जाने ॥ ३१ ॥

मन्त्रः ३२

सलिल एको द्रष्टाऽद्वैतो भवत्येष ब्रह्मलोकः सम्राडिति हैनमनुशशास याज्ञवल्क्य एषाऽस्य परमा गतिरेषाऽस्य परमा संपदेषोऽस्य परमो लोक एषोऽस्य परम आनन्द एतस्यैवानन्दस्याऽन्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति ॥

पदच्छेदः ।

सलिलः, एकः, द्रष्टा, अद्वैतः, भवति, एषः, ब्रह्मलोकः, सम्राट्, इति, ह, एनम्, अनुशशास, याज्ञवल्क्य, एषा, अस्य, परमा, गतिः,

एषा, अस्य, परमा, संपत्, एषः, अस्य, परमः, लोकः, एषः, अस्य, परमः आनन्दः, एतस्य, एव, आनन्दस्य, अन्यानि, भूतानि, मात्राम्, उपजीवन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
सम्राट्	हे जनक !
+ आत्मा	आत्मा
सलिलः	पानीकी तरह साफहै
एकः	अकेला है
द्रष्टा	देखनेवाला है
अद्वैतः	अद्वितीय है
एषः	यही
ब्रह्मलोकः	ब्रह्मलोक
भवति	है
इति	इसप्रकार
याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य ने
एनम्	इस राजा जनक को
अनुशशास	उपदेश किया
सम्राट्	हे राजन् !
अस्य	इस जीवात्मा का
एषा	यही
परमा	परम
गतिः	गति है
अस्य	इसकी

अन्वयः	पदार्थाः
परमा	यही श्रेष्ठ
संपत्	संपत्ति है
अस्य	इसका
एषः	यही
परमः	परम
लोकः	लोक है
अस्य	इसका
एषः	यही
परमः	परम
आनन्दः	आनन्द है
राजन्	हे राजन् !
अन्यानि	सब
भूतानि	प्राणी
एतस्य	इस
एव	ही
आनन्दस्य	ब्रह्मानन्द की
मात्राम् आदाय	एक मात्रा को लेकर
उपजीवन्ति	आनन्दपूर्वक जीते हैं

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे राजा जनक ! आत्मा जलकी तरह शुद्ध है, एक है, द्रष्टा है, अद्वितीय है, यही ब्रह्मलोक है, इससे भिन्न और कोई ब्रह्मलोक नहीं है, इसप्रकार याज्ञवल्क्य महाराज ने उस राजा जनक को उपदेश किया, याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, इस जीवात्मा की ब्रह्मप्राप्तिही परमगति है, इस जीवात्मा की यही श्रेष्ठ संपत्ति है, इसका यही परम लोक है, इसका यही परम आनन्द है,

हे राजन् ! इसी ब्रह्मानन्द के एक लेशमात्र से सब प्राणी जीते हैं और आनन्द करते हैं ॥ ३२ ॥

मन्त्रः ३३

स यो मनुष्याणाꣳ राद्धः समृद्धो भवत्यन्येषामधिपतिः सर्वैर्मानुष्यकैर्भोगैः संपन्नतमः स मनुष्याणां परम आनन्दोऽथ ये शतं मनुष्याणामानन्दाः स एकः पितॄणां जितलोकानामानन्दोऽथ ये शतं पितॄणां जितलोकानामानन्दाः स एको गन्धर्वलोक आनन्दोऽथ ये शतं गन्धर्वलोक आनन्दाः स एकः कर्मदेवानामानन्दो ये कर्मणा देवत्वमभिसंपद्यन्तेऽथ ये शतं कर्म देवानामानन्दाः स एक आजानदेवानामानन्दो यश्च श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतोऽथ ये शतमाजानदेवानामानन्दाः स एकः प्रजापतिलोक आनन्दो यश्च श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतोऽथ ये शतं प्रजापतिलोक आनन्दाः स एको ब्रह्मलोक आनन्दो यश्च श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतोऽथैष एव परम आनन्द एष ब्रह्मलोकः सम्राडिति होवाच याज्ञवल्क्यः सोऽहं भगवते सहस्रं ददाम्यत ऊर्ध्वं विमोक्षायैव ब्रूहीत्यत्र ह याज्ञवल्क्यो बिभयांचकार मेधावी राजा सर्वेभ्यो मान्तेभ्य उदरौत्सीदिति ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, मनुष्याणाम्, राद्धः, समृद्धः, भवति, अन्येषाम्, अधिपतिः, सर्वैः, मानुष्यकैः, भोगैः, संपन्नतमः, सः, मनुष्याणाम्, परमः, आनन्दः, अथ, ये, शतम्, मनुष्याणाम्, आनन्दाः, सः, एकः, पितॄणाम्, जितलोकानाम्, आनन्दः, अथ, ये, शतम्, पितॄणाम्, जितलोकानाम्, आनन्दाः, सः, एकः, गन्धर्वलोके, आनन्दः, अथ, ये, शतम्, गन्धर्वलोके, आनन्दाः, सः, एकः, कर्मदेवानाम्, आनन्दः, ये, कर्मणा, देवत्वम्, अभिसंपद्यन्ते, अथ, ये, शतम्, कर्मदेवानाम्, आनन्दाः, सः, एकः, आजानदेवानाम्, आनन्दः, यः, च, श्रोत्रियः, अवृजिनः, अकामहतः, अथ, ये, शतम्, आजानदेवानाम्, आनन्दाः,

एकः=एक
आनन्दः=आनन्द है
ये=जो
कर्मणा=यज्ञ करके
देवत्वम्=देवपद को
अभिसंपद्यन्ते=प्राप्त होते हैं
ते=वे
कर्मदेवाः=कर्मदेव हैं
अथ=और
ये=जो
शतम्=सौगुना
आनन्दः=आनन्द
कर्मदेवानाम्=कर्मदेवों का है
सः=वह
आजानदेवानाम्=जन्मदेवताओं का
एक आनन्दः=एक आनन्द है
च=और
अवृजिनः=वैदिक कर्मों के अनुष्ठानसे पापरहित हुआ
च=और
अकामहतः=कामनारहित होता हुआ
श्रोत्रियः=जो वेद का पढ़ने वाला है
तस्य=उसका
एकः=एक
आनन्दः=आनन्द
आजानदेवानाम्=जन्मदेवतावों के
आनन्दः=आनन्द के बराबर है
अथ=और

ये=जो
शतम्=सौगुना
आजानदेवानाम्=जन्मदेवों का
आनन्दाः=आनन्द है
सः=वह
प्रजापतिलोके=प्रजापतिलोक में
एकः=एक
आनन्दः=आनन्द के बराबर है
च=और
यः च=जो
श्रोत्रियः=वेद के पढ़ने वाले
अवृजिनः=पापरहित
अकामहतः=कामनारहितों के
आनन्दाः=आनन्द हैं
अथ=और
ये=जो
शतम्=सौगुना
प्रजापतिलोके=प्रजापति लोक में
आनन्दाः=आनन्द हैं
सः=वह
ब्रह्मलोके=ब्रह्मलोक में
एकः=एक
आनन्दः=आनन्द के बराबर है
च=और
यः=जो
श्रोत्रियः=वेदको पढ़ा है
अवृजिनः=पापरहित है
अकामहतः=इच्छारहित है
+ तस्य=उसका
+ आनन्दः=आनन्द
+ ब्रह्मलोकेन=ब्रह्मलोक के समान है

अथ=इसके बाद
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य
उवाच=कहते भये कि
सम्राट्=हे जनक !
एषः=यही
परमः=श्रेष्ठ
आनन्दः=आनन्द है
एषः=यही
ब्रह्मलोकः=ब्रह्मलोक है
जनकः=जनक
आह=बोले
सः=वही
अहम्=मैं
भगवते=आपके लिये
सहस्रम्=हजार गौवों को
ददामि=देता हूं
अतः=इसके
ऊर्ध्वम्=आगे
विमोक्षाय=मोक्ष के लिये
एव=अवश्य
ब्रूहि=उपदेश करें
इति=इस पर
अत्र=यहां
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य
विभयांचकार=डरगये
इतिहि=ऐसा निश्चय करके
मेधावी=बुद्धिमान्
राजा=राजा ने
मा=मुझको
सर्वेभ्यः=सब
अन्तेभ्यः=ज्ञानतत्त्व से
उदरौत्सीत्=शून्य कर दिया है

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे राजा जनक ! जीवात्मा के आनन्द की सीमा को मैं कहता हूं सुनो. जो पुरुष हृष्ट पुष्ट बलिष्ठ है; धन, धान्य, पशु, पुत्र, पौत्र से भरा पुरा है, पृथ्वी के सब मनुष्य-मात्र का अधिपति है, स्वतन्त्र राजा है, मनुष्यसम्बन्धी सब भोग उसको प्राप्त हैं उसका सौगुना जो आनन्द है वह पितरों के एक आनन्द के बराबर है, पितरों का सौगुना आनन्द गन्धर्वलोक के एक आनन्द के बराबर है, जो गन्धर्वलोक में सौगुना आनन्द है वह कर्मदेवों के एक आनन्द के बराबर है, जो कर्म करके देवपदवी को प्राप्त होते हैं वह कर्मदेव कहलाते हैं ऐसे कर्मदेवों का सौगुना जो आनन्द है वह वेद के पढ़ने वालों और वैदिककर्मों के करने वालों और निष्काम कर्मों के करने वालों के एक आनन्द के बराबर है और इन्हीं के बराबर जन्मदेवों का भी आनन्द है, जन्मदेव उसको कहते हैं जो

जन्महीं से देवता है. जन्मदेवता का जो सौगुना आनन्द है वह प्रजापतिलोक में एक आनन्द के बराबर है इसी आनन्द के बराबर वेद पढ़ने वालों, पापरहित निष्कामियों का भी है यानी इनका आनन्द प्रजापति के आनन्द के बराबर है, प्रजापति लोक का सौगुना आनन्द ब्रह्मलोक के एक आनन्द के बराबर है और जो श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ, पापरहित, निष्कामी हैं उनका भी आनन्द ब्रह्मानन्द के बराबरही है ऐसा कहकर याज्ञवल्क्य बोले हे राजा जनक ! यही परम आनन्द है, यही ब्रह्मलोक है, यह सुनकर राजा जनक बोले हे पूज्यपाद भगवन् ! मैं आपको एक सहस्र गौ देताहूं आप कृपा करके इसके आगे मोक्ष के लिये सम्यक् ज्ञानको मेरे प्रति उपदेश करें, यह सुनकर याज्ञवल्क्य महाराज डरगये। क्यों डरगये? इसका समाधान यों करते हैं, याज्ञवल्क्य महाराज ने विचार किया कि यह राजा परम ज्ञानी है, संपूर्ण धनको मुझे देने को तैयार है, सहस्रों गौ देचुका है और देताजाता है, क्या सब मुझको देकर वह निर्धनी हो वैठेगा इस बातसे डरे अथवा इस बात से डरे कि यह परमज्ञानी राजा मुझसे पूछ पूछकर ज्ञानतत्त्वरूपी धन मुझसे लेकर मुझको उस धनसे शून्य किये देता है, अब आगे इसको मैं क्या उपदेश करूंगा, पर पहिला अर्थ ठीक मालूम होता है दूसरा अर्थ ठीक नहीं मालूम होताहै॥३३॥

मन्त्रः ३४

स वा एष एतस्मिन्स्वप्नान्ते रत्वा चरित्वा दृष्ट्वैव पुण्यं च पापं च पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्याद्रवति बुद्धान्तायैव ॥

पदच्छेदः ।

सः, वा, एषः, एतस्मिन्, स्वप्नान्ते, रत्वा, चरित्वा, दृष्ट्वा, एव, पुण्यम्, च, पापम्, च, पुनः, प्रतिन्यायम्, प्रतियोनि, आद्रवति, बुद्धान्ताय, एव ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थ
सः	सोई	पापं च	पापको
एषः	यह जीवात्मा	दृष्ट्वा	भोगकरके
एतस्मिन्	इस	पुनः	पुनःपुनः
स्वप्नान्ते	स्वप्नस्थान में	प्रतिन्यायम्	उलटे मार्ग से
रत्वा	अनेक पदार्थों के साथ क्रीड़ा करके	प्रतियोनि	अनेक योनियोंप्रति
चरित्वा	बाहर घूम फिर करके	बुद्धान्तायैव	जाग्रत् अवस्था के लिये ही
पुण्यं च	पुण्य	आद्रवति	दौड़ता है

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे राजा जनक ! यह जीवात्मा स्वप्नस्थान में अनेक पदार्थों के साथ क्रीड़ा करके, बाहर भीतर घूम करके, पुण्य पाप को भोग करके पुनः पुनः उलटे मार्ग से अनेक योनियों प्रति जाग्रत् अवस्था के लिये ही दौड़ता है ॥ ३४ ॥

मन्त्रः ३५

तद्यथानः सुसमाहितमुत्सर्जद्यायादेवमेवाऽयꣳ शारीर आत्मा प्राज्ञेनाऽऽत्मनाऽन्वारूढ उत्सर्जन्याति यत्रैतदूर्ध्वोच्छ्वासी भवति ॥

पदच्छेदः ।

तत्, यथा, अनः, सुसमाहितम्, उत्सर्जत्, यायात्, एवम्, एव, अयम्, शारीरः, आत्मा, प्राज्ञेन, आत्मना, अन्वारूढः, उत्सर्जन्, याति, यत्र, एतत्, ऊर्ध्वोच्छ्वासी, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
तत्	शरीर त्यागने के विषय में	उत्सर्जत्	चीं चीं शब्द करतीहुई
+ दृष्टान्तः	यह दृष्टान्त है कि	यायात्	जाती है
यथा	जैसे	एवम् एव	उसीप्रकार
सुसमाहितम्	अन्नादिक बोझ से लदी हुई	शारीरः	शरीरसम्बन्धी
अनः	गाड़ी	आत्मा	जीवात्मा
		प्राज्ञेन आत्मना	अपने ज्ञान से

अन्वारूढः=संयुक्त
उत्सर्जन्=देहको छोड़ता हुआ
याति=जाता है
यत्र=जब
एतत्=वह
ऊर्ध्वोच्छ्वासी=ऊर्ध्वश्वासी
भवति=होता है

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे राजा जनक! शरीर के त्यागने के विषय में लोक यह दृष्टान्त देते हैं कि जैसे अन्नादिक के बोझसे लदीहुई गाड़ी मार्ग में चींचीं शब्द करतीहुई जाती है उसी प्रकार शरीरसम्बन्धी जीवात्मा ज्ञानस्वरूप अपने शुभ अशुभ कर्म के भारसे संयुक्त होताहुआ वियोगकाल में रोताहुआ जाता है ॥ ३५ ॥

मन्त्रः ३६

स यत्राऽयमणिमानं न्येति जरया वोपतपता वाऽणिमानं निगच्छति तद्यथाम्रं वोदुम्बरं वा पिप्पलं वा बन्धनात् प्रमुच्यत एवमेवाऽयं पुरुष एभ्योऽङ्गेभ्यः संप्रमुच्य पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्याद्रवति प्राणायैव ॥

पदच्छेदः ।

सः, यत्र, अयम्, अणिमानम्, न्येति, जरया, वा, उपतपता, वा, अणिमानम्, निगच्छति, तत्, यथा, आम्रम्, वा, उदुम्बरम्, वा, पिप्पलम्, वा, बन्धनात्, प्रमुच्यते, एवम्, एव, अयम्, पुरुषः, एभ्यः, अङ्गेभ्यः, संप्रमुच्य, पुनः, प्रतिन्यायम्, प्रतियोनि, आद्रवति, प्राणाय, एव ॥

अन्वयः पदार्थाः

यत्र अपि=जिससमय
सः=वह
अयम्=यह पुरुष
अणिमानम्=दुर्बलता को
जरया=बुढ़ापा करके
न्येति=प्राप्त होता है

अन्वयः पदार्थाः

वा=अथवा
उपतपता=ज्वरादि करके
अणिमानम्=दुर्बलता को
निगच्छति=प्राप्त होता है
तत्=उस समय
यथा=जैसे

आम्रम्=आम का पका फल
वा=या
उदुम्बरम्=गूलर का पका फल
वा=या
पिप्पलम्=पीपल का पका फल
बन्धनात्=बन्धन से
प्रमुच्यते=वायुके वेग करके गिर पड़ता है
एवम् एव=उसीप्रकार
अयम्=यह
पुरुषः=पुरुष
एभ्यः=इन
अङ्गेभ्यः=हस्तपादादि अवयवों से
प्रमुच्य=छूटकर
पुनः=फिर
प्रतिन्यायम्=उलटे मार्ग से
प्रतियोनि=और और शरीर को
प्राणायैव=भोगार्थ
आद्रवति=जाता है

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे राजा जनक ! जिससमय जीवात्मा बुढ़ापा करके दुर्बलता को प्राप्त होता है, अथवा ज्वरादिक करके दुर्बलता को प्राप्त होता है, तो उस समय (जैसे आम का पका फल या गूलर का पका फल, अथवा पीपल का पका फल, वायुके वेग करके अपने डंठे से गिर पड़ता है उसीप्रकार) यह जीवात्मा अपने हस्त पादादिक अवयवों से छूटकर और दूसरे शरीर निमित्त कर्मफल भोगार्थ जाता है ॥ ३६ ॥

मन्त्रः ३७

तद्यथा राजानमायान्तमुग्राः प्रत्येनसः सूतग्रामण्योऽन्नैः पानैरावसथैः प्रतिकल्पन्तेऽयमायात्ययमागच्छतीत्येवꣳ हैवंविदꣳ सर्वाणि भूतानि प्रतिकल्पन्त इदं ब्रह्मायातीदमागच्छतीति ॥

पदच्छेदः ।

तत्, यथा, राजानम्, आयान्तम्, उग्राः, प्रत्येनसः, सूतग्रामण्यः, अन्नैः, पानैः, आवसथैः, प्रतिकल्पन्ते, अयम्, आयाति, अयम्, आगच्छति, इति, एवम्, ह, एवंविदम्, सर्वाणि, भूतानि, प्रतिकल्पन्ते, इदम्, ब्रह्म, आयाति, इदम्, आगच्छति, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
तत्	ऊपर कहे विषय में
+ दृष्टान्तः	दृष्टान्त है कि
यथा	जैसे
उग्राः	भयंकर कर्म करनेवाले पुलिस आदिक
प्रत्येनसः	पाप के दण्ड देनेवाले मजिस्ट्रेट लोग
सूतग्रामण्यः	गांव गांव के मुखिया लोग
अन्नैः	चावल, गेहूं, चनादि अन्न से
पानैः	पीने के योग्य दूध, दही, घृत से
आवसथैः	रहनेके योग्य मकान, खेमा, तम्बू आदि से यानी इन सब को इकट्ठा करके
आयान्तम्	आते हुये
राजानम्	राजा की
प्रतिकल्पन्ते	राह देखते हैं
च	और
इति	ऐसा
वदन्ति	कहते हैं कि
अयम्	यह राजा
आयाति	आ रहा है
अयम्	यह
इति	अब
आगच्छति	आ पहुँचता है
एवम् एव	इसी प्रकार
सर्वाणि	सब
भूतानि	प्राणी यानी सूर्यादि देवता
ह	निश्चय करके
एवम्विदम्	इस प्रकार जानने वाले के लिये यानी ज्ञानी पुरुष के लिये
प्रतिकल्पन्ते	राह देखते रहते हैं
+ च	और
इति	ऐसा
वदन्ति	कहते हैं कि
इदम्	यह
ब्रह्म	ब्रह्मवित्पुरुष
आयाति	आता है
इदम्	यह ब्रह्म पुरुष
आगच्छति	आ रहा है

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे राजा जनक ! ऊपर कहे हुये विषय में यह दृष्टान्त है कि जैसे भयंकर कर्म करनेवाले पुलिसआदिक और पापकर्म के दण्ड देनेवाले हाकिम और गांव गांव के मुखिया लोग अन्नादि और दूध जल आदि और रहने के लिये मकान, खेमा, तम्बू आदि एकत्र करके आते हुये राजा की राह देखते हैं ऐसा कहते हुये कि हमारा राजा आ रहा है, यह आ पहुँचा है. इसी प्रकार सब

प्राणी यानी सूर्य आदि देवता निश्चय करके इस ज्ञानी के लिये राह देखा करते हैं ऐसा कहते हुये कि देखो वह ब्रह्मवित् आता है वह आ रहा है ॥ ३७ ॥

मन्त्रः ३८

तद्यथा राजानं प्रयियासन्तमुग्राः प्रत्येनसः सूतग्रामण्योऽभिसमायन्त्येवमेवेममात्मानमन्तकाले सर्वे प्राणा अभिसमायन्ति यत्रैतदूर्ध्वोच्छ्वासी भवति ॥

इति तृतीयं ब्राह्मणम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, यथा, राजानम्, प्रयियासन्तम्, उग्राः, प्रत्येनसः, सूतग्रामण्यः, अभिसमायन्ति, एवम्, एव, इमम्, आत्मानम्, अन्तकाले, सर्वे, प्राणाः, अभिसमायन्ति, यत्र, एतत्, ऊर्ध्वोच्छ्वासी, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
जीवस्य अन्तकाले	मरणकाल में जीवात्मा के साथ
के	कौन कौन
गच्छन्ति	जाते हैं
तत्	इस विषय में
+ दृष्टान्तः	दृष्टान्त देते हैं कि
यथा	जैसे
उग्राः प्रत्येनसः	पुलिस के लोग और मजिस्ट्रेट आदिक
+ च	और
सूतग्रामण्यः	गांव के मुखिया लोग
प्रयियासन्तम्	वापिस जाने वाले
राजानम्	राजा के
अभिसमायन्ति	संमुख विना बुलाये आते हैं
एवम् एव	इसी प्रकार
सर्वे	सब
प्राणाः	प्राण चक्षुरादि इन्द्रिय
यत्र	जब
अन्तकाले	मरण समय
एतत्	यह जीवात्मा
ऊर्ध्वोच्छ्वासी	ऊर्ध्वश्वासी
भवति	होता है
+ तदा	तब
एनम्	इस
आत्मानम्	आत्मा के
अभिसमायन्ति	सामने उपस्थित होती हैं

भावार्थ ।

मरती वेला में जीवात्मा के साथ कौन कौन जाते हैं, इस विषय

में दृष्टान्त देते हैं कि, जैसे पुलिस के लोग, गांव के मुखिया लोग वापिस जानेवाले राजा के सन्मुख विना बुलाये आते हैं उसी प्रकार सब चक्षुरादि इन्द्रियां जब यह जीवात्मा ऊर्ध्वश्वासी होता है तब उसके सामने उसके साथ चलने के लिये उपस्थित होजाती हैं ॥ ३८ ॥

इति तृतीयं ब्राह्मणम् ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

स यत्रायमात्माबल्यं न्येत्य संमोहमिव न्येत्यथैनमेते प्राणा अभिसमायन्ति स एतास्तेजोमात्राः समभ्याददानो हृदयमेवान्ववक्रामति स यत्रैष चाक्षुषः पुरुषः पराङ् पर्यावर्त्ततेऽथारूपज्ञो भवति ॥

पदच्छेदः ।

सः, यत्र, अयम्, आत्मा, अबल्यम्, न्येत्य, संमोहम्, इव, न्येति, अथ, एनम्, एते, प्राणाः, अभिसमायन्ति, सः, एताः, तेजोमात्राः, समभ्याददानः, हृदयम्, एव, अन्ववक्रामति, सः, यत्र, एषः, चाक्षुषः, पुरुषः, पराङ्, पर्यावर्त्तते, अथ, अरूपज्ञः, भवति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
यत्र	जिस समय	+ वागादयः	वागादि
सः	वही	प्राणाः	इन्द्रियां
अयम्	यह	एनम्	इस पुरुष के
आत्मा	जीवात्मा	अभिसमायन्ति	सामने स्थित होजाती हैं
इव	मानो	+ च तदा	और तबही
अबल्यम्	दुर्बलता को	सः	जीवात्मा
न्येत्य	प्राप्त होकर	एताः	इन
संमोहम्	मूर्च्छा को	तेजोमात्राः	तैजस अंशों को
न्येति	प्राप्त होता है	समभ्याददानः	अच्छीतरह शरीर के सब ओर से लेता हुआ
अथ	तब		
एते	ये		

हृदयम् एव=हृदय के ही तरफ
अन्ववक्रामति=जाता है
अथ=और
यत्र=जिस समय
सः=वह
एषः=यह
चाक्षुषः=नेत्रस्थ
पुरुषः=जीवात्मा
पराङ्=बाह्य विषय विमुख होता हुआ
पर्यावर्त्तते=अन्तर्मुख होता है
अथ=तब
सः=वह कर्त्ता भोक्ता पुरुष
अरूपज्ञः=रूप का पहिचानने वाला नहीं होता है

भावार्थ ।

इस शरीर से जीवात्मा कैसे निकलता है उसको कहते हैं. हे राजा जनक ! जिस काल में यह जीवात्मा दुर्बलता को प्राप्त होकर मूर्च्छा को प्राप्त होता है तब वागादि सब इन्द्रियां इस पुरुष के सामने उपस्थित होजाती हैं, और उस समय वह जीवात्मा तैजस अंश को भली प्रकार शरीर के सब अङ्गों से लेता हुआ हृदय के तरफ जाता है, और जब वह नेत्रस्थ पुरुष बाह्य विषयों से विमुख होता हुआ अन्तर्मुख होता है तब वह कर्त्ता भोक्ता पुरुपरूप का पहिचाननेवाला नहीं होता है ॥ १ ॥

मन्त्रः २

एकीभवति न पश्यतीत्याहुरेकीभवति न जिघ्रतीत्याहुरेकीभवति न रसयत इत्याहुरेकीभवति न वदतीत्याहुरेकीभवति न शृणोतीत्याहुरेकीभवति न मनुत इत्याहुरेकीभवति न स्पृशतीत्याहुरेकीभवति न विजानातीत्याहुस्तस्य हैतस्य हृदयस्याग्रं प्रद्योतते तेन प्रद्योतनेनैष आत्मा निष्क्रामति चक्षुष्टो वा मूर्ध्नो वाऽन्येभ्यो वा शरीरदेशेभ्यस्तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामति प्राणमनूत्क्रामन्तꣳ सर्वे प्राणा अनूत्क्रामन्ति सविज्ञानो भवति सविज्ञानमेवान्ववक्रामति । तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते पूर्वप्रज्ञा च ॥

पदच्छेदः ।

एकीभवति, न, पश्यति, इति, आहुः, एकीभवति, न, जिघ्रति, इति, आहुः, एकीभवति, न, रसयते, इति, आहुः, एकीभवति, न, वदति, इति, आहुः, एकीभवति, न, शृणोति, इति, आहुः, एकीभवति, न, मनुते, इति, आहुः, एकीभवति, न, स्पृशति, इति, आहुः, एकीभवति, न, विजानाति, इति, आहुः, तस्य, ह, एतस्य, हृदयस्य, अग्रम्, प्रद्योतते, तेन, प्रद्योतनेन, एषः, आत्मा, निष्क्रामति, चक्षुष्टः, वा, मूर्ध्नः, वा, अन्येभ्यः, वा, शरीरदेशेभ्यः, तम्, उत्क्रामन्तम्, प्राणः, अनूत्क्रामति, प्राणम्, अनूत्क्रामन्तम्, सर्वे, प्राणाः, अनु, उत्क्रामन्ति, सविज्ञानः, भवति, सविज्ञानम्, एव, अनु, अवक्रामति, तम्, विद्याकर्मणी, समन्वारभेते, पूर्वप्रज्ञा, च ॥

अन्वयः पदार्थाः

+ मरणकाले=मरणकाल विषे
+ बन्धुमित्रादयः=बन्धु मित्रादिक
+ इति=ऐसा
+ आहुः=कहते हैं कि
+ अस्य=इसके
+ नयनेन्द्रियः=नेत्रइन्द्रिय
एकीभवति=हृदय आत्मा के साथ एक होरहा है
+ अतः=इस लिये
+ सः=वह
+ नः=हम लोगों को
न=नहीं
पश्यति=देखता है
+ यदा=जब
+ घ्राणशक्तिः=घ्राणशक्ति
न=नहीं
जिघ्रति=सूंघती है
+ तदा=तब
इति=ऐसा
आहुः=वे लोग कहते हैं कि
अस्य=इसकी
घ्राणेन्द्रियः=घ्राणेन्द्रिय
एकीभवति=आत्मा के साथ एक होगई है
अतः=इसी कारण
सः=वह
न जिघ्रति=नहीं सूंघता है
+ यदा=जब
रसेन्द्रियः=स्वाद लेनेवाली इन्द्रिय
एकीभवति=आत्मा के साथ एक होती है
+ तदा=तब

न रसयते=वह किसी वस्तु का स्वाद नहीं लेता है
+ यदा=जब
एकीभवति=वागिन्द्रिय आत्मा के साथ एक होती है
+ तदा=तब
इति=ऐसा
आहुः=कहते हैं कि
सः=वह
न वदति=नहीं बोलता है
+ यदा=जब
एकीभवति=श्रोत्रेन्द्रिय आत्मा के साथ एक होती है
+ तदा=तब
इति=ऐसा
आहुः=लोग कहते हैं कि
सः=वह
न शृणोति=नहीं सुनता है
+ यदा=जब
एकीभवति=मन आत्मा के साथ एक होता है
+ तदा=तब
इति=ऐसा
आहुः=लोग कहते हैं कि
+ सः=वह
न=नहीं
मनुते=मनन करता है
+ यदा=जब
एकीभवति=त्वगिन्द्रिय लिङ्गात्मा के साथ एक होता है
+ तदा=तब
इति=ऐसा
आहुः=लोग कहते हैं कि
सः=वह
न=नहीं
स्पृशति=स्पर्श करता है
+ यदा=जब
एकीभवति=बुद्धि आत्मा के साथ एकभाव को प्राप्त होती है
+ तदा=तब
इति=ऐसा
आहुः=लोग कहते हैं कि
+ सः=वह
न=नहीं
विजानाति=जानता है
ह=तब
तस्य=उस
एतस्य=इस आत्मा के
हृदयस्य=हृदय का
अग्रम्=अग्रभाग
प्रद्योतते=प्रकाश करने लगता है
तेन=उसी
प्रद्योतेन=हृदयाग्र प्रकाश करके
+ निष्क्रममाणः=निकलता हुआ
एषः=यह
आत्मा=अन्तरात्मा
चक्षुष्टः=नेत्रसे
वा=या
मूर्ध्नः=मस्तक से
वा=या
अन्येभ्यः शरीरदेशेभ्यः=और इन्द्रियोंकी राहसे
निष्क्रामति=निकलता है

उत्क्रामन्तम्=निकलते हुये
तम्=उस जीवात्मा के
अनु=पीछे
प्राणः=प्राण
उत्क्रामति=ऊपर जाता है यानी निकलने लगता है
अनूत्क्रामन्तम्=जीवात्माके पीछे जाने वाले
प्राणम्=प्राण के
अनु=पीछे
सर्वे=सब
प्राणाः=वागादि इन्द्रियां
उत्क्रामन्ति=ऊपर को जाती हैं
+ तदा=तब यानी जाते समय
अयम्=यह जीवात्मा
सविज्ञानः=पूर्ववत् ज्ञानवाला
भवति=होता है
च=और
+ सः=वह जीवात्मा
सविज्ञानम्=विज्ञानस्थान को
एव=ही
अन्ववक्रामति=जाता है
तम्=जानेवाले आत्मा के
अनु=पीछे
विद्याकर्मणी=विद्या और कर्म
+ च=और
पूर्वप्रज्ञा=पूर्व का ज्ञान
समन्वारभेते=सम्यक् प्रकार जातेहैं

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे राजा जनक ! पुरुष के मरते समय उसके भाई बन्धु मित्रादि उसके पास बैठकर ऐसा कहते हैं कि इस पुरुष की नेत्रेन्द्रिय हृदयात्मा के साथ एक होरही है इसलिये वह हमको नहीं देखता है, जब उसकी घ्राणशक्ति को नहीं देखते हैं, तब ऐसा कहते हैं कि इसकी घ्राणइन्द्रिय हृदयात्मा के साथ एक होरही है, इसीकारण वह किसी वस्तु के सूँघने में असमर्थ है, जब स्वाद लेने वाली इन्द्रिय हृदयात्मा के साथ एक होती है तब वह किसी वस्तु का स्वाद नहीं लेता है, जब वागिन्द्रिय हृदयात्मा के साथ एक होजाती है तब बैठेहुये लोग कहते हैं कि वह नहीं बोलता है, जब श्रोत्रेन्द्रिय हृदयात्मा के साथ एक होजाती है तब लोग कहते हैं कि यह नहीं सुनता है, जब मन हृदयात्मा के साथ एक होजाता है, तब लोग कहते हैं कि यह नहीं मनन करता है, जब त्वगिन्द्रिय हृदयात्मा के साथ एक होजाती है तब लोग ऐसा कहते हैं कि यह नहीं स्पर्श करता है, जब

बुद्धि हृदयात्मा के साथ एक होजाती है तब लोग कहते हैं कि यह नहीं पहिचानता है, और तभी इस जीवात्मा के हृदय का अग्रभाग चमकने लगता है, उसी हृदय के अग्रभाग के प्रकाश करके यह जीवात्मा नेत्र से अथवा मस्तक से अथवा और इन्द्रियों की राह से निकल जाता है, और उसके निकलने पर उसीके पीछे पीछे प्राण भी चल देता है, और प्राणके पीछे सब इन्द्रियां चलदेती हैं, तब यह जीवात्मा ज्ञानी होता हुआ विज्ञानस्थान को जाता है, और उसके पीछे विद्या, कर्म, ज्ञान सब चलदेते हैं ॥ २ ॥

मन्त्रः ३

तद्यथा तृणजलायुका तृणस्यान्तं गत्वान्यमाक्रममाक्रम्यात्मानमुपसꣳहरत्येवमेवायमात्मेदꣳ शरीरं निहत्याविद्यां गमयित्वान्यमाक्रममाक्रम्यात्मानमुपसꣳहरति ॥

पदच्छेदः ।

तत्, यथा, तृणजलायुका, तृणस्य, अन्तम्, गत्वा, अन्यम्, आक्रमम्, आक्रम्य, आत्मानम्, उपसंहरति, एवम्, एव, अयम्, आत्मा, इदम्, शरीरम्, निहत्य, अविद्याम्, गमयित्वा, अन्यम्, आक्रमम्, आक्रम्य, आत्मानम्, उपसंहरति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
तत्	पुनर्देह के आरम्भ में
+ दृष्टान्तः	दृष्टान्त है कि
यथा	जैसे
तृणजलायुका	तृणजलायुका कीड़ा
तृणस्य	तृण के
अन्तम्	अन्तिम भाग को
गत्वा	पहुँच कर
अन्यम्	दूसरे
आक्रमम्	तृण के
आक्रम्य	आश्रय को पकड़
आत्मानम्	अपने को
उपसंहरति	संकोच कर अगले तृण पर जाता है
एवम् एव	उसी प्रकार
अयम्	यह
आत्मा	जीवात्मा
इदम्	इस
शरीरम्	जर्जर शरीर को
निहत्य	अचेतन बनाकर
+ च	और

अविद्याम् = } स्त्रीपुत्रादिक वियोग	आक्रमम्=शरीर को
गमयित्वा = } जन्य शोक को दूर करके	आक्रम्य=आश्रय करके
	आत्मानम्=अपने वर्त्तमान देह को
अन्यम्=और दूसरे	उपसंहरति=छोड़ता है

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे राजा जनक ! यह जीवात्मा किस तरह एक शरीर से दूसरे शरीर को प्राप्त होता है, इस विषय में जो दृष्टान्त लोग देते हैं उसको सुनो मैं कहता हूं, हे राजन् ! जैसे तृणजलौका कीड़ा उस तृण के ऊपर जिसके ऊपर वह चढ़ा रहता है जब उसके अन्तिम भाग को पहुँचता है तब दूसरे तृण को जो उसके सामने रहता है पकड़ कर अपने शरीर को संकोचकर उस अगले तृण पर जाता है उसी प्रकार यह जीवात्मा अपने जर्जर शरीर को अचेतन बनाकर और स्त्री पुत्रादिक वियोगजन्य शोक को दूर करके दूसरे शरीर को आश्रय लेता हुआ अपने वर्त्तमान देह को छोड़ता है ॥ ३ ॥

मन्त्रः ४

तद्यथा पेशस्कारी पेशसो मात्रामपादायान्यन्नवतरं कल्याणतरꣳ रूपं तनुत एवमेवायमात्मेदꣳ शरीरं निहत्याविद्यां गमयित्वान्यन्नवतरं कल्याणतरꣳ रूपं कुरुते पित्र्यं वा गान्धर्वं वा दैवं वा प्राजापत्यं वा ब्राह्मं वाऽन्येषां वा भूतानाम् ॥

पदच्छेदः ।

तत्, यथा, पेशस्कारी, पेशसः, मात्राम्, अपादाय, अन्यत्, नवतरम्, कल्याणतरम्, रूपम्, तनुते, एवम्, एव, अयम्, आत्मा, इदम्, शरीरम्, निहत्य, अविद्याम्, गमयित्वा, अन्यत्, नवतरम्, कल्याणतरम्, रूपम्, कुरुते, पित्र्यम्, वा, गान्धर्वम्, वा, दैवम्, वा, प्राजापत्यम्, वा, ब्राह्मम्, वा, अन्येषाम्, वा, भूतानाम् ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
तत्=	देहान्तरारम्भ के उपादान कारण विषे	अन्यत्=	दूसरा
दृष्टान्तः=	दृष्टान्त है कि	नवतरम्=	नवीन
यथा=	जैसे	कल्याणतरम्=	श्रेष्ठतर
पेशस्कारी=	सुनार	रूपम्=	देह
पेशसः=	सोने का	कुरुते=	धारण करता है
मात्राम्=	एक टुकड़ा	वा=	चाहे
अपादाय=	लेकर	तत्=	वह देह
अन्यत्=	दूसरा	पित्र्यम्=	पितरलोकों के योग्य हो
नवतरम्=	पहिले भूषण की अपेक्षा अधिक नूतन	वा=	अथवा
कल्याणतरम्=	अच्छा	गान्धर्वम्=	गन्धर्वलोकके योग्यहो
रूपम्=	गहना	वा=	अथवा
तनुते=	बनाता है	दैवम्=	देवलोक के योग्य हो
एवम् एव=	इसी प्रकार	वा=	अथवा
अयम्=	यह	प्राजापत्यम्=	प्रजापतिलोक के योग्य हो
आत्मा=	जीवात्मा	वा=	अथवा
इदम्=	इस	ब्राह्मम्=	ब्रह्मलोक के योग्य हो
शरीरम्=	जर्जर शरीर को	वा=	अथवा
निहत्य=	त्याग करके	अन्येषाम्=	ऊपरवालों से विरुद्ध
अविद्याम् गमयित्वा=	अज्ञानजन्य शोक को नाशकर	भूतानाम्=	पशु पक्षी आदिकों का हो

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, शास्त्रतत्त्ववित् पुरुषों का विचार है कि कोई जीव ऊर्ध्व को जाता है, कोई मध्य को जाता है, कोई नीचे को जाता है, यह जीव कर्मानुसार फिरा करता है, एक हालत पर कभी नहीं रहता है, इस विषय में यह दृष्टान्त है कि, जैसे सुनार सुवर्ण के एक टुकड़े को लेकर पहिले भूषण की अपेक्षा दूसरे भूषण को अधिक नूतन और अच्छा बनाता है, इसी प्रकार यह विद्यायुक्त

जीवात्मा इस अपने जर्जर शरीर को त्याग करके और अज्ञानजन्य शोक को नाश करके दूसरे नवीन उमदा देह को धारण करता है चाहे वह देह पितरलोक के योग्य हो, चाहे वह देह गन्धर्वलोक के योग्य हो, अथवा देवलोक के योग्य हो, अथवा प्रजापतिलोक के योग्य हो, चाहे ब्रह्मलोक के योग्य हो. अथवा अविद्यासंयुक्त जीवात्मा ऊपर कहे हुये के विरुद्ध पशु पक्षियों की योनि के योग्य हो ॥ ४ ॥

मन्त्रः ५

स वा अयमात्मा ब्रह्म विज्ञानमयो मनोमयः प्राणमयश्चक्षुर्मयः श्रोत्रमयः पृथिवीमय आपोमयो वायुमय आकाशमयस्तेजोमयोऽतेजोमयः काममयोऽकाममयः क्रोधमयोऽक्रोधमयो धर्ममयोऽधर्ममयः सर्वमयस्तद्यदेतदिदंमयोऽदोमय इति यथाकारी यथाचारी तथा भवति साधुकारी साधुर्भवति पापकारी पापो भवति पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन । अथो खल्वाहुः काममय एवायं पुरुष इति स यथाकामो भवति तत्क्रतुर्भवति यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते यत्कर्म कुरुते तदभिसंपद्यते ॥

पदच्छेदः ।

सः, वा, अयम्, आत्मा, ब्रह्म, विज्ञानमयः, मनोमयः, प्राणमयः, चक्षुर्मयः, श्रोत्रमयः, पृथिवीमयः, आपोमयः, वायुमयः, आकाशमयः, तेजोमयः, अतेजोमयः, काममयः, अकाममयः, क्रोधमयः, अक्रोधमयः, धर्ममयः, अधर्ममयः, सर्वमयः, तत्, यत्, एतत्, इदंमयः, अदोमयः, इति, यथाकारी, यथाचारी, तथा, भवति, साधुकारी, साधुः, भवति, पापकारी, पापः, भवति, पुण्यः, पुण्येन, कर्मणा, भवति, पापः, पापेन, अथो, खलु, आहुः, काममयः, एव, अयम्, पुरुषः, इति, सः, यथाकामः, भवति, तत्क्रतुः, भवति, यत्क्रतुः, भवति, तत्, कर्म, कुरुते, यत्, कर्म, कुरुते, तत्, अभिसंपद्यते ॥

अन्वयः	पदार्थाः
सः वै अयम्	वही यह
आत्मा	जीवात्मा
ब्रह्म	ब्रह्मरूप है
विज्ञानमयः	विज्ञानमय है
मनोमयः	मनके अन्दर रहने से मनोमय है
प्राणमयः	प्राणादिक में रहने से प्राणमय है
चक्षुर्मयः	चक्षुविशिष्ट होने के कारण चक्षुमय है
श्रोत्रमयः	श्रोत्रविशिष्ट होने के कारण श्रोत्रमय है
पृथिवीमयः	गन्धज्ञान होने के कारण घ्राणमय है
आपोमयः	जलविशिष्ट होने के कारण आपोमय है
वायुमयः	वायुविशिष्ट होने के कारण वायुमय है
आकाशमयः	आकाश में रहने के कारण आकाशमय है
तेजोमयः	तेजविशिष्ट होने के कारण तेजमय है
अतेजोमयः	तेजरहित है
काममयः	कामना से पूर्ण है
अकाममयः	कामनारहित है
क्रोधमयः	क्रोध से भरा है
अक्रोधमयः	क्रोधरहित है
धर्ममयः	धर्म से भरा है
अधर्ममयः	धर्मरहित है
सर्वमयः	सर्वमय है यानी जो कुछ है सब इसीमें है

अन्वयः	पदार्थाः
यत्	जिस कारण
एतत्	यह जीवात्मा
इदंमयः	इस लोक की सब वासनाओं करके वासित है
अदोमयः	परलोक की वासनाओं करके वासित है
तत्	इस लिये
इति	ऐसा यानी सर्वमय है
यथाकारी	जिस प्रकार के कर्मों को करता है
यथाचारी	जिस प्रकार आचरणों को करता है
तथा भवति	वैसेही होता है
साधुकारी	अच्छे कर्म का करनेवाला
साधुः	साधु है
पापकारी	पापकर्म का करनेवाला
पापः	पापी
भवति	होता है
पुण्येन	पुण्य कर्म करके
पुण्यः	पुण्यवान्
भवति	होता है
पापेन	पाप
कर्मणा	कर्म करके
पापः	पापी
भवति	होता है
अथो	इसके अनन्तर
खलु	निश्चय करके
आहुः	कोई आचार्य कहते हैं कि

अयम् एव=यही
पुरुषः=पुरुष
काममयः=काममय है
इति=इसी कारण
सः=वह
यथाकामः=जिस इच्छावाला
भवति=होता है
तत्क्रतुः=वैसाही उसका परिश्रम
भवति=होता है
यत्क्रतुः=जैसा परिश्रमवाला
भवति=होता है
तत्=वैसाही
कर्म=कर्म को
कुरुते=करता है
यत्=जैसा
कर्म=कर्म
कुरुते=करता है
तत्=वैसा फल
अभिसंपद्यते=पाता है

भावार्थ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे राजा जनक! वही यह जीवात्मा ब्रह्मस्वरूप है, वही विज्ञानस्वरूप है, वही मन के अन्दर रहने से मनोमय है, प्राणादिकों में रहने से प्राणमय है, चक्षुविशिष्ट होने के कारण चक्षुमय है, श्रोत्रविशिष्ट होने के कारण श्रोत्रमय है, गन्धविशिष्ट होने के कारण घ्राणमय है, जलविशिष्ट होने के कारण आपोमय है, वायुविशिष्ट होने के कारण वायुमय है, आकाश में रहने के कारण आकाशमय है, तेज में रहने के कारण तेजमय है, वही तेजरहित भी है, क्रोध से भरा है, क्रोधरहित भी है, धर्म से पूर्ण है, धर्मरहित भी है, वही सर्वमय है यानी जो कुछ है वह उसी में है, जिस कारण यह जीवात्मा इस लोक की सब वासनाओं करके वासित है, और परलोक की वासनाओं करके वासित है, इसी कारण यह आत्मा सर्वमय है, जिस प्रकार यह जीवात्मा कर्मों को करता है, और जिस प्रकार आचरणों को करता है, वैसेही वह होता है यानी अच्छे कर्मों का करनेवाला साधु होजाता है, और पाप कर्मों का करनेवाला पापी होजाता है, पुण्यकर्त्ता पुण्यवान् बनता है, पापकर्त्ता पापी बनता है, कोई आचार्य ऐसा भी कहते हैं कि यह जीवात्मा काममय है, इसी कारण वह जैसी इच्छावाला होता है वैसाही उसका श्रम होता है,

और जैसाही श्रमवाला होता है वैसाही कर्म करता है, और जैसा कर्म करता है वैसा फल पाता है ॥ ५ ॥

मन्त्रः ६

तदेष श्लोको भवति । तदेव सक्तः सह कर्मणैति लिङ्गं मनो यत्र निषक्तमस्य । प्राप्यान्तं कर्मणस्तस्य यत्किंचेह करोत्ययम् । तस्माल्लोकात्पुनरेत्यस्मै लोकाय कर्मण इति नु कामयमानोऽथाकामयमानो योऽकामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येति ॥

पदच्छेदः ।

तत्, एषः, श्लोकः, भवति, तत्, एव, सक्तः, सह, कर्मणा, एति, लिङ्गम्, मनः, यत्र, निषक्तम्, अस्य, प्राप्य, अन्तम्, कर्मणः, तस्य, यत्, किंच, इह, करोति, अयम्, तस्मात्, लोकात्, पुनः, एति, अस्मै, लोकाय, कर्मणे, इति, नु, कामयमानः, अथ, अकामयमानः, यः, अकामः, निष्कामः, आप्तकामः, आत्मकामः, न, तस्य, प्राणाः, उत्क्रामन्ति, ब्रह्म, एव, सन्, ब्रह्म, अप्येति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
तत्	ऊपर कहे हुये विषय में
एषः	यह
श्लोकः	मन्त्र प्रमाण
भवति	है
यत्र	जिस पानेवाले फल में
अस्य	इस पुरुष का
लिङ्गम् मनः	लिङ्गशरीर संयुक्त मन
निषक्तम्	अतिशय आसक्त रहता है
तत् एव	उसी फल को
कर्मणा	कर्म के
सह	साथ
सक्तः	आसक्त होता हुआ
एति	पुरुष प्राप्त होता है
+ किंच	और
यत्किंच	जो कुछ
अयम्	यह पुरुष
इह	यहां
करोति	करता है
तस्य	उस
कर्मणः	कर्म के
अन्तम्	फल को
प्राप्य	भोग करके

तस्मात्=उस
लोकात्=लोक से
अस्मै=इस
लोकाय=लोक में
कर्मणे=कर्म करने के लिये
पुनः=फिर
एति=आता है
इति=इस प्रकार
नु=निश्चय करके
कामयमानः=कामना करनेवाला जीव
संसरति=संसार को प्राप्त होता है
अथ=परन्तु
यः=जो
अकामयमानः=अखिल कामनारहित है
सः=वह
न=नहीं
एति=कहीं जाता है
+ सम्राट्=हे राजन् !
अकामः=बाह्य सुख स्पर्शादिक से रहित है जो
निष्कामः=जिसमें कोई वासना नहीं है
आप्तकामः=जिसको सब पदार्थ प्राप्त हैं किसी वस्तु की कमी नहीं है
आत्मकामः=जिसमें परमात्मा के सिवाय और किसी वस्तु की वासना नहीं है
तस्य=उस पुरुष की
प्राणाः=वागादि इन्द्रियां
न उत्क्रामन्ति=देह से बाहर नहीं जाती हैं
+ सः=वह पुरुष
एव=यहांही
ब्रह्म=ब्रह्मवित्
सन्=होता हुआ
ब्रह्म=ब्रह्म को
अपि=ही
एति=प्राप्त होता है यानी मुक्त होजाता है

भावार्थ ।

हे राजा जनक ! मरते समय जीवात्मा का मन जहां और जिस विषय में आसक्त होता है वहांही यह जीवात्मा आसक्त होता हुआ उसी विषय की प्राप्ति के लिये जाता है, और जो कुछ यह जीवात्मा यहां करता है उस कर्म के फल को परलोक में भोग कर उस लोक से इस लोक में फिर कर्म करने को आता है, इस प्रकार कामनावाला पुरुष संसार को वारंवार प्राप्त होता है, हे राजन् ! जो गति काम-रहित पुरुषों की है उसको भी सुनो, जो पुरुष सब कामना से रहित है, वह कहीं नहीं जाता है, हे राजन् ! वह पुरुष जो बाह्य सुख

स्पर्शादिक से रहित है, और उसमें कोई वासना नहीं है, और जिसको सब पदार्थ प्राप्त हैं, किसी वस्तु की कमी नहीं है, अथवा जिसमें अपने आत्मा के सिवाय और किसी वस्तु की इच्छा नहीं है, उस पुरुष की वाणी आदि इन्द्रियां देह से बाहर नहीं जाती हैं, वह पुरुष यहांही ब्रह्मवित् होता हुआ ब्रह्म कोही प्राप्त होजाता है ॥ ६ ॥

मन्त्रः ७

तदेष श्लोको भवति । यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः । अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुत इति । तद्यथाऽहिनिर्ल्वयनी वल्मीके मृता प्रत्यस्ता शयीतैवमेवेदꣳ शरीरꣳ शेतेऽथायमशरीरोऽमृतः प्राणो ब्रह्मैव तेज एव सोऽहं भगवते सहस्रं ददामीति होवाच जनको वैदेहः ॥

पदच्छेदः ।

तत्, एषः, श्लोकः, भवति, यदा, सर्वे, प्रमुच्यन्ते, कामाः, ये, अस्य, हृदि, श्रिताः, अथ, मर्त्यः, अमृतः, भवति, अत्र, ब्रह्म, समश्नुते, इति, तत्, यथा, अहिनिर्ल्वयनी, वल्मीके, मृता, प्रत्यस्ता, शयीत, एवम्, एव, इदम्, शरीरम्, शेते, अथ, अयम्, अशरीरः, अमृतः, प्राणः, ब्रह्म, एव, तेजः, एव, सः, अहम्, भगवते, सहस्रम्, ददामि, इति, ह, उवाच, जनकः, वैदेहः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
तत्=	ऊपर कहे हुये विषय में
एषः=	यह
श्लोकः=	मन्त्र
भवति=	प्रमाण है
अस्य=	इस पुरुष के
हृदि=	हृदय में
ये=	जो जो
कामाः=	कामनायें
श्रिताः=	स्थित हैं
+ च=	और
यदा=	जब
+ ते=	वे
सर्वे=	सब
कामाः=	कामनायें
प्रमुच्यन्ते=	निकल जाती हैं
अथ=	तब

मर्त्यः=मरण धर्मवाला पुरुष
अमृतः=अमर
भवति=होजाता है
च=और
अत्र=यहांही
ब्रह्म=ब्रह्म को
समश्नुते=प्राप्त होता है
तत्=इसी विषय में
इति=ऐसा
+ दृष्टान्तः=दृष्टान्त है कि
यथा=जैसे
अहिनिर्ल्वयनी=सर्प की त्वचा
मृता=निर्जीवित
प्रत्यस्ता=त्यागी हुई
वल्मीके=बामी के ऊपर
शयीत=पड़ी रहै
एवम् एव=इसी प्रकार
इदम्=यह
शरीरम्=ज्ञानी का शरीर
+ मृतः इव=मुर्दे की तरह
शेते=पड़ा रहता है
अथ=इसी कारण
अयम्=यह
प्राणः=पुरुष
अशरीरः=शरीररहित
अमृतः=मरण धर्मरहित
+ भवति=होता है
अयम् एव=यही पुरुष
ब्रह्म=ब्रह्मस्वरूप
+ च=और
तेजः=ज्ञानस्वरूप
एव=ही है
+ इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुनकर
जनकः=राजा जनक
वैदेहः=विदेह ने
ह=स्पष्ट
उवाच=कहा कि
भगवते=आपके लिये
याज्ञवल्क्य=हे याज्ञवल्क्य !
सः=वह
अहम्=मैं
सहस्रम्=एक हजार गौओं को
ददामि=देता हूं

भावार्थ ।

हे राजा जनक ! इस पुरुष के हृदय में जो जो कामनायें स्थित हैं जब वे सब निकल जाती हैं तब वह पुरुष अमर होजाता है, और वह यहांही ब्रह्मको प्राप्त होजाता है, इस विषय में यह दृष्टान्त है, जैसे सर्प जब अपनी निर्जीवित त्वचा को त्याग देता है, और वह किसी बामी के ऊपर पड़ी रहती है, तब वह सर्प न उसकी रक्षा का यत्न करता है, और न उसे फिर लेना चाहता है, उसी प्रकार ज्ञानी का शरीर सर्प की त्यागी हुई त्वचा की तरह जीते जी भी निर्जीवित

पड़ा रहता है, यानी उस शरीर से असंबद्ध रहता है, और इस कारण यह ज्ञानी पुरुष शरीररहित और मरणधर्मरहित होता है यही पुरुष ब्रह्मस्वरूप, ज्ञानस्वरूप होता है, ऐसा सुनकर राजा जनक विदेह ने सविनय कहा, हे परमपूज्य, भगवन्! मैं एक हजार गौओं को आपके प्रति दक्षिणा में देता हूं ॥ ७ ॥

मन्त्रः ८

तदेते श्लोका भवन्ति । अणुः पन्था विततः पुराणो माꣳ स्पृष्टोऽनुवित्तो मयैव । तेन धीरा अपियन्ति ब्रह्मविदः स्वर्गं लोकमित ऊर्ध्वं विमुक्ताः ॥

पदच्छेदः ।

तत्, एते, श्लोकाः, भवन्ति, अणुः, पन्थाः, विततः, पुराणः, माम्, स्पृष्टः, अनुवित्तः, मया, एव, तेन, धीराः, अपियन्ति, ब्रह्मविदः, स्वर्गम्, लोकम्, इतः, ऊर्ध्वम्, विमुक्ताः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
तत्	ऊपर कहे हुये मोक्ष विषे	अनुवित्तः	जाना है
एते	ये	+ च	और
श्लोकाः	मन्त्र	माम्	मुझको
भवन्ति	प्रमाण हैं	स्पृष्टः	प्राप्त हुआ है
+ जनक	हे जनक !	तेन	उस मार्ग करकेही
पुराणः	पुरातन	धीराः	धीर
अणुः	दुर्विज्ञेय अतिसूक्ष्म	ब्रह्मविदः	ब्रह्मज्ञानी
विततः	विस्तीर्ण	इतः	मरने बाद
पन्थाः	ज्ञानमार्ग	विमुक्ताः	मुक्त होते हुये
मया	मैंने	स्वर्गम् लोकम्	स्वर्गलोक को यानी मोक्ष को
एव	अवश्य	अपियन्ति	प्राप्त होते हैं

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे राजा जनक ! जो कुछ मैं

ऊपर कह आया हूं उस विषय में ये मन्त्र प्रमाण हैं. यह ब्रह्मविद्या का मार्ग अतिसूक्ष्म है चारों तरफ फैल रहा है और पुरातन है किसी को शंका नहीं कि यह नवीन मार्ग है, यह वेदविहित मार्ग सदा से चला आता है, इस मार्ग को मैं वड़े परिश्रम के वाद प्राप्त हुआ हूं, यानी इसके लिये मैंने श्रवण, मनन, निदिध्यासन किया है, जो अन्य ब्रह्मवित् परमज्ञानी पुरुष इस सूक्ष्म मार्ग को ग्रहण करेंगे वे भी इसके सुखमय धाम को प्राप्त होंगे. कब होंगे, जब वे स्थूल शरीर के छोड़ने के पहिलही सब सम्बन्धों से मुक्त होजायँगे, अथवा जीवन्मुक्त होकर आवागमन से रहित होजायँगे ॥ ८ ॥

मन्त्रः ९

तस्मिञ्छुक्लमुत नीलमाहुः पिङ्गलꣳ हरितं लोहितं च । एष पन्था ब्रह्मणा हानुवित्तस्तेनैति ब्रह्मवित्पुण्यकृत्तैजसश्च ॥

पदच्छेदः ।

तस्मिन्, शुक्लम्, उत, नीलम्, आहुः, पिङ्गलम्, हरितम्, लोहितम्, च, एषः, पन्थाः, ब्रह्मणा, ह, अनुवित्तः, तेन, एति, ब्रह्मवित्, पुण्यकृत्, तैजसः, च ॥

अन्वयः	पदार्थाः
तस्मिन्=उस मोक्षसाधन मार्ग के विषय में	
+ विवादः=विवाद है	
+ केचित्=कोई आचार्य	
शुक्लम्=सूर्य के शुक्ल रूप को	
आहुः=मुक्तिमार्ग कहते हैं	
उत=और	
+ केचित्=कोई	
नीलम्=सूर्य के नील रूप को	
+ आहुः=मुक्ति मार्ग कहते हैं	
+ केचित्=कोई	
पिङ्गलम्=सूर्य के पीले रूप को	
+ आहुः=मुक्तिमार्ग कहते हैं	
+ केचित्=कोई	
हरितम्=सूर्य के हरे रूप को	
+ आहुः=मुक्तिमार्ग कहते हैं	
च=और	
+ केचित्=कोई	
लोहितम्=सूर्य के लालरूप को	
+ आहुः=मुक्तिमार्ग कहते हैं	
एषः=यह	
पन्थाः=मार्ग	

ब्रह्मणा=ब्रह्मवेत्ताओं करके
अनुवित्तः=जाना गया है
तेन एव=इसी मार्ग करके
पुण्यकृत्=पुण्य करनेवाला
तैजसः=तेजस्वीस्वरूप
ब्रह्मवित्=ब्रह्मवेत्ता
+ सूर्यलोकम्=सूर्यलोक को
एति=जाता है

भावार्थ ।

हे जनक ! सूर्य में पांच तत्त्वों के पांच रंग स्थित हैं, उन रंगों की उपासना आचार्यों ने अपने अपने मत के अनुसार की है. किसी आचार्य ने सूर्य के शुक्ल रूप को मुक्तिमार्ग कहा है, किसी ने सूर्य के नील रूप को मुक्तिमार्ग कहा है, किसी ने सूर्य के पीले रूप को मुक्ति-मार्ग कहा है और किसी ने सूर्य के हरे रूप को मुक्तिमार्ग कहा है, किसी ने सूर्य के लाल रूप को मुक्तिमार्ग कहा है, ये कहे हुये मार्ग ब्रह्मवेत्ताओं करके जाने गये हैं, इन्हीं मार्गों करके पुण्य करने वाले तेजस्वी ब्रह्मवेत्ता पुरुष सूर्यलोक को जाते हैं ॥ ९ ॥

मन्त्रः १०

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते । ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाᳬ रताः ॥

पदच्छेदः ।

अन्धम्, तमः, प्रविशन्ति, ये, अविद्याम्, उपासते, ततः, भूयः, इव, ते, तमः, ये, उ, विद्यायाम्, रताः ॥

अन्वयः पदार्थाः

ये=जो
अविद्याम्=यज्ञादि कर्म
उपासते=करते हैं
+ ते=वे
अन्धम् तमः=अन्धतम में
प्रविशन्ति=प्रविष्ट होते हैं
च=और
ये=जो

अन्वयः पदार्थाः

विद्यायाम् उ=कर्मविद्या ही में यानी शिल्प, रस आदिक विद्याओं में
रताः=अभिरत हैं
ते=वे
ततः=उस अन्धतम से
भूयः इव=बड़े घन
तमः=अन्धतम में
प्रविशन्ति=प्रविष्ट होते हैं

भावार्थ।

हे राजा जनक ! जो पुरुष अविद्या की उपासना करते हैं वे अन्ध-तम को प्राप्त होते हैं और जो विद्या की यानी अपरा विद्या की उपासना साहंकार करते हैं वे उससे भी अधिक अन्धतम को प्राप्त होते हैं क्योंकि इस विद्या करके विशेष रागद्वेष में आसक्त होते हैं ॥ १० ॥

मन्त्रः ११

अनन्दानाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः । ताॅंस्ते प्रेत्याभिगच्छन्त्यविद्वाॅंसोऽबुधो जनाः ॥

पदच्छेदः।

अनन्दाः, नाम, ते, लोकाः, अन्धेन, तमसा, आवृताः, तान्, ते, प्रेत्य, अभिगच्छन्ति, अविद्वांसः, अबुधः, जनाः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
ते=वे		आवृताः=आवृत हैं	
लोकाः=लोक		तान्=उन्हीं लोकों को	
अनन्दाः नाम=अनन्द नाम से प्रसिद्ध हैं		ते=वे	
ये=जो		अविद्वांसः=साधारण अविद्वान्	
अन्धेन=महा अन्धकार		अबुधः जनाः=अज्ञानी पुरुष	
तमसा=तम करके		प्रेत्य=मरकर	
		अभिगच्छन्ति=प्राप्त होते हैं	

भावार्थ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे राजा जनक ! वे योनि अनन्द नाम करके प्रसिद्ध हैं जो अन्धकार तम करके आवृत हैं, उन्हीं लोकों को वे साधारण अविद्वान् अज्ञानी मरकर प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥

मन्त्रः १२

आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः । किमिच्छन्कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत् ॥

पदच्छेदः।

आत्मानम्, चेत्, विजानीयात्, अयम्, अस्मि, इति, पूरुषः, किम्, इच्छन्, कस्य, कामाय, शरीरम्, अनुसंज्वरेत् ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
अयम्=यह श्रेष्ठ		विजानीयात्=जान लेवे तो	
पूरुषः=आत्मा		किम्=क्या	
अहम्=मैं		इच्छन्=इच्छा करता हुआ	
अस्मि=हूं		च=और	
इति=इस प्रकार		कस्य=किस पदार्थ की	
आत्मानम्=उस आत्मा को		कामाय=कामना के लिये	
चेत्=अगर		शरीरम्=शरीर के पीछे	
+ कश्चित्=कोई		अनुसंज्वरेत्=दुःखित होगा	

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे जनक ! सब पुरुषों को यह ज्ञात है कि मैं हूं पर अपने रूप का यथार्थ ज्ञान उनको नहीं है, यदि अपने स्वरूप का यथार्थ ज्ञान हो कि मैंही ब्रह्म हूं, तब वह ब्रह्मवित् पुरुष किस पदार्थ की कामना के लिये शरीर के पीछे दुःखित होगा यानी जब उसने अपने को ब्रह्म समझ लिया है और उसकी सब कामनायें दग्ध होगई हैं तो फिर किस कामना के लिये शरीर को धारण करेगा क्योंकि इच्छा की पूर्ति के लिये ही शरीर धारण किया जाता है ॥ १२ ॥

मन्त्रः १३

यस्यानुवित्तः प्रतिबुद्ध आत्मास्मिन्संदेह्ये गहने प्रविष्टः । स विश्वकृत्स हि सर्वस्य कर्त्ता तस्य लोकः स उ लोक एव ॥

पदच्छेदः ।

यस्य, अनुवित्तः, प्रतिबुद्धः, आत्मा, अस्मिन्, संदेह्ये, गहने, प्रविष्टः, सः, विश्वकृत्, सः, हि, सर्वस्य, कर्त्ता, तस्य, लोकः, सः, उ, लोकः, एव ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
यस्य=जिसका		अस्मिन्=इसी	
आत्मा=जीवात्मा		संदेह्ये=संदिग्ध	

गहने=कठिन शरीर में
प्रविष्टः=अन्तर्गत होता हुआ
अनुवित्तः=श्रवण मननादि करके ज्ञानी है
च=और
प्रतिबुद्धः=विचारवान् है
सः=वही
विश्वकृत्=सब कार्य का करने वाला है
सः=वही
सर्वस्य=सबका
कर्त्ता=कर्त्ता है
तस्य=उसी का
लोकः=यह लोक है
उ=और
सः एव=वही
लोकः=लोकरूप है

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे जनक ! जिसका जीवात्मा इसी कठिन शरीर में अन्तर्गत होता हुआ श्रवण मनन निदिध्यासन के द्वारा विचारवान् हुआ है वही सब कार्यों का करनेवाला है और वही सबका कर्त्ता है उसी का यह लोक है और वही लोकस्वरूप भी है जो कुछ दृश्यमान है सब उसी का रूप है ॥ १३ ॥

मन्त्रः १४

इहैव सन्तोऽथ विद्मस्तद्वयं न चेदवेदिर्महती विनष्टिः । ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःखमेवापियन्ति ॥

पदच्छेदः ।

इह, एव, सन्तः, अथ, विद्मः, तत्, वयम्, न, चेत्, अवेदिः, महती, विनष्टिः, ये, तत्, विदुः, अमृताः, ते, भवन्ति, अथ, इतरे, दुःखम्, एव, अपियन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
+ याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य महाराज		सन्तः=रहते हुये	
+ वदति=कहते हैं		तत्=उस ब्रह्म को	
+ यदि=अगर		विद्मः=जानलेवें	
इह=इसी		अथ=तो	
एव=शरीर में		सत्यम्=ठीक है	
वयम्=हम लोग		चेत्=अगर	

तत्=उस ब्रह्म को
वयम्=हम लोग
न=न
विद्मः=जानें
अथ=तो
अवेदिः=हम लोग अज्ञानी रहेंगे
+ तदा=तब
अस्मिन्=इसमें
महती=बड़ी
विनष्टिः=हानि होगी

ये=जो लोग
तत्=उस ब्रह्म को
विदुः=जानते हैं
ते=वे
अमृताः भवन्ति=अमर होजाते हैं
अथ=और
इतरे=उनसे पृथक् अज्ञानी
दुःखम्=दुःख को
एव=ही
अपियन्ति=प्राप्त होते हैं

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे राजा जनक ! अगर इसी शरीर में रहते हुये हम लोग उस ब्रह्म को जानलेवें तो बहुतही अच्छी बात है और अगर उस ब्रह्म को हम लोग न जान पावें तो हमारी अज्ञानता है, और बड़ी हानि है, जो लोग उस ब्रह्म को जानते हैं वे अमर होजाते हैं, और उनसे जो पृथक् अज्ञानी हैं वह दुःख उठाते हैं ॥ १४ ॥

मन्त्रः १५

यदैतमनुपश्यत्यात्मानं देवमञ्जसा । ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते ॥

पदच्छेदः ।

यदा, एतम्, अनुपश्यति, आत्मानम्, देवम्, अञ्जसा, ईशानम्, भूतभव्यस्य, न, ततः, विजुगुप्सते ॥

अन्वयः पदार्थाः

यदा अनु=जब आचार्य के उपदेश के पश्चात्
+ साधकः=साधक
अञ्जसा=साक्षात्

अन्वयः पदार्थाः

एतम्=इस
भूतभव्यस्य=तीनों काल के
ईशानम्=स्वामी
आत्मानम्=आत्मा

देवम्=देव को	+ कस्यचित् जीवात् }=किसी के जीव से
पश्यति=देखता है	न=नहीं
ततः=तो	विजुगुप्सते=घृणा करता है

भावार्थ ।

हे राजा जनक ! जब साधक आचार्य के उपदेश के पश्चात् इस तीनों काल के स्वामी अपने आत्मदेव को देख लेता है यानी साक्षात् कर लेता है तब वह किसी जीव से घृणा नहीं करता है ॥ १५ ॥

मन्त्रः १६

यस्मादर्वाक्संवत्सरोऽहोभिः परिवर्त्तते । तद्देवा ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासतेऽमृतम् ॥

पदच्छेदः ।

यस्मात्, अर्वाक्, संवत्सरः, अहोभिः, परिवर्त्तते, तत्, देवाः, ज्योतिषाम्, ज्योतिः, आयुः, ह, उपासते, अमृतम् ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
यस्मात्=जिस आत्मा के		ज्योतिः=ज्योति है	
अर्वाक्=पीछे		अमृतम्=मरणधर्म रहित है	
अहोभिः=दिन रात से संयुक्त		आयुः=प्राणीमात्र को आयु का देनेवाला है	
संवत्सरः=संवत्सर		तत् इति=उस ऐसे ब्रह्मकी	
परिवर्त्तते=फिरा करता है		देवाः=विद्वान्	
+ यः=जो		उपासते=उपासना करते हैं	
ज्योतिषाम्=ज्योतियों का			

भावार्थ ।

हे राजा जनक ! जिस आत्मा के पीछे पीछे दिन रात संयुक्त संवत्सर फिरा करता है, और जो ज्योतियों का ज्योति है, और मरण धर्मरहित है और जो प्राणीमात्र को आयु देनेवाला है, उसी ऐसे ब्रह्म की उपासना विद्वान् लोग करते हैं ॥ १६ ॥

मन्त्रः १७

यस्मिन्पञ्च पञ्चजना आकाशश्च प्रतिष्ठितः । तमेव मन्य आत्मानं विद्वान्ब्रह्मामृतोऽमृतम् ॥

पदच्छेदः ।

यस्मिन्, पञ्च, पञ्चजनाः, आकाशः, च, प्रतिष्ठितः, तम्, एव, मन्ये, आत्मानम्, विद्वान्, ब्रह्म, अमृतः, अमृतम् ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
+ जनक	हे जनक !	प्रतिष्ठितः	स्थित हैं
यस्मिन्	जिस ब्रह्म में	तम् एव	उसी
पञ्च	पांच प्रकार के	अमृतम्	अमृतरूप
पञ्चजनाः	मनुष्य यानी गन्धर्व, पितर, देव, असुर, और राक्षस, अथवा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद, अथवा- ज्योति, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, और मन	ब्रह्म	ब्रह्मको
		आत्मानम्	अपना आत्मा
		मन्ये	मानता हूं मैं
		+ च	और
		+ अतः	इसी ज्ञान से
		+ अहम्	मैं
		विद्वान्	विद्वान्
च	और	अमृतः	अमर
आकाशः	आकाश	+ आसम्	भया हूं

भावार्थ ।

हे राजा जनक ! जिस में पांच प्रकार के प्राणी यानी मनुष्य, गन्धर्व, असुर, देव, राक्षस, अथवा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, और निषाद, अथवा ज्योति, प्राण, चक्षु, श्रोत्र और मन और आकाश स्थित हैं, उसी अमृतरूप ब्रह्म को मैं अपना आत्मा मानता हूं, और मैं उसी ज्ञान से विद्वान् होकर अमर भया हूं ॥ १७ ॥

मन्त्रः १८

प्राणस्य प्राणमुत चक्षुषश्चक्षुरुत श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो ये मनो विदुः । ते निचिक्युर्ब्रह्म पुराणमग्र्यम् ॥

पदच्छेदः ।

प्राणस्य, प्राणम्, उत, चक्षुषः, चक्षुः, उत, श्रोत्रस्य, श्रोत्रम्, मनसः, ये, मनः, विदुः, ते, निचिक्युः, ब्रह्म, पुराणम्, अग्र्यम् ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
ये=जो लोग		श्रोत्रम्=श्रोत्र है	
विदुः=जानते हैं कि		उत=और	
सः=वह जीवात्मा		मनसः=मन का	
प्राणस्य=प्राण का		मनः=मनन करनेवाला है	
प्राणम्=प्राण है		ते=वे	
चक्षुषः=नेत्र का		पुराणम्=सनातन	
चक्षुः=नेत्र है		अग्र्यम्=सब के आदि	
उत=और		ब्रह्म=ब्रह्म को	
श्रोत्रस्य=श्रोत्र का		निचिक्युः=निश्चय कर चुके हैं	

भावार्थ ।

जो जानते हैं कि यह अपना जीवात्मा प्राण का प्राण है, नेत्र का नेत्र है, और श्रोत्र का श्रोत्र है, और मन का मनन करनेवाला है, वेही सनातन सब के आदि ब्रह्मको निश्चय कर चुके हैं ॥ १८ ॥

मन्त्रः १९

मनसैवानु द्रष्टव्यं नेह नानास्ति किंचन । मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥

पदच्छेदः ।

मनसा, एव, अनु, द्रष्टव्यम्, न, इह, नाना, अस्ति, किंचन, मृत्योः, सः, मृत्युम्, आप्नोति, यः, इह, नाना, इव, पश्यति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
इह=इस संसार में		द्रष्टव्यम्=देखने योग्य है	
मनसा एव=एकाग्र शुद्ध मन करके ही		+ यस्मिन्=उस आत्मा ब्रह्म में	
अनु=गुरूपदेश के पीछे		किंचन=कुछ भी	
+ सः=वह आत्मा		नाना=अनेकत्व	
		नास्ति=नहीं है	

यः=जो पुरुष	सः=वह
इह=इस संसार में	मृत्योः=मृत्यु से
नाना इव=एकत्व को छोड़ कर अनेकत्व को	मृत्युम्=मृत्यु को
पश्यति=देखता है	आप्नोति=प्राप्त होता है

भावार्थ ।

वह आत्मा ब्रह्म है जनक ! गुरु के उपदेश के पीछे एकाग्र शुद्ध मन करकेही जानने योग्य होता है, उस ब्रह्म में कुछ भी अनेकत्व नहीं है. जो पुरुष इस संसार में एकत्व को छोड़कर अनेकत्व को देखता है वह मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है ॥ १९ ॥

मन्त्रः २०

एकधैवानु द्रष्टव्यमेतदप्रमयं ध्रुवम् । विरजः पर आकाशादज आत्मा महान्ध्रुवः ॥

पदच्छेदः ।

एकधा, एव, अनु, द्रष्टव्यम्, एतत्, अप्रमयम्, ध्रुवम्, विरजः, परः, आकाशात्, अजः, आत्मा, महान्, ध्रुवः ॥

अन्वयः पदार्थाः	अन्वयः पदार्थाः
एतत्=यह जीवात्मा	महान्=सब से बड़ा है
अप्रमयम्=अप्रमेय है	ध्रुवः=अविनाशी है
ध्रुवम्=निश्चल है	+ इति=ऐसा
विरजः=रजोगुण रहित है	एव=निस्सन्देह
आकाशात्=आकाश से भी परः=परे है, यानी अति सूक्ष्म है	अनु एकधा=एक प्रकार से यानी श्रवण, मनन और निदिध्यासन करके
अजः=अजन्मा है	
आत्मा=व्यापक है	द्रष्टव्यम्=देखने योग्य है

भावार्थ ।

हे जनक ! यह जीवात्मा अप्रमेय है, अचल है, गुणों से रहित है, आकाश से भी परे है, यानी अतिसूक्ष्म है, अजन्मा है, व्यापक

है, सबसे बड़ा है, अविनाशी है, सोई निश्चय करके श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा देखने योग्य है ॥ २० ॥

मन्त्रः २१

तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः। नानुध्यायाद्बहूञ्छब्दान्वाचो विग्लापनꣳ हि तदिति ॥

पदच्छेदः।

तम्, एव, धीरः, विज्ञाय, प्रज्ञाम्, कुर्वीत, ब्राह्मणः, न, अनुध्यायात्, बहून्, शब्दान्, वाचः, विग्लापनम्, हि, तत्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थः	अन्वयः	पदार्थः
धीरः	बुद्धिमान्	अनुध्यायात्	चिन्तन करे
ब्राह्मणः	ब्रह्मजिज्ञासु	हि	क्योंकि
तम् एव	उसही आत्मा को	तत्	शब्दोच्चारण
विज्ञाय	जानकर	वाचः	वाणी का
प्रज्ञाम्	अपनी बुद्धि को	विग्लापनम्	श्रमकारक मात्र है यानी श्रम को उत्पन्न करनेवाला है
कुर्वीत	मोक्षसंपादिका बनावे	इति	ऐसा
बहून्	बहुत	+ आहुः	लोग कहते हैं
शब्दान्	ग्रन्थों को		
न	न		

भावार्थ।

हे जनक! विद्वान् ब्रह्मजिज्ञासु उसी आत्मा को जानकर अपनी बुद्धि को मोक्षसंपादिका बनावे, और बहुत ग्रन्थों को न चिन्तन करे, क्योंकि यह यानी शब्दों का उच्चारण वाणी को निष्फल श्रम देनेवाला है अथवा भ्रम में डालनेवाला है ॥ २१ ॥

मन्त्रः २२

स वा एष महानज आत्मा योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु य एषोऽन्तर्हृदय आकाशस्तस्मिञ्छेते सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिः स न साधुना कर्मणा भूयान्नो एवासाधुना कनीयानेष सर्वेश्वर एष भूताधिपतिरेष भूतपाल एष सेतुर्विधरण एषां लोका-

नामसंभेदाय तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेनैतमेव विदित्वा मुनिर्भवति । एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्ति । एतद्ध स्म वै तत्पूर्वे विद्वांसः प्रजां न कामयन्ते किं प्रजया करिष्यामो येषां नोऽयमात्माऽयं लोक इति ते ह स्म पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति या ह्येव पुत्रैषणा सा वित्तैषणा या वित्तैषणा सा लोकैषणोभे ह्येते एषणे एव भवतः । स एष नेतिनेत्यात्माऽगृह्यो न हि गृह्यतेऽशीर्यो न हि शीर्यतेऽसङ्गो न हि सज्यतेऽसितो न व्यथते न रिष्यत्येतमु हैवैते न तरत इत्यतः पापमकरवमित्यतः कल्याणमकरवमित्युभे उ हैवैष एते तरति नैनं कृताकृते तपतः ॥

पदच्छेदः ।

सः, वा, एषः, महान्, अजः, आत्मा, यः, अयम्, विज्ञानमयः, प्राणेषु, यः, एषः, अन्तर्हृदये, आकाशः, तस्मिन्, शेते, सर्वस्य, वशी, सर्वस्य, ईशानः, सर्वस्य, अधिपतिः, सः, न, साधुना, कर्मणा, भूयान्, नो, एव, असाधुना, कनीयान्, एषः, सर्वेश्वरः, एषः, भूताधिपतिः, एषः, भूतपालः, एषः, सेतुः, विधरणः, एषाम्, लोकानाम्, असंभेदाय, तम्, एतम्, वेदानुवचनेन, ब्राह्मणाः, विविदिषन्ति, यज्ञेन, दानेन, तपसा, अनाशकेन, एतम्, एव, विदित्वा, मुनिः, भवति, एतम्, एव, प्रव्राजिनः, लोकम्, इच्छन्तः, प्रव्रजन्ति, एतत्, ह, स्म, वै, तत्, पूर्वे, विद्वांसः, प्रजाम्, न, कामयन्ते, किम्, प्रजया, करिष्यामः, येषाम्, नः, अयम्, आत्मा, अयम्, लोकः, इति, ते, ह, स्म, पुत्रैषणायाः, च, वित्तैषणायाः, च, लोकैषणायाः, च, व्युत्थाय, अथ, भिक्षाचर्यम्, चरन्ति, या, हि, एव, पुत्रैषणा, सा, वित्तैषणा, या, वित्तैषणा, सा, लोकैषणा, उभे, हि, एते, एषणे, एव, भवतः, सः, एषः, न, इति, न, इति, आत्मा, अगृह्यः, न, हि, गृह्यते, अशीर्यः, न, हि, शीर्यते,

असङ्गः, न, हि, सज्यते, असितः, न, व्यथते, न, रिष्यति, एतम्, उ, ह, एव, एते, न, तरतः, इति, अतः, पापम्, अकरवम्, इति, अतः, कल्याणम्, अकरवम्, इति, उभे, उ, ह, एव, एषः, एते, तरति, न, एनम्, कृताकृते, तपतः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
सः वै	वही
एषः	यह
आत्मा	जीवात्मा
महान्	अति बड़ा है
अजः	अजन्मा है
यः	जो
अयम्	यह आत्मा
प्राणेषु	चक्षुरादिक इन्द्रियों में से
विज्ञानमयः	चैतन्यरूप स्थित है
च	और
यः	जो
एषः	यह
अन्तर्हृदये	हृदय के भीतर
आकाशः	आकश है
तस्मिन्	उसमें
शेते	शयन करता है
+ सः	वही
सर्वस्य	सबको
वशी	अपने वश में रखने हारा है
+ सः	वही
सर्वस्य	सबका
ईशानः	शासन करनेवाला है
+ सः	वही
सर्वस्य	सबका
अधिपतिः	अधिपति है
सः	वह
साधुना	अच्छे
कर्मणा	कर्म करके
न	न
भूयान्	पूज्य
भवति	होता है
च	और
नो	न
असाधुना	बुरे
कर्मणा	कर्म करके
कनीयान्	अपूज्य
+ भवति	होता है
+ सः	वही
एषः	यह आत्मा
सर्वेश्वरः	सबका ईश्वर है
+ सः	वही
एषः	यह आत्मा
भूताधिपतिः	सबका मालिक है
+ सः	वही
एषः	यह आत्मा
भूतपालः	सबका पालक है
+ सः	वही
एषः	यह आत्मा सबका पार लगानेवाला
सेतुः	सेतु है

+ सः=वही
एषाम्=इन
लोकानाम्=भूर्भुवर्लोकों की
असंभेदाय=रक्षा के लिये
विधरणः=उनका धारण करने वाला है
तम्=उसी
एतम्=इस आत्मा को
ब्राह्मणाः=ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य
वेदानुवचनेन=वेदाध्ययन करके
यज्ञेन=यज्ञ करके
दानेन=दान करके
तपसा=तप करके
अनाशकेन=अनशन व्रत करके
विविदिषन्ति=जानने की इच्छा करते हैं
च=और
एतम्=इसी को
एव=निस्संदेह
विदित्वा=जानकर
पुरुषः=पुरुष
मुनिः=मुनि
भवति=होता है
+ स्वम्=अभीष्ट
लोकम्=लोक को यानी ब्रह्मलोक को
इच्छन्तः=इच्छा करते हुये
प्रव्राजिनः=संन्यासी लोग
एतम् एव=इसी आत्मा का
+ उद्दिश्य=उपदेश पा करके
तत्=उसी अवस्था में
प्रव्रजन्ति=सर्व को त्याग देते हैं
एतत्=यही
तत्=वह
ह स्म वै=निश्चय करके
+ कारणम्=कारण है यानी इसी संन्यस्त धर्मके लियेही
पूर्वे=पूर्वकाल के
विद्वांसः=विद्वान्
प्रजाम्=संतान की
न=नहीं
कामयन्ते + स्म=कामना करते थे
एवम्विचारवन्तः=इस प्रकार विचार करते हुये कि
प्रजया=संतान करके
किम्=क्या
करिष्यामः=हम करेंगे
येषाम्=जिन
नः=हम लोगों का
सहायकः=सहायक
अयम्=यह
आत्मा=आत्मा है
च=और
इति=इसी कारण
ते=वे संन्यासी
ह स्म=निश्चय करके
पुत्रैषणायाः=पुत्र की इच्छा से
वित्तैषणायाः च=द्रव्य की इच्छा से
लोकैषणायाः च=लोकों की इच्छा से
व्युत्थाय=विरक्त होकर
भिक्षाचर्यम्=भिक्षानिमित्त
चरन्ति=फिरते हैं

या=जो
पुत्रैषणा=पुत्र की कामना है
सा=वही
हि एव=निस्सन्देह
वित्तैषणा=धन की कामना है
सा=वही
लोकैषणा=लोक की कामना है
एते=ये
हि=ही
उभे=दो
एषणे=इच्छायें
एव=निस्सन्देह
भवतः=होती हैं
सः=वही प्रसिद्ध
एषः=यह
आत्मा=आत्मा
नेति=नेति
नेति=नेति
इति=शब्द करके
अगृह्यः=अग्राह्य है
हि=क्योंकि
सः=वह
न=नहीं
गृह्यते=ग्रहण किया जा सक्ता है
सः=वह
अशीर्यः=अहिंसनीय है
हि=क्योंकि
+ सः=वह
न=नहीं
शीर्यते=मारा जा सक्ता है
असङ्गः=वह असङ्ग है

हि=क्योंकि
सः न=वह नहीं
सज्यते=किसी में आसक्त है
असितः=वह बन्धनरहित है
हि=क्योंकि
सः न=वह नहीं
व्यथते=पीड़ित होता है
च=और
न=न
+ सः=वह
रिष्यति=हत होता है
उ=और
पापम्=पाप
अकरवम्=मैंने किया था
अतः=इस लिये दुःख भोगूंगा
कल्याणम्=पुण्य मैंने किया था
अतः=इसलिये सुख भोगूंगा
इति=ऐसे
एते=ये
उभे=दोनों इच्छायें
एतम्=इस आत्मा को
न एव=नहीं
तरतः ह=लगती हैं
एषः उ ह=यह आत्मा
एव=अवश्य
तरति=इन दोनों इच्छाओं को पार कर जाता है
एनम्=इस ब्रह्मवित् को
कृताकृते=कृताकृत कर्म
न=नहीं
तपतः=सताते हैं

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, जो आत्मा चक्षुरादि इन्द्रियों में चैतन्यरूप से स्थित है और जो हृदय के आकाश विषे शयन किये है वही अति बड़ा है, अजन्मा है, सबको अपने वशमें रखनेवाला है, वही सबका शासन करनेवाला है, वही सबका अधिपति है, वही न अच्छे करके पूज्य होता है, न बुरे कर्म करके अपूज्य होता है, वही सबका ईश्वर है, वही सब भूतों का मालिक है, वही सबका पालक है, वही यह आत्मा सबका पार लगानेवाला सेतु है, वही लोकों की रक्षा के लिये उनका धारण करनेवाला है उसी आत्मा को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वेदाध्ययन करके, यज्ञ करके, दान करके, तप करके, अनशन व्रत करके जानने की इच्छा करते हैं और जो उसको जान जाता है वह मुनि कहलाता है, वही ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है. संन्यासी लोग इसी आत्मा के उपदेश को पाकर सबका त्याग कर देते हैं और इसी संन्यस्त धर्म के लियेही पूर्वकाल के विद्वान् लोग संतान की इच्छा नहीं करते थे यह कहते हुये कि हम संतान लेकर क्या करेंगे, जब हम लोगों का सहायक अपनाही आत्मा है और यही कारण था कि वे लोग पुत्र की इच्छा नहीं करते थे. द्रव्य की इच्छा से, पुत्र की इच्छा से, लोकों की इच्छा से विरक्त होकर केवल भिक्षानिमित्त विचरा करते थे. हे राजा जनक ! जो पुत्र की कामना है वही धन की कामना है, वही लोक की कामना है इन तीनों कामनाओं से यह आत्मा पृथक् है, नेति नेति शब्द करके अग्राह्य है क्योंकि यह ग्रहण नहीं किया जा सक्ता है, यह अहिंसनीय है क्योंकि मारा नहीं जा सक्ता है, यह असङ्ग है क्योंकि यह किसी वस्तु में आसक्त नहीं है, यह बन्धनरहित है क्योंकि वह पीड़ित नहीं होता है, न हत होता है, यह वृत्ति कि मैंने पाप किया था इस लिये मैं दुःख भोगूंगा, मैंने पुण्य किया था मैं सुख भोगूंगा इस आत्मा को नहीं लगती है. यह आत्मा अवश्य इन

दोनों द्वन्द्वों को पार कर जाता है और ब्रह्मवित् पुरुष को कृताकृत कर्म नहीं सताता है ॥ २२ ॥

मन्त्रः २३

तदेतदृचाभ्युक्तम् । एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य न वर्धते कर्मणा नो कनीयान् । तस्यैव स्यात्पदवित्तं विदित्वा न लिप्यते कर्मणा पापकेनेति । तस्मादेवंविच्छान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वात्मन्येवात्मानं पश्यति सर्वमात्मानं पश्यति नैनं पाप्मा तरति सर्वं पाप्मानं तरति नैनं पाप्मा तपति सर्वं पाप्मानं तपति विपापो विरजोऽविचिकित्सो ब्राह्मणो भवत्येष ब्रह्मलोकः सम्राडेनं प्रापितोऽसीति होवाच याज्ञवल्क्यः सोऽहं भगवते विदेहान्ददामि मां चापि सह दास्यायेति ॥

पदच्छेदः ।

तत्, एतत्, ऋचा, अभ्युक्तम्, एषः, नित्यः, महिमा, ब्राह्मणस्य, न, वर्धते, कर्मणा, नो, कनीयान्, तस्य, एव, स्यात्, पदवित्, तम्, विदित्वा, न, लिप्यते, कर्मणा, पापकेन, इति, तस्मात्, एवंवित्, शान्तः, दान्तः, उपरतः, तितिक्षुः, समाहितः, भूत्वा, आत्मनि, एव, आत्मानम्, पश्यति, सर्वम्, आत्मानम्, पश्यति, न, एनम्, पाप्मा, तरति, सर्वम्, पाप्मानम्, तरति, न, एनम्, पाप्मा, तपति, सर्वम्, पाप्मानम्, तपति, विपापः, विरजः, अविचिकित्सः, ब्राह्मणः, भवति, एषः, ब्रह्मलोकः, सम्राट्, एनम्, प्रापितः, असि, इति, ह, उवाच, याज्ञवल्क्यः, सः, अहम्, भगवते, विदेहान्, ददामि, माम्, च, अपि, सह, दास्याय, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
तत्=वही	
एतत्=यह संन्यस्त धर्म	
ऋचा=मन्त्र करके भी	
अभ्युक्तम्=कहा गया है	

अन्वयः	पदार्थाः
ब्राह्मणस्य=ब्रह्मवित् पुरुष की	
एषः=यह	
नित्यः=स्वाभाविक	
महिमा=महिमा है	

न=न
+ सः=वह
कर्मणा=कर्म करके
वर्धते=बढ़ता है
च=और
न=न
कनीयान्=छोटा
+ भवति=होता है
+ यदा=जब
तस्य एव=उस ब्रह्म के महत्त्व का
सः=वह
पदवित्=ज्ञाता
स्यात्=होता है
तदा=तब
तम्=उस महिमा को
विदित्वा=जान कर
पापकेन=पाप
कर्मणा=कर्म करके
न=नहीं
लिप्यते=लिप्त होता है
तस्मात्=इस लिये
एवंवित्=ऐसा जाननेवाला
शान्तः=शान्त
दान्तः=दान्त
उपरतः=उपरत
तितिक्षुः=तितिक्षु
समाहितः=सावधान
एवंवित्=समाहित चित्त
भूत्वा=होकर
आत्मनि एव=अपनेही में
आत्मानम्=परमात्मा को
पश्यति=देखता है
+ च=और
यदा=जब
सर्वम्=सब जगत् को
आत्मानम्=आत्मरूपही
पश्यति=देखता है
तदा=तब
एनम्=इस ज्ञानी को
पाप्मा=पाप
न=नहीं
प्राप्नोति=लगता है
+ किन्तु=किन्तु
+ सः=वह ज्ञानी
सर्वम्=सब
पाप्मानम्=पाप को
तरति=तरता जाता है
एनम्=इस ज्ञानी को
पाप्मा=पाप
न=नहीं
तपति=तपाता है
+ किन्तु=किन्तु
+ सः=वह ज्ञानी
सर्वम्=सब
पाप्मानम्=पाप को
तपति=नष्ट कर देता है
ब्राह्मणः=ब्रह्मवित्
विपापः=पापरहित
विरजः=धर्माधर्म रहित
अविचिकित्सः=निस्सन्देह
भवति=होता है
सम्राट्=हे जनक !
एषः=यही
ब्रह्मलोकः=ब्रह्मलोक है

एनम्=इसी लोक को
+ त्वम्=आप
प्रापितः=पहुँचाये गये
असि=हैं
यदा=जब
इति=इस तरह
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
उवाच ह=कहा तब
+ जनकः=जनक
+ आह=बोले
सः=वही बोधित
अहम्=मैं
भगवते=आपके लिये
विदेहान्=विदेह देशों को
सह=साथही
माम् च अपि=साथ अपने आपको भी
दास्याय=सेवा के लिये
ददामि=देता हूं

भावार्थ।

हे राजा जनक ! जिस संन्यासी का जैसा वर्णन होचुका है उसी को मन्त्र भी कहता है, हे राजन् ! ब्रह्मवित् पुरुष की पूर्वोक्त महिमा स्वाभाविक है वह महिमा कर्म से न वढ़ती है न अल्प होती है, वह ब्रह्मवेत्ता पापकर्म से लिप्त नहीं होता है, वह शान्त, दान्त, उपरत, तितिक्षु और समाहित चित्त होकर अपनेही में अपने आत्मा को देखता है और जब सब जगत् को अपनाही आत्मारूप देखता है तब वह ज्ञानी सब पापको पार कर जाता है उस ज्ञानी को पाप नहीं तपाता है किन्तु वह ज्ञानी सब पाप को नष्ट कर देता है, वह ब्रह्मवित् पुरुष पापरहित, धर्मरहित होजाता है. हे जनक ! यही ब्रह्मलोक है, इसी लोक को आप पहुँचाये गये हैं, ऐसा सुनकर जनक महाराज बोले कि, हे प्रभो ! मैं आप के लिये कुल विदेह देशों को और साथही साथ अपने को भी सेवा के लिये अर्पण करता हूं ॥ २३ ॥

मन्त्रः २४

स वा एष महानज आत्मान्नादो वसुदानो विन्दते वसु य एवं वेद ॥

पदच्छेदः।

सः, वा, एषः, महान्, अजः, आत्मा, अन्नादः, वसुदानः, विन्दते, वसु, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थाः
सः	वही
एषः	यह आत्मा
महान्	सर्वोत्कृष्ट
अजः	अजन्मा
अन्नादः	अन्नभोक्ता
वसुदानः	कर्मफल दाता है

अन्वयः	पदार्थाः
एवम्	इस प्रकार
यः	जो
वेद	जानता है
+ सः	वह ज्ञानी
वसु	धन को
विन्दते	प्राप्त होता है

भावार्थ ।

हे राजा जनक ! यह आत्मा सर्वोत्कृष्ट, अजन्मा, अन्नभोक्ता, कर्मफल का दाता है जो इस प्रकार आत्मा को जानता है वह अनेक प्रकार के धनको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥

मन्त्रः २५

स वा एष महानज आत्माजरोऽमरोऽमृतोऽभयो ब्रह्माभयं वै ब्रह्माभयꣳ हि वै ब्रह्म भवति य एवं वेद ॥

इति चतुर्थं ब्राह्मणम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

सः, वा, एषः, महान्, अजः, आत्मा, अजरः, अमरः, अमृतः, अभयः, ब्रह्म, अभयम्, वै, ब्रह्म, अभयम्, हि, वै, ब्रह्म, भवति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थाः
सः वै	वही
एषः	यह
आत्मा	आत्मा
महान्	बड़ा है
अमरः	अमर है
अजः	अजन्मा है
अजरः	जरारहित है
अमृतः	मरणधर्मरहित है
अभयः	भयरहित है

अन्वयः	पदार्थाः
अभयम् ब्रह्म वै	यही अभय ब्रह्म है
अभयम् ब्रह्म हि	यही अभय ब्रह्म है
एवम्	इस प्रकार
यः	जो
वेद	जानता है
सः	वह
ब्रह्म	ब्रह्मस्वरूप
भवति	होता है

भावार्थ ।

हे राजा जनक ! यह आत्मा सब से बड़ा है, अमर है, अजन्मा

है, जरारहित है, मरणधर्मरहित है, यही अभय है, यही अभय ब्रह्म है, जो पुरुष इस प्रकार जानता है वह ब्रह्मस्वरूप होता है ॥ २५ ॥

इति चतुर्थं ब्राह्मणम् ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

अथ ह याज्ञवल्क्यस्य द्वे भार्ये बभूवतुर्मैत्रेयी च कात्यायनी च तयोर्ह मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी बभूव स्त्रीप्रज्ञैव तर्हि कात्यायन्यथ ह याज्ञवल्क्योऽन्यद्वृत्तमुपाकरिष्यन् ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, याज्ञवल्क्यस्य, द्वे, भार्ये, बभूवतुः, मैत्रेयी, च, कात्यायनी, च, तयोः, ह, मैत्रेयी, ब्रह्मवादिनी, बभूव, स्त्रीप्रज्ञा, एव, तर्हि, कात्यायनी, अथ, ह, याज्ञवल्क्यः, अन्यत्, वृत्तम्, उपाकरिष्यन् ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
अथ	कहते हैं कि	कात्यायनी	और कात्यायनी
ह	निश्चय करके	स्त्रीप्रज्ञा	स्त्रीप्रज्ञा यानी गृहस्थ धर्मिणी
याज्ञवल्क्यस्य	याज्ञवल्क्य के	बभूव	थी
द्वे	दो	अथ ह	और जब
भार्ये	स्त्रियां	याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य
बभूवतुः	थीं	अन्यत्	दूसरे
तयोः	उनमें से	वृत्तम्	आश्रम यानी संन्यास को
मैत्रेयी	एक मैत्रेयी	उपाकरिष्यन्	धारण करने की इच्छावाले
च	और	+ आसीत्	हुये
कात्यायनी	दूसरी कात्यायनी		
मैत्रेयी	मैत्रेयी		
ब्रह्मवादिनी	ब्रह्मवादिनी		

भावार्थ ।

लोग कहते हैं कि, याज्ञवल्क्य महाराज के दो स्त्रियां थीं, उनमें से एक मैत्रेयी थी, दूसरी कात्यायनी थी, मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थी, और

कात्यायनी स्त्रीप्रज्ञा यानी गृहस्थधर्मिणी थी, जब याज्ञवल्क्य महाराज ने गृहस्थाश्रम को त्याग कर संन्यास लेने का विचार किया ॥ १ ॥

मन्त्रः २

मैत्रेयीति होवाच याज्ञवल्क्यः प्रव्रजिष्यन्वा अरेऽहमस्मात्स्थानादस्मि हन्त तेऽनया कात्यायन्यान्तं करवाणीति ॥

पदच्छेदः ।

मैत्रेयि, इति, ह, उवाच, याज्ञवल्क्यः, प्रव्रजिष्यन्, वा, अरे, अहम्, अस्मात्, स्थानात्, अस्मि, हन्त, ते, अनया, कात्यायन्या, अन्तम्, करवाणि, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
ह	तब	प्रव्रजिष्यन्	गमन करनेवाला
मैत्रेयि	हे मैत्रेयि !	अस्मि	हूं
इति	ऐसा	हन्त	यदि तुम्हारी इच्छा हो तो
+ सम्बोध्य	सम्बोधन करके	अनया	इस
याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य	कात्यायन्या	कात्यायनी के साथ
उवाच	बोले कि	ते	तुम्हारे
अरे	अरे मैत्रेयि !	अन्तम्	धनविभाग को
अहम्	मैं	करवाणि इति	पृथक् करदूं
अस्मात्	इस		
स्थानात्	गृहस्थाश्रम से		

भावार्थ ।

तब मैत्रेयी को सम्बोधन करके कहा कि अरे मैत्रेयि ! मैं इस गृहस्थाश्रम से गमन करनेवाला हूं, यदि तुम्हारी इच्छा हो तो इस कात्यायनी के साथ तुम्हारे धन के भाग को पृथक् कर दूं ॥ २ ॥

मन्त्रः ३

सा होवाच मैत्रेयी यन्नु म इयं भगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात्स्यां न्वहं तेनामृताऽहो ३ नेति नेति होवाच याज्ञवल्क्यो यथैवोपकरणवतां जीवितं तथैव ते जीवितꣳ स्यादमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेनेति ॥

पदच्छेदः ।

सा, ह, उवाच, मैत्रेयी, यत्, नु, मे इयम्, भगोः, सर्वा, पृथिवी, वित्तेन, पूर्णा, स्यात्, स्याम्, नु, अहम्, तेन, अमृता, आहो, न, इति, न, इति, ह, उवाच, याज्ञवल्क्यः, यथा, एव, उपकरणवताम्, जीवितम्, तथा, एव, ते, जीवितम्, स्यात्, अमृतत्वस्य, तु, न, आशा, अस्ति, वित्तेन, इति ॥

अन्वयः पदार्थाः

ह=तब
मैत्रेयी=मैत्रेयी
उवाच=बोली कि
यत् नु=यदि
भगोः=हे भगवन् !
इयम्=यह
सर्वा=सब
पृथिवी=पृथिवी
वित्तेन=धन धान्यादि करके
पूर्णा=पूरित होती हुई
मे=मेरे ही
स्यात्=होजाय तो
तेन=उस करके
+ अहम्=मैं
कथम्=किसी तरह
अमृता=मुक्त
स्याम्=होजाऊंगी
+ इति श्रुत्वा=ऐसा सुनकर
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य ने
उवाच=कहा कि
इति=ऐसा
न=नहीं होसक्ता है
यथा=जैसे
उपकरणवताम्=धनाढ्य का
जीवितम्=जीवन
भवति=होता है
तथैव=उसी प्रकार
ते=तुम्हारा भी
जीवितम्=जीवन
स्यात्=होगा
तु=मगर
अमृतत्वस्य=मुक्ति की
आशा=आशा
वित्तेन=धन करके
न=नहीं
अस्ति=होसक्ती है

भावार्थ ।

यह सुनकर मैत्रेयी बोली कि, हे भगवन् ! आप कृपा करके बतावें कि यदि सब पृथिवी धन धान्यादि करके पूरित होती हुई मेरेही हो जाय तो क्या उस करके मैं मुक्त हो जाऊंगी ? यह सुनकर याज्ञवल्क्य

महाराज ने कहा कि तुम धन आदिके पाने से मुक्त नहीं हो सक्ती हो, हां जैसे धनाढ्यादि अपना जीवन करते हैं उसी प्रकार तुम्हारा भी जीवन होगा परन्तु मुक्ति की आशा धन करके नहीं होसक्ती है ॥ ३ ॥

मन्त्रः ४

सा होवाच मैत्रेयी येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्यां यदेव भगवान्वेद तदेव मे ब्रूहीति ॥

पदच्छेदः ।

सा, ह, उवाच, मैत्रेयी, येन, अहम्, न, अमृता, स्याम्, किम्, अहम्, तेन, कुर्याम्, यत्, एव, भगवान्, वेद, तत्, एव, मे, ब्रूहि, इति ॥

अन्वयः पदार्थाः	अन्वयः पदार्थाः
ह=तब	अहम्=मैं
सा=वह	किम्=क्या
मैत्रेयी=मैत्रेयी	कुर्याम्=करूंगी
उवाच=बोली कि	भगवान्=आप
येन=जिस धन से	यत्=जिस वस्तु को
अहम्=मैं	एव=भली प्रकार
अमृता=मुक्त	वेद=जानते हैं
न=नहीं	तत् एव=उसही को
स्याम्=होसक्ती हूं	मे=मेरे लिये
तेन=उस धन को	ब्रूहि इति=उपदेश करें

भावार्थ ।

उस पर मैत्रेयी बोली कि जब धन करके मुक्त नहीं होसक्ती हूं तो उस धन को मैं क्या करूंगी, हे प्रभो ! जिस वस्तु को आप भली प्रकार जानते हैं उसी को मेरे लिये उपदेश करें ॥ ४ ॥

मन्त्रः ५

स होवाच याज्ञवल्क्यः प्रिया वै खलु नो भवती सती प्रियमवृधद्धन्त तर्हि भवत्येतद्व्याख्यास्यामि ते व्याचक्षाणस्य तु मे निदिध्यासस्वेति ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, याज्ञवल्क्यः, प्रिया, वै, खलु, नः, भवती, सती, प्रियम्, अवृधत्, हन्त, तर्हि, भवति, एतत्, व्याख्यास्यामि, ते, व्याचक्षाणस्य, तु, मे, निदिध्यासस्व, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
ह=तब		भवति=हे मैत्रेयि !	
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य		ते=तुम्हारे लिये	
उवाच वै=बोले कि		एतत्=इस मोक्ष को	
भवती=तू		व्याख्यास्यामि=मैं कहूंगा	
नः=मेरी बड़ी		तु=लेकिन	
प्रिया=प्यारी		व्याचक्षाणस्य=बयान करते हुये	
सती=होकर		मे=मेरे	
प्रियम्=प्रिय कोही		निदिध्यासस्व इति=बातों के मतलब पर ध्यान रक्खो	
अवृधत्=चाहती है			
हन्त तर्हि=अच्छा तो			

भावार्थ ।

यह सुनकर याज्ञवल्क्य महाराज बोले कि, हे मैत्रेयि ! तू पहिले भी मुझको अतिप्रिय थी और अब भी तू अतिप्यारी है और प्रिय वस्तु को चाहनेवाली है, हे मैत्रेयि ! मैं तुम्हारे लिये इस मोक्षमार्ग को बड़ी खुशी से कहूंगा तुम मेरे वचनों को खूब ध्यान देकर सुनो ॥ ५ ॥

मन्त्रः ६

स होवाच न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति । न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति । न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति । न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति । न वा अरे पशूनां कामाय पशवः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय पशवः प्रिया भवन्ति । न वा अरे

ब्रह्मणः कामाय ब्रह्म प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय ब्रह्म प्रियं भवति । न वा अरे क्षत्रस्य कामाय क्षत्रं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय क्षत्रं प्रियं भवति । न वा अरे लोकानां कामाय लोकाः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय लोकाः प्रिया भवन्ति । न वा अरे देवानां कामाय देवाः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय देवाः प्रिया भवन्ति । न वा अरे वेदानां कामाय वेदाः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय वेदाः प्रिया भवन्ति । न वा अरे भूतानां कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्त्यात्मनस्तु कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्ति । न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति । आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञात इदꣳ सर्वं विदितम् ॥

पदच्छेदः ।

सः, ह, उवाच, न, वा, अरे, पत्युः, कामाय, पतिः, प्रियः, भवति, आत्मनः, तु, कामाय, पतिः, प्रियः, भवति, न, वा, अरे, जायायै, कामाय, जाया, प्रिया, भवति, आत्मनः, तु, कामाय, जाया, प्रिया, भवति, न, वा, अरे, पुत्राणाम्, कामाय, पुत्राः, प्रियाः, भवन्ति, आत्मनः, तु, कामाय, पुत्राः, प्रियाः, भवन्ति, न, वा, अरे, वित्तस्य, कामाय, वित्तम्, प्रियम्, भवति, आत्मनः, तु, कामाय, वित्तम्, प्रियम्, भवति, न, वा, अरे, पशूनाम्, कामाय, पशवः, प्रियाः, भवन्ति, आत्मनः, तु, कामाय, पशवः, प्रियाः, भवन्ति, न, वा, अरे, ब्रह्मणः, कामाय, ब्रह्म, प्रियम्, भवति, आत्मनः, तु, कामाय, ब्रह्म, प्रियम्, भवति, न, वा, अरे, क्षत्रस्य, कामाय, क्षत्रम्, प्रियम्, भवति, आत्मनः, तु, कामाय, क्षत्रम्, प्रियम्, भवति, न, वा, अरे, लोकानाम्, कामाय, लोकाः, प्रियाः, भवन्ति, आत्मनः, तु, कामाय, लोकाः, प्रियाः, भवन्ति, न, वा, अरे, देवानाम्, कामाय, देवाः, प्रियाः, भवन्ति, आत्मनः, तु, कामाय, देवाः, प्रियाः, भवन्ति, न, वा, अरे, वेदानाम्,

कामाय, वेदाः, प्रियाः, भवन्ति, आत्मनः, तु, कामाय, वेदाः, प्रियाः, भवन्ति, न, वा, अरे, भूतानाम्, कामाय, भूतानि, प्रियाणि, भवन्ति, आत्मनः, तु, कामाय, भूतानि, प्रियाणि, भवन्ति, न वा, अरे, सर्वस्य, कामाय, सर्वम्, प्रियम्, भवति, आत्मनः, तु, कामाय, सर्वम्, प्रियम्, भवति, आत्मा, वा, अरे, द्रष्टव्यः, श्रोतव्यः, मन्तव्यः, निदिध्यासितव्यः, मैत्रेयि, आत्मनि, खलु, अरे, दृष्टे, श्रुते, मते, विज्ञाते, इदम्, सर्वम्, विदितम् ॥

अन्वयः	पदार्थाः
ह=प्रसिद्ध	
सः=वह याज्ञवल्क्य	
उवाच=कहते भये कि	
अरे=हे मैत्रेयि !	
पत्युः=पति की	
कामाय=कामना के लिये	
+भार्याम्=भार्या को	
पतिः=पति	
प्रियः=प्यारा	
न=नहीं	
भवति=होता है	
तु=परन्तु	
आत्मनः=अपने जीवात्मा की	
कामाय=कामना के लिये	
पतिः=पति	
+भार्याम्=भार्या को	
प्रियः=प्यारा	
भवति=होता है	
अरे=हे मैत्रेयि !	
जायायै=पत्नी की	
कामाय=कामना के लिये	
जाया=पत्नी	

अन्वयः	पदार्थाः
प्रिया=पति को प्यारी	
न=नहीं	
भवति=होती है	
तु=परन्तु	
आत्मनः=अपने जीवात्मा की	
कामाय=कामना के लिये	
जाया=पत्नी	
प्रिया=पति को प्यारी	
भवति=होती है	
अरे=हे मैत्रेयि !	
पुत्राणाम्=लड़कों के	
कामाय=मतलब के लिये	
पुत्राः=लड़के	
प्रियाः=माता पिता को प्यारे	
न=नहीं	
भवन्ति=होते हैं	
तु=परन्तु	
आत्मनः=अपने	
कामाय=मतलब के लिये	
पुत्राः=लड़के	
प्रियाः=माता पिता को प्यारे	
भवन्ति=होते हैं	

अरे=हे मैत्रेयि !
वित्तस्य=धन के
कामाय=अर्थ
वित्तम्=धनी को धन
प्रियम्=प्यारा
वै न=नहीं
भवति=होता है
तु=परन्तु
आत्मनः=अपने जीवात्मा की
कामाय=कामना के लिये
वित्तम्=धन
प्रियम्=प्यारा
भवति=होता है
अरे=हे मैत्रेयि !
ब्रह्मणः=ब्राह्मण के
कामाय=मतलब के लिये
ब्रह्म=ब्राह्मण
प्रियम्=लोगों को प्यारा
वै न=नहीं
भवति=होता है
तु=परन्तु
आत्मनः=अपने जीवात्मा के
कामाय=मतलब के लिये
ब्रह्म=ब्राह्मण
प्रियम्=प्यारा
भवति=होता है
अरे=हे मैत्रेयि !
क्षत्रस्य=क्षत्रिय के
कामाय=मतलब के लिये
क्षत्रम्=क्षत्रिय
प्रियम्=लोगों को प्यारा
न=नहीं
भवति=होता है
तु=परन्तु
आत्मनः=अपने जीवात्मा के
कामाय=मतलब के लिये
क्षत्रम्=क्षत्रिय
प्रियम्=प्यारा
भवति=होता है
अरे=हे मैत्रेयि !
लोकानाम्=लोकों के
कामाय=मतलब के लिये
लोकाः=लोक
प्रियाः=प्यारे
न वै=नहीं
भवन्ति=होते हैं
तु=परन्तु
आत्मनः=अपने जीवात्मा के
कामाय=मतलब के लिये
लोकाः=लोक
प्रियाः=प्यारे
भवन्ति=होते हैं
अरे=हे मैत्रेयि !
देवानाम्=देवताओं के
कामाय=मतलब के लिये
देवाः=देवता
प्रियाः=लोगों को प्यारे
न वै=नहीं
भवन्ति=होते हैं
तु=परन्तु
आत्मनः=अपने जीवात्मा के
कामाय=मतलब के लिये
देवाः=देवता
प्रियाः=प्यारे

भवन्ति=होते हैं
अरे=हे मैत्रेयि !
भूतानाम्=प्राणियों के
कामाय=मतलब के लिये
भूतानि=और प्राणी
प्रियाणि=प्रिय
न वै=नहीं
भवन्ति=होते हैं
तु=परन्तु
आत्मनः=अपने जीवात्मा की
कामाय=कामना के लिये
भूतानि=प्राणी
प्रियाणि=प्यारे
भवन्ति=होते हैं
अरे=हे मैत्रेयि !
सर्वस्य=सब के
कामाय=मतलब के लिये
सर्वम्=सब
प्रियम्=प्यारे
न वै=नहीं
भवन्ति=होते हैं
तु=परन्तु
आत्मनः=अपने जीवात्मा के
कामाय=मतलब के लिये
सर्वम्=सब
प्रियम्=प्यारे
भवति=होते हैं
अरे=हे मैत्रेयि !
आत्मा=वह अपना जीवात्मा
द्रष्टव्यः=देखने योग्य है
मन्तव्यः=मनन के योग्य है
श्रोतव्यः=सुनने के योग्य है
निदिध्यासितव्यः=ध्यान के योग्य है
अरे मैत्रेयि=हे मैत्रेयि !
आत्मनि=जीवात्मा के
दृष्टे=देखे जाने पर
श्रुते=सुने जाने पर
मते=मनन किये जाने पर
विज्ञाते=जाने जाने पर
इदम्=यह
सर्वम्=सारा ब्रह्माण्ड
विदितम्=मालूम
+ भवति=होजाता है

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे मैत्रेयि ! पति की कामना के लिये भार्या को पति प्यारा नहीं होता है परन्तु निज जीवात्मा की कामना के लिये पति भार्या को प्यारा होता है, हे मैत्रेयि ! पत्नी की कामना के लिये पत्नी पति को प्यारी नहीं होती है परन्तु अपने जीवात्मा की कामना के लिये पत्नी पति को प्यारी होती है, हे मैत्रेयि ! लड़कों की कामना के लिये लड़के माता पिता को प्यारे नहीं होते हैं परन्तु अपने जीवात्मा के लिये लड़के माता पिता को प्यारे होते हैं,

हे मैत्रेयि ! धनके अर्थ धनी को धन प्यारा नहीं होता है, परन्तु अपने जीवात्मा की कामना के लिये धन धनी को प्यारा होता है, हे मैत्रेयि ! ब्राह्मण की कामना के लिये लोगों को ब्राह्मण प्यारा नहीं होता है, परन्तु अपने जीवात्मा की कामना के लिये ब्राह्मण लोगों को प्यारा होता है, हे मैत्रेयि ! क्षत्रिय की कामना के लिये क्षत्रिय लोगों को प्यारा नहीं होता है परन्तु अपने जीवात्मा के लिये लोगों को क्षत्रिय प्यारा होता है, लोकों की कामना के लिये लोक प्रिय. नहीं होते हैं परन्तु अपने जीवात्मा के लिये लोगों को लोक प्यारे होते हैं, हे मैत्रेयि ! देवताओं की कामना के लिये लोगों को देवता प्यारे नहीं होते हैं, परन्तु अपने जीवात्मा के लिये देवता लोगों को प्यारे होते हैं, हे मैत्रेयि ! प्राणियों की कामना के लिये प्राणी प्यारे नहीं होते हैं परन्तु अपने जीवात्मा की कामना के लिये लोगों को प्राणी प्रिय होते हैं, हे मैत्रेयि ! सबकी कामना के लिये सबको सब प्यारे नहीं होते हैं परन्तु अपने जीवात्मा की कामना के लिये सबको सब प्यारे होते हैं, अरे हे मैत्रेयि ! यही अपना जीवात्मा देखने योग्य है, मनन करने योग्य है, श्रवण करने योग्य है, ध्यान करने योग्य है, हे मैत्रेयि ! जीवात्मा के देखे जाने पर, सुने जाने पर, मनन किये जाने पर यह सारा ब्रह्माण्ड मालूम होजाता है ॥ ६ ॥

मन्त्रः ७

ब्रह्म तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनो ब्रह्म वेद क्षत्रं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः क्षत्रं वेद लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो लोकान्वेद देवास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो देवान्वेद वेदास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो वेदान्वेद भूतानि तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो भूतानि वेद सर्वं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेदेदं ब्रह्मेदं क्षत्रमिमे लोका इमे देवा इमे वेदा इमानि भूतानीदꣳ सर्वं यदयमात्मा ॥

पदच्छेदः ।

ब्रह्म, तम्, परादात्, यः, अन्यत्र, आत्मनः, ब्रह्म, वेद, क्षत्रम्, तं, परादात्, यः, अन्यत्र, आत्मनः, क्षत्रम्, वेद, लोकाः, तम्, परादुः, यः, अन्यत्र, आत्मनः, लोकान्, वेद, देवाः, तम्, परादुः, यः, अन्यत्र, आत्मनः, देवान्, वेद, वेदाः, तम्, परादुः, यः, अन्यत्र, आत्मनः, वेदान्, वेद, भूतानि, तम्, परादुः, यः, अन्यत्र, आत्मनः, भूतानि, वेद, सर्वम्, तम्, परादात्, यः, अन्यत्र, आत्मनः, सर्वम्, वेद, इदम्, ब्रह्म, इदम्, क्षत्रम्, इमे, लोकाः, इमे, देवाः, इमे, वेदाः, इमानि, भूतानि, इदम्, सर्वम्, यत्, अयम्, आत्मा ॥

अन्वयः	पदार्थः
अरे	हे मैत्रेयि !
ब्रह्म	ब्राह्मण जाति
तम्	उस पुरुष को
परादात्	त्याग देती है
यः	जो
आत्मनः	अपने जीवात्मा से
अन्यत्र	पृथक्
ब्रह्म	ब्राह्मण को
वेद	जानता है
क्षत्रम्	क्षत्रिय जाति
तम्	उस पुरुष को
परादात्	त्याग देती है
यः	जो
आत्मनः	अपने जीवात्मा से
अन्यत्र	पृथक्
क्षत्रम्	क्षत्रिय को
वेद	जानता है
लोकाः	स्वर्गादिलोक
तम्	उस पुरुष को
परादुः	त्याग देते हैं
यः	जो
आत्मनः	अपने जीवात्मा से
अन्यत्र	पृथक्
लोकान्	स्वर्गादिलोकों को
वेद	जानता है
देवाः	देवता
तम्	उसको
परादुः	त्याग देते हैं
यः	जो
आत्मनः	अपने जीवात्मा से
अन्यत्र	पृथक्
देवान्	देवताओं को
वेद	जानता है
वेदाः	वेद
तम्	उसको
परादुः	त्याग देते हैं
यः	जो
आत्मनः	अपने जीवात्मा से
अन्यत्र	पृथक्
वेदान्	वेदों को

वेद=जानता है
भूतानि=प्राणी
तम्=उसको
परादुः=त्याग देते हैं
यः=जो
आत्मनः=अपने जीवात्मा से
अन्यत्र=पृथक्
भूतानि=प्राणियों को
वेद=जानता है
सर्वम्=सब
तम्=उसको
परादात्=त्याग देते हैं
यः=जो
आत्मनः=अपने जीवात्मा से
अन्यत्र=पृथक्
सर्वम्=सब को
वेद=जानता है

इदम्=यह
ब्रह्म=ब्राह्मण
इदम्=यह
क्षत्रम्=क्षत्रिय
इमे=ये
लोकाः=लोक
इमे=ये
देवाः=देव
इमे=ये
वेदाः=वेद
इमानि=ये
भूतानि=सब प्राणी
इदम्=यह
यत्=जो कुछ है
अयम्=यही
सर्वम्=सब
आत्मा=आत्मा है

भावार्थ ।

याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं कि, हे प्रिय मैत्रेयि ! ब्रह्मत्व शक्ति उस पुरुष को त्याग देती है जो ब्रह्मत्व को अपने आत्मा से पृथक् जानता है, क्षत्रियत्व शक्ति उस पुरुष को त्याग देती है जो अपने आत्मा से क्षत्रियत्व को पृथक् समझता है, स्वर्गादिलोक उस पुरुष को त्याग देते हैं जो अपने आत्मा से स्वर्गादिलोकों को पृथक् जानता है, देवता उस पुरुष को त्याग देते हैं जो अपने आत्मा से देवता को पृथक् जानता है, वेद उस पुरुष को त्याग देते हैं जो वेदों को अपने आत्मा से पृथक् जानता है, सब प्राणी उस पुरुष को त्याग देते हैं जो अपने आत्मा से प्राणियों को पृथक् जानता है, सब कोई उस पुरुष को त्याग देते हैं जो अपने आत्मा से सबको पृथक् जानता है यह ब्राह्मण है; यह क्षत्रिय है, यह लोक है, यह देवता है, यह वेद है,

यह प्राणी है, जो कुछ है वह सब अपना आत्मा है आत्मा से अतिरिक्त कुछ भी नहीं है ॥ ७ ॥

मन्त्रः ८

स यथा दुन्दुभेर्हन्यमानस्य न बाह्याञ्छब्दाञ्छक्नुयाद्ग्रहणाय दुन्दुभेस्तु ग्रहणेन दुन्दुभ्याघातस्य वा शब्दो गृहीतः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यथा, दुन्दुभेः, हन्यमानस्य, न, बाह्यान्, शब्दान्, शक्नुयात्, ग्रहणाय, दुन्दुभेः, तुः, ग्रहणेन, दुन्दुभ्याघातस्य, वा, शब्दः, गृहीतः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
यथा=जैसे		तु=परन्तु	
हन्यमानस्य=बजते हुये		दुन्दुभेः ग्रहणेन=ढोल के पकड़लेने से	
दुन्दुभेः=ढोल के		वा=अथवा	
बाह्यान्=बाहर निकले हुये		दुन्दुभ्याघातस्य=ढोल के बजानेवाले को पकड़ लेने से	
शब्दान्=शब्दों के		शब्दः=शब्द का ग्रहण	
ग्रहणाय=ग्रहण यानी पकड़ने के लिये		भवति=होता है	
+ जनः=कोई पुरुष		+ तथा=वैसेही	
न=नहीं		+ सः=वह आत्मा	
शक्नुयात्=समर्थ होसक्ता है		गृहीतः=ग्रहण किया जाता है	

भावार्थ ।

हे मैत्रेयि ! जैसे बजते हुये ढोल के शब्द को कोई पकड़ नहीं सक्ता है यानी बन्द नहीं कर सक्ता है परन्तु ढोल के पकड़ लेने से अथवा ढोल के बजानेवाले को पकड़ लेने से शब्द का ग्रहण होजाता है यानी बन्द होजाता है उसी प्रकार यह अपना आत्मा जो इस शरीर विषे स्थित है उसका ग्रहण जभी होसक्ता है जब शरीर आत्मा से पृथक् जान लिया जाय या शरीर का चलानेवाला जीवात्मा शरीर से पृथक् जान लिया जाय ॥ ८ ॥

मन्त्रः ९

स यथा शंखस्य ध्मायमानस्य न बाह्याञ्छब्दाञ्छक्नुयाद्ग्रहणाय शंखस्यतु ग्रहणेन शंखध्मस्य वा शब्दो गृहीतः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यथा, शंखस्य, ध्मायमानस्य, न, बाह्यान्, शब्दान्, शक्नुयात्, ग्रहणाय, शंखस्य, तु, ग्रहणेन, शंखध्मस्य, वा, शब्दः, गृहीतः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
यथा	जैसे
ध्मायमानस्य	बजाये हुये
शंखस्य	शंख के
बाह्यान्	बाहर निकले हुये
शब्दान्	शब्दों के
ग्रहणाय	पकड़ने के लिये
+ जनः	कोई पुरुष
न	नहीं
शक्नुयात्	समर्थ होसक्ता है
तु	परन्तु
शंखस्य	शंख के
ग्रहणेन	ग्रहण करने से
वा	अथवा
शंखध्मस्य	शंख के बजानेवाले के
ग्रहणेन	पकड़ लेने से
शब्दः	शब्द का
गृहीतः	ग्रहण होजाता है
+ तथैव	इसी प्रकार
+ सः	वह आत्मा
+ गृहीतः	ग्रहण
+ भवति	होजाता है

भावार्थ ।

हे मैत्रेयि ! जैसे बजाये हुये शंख के बाहर निकले हुये शब्दों के पकड़ने के लिये कोई पुरुष समर्थ नहीं होता है परन्तु जब शंख को पकड़ लेता है या शंख के बजानेवाले को पकड़लेता है तब शब्द को जो उसके अन्दर स्थित है पकड़ लेता है इसी प्रकार इस जीवात्मा का ग्रहण अभी होसक्ता है जब शरीर से पृथक् करके देखा जाता है या शरीर इससे पृथक् करके देखा जाता है ॥ ९ ॥

मन्त्रः १०

स यथा वीणायै वाद्यमानायै न बाह्याञ्छब्दाञ्छक्नुयाद्ग्रहणाय वीणायै तु ग्रहणेन वीणावादस्य वा शब्दो गृहीतः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यथा, वीणायै, वाद्यमानायै, न, बाह्यान्, शब्दान्, शक्नुयात्, ग्रहणाय, वीणायै, तु, ग्रहणेन, वीणावादस्य, वा, शब्दः, गृहीतः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
यथा	जैसे
वाद्यमानायै	बजाई हुई
वीणायै	वीणा के
बाह्यान्	बाहर निकले हुये
शब्दान्	शब्दों के
ग्रहणाय	ग्रहण करने के लिये
जनः	कोई पुरुष
न	नहीं
शक्नुयात्	समर्थ होसक्ता है
तु	परन्तु
वीणायै	वीणा के
ग्रहणेन	ग्रहण करने से
वा	अथवा
वीणावादस्य	वीणा के बजानेवालेके
ग्रहणेन	पकड़ लेने से
शब्दः गृहीतः	शब्द ग्रहण होजाताहै
+ तथैव	उसी तरह
+ सः	वह आत्मा
+ गृहीतः	ग्रहण
+ भवति	होजाता है

भावार्थ ।

हे मैत्रेयि ! जैसे वीणा से बाहर निकले शब्द पकड़े नहीं जा सकते हैं परन्तु वीणा के पकड़ लेने से या वीणा के बजाने वाले के पकड़ लेने से शब्द का ग्रहण होजाता है उसी तरह शरीर से आत्मा को पृथक् करके और आत्मा से शरीर को पृथक् करने से आत्मा का ग्रहण होता है ॥ १० ॥

मन्त्रः ११

स यथार्द्रैधाग्नेरभ्याहितस्य पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानीष्टꣳ हुतमाशितं पायितमयं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निश्वसितानि ॥

पदच्छेदः ।

सः, यथा, आर्द्रैधाग्नेः, अभ्याहितस्य, पृथक्, धूमाः, विनिश्च-

रन्ति, एवम्, वा, अरे, अस्य, महतः, भूतस्य, निश्वसितम्, एतत्, यत्, ऋग्वेदः, यजुर्वेदः, सामवेदः, अथर्वाङ्गिरसः, इतिहासः, पुराणम्, विद्या, उपनिषदः, श्लोकाः, सूत्राणि, अनुव्याख्यानानि, व्याख्यानानि, इष्टम्, हुतम्, आशितम्, पायितम्, अयम्, च, लोकः, परः, च, लोकः, सर्वाणि, च, भूतानि, अस्य, एव, एतानि, सर्वाणि, निश्वसितानि ॥

अन्वयः	पदार्थाः
यथा	जैसे
अभ्याहितस्य	स्थापित की हुई
आर्द्रैधाग्नेः	गीली लकड़ी की अग्नि में से
धूमाः	धूमावली
पृथक्	पृथक् पृथक्
विनिश्चरन्ति	चारों तरफ फैलती हैं
एवम्	इसी प्रकार
अरे	हे मैत्रेयि !
वा	निश्चय करके
महतः	गुणोंमें सबसे बड़ा और स्वरूप में अति सूक्ष्म
अस्य	इस
भूतस्य	जीवात्मा का
एतत्	यह
निश्वसितम्	श्वास है
यत्	जो
ऋग्वेदः	ऋग्वेद
यजुर्वेदः	यजुर्वेद
सामवेदः	सामवेद
अथर्वाङ्गिरसः	अथर्वण वेद
इतिहासः	इतिहास

अन्वयः	पदार्थाः
पुराणम्	पुराण
विद्या	ज्ञानविद्या
उपनिषदः	उपनिषद्
श्लोकाः	मन्त्र
सूत्राणि	सूत्र
अनुव्याख्यानानि	भाष्य
व्याख्यानानि	व्याख्यान
इष्टम्	यज्ञ
हुतम्	होम
आशितम्	अन्नदान
पायितम्	जलदान
अयम् च	यह
लोकः	लोक
परः च	पर
लोकः	लोक
सर्वाणि	सब
च	और
एतानि	ये
सर्वाणि	सब
भूतानि	प्राणी
अस्य एव	इसी जीवात्मा के
निश्वसितानि	स्वाभाविक श्वास हैं

भावार्थ।

हे मैत्रेयि! जैसे अग्नि में गीली लकड़ी के डालने से धूम और चिनगारी आदिक चारों तरफ फैलती हैं उसी प्रकार हे मैत्रेयि! गुणों में सबसे बड़ा और स्वरूप में सबसे अति सूक्ष्म जीवात्मा का ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वणवेद, इतिहास, पुराण, गानविद्या, आत्मविद्या, मन्त्र, सूत्र, भाष्य, व्याख्यान, होम, अन्नदान, जलदान, यह लोक, परलोक और सब प्राणी स्वाभाविक श्वास हैं॥ ११॥

मन्त्रः १२

स यथा सर्वासामपाᳬं समुद्र एकायनमेवᳬं सर्वेषाᳬं स्पर्शानां त्वगेकायनमेवᳬं सर्वेषां गन्धानां नासिके एकायनमेवᳬं सर्वेषाᳬं रसानां जिह्वैकायनमेवᳬं सर्वेषाᳬं रूपाणां चक्षुरेकायनमेवᳬं सर्वेषाᳬं शब्दानाᳬं श्रोत्रमेकायनमेवᳬं सर्वेषाᳬं संकल्पानां मन एकायनमेवᳬं सर्वासां विद्यानाᳬं हृदयमेकायनमेवᳬं सर्वेषां कर्मणाᳬं हस्तावेकायनमेवᳬं सर्वेषामानन्दानामुपस्थ एकायनमेवᳬं सर्वेषां विसर्गाणां पायुरेकायनमेवᳬं सर्वेषामध्वनां पादावेकायनमेवᳬं सर्वेषां वेदानां वागेकायनम्॥

पदच्छेदः।

सः, यथा, सर्वासाम्, अपाम्, समुद्रः, एकायनम्, एवम्, सर्वेषाम्, स्पर्शानाम्, त्वक्, एकायनम्, एवम्, सर्वेषाम्, गन्धानाम्, नासिके, एकायनम्, एवम्, सर्वेषाम्, रसानाम्, जिह्वा, एकायनम्, एवम्, सर्वेषाम्, रूपाणाम्, चक्षुः, एकायनम्, एवम्, सर्वेषाम्, शब्दानाम्, श्रोत्रम्, एकायनम्, एवम्, सर्वेषाम्, संकल्पानाम्, मनः, एकायनम्, एवम्, सर्वासाम्, विद्यानाम्, हृदयम्, एकायनम्, एवम्, सर्वेषाम्, कर्मणाम्, हस्तौ, एकायनम्, एवम्, सर्वेषाम्, आनन्दानाम्, उपस्थः, एकायनम्, एवम्, सर्वेषाम्, विसर्गाणाम्, पायुः, एकायनम्,

एवम्, सर्वेषाम्, अध्वनाम्, पादौ, एकायनम्, एवम्, सर्वेषाम्, वेदानाम्, वाग्, एकायनम् ॥

अन्वयः	पदार्थाः
यथा	जैसे
सर्वासाम्	सब
अपाम्	जलों का
एकायनम्	एक स्थान
समुद्रः	समुद्र है
एवम्	इसी तरह
सर्वेषाम्	सब
स्पर्शानाम्	स्पर्शों का
एकायनम्	एक स्थान
त्वक्	त्वचा है
एवम्	इसी तरह
सर्वेषाम्	सब
गन्धानाम्	गन्धों का
एकायनम्	एक स्थान
नासिके	घ्राणेन्द्रिय है
एवम्	इसी तरह
सर्वेषाम्	सब
रसानाम्	स्वादों का
एकायनम्	एक स्थान
जिह्वा	जिह्वा है
एवम्	इसी प्रकार
सर्वेषाम्	सब
रूपाणाम्	रूपों का
एकायनम्	एक स्थान
चक्षुः	आंख है
एवम्	इसी तरह
सर्वेषाम्	सब
शब्दानाम्	शब्दों का
एकायनम्	एक स्थान
श्रोत्रम्	श्रोत्र है
एवम्	इसी प्रकार
सर्वेषाम्	सब
संकल्पानाम्	संकल्पों का
एकायनम्	एक स्थान
मनः	मन है
एवम्	इसी तरह
सर्वासाम्	सब
विद्यानाम्	विद्याओं का
एकायनम्	एक स्थान
हृदयम्	हृदय है
एवम्	इसी तरह
सर्वेषाम्	सब
कर्मणाम्	कर्मों का
एकायनम्	एक स्थान
हस्तौ	हाथ हैं
एवम्	इसी तरह
सर्वेषाम्	सब
आनन्दानाम्	आनन्दों का
एकायनम्	एक स्थान
उपस्थः	उपस्थ है
एवम्	इसी तरह
सर्वेषाम्	सब
विसर्गाणाम्	विसर्जनों का
एकायनम्	एक स्थान
पायुः	गुदा है
एवम्	इसी प्रकार

सर्वेषाम्=सब	एकायनम्=एक स्थान
अध्वनाम्=मार्गों का	वाक्=वाणी है
एकायनम्=एक स्थान	+ तथा एव=इसी प्रकार
पादौ=पाद हैं	+ सः=यह आत्मा
एवम्=इसी तरह	+ सर्वेषाम्=सब
सर्वेषाम्=सब	+ ज्ञानानाम्=ज्ञानों का
वेदानाम्=वेदों का	+ एकायनम्=एक स्थान है

भावार्थ ।

हे मैत्रेयि ! जैसे सब जलों का एक स्थान समुद्र है, जैसे सब स्पर्शों का एक स्थान त्वचा है, जैसे सब गन्धों का एक स्थान घ्राण इन्द्रिय है, जैसे सब स्वादों का एक स्थान जिह्वा है, जैसे सब रूपों का एक स्थान नेत्र है, जैसे सब शब्दों का एक स्थान श्रोत्र है, जैसे सब संकल्पों का एक स्थान मन है, जैसे सब विद्याओं का एक स्थान हृदय है, जैसे सब कर्मों का एक स्थान हस्त है, जैसे सब आनन्दों का एक स्थान उपस्थ है, जैसे सब विसर्जनों का एक स्थान गुदा है, जैसे सब मार्गों का एक स्थान पाद है, जैसे सब वेदों का एक स्थान वाणी है, इसी प्रकार यह अपना आत्मा सब ज्ञानों का एक स्थान है ॥ १२ ॥

मन्त्रः १३

स यथा सैन्धवघनोऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नो रसघन एवैवं वा अरेऽयमात्मानन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नः प्रज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञास्तीत्यरे ब्रवीमीति होवाच याज्ञवल्क्यः ॥

पदच्छेदः ।

सः, यथा, सैन्धवघनः, अनन्तरः, अबाह्यः, कृत्स्नः, रसघनः, एव, एवम्, वा, अरे, अयम्, आत्मा, अनन्तरः, अबाह्यः, कृत्स्नः, प्रज्ञानघनः, एव, एतेभ्यः, भूतेभ्यः, समुत्थाय, तानि, एव, अनुविनश्यति, न, प्रेत्य, संज्ञा, अस्ति, इति, अरे, ब्रवीमि, इति, ह, उवाच, याज्ञवल्क्यः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
यथा	जैसे
सः	वह
सैन्धवघनः	सैन्धवनोन का डला
अनन्तरः	भीतर
अवाह्यः	वाहर से
रसघनः	रसवाला
कृत्स्नः	पूर्ण है
एवम् एव	इसी प्रकार
अरे	हे मैत्रेयि !
अयम्	यह
आत्मा	आत्मा
अनन्तरः	अन्दर
अवाह्यः	वाहर से
इति वा	निश्चय करके
प्रज्ञानघनः	ज्ञानस्वरूप है
+ सः	यही आत्मा
एतेभ्यः	इन
एव	ही
भूतेभ्यः	पञ्चमहाभूतों से
समुत्थाय	निकल कर
तानि	उन
एव	ही के
अनु	अभ्यन्तर
विनश्यति	लीन रहता है
अरे	हे मैत्रेयि !
ब्रवीमि	मैं सत्य कहता हूं
प्रेत्य	देह छोड़ने के पीछे
अस्य	इस आत्मा की
संज्ञा	विशेष संज्ञा
न	नहीं
अस्ति	रहती है
इति	ऐसा
याज्ञवल्क्यः उवाच ह	याज्ञवल्क्य ने कहा

भावार्थ ।

हे मैत्रेयि ! जैसे सैन्धवनोन का डला भीतर वाहर रस करके पूर्ण है, उसी प्रकार यह जीवात्मा वाहर भीतर से सत् चित् आनन्द करके पूर्ण है, यह आत्मा इन्हीं पञ्चतत्त्वों में से प्रकट होकर इन्हीं के अभ्यन्तर लय होजाता है, हे मैत्रेयि ! मैं सत्य कहता हूं देहत्याग के पीछे इस आत्मा की विशेष संज्ञा कुछ नहीं रहती ॥ १३ ॥

मन्त्रः १४

सा होवाच मैत्रेय्यत्रैव मा भगवान्मोहान्तमापीपिपन्न वा अह-मिमं विजानामीति स होवाच न वा अरेऽहं मोहं ब्रवीम्यविनाशी वा अरेऽयमात्मानुच्छित्तिधर्मा ॥

पदच्छेदः ।

सा, ह, उवाच, मैत्रेयि, अत्र, एव, मा, भगवान्, मोहान्तम्, आपीपिपत्, न, वा, अहम्, इमम्, विजानामि, इति, सः, ह, उवाच, न, वा, अरे, अहम्, मोहम्, ब्रवीमि, अविनाशी, वा, अरे, अयम्, आत्मा, अनुच्छित्तिधर्मा ॥

अन्वयः पदार्थाः	अन्वयः पदार्थाः
ह=तब	ह=तब
सा=वह मैत्रेयी	सः=वह याज्ञवल्क्य
उवाच=बोली कि	उवाच ह=बोले कि
भगवन्=हे भगवन् !	अरे=हे मैत्रेयि !
अत्रैव=इस विज्ञानघन आत्मा विषे	अहम्=मैं
मा=मुझे	मोहम्=अज्ञान की बात को
त्वम्=आपने	न वा=नहीं
मोहान्तम्=मोहित	ब्रवीमि=कहता हूं
अपीपिपत्=किया है	अरे=हे मैत्रेयि !
इति=ऐसा	अयम्=यह
+ उक्त्वा=कह कर कि	आत्मा=आत्मा
अहम्=मैं	अविनाशी=विकाररहित है
वा=निस्सन्देह	वा=और
इमम्=इस आत्मा को	अनुच्छित्तिधर्मा=नाशरहित है यानी जो धर्मरहित है उसको कोई कैसे जान सक्ता है
न=नहीं	
विजानामि=जानता हूं	

भावार्थ ।

यह सुनकर मैत्रेयी कहती है कि, हे प्रभो ! आपने इस विज्ञान-घन आत्मा विषे मुझको मोहित किया है ऐसा कहकर कि मैं आत्मा को नहीं जानता हूं, इस पर याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं, हे मैत्रेयि ! मैं तुमको मोह में नहीं डालता हूं, और न कोई अज्ञान की बात कही है, अरे मैत्रेयि ! यह अपना आत्मा विकाररहित है, और नाशरहित है, यह आत्मा बुद्धि का विषय नहीं है, जब बुद्धि का

विषय नहीं तब कैसे मैं कह सक्ता हूं कि मैं इस आत्मा को जानता हूं, अगर यह बुद्धि करके जाना जाय तो विकारवाला होजायगा, और जो विकारवाला होता है वह नाशधर्मवाला होता है, तुम अपने सन्देह को दूर करो और मेरे कहे हुये पर विचार करो ॥ १४ ॥

मन्त्रः १५

यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति तदितर इतरं जिघ्रति तदितर इतरꣳ रसयते तदितर इतरमभिवदति तदितर इतरꣳ शृणोति तदितर इतरं मनुते तदितर इतरꣳ स्पृशति तदितर इतरं विजानाति यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत्तत्केन कं जिघ्रेत्तत्केन कꣳ रसयेत्तत्केन कमभिवदेत्तत्केन कꣳ शृणुयात्तत्केन कं मन्वीत तत्केन कꣳ स्पृशेत्तत्केन कं विजानीयाद्येनेदꣳ सर्वं विजानाति तत्केन विजानीयात्स एष नेति नेत्यात्माऽगृह्यो न हि गृह्यतेऽशीर्यो न हि शीर्यतेऽसङ्गो न हि सज्यतेऽसितो न व्यथते न रिष्यति विज्ञातारमरे केन विजानीयादित्युक्तानुशासनासि मैत्रेय्येतावदरे खल्वमृतत्वमिति होक्त्वा याज्ञवल्क्यो विजहार ॥

इति पञ्चमं ब्राह्मणम् ॥ ५ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

यत्र, हि, द्वैतम्, इव, भवति, तत्, इतरः, इतरम्, पश्यति, तत्, इतरः, इतरम्, जिघ्रति, तत्, इतरः, इतरम्, रसयते, तत्, इतरः, इतरम्, अभिवदति, तत्, इतरः, इतरम्, शृणोति, तत्, इतरः, इतरम्, मनुते, तत्, इतरः, इतरम्, स्पृशति, तत्, इतरः, इतरम्, विजानाति, यत्र, तु, अस्य, सर्वम्, आत्मा, एव, अभूत्, तत्, केन, कम्, पश्येत्, तत्, केन, कम्, जिघ्रेत्, तत्, केन, कम्, रसयेत्, तत्, केन, कम्, अभिवदेत्, तत्, केन, कम्, शृणुयात्, तत्, केन, कम्, मन्वीत, तत्, केन, कम्, स्पृशेत्, तत्, केन, कम्, विजानीयात्, येन, इदम्, सर्वम्, विजानाति, तत्, केन, विजानीयात्, सः, एषः, न, इति, न,

इति, आत्मा, अगृह्यः, न, हि, गृह्यते, अशीर्यः, न, हि, शीर्यते, असङ्गः, न, हि, सज्यते, असितः, न, व्यथते, न, रिष्यति, विज्ञातारम्, अरे, केन, विजानीयात्, इति, उक्तानुशासना, असि, मैत्रेयि, एतावत्, अरे, खलु, अमृतत्वम्, इति, ह, उक्त्वा, याज्ञवल्क्यः, विजहार ॥

अन्वयः पदार्थाः	अन्वयः पदार्थाः
यत्र=जहां पर	इतरः=दूसरा
द्वैतम् इव=द्वैत की तरह	इतरम्=दूसरे को
अयम्=यह आत्मा	मनुते=मानता है
भवति=आभास होता है	तत्=वहां ही
तत् हि=तहां ही	इतरः=और
इतरः=दूसरा	इतरम्=और को
इतरम्=दूसरे को	स्पृशति=स्पर्श करता है
पश्यति=देखता है	तत्=वहां ही
तत्=वहां ही	इतरः=और
इतरः=दूसरा	इतरम्=और को
इतरम्=दूसरे को	विजानाति=जानता है
जिघ्रति=सूंघता है	तु=परन्तु
तत्=वहां ही	यत्र=जहां
इतरः=दूसरा	अस्य=इस पुरुष को
इतरम्=दूसरे को	सर्वम्=सब जगत्
रसयते=स्वाद लेता है	आत्मा एव=आत्मा ही
तत्=वहां ही	अभूत्=होरहा है
इतरः=अन्य	तत्=वहां
इतरम्=अन्य से	अयम्=यह आत्मा
अभिवदति=कहता है	केन=किस करके
तत्=वहां ही	कम्=किसको
इतरः=अन्य	पश्येत्=देखे
इतरम्=अन्य का	तत्=वहां
शृणोति=सुनता है	केन=किस करके
तत्=वहां	कम्=किसको

जिघ्रेत्=सूंघे
तत्=वहां
केन=किस करके
कम्=किस का
रसयते=स्वाद लेवे
तत्=वहां
केन=किस करके
कम्=किसको
अभिवदेत्=कहे
तत्=वहां
केन=किस करके
कम्=किसको
शृणुयात्=सुने
तत्=वहां
केन=किस करके
कम्=किसको
मन्वीत=माने
तत्=वहां
केन=किस करके
कम्=किसको
स्पृशेत्=स्पर्श करे
तत्=वहां
केन=किस करके
कम्=किसको
विजानीयात्=जाने
येन=जिस करके
+ पुरुषः=पुरुष
इदम्=इस
सर्वम्=सबको
विजानीयात्=जानता है
तम्=उसको
केन=किस करके
विजानीयात्=कोई जाने
सः=वही
एषः=यही
आत्मा=आत्मा
नेति=नेति
नेति=नेति
इति=करके
अगृह्यः=अग्राह्य है
हि=क्योंकि
+ सः=वह
न=नहीं
गृह्यते=ग्रहण किया जा सक्ता है
अशीर्यः=जीर्णतारहित है
हि=क्योंकि
सः=वह
न=नहीं
शीर्यते=जीर्ण किया जा सक्ता है
असङ्गः=वह असङ्ग है
हि=क्योंकि
सः=वह
न सज्यते=किसी में आसक्त नहीं है
असितः=वह अबद्ध है
हि=क्योंकि
सः=वह
न व्यथते=पीड़ित नहीं होता है
च=और
न=न
रिष्यति=हत होता है
अरे=हे मैत्रेयि !
विज्ञातारम्=उस ज्ञानस्वरूप आत्मा को

केन=किस के द्वारा
विजानीयात्=कोई जाने
मैत्रेयि=हे मैत्रेयि ! तू
इति=इस प्रकार
उक्तानुशासना=उपदेश कीगई
असि=है
अरे=हे मैत्रेयि !
एतावत् खलु=इतना ही
अमृतत्वम्=मुक्ति है
इति ह=ऐसा
उक्त्वा=कहकर
याज्ञवल्क्यः=याज्ञवल्क्य
विजहार=विहार करते भये
यानी चले गये

भावार्थ ।

हे मैत्रेयि ! जहां पर यह आत्मा द्वैत भासता है, तहां ही दूसरा दूसरे को देखता है, दूसरा दूसरे को सूंघता है, दूसरा दूसरे का स्वाद लेता है, दूसरा दूसरे से कहता है, दूसरा दूसरे का सुनता है, दूसरा दूसरे का मनन करता है, दूसरा दूसरे का स्पर्श करता है, दूसरा दूसरे को जानता है, परन्तु जहां इस पुरुष को सब जगत् अपना आत्मा ही हो रहा है, वहां यह आत्मा किस करके किसको देखे, किस करके किसको सूंघे, किस करके किसका स्वाद लेवे, किस करके किससे कहे, किस करके किसको सुने, किस करके किसका मनन करे, किस करके किसको स्पर्श करे, किस करके किसको जाने, जिस करके यह पुरुष सबको जानता है उसको किस करके कोई जाने, वही यह आत्मा नेति नेति शब्द करके अग्राह्य है, जीर्णतारहित है, वही असङ्ग है, वही अबद्ध है, क्योंकि किसी करके वह ग्रहण नहीं किया जा सक्ता है, न जीर्ण किया जा सक्ता है, न वह किसीमें आसक्त है, न उसको कोई पीड़ा दे सक्ता है, न वह हत हो सक्ता है, हे मैत्रेयि ! यह आत्मा ज्ञानस्वरूप है, हे मैत्रेयि ! तू इस प्रकार उपदेश कीगई है, और तू अपने स्वरूप में स्थित है, यही मुक्ति है, अब मैं जाता हूं, ऐसा कहकर याज्ञवल्क्य महाराज चल दिये ॥ १५ ॥

इति पञ्चमं ब्राह्मणम् ॥ ५ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि भाषानुवादे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोध्यायः ॥

अथ प्रथमं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते । ॐ खं ब्रह्म । खं पुराणं वायुरं खमिति ह स्माह कौरव्यायणीपुत्रो वेदोऽयं ब्राह्मणा विदुर्वेदैनेन यद्वेदितव्यम् ॥

इति प्रथमं ब्राह्मणम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

ॐ, पूर्णम्, अदः, पूर्णम्, इदम्, पूर्णात्, पूर्णम्, उदच्यते, पूर्णस्य, पूर्णम्, आदाय, पूर्णम्, एव, अवशिष्यते, ॐ, खम्, ब्रह्म, खम्, पुराणम्, वायुरम्, खं, इति, ह, स्म, आह, कौरव्यायणीपुत्रः, वेदः, अयम्, ब्राह्मणाः, विदुः, वेद, अनेन, यत्, वेदितव्यम् ॥

अन्वयः	पदार्थाः
ॐ=ॐकाररूप	
अदः=यह परोक्ष ब्रह्म	
पूर्णम्=आकाशवत् पूर्ण है	
इदम्=यह दृश्यमान नाम रूपात्मक जगत् भी	
पूर्णम्=पूर्ण है	
+ हि=क्योंकि	
पूर्णात्=पूर्णकारणात्मक ब्रह्म से	
+ इदम्=यह	
पूर्णम्=पूर्ण जगत्रूप कार्य	
उदच्यते=निकला है	
+ च=और	
पूर्णस्य=कार्यात्मक पूर्ण ब्रह्म-रूप जगत् की	
पूर्णम्=पूर्णता को	
आदाय=पृथक् करने पर	
एव=केवल	
पूर्णम्=प्रज्ञानघन ब्रह्मरूप	
अवशिष्यते=बच रहता है	
खम्=आकाश	
+ एव=ही	
ब्रह्म=ब्रह्म है	
+ ब्रह्म + एव =ब्रह्म ही	
ॐ=ॐकार है	
+ तत्=सोई	
खम्=आकाशरूप परमात्मा	
पुराणम्=निरालम्ब है	
यत्=जो कुछ	
वेदितव्यम्=संसार में जानने योग्य है	
+ तत्=उस को	
अनेन=इस	

+ ॐकारेण=ॐकार करके
वेद=पुरुष जानता है
+ अतः=इस लिये
अयम्=यह ॐकार
वेदः=वेदरूप है
+ इति=ऐसा
ब्राह्मणाः=ऋषिलोग
विदुः=जानते भये
+ परन्तु=परन्तु
कौरव्यायणी-पुत्रः=कौरव्यायणी का पुत्र
इति=ऐसा
ह=निश्चय करके
आह स्म=कहा है कि
वायुरम्=जितने आकाश विषे सूत्रात्मा वायु व्यापक हो रहा है
+ तत्=उसी
खम्=आकाश को
+ आह=कहते हैं

भावार्थ ।

यह परोक्ष ब्रह्म आकाशवत् व्यापक है, यही दृश्यमान नाम रूपात्मक जगत् भी है, यदि जगत् अपने अधिष्ठान चेतन ब्रह्म से अलग करके देखा जाय तो केवल प्रज्ञानघन ब्रह्मही पूर्ण बच रहता है, सोई ब्रह्म आकाशरूप है वही ॐकाररूप है, और वही आकाशरूप परमात्मा है, हे शिष्य ! जो कुछ संसार विषे जानने योग्य है वह इसी ॐकार करके जाना जाता है, इसलिये यह ॐकार वेद है, ऐसा ऋषि लोगों का अनुभव है, और कौरव्यायणी के पुत्र ने ऐसा कहा है कि जितने आकाश विषे सूत्रात्मा वायु व्यापक होरहा है, वही आकाशरूप ब्रह्म है, वही ॐकार करके जानने योग्य है ॥ १ ॥

इति प्रथमं ब्राह्मणम् ॥ १ ॥

अथ द्वितीयं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

त्रयाः प्राजापत्याः प्रजापतौ पितरि ब्रह्मचर्यमूषुर्देवा मनुष्या असुरा उषित्वा ब्रह्मचर्यं देवा ऊचुर्ब्रवीतु नो भवानिति तेभ्यो है-तदक्षरमुवाच द इति व्यज्ञासिष्टा ३ इति व्यज्ञासिष्मेति होचुर्दाम्यते-ति न आत्थेत्योमिति होवाच व्यज्ञासिष्टेति ॥

पदच्छेदः ।

त्रयाः, प्राजापत्याः, प्रजापतौ, पितरि, ब्रह्मचर्यम्, ऊषुः, देवाः, मनुष्याः, असुराः, उषित्वा, ब्रह्मचर्यम्, देवाः, ऊचुः, ब्रवीतु, नः, भवान्, इति, तेभ्यः, ह, एतत्, अक्षरम्, उवाच, द, इति, व्यज्ञासिष्टाः, इति, व्यज्ञासिष्म, इति, ह, ऊचुः, दाम्यत, इति, नः, आत्थ, इति, ॐ, इति, ह, उवाच, व्यज्ञासिष्ट, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
प्रजापतौ	प्रजापति
पितरि	पिता के पास
देवाः	देव
मनुष्याः	मनुष्य
असुराः	असुर
त्रयाः	तीनों
प्राजापत्याः	प्रजापति के पुत्र
ब्रह्मचर्यम्	ब्रह्मचर्य व्रतके लिये
ह	निश्चयकरके
ऊषुः	वास करते भये
देवाः	देवता लोग
ब्रह्मचर्यम्	ब्रह्मचर्य व्रत को
उषित्वा	करके
+ प्रजापतिम्	प्रजापति से
ह	स्पष्ट
इति	ऐसा
ऊचुः	कहा कि
भवान्	आप
नः	हम लोगों को
अनुशासनम्	अनुशासन
ब्रवीतु	देवैं
इति	ऐसा
श्रुत्वा	सुन कर

अन्वयः	पदार्थाः
इति	इस प्रकार
तेभ्यः	देवों के निमित्त
एतत्	इस
द	द
अक्षरम्	अक्षर को
ह	स्पष्ट
उवाच	प्रजापति कहता भया
+ च	और
+ पुनः	फिर
इति	ऐसा
+ उक्त्वा	कहकर
+ पप्रच्छ	पूछता भया कि
यूयम्	तुम लोगों ने
व्यज्ञासिष्टाः	इसका अर्थ जान लिया
इति	ऐसा सुनकर
+ देवाः	देवतों ने
ऊचुः	कहा कि
व्यज्ञासिष्म इति	हम लोग ऐसा समझ गये कि
दाम्यत	इन्द्रियोंको दमन करो
इति नः	ऐसा हमसे
आत्थ	आप कहते हैं

इति=ऐसा	उवाच=बोले
+ श्रुत्वा=सुन कर	ॐ=ठीक
+ प्रजापतिः=प्रजापति	व्यज्ञासिष्ट=तुम सब समझे

भावार्थ ।

प्रजापति के तीन पुत्र देवता, मनुष्य और असुर हैं, तीनों प्रजापति के पास ब्रह्मचर्य व्रत के निमित्त वास करते रहे, इनमें से प्रथम देवता प्रजापति के पास जाकर बोले कि हे भगवन् ! आप हम लोगों को कुछ उपदेश देवें, प्रजापति ने उनको " द " अक्षर का उपदेश दिया, और फिर उनसे पूछा कि क्या तुम लोगों ने " द " इस अक्षर का अर्थ समझ लिया है ? देवताओं ने कहा हां हमलोग समझ गये हैं, आप हमसे कहते हैं कि तुम सब लोग इन्द्रियों का दमन किया करो, इस पर प्रजापति बोले कि हां तुम लोगों ने इस " द " अक्षर का अर्थ ठीक समझ लिया है, इसका भाव ऐसाही है जैसा तुम लोगों ने समझा है ॥ १ ॥

मन्त्रः २

अथ हैनं मनुष्या ऊचुर्ब्रवीतु नो भवानिति तेभ्यो हैतदेवाक्षरमुवाच द इति व्यज्ञासिष्टा ३ इति व्यज्ञासिष्मेति होचुर्दत्तेति न आत्थेत्योमिति होवाच व्यज्ञासिष्टेति ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, मनुष्याः, ऊचुः, ब्रवीतु, नः, भवान्, इति, तेभ्यः, ह, एतत्, एव, अक्षरम्, उवाच, द, इति, व्यज्ञासिष्टाः, इति, व्यज्ञासिष्म, इति, ह, ऊचुः, दत्त, इति, नः, आत्थ, इति, ॐ, इति, ह, उवाच, व्यज्ञासिष्ट, इति ॥

अन्वयः पदार्थाः	अन्वयः पदार्थाः
अथ ह=इसके उपरान्त	इति=ऐसा
मनुष्याः=मनुष्य	ऊचुः=कहते भये कि
एनम्=इस प्रजापति से	भवान्=आप

नः=हम लोगों को
ब्रवीतु=अनुशासन करें
इति=ऐसा
+ श्रुत्वा=सुन कर
तेभ्यः=मनुष्यों के लिये भी
एतत् एव=यही
द=द
अक्षरम्=अक्षर
इति=करके
उवाच=प्रजापति उपदेश करता भया
+ च=और
पुनः=फिर
+ पप्रच्छ इति=मनुष्यों से ऐसा पूंछता भया कि
व्यज्ञासिष्टाः=क्या तुम सब समझ गये हो
इति=तब
ऊचुः=मनुष्य बोले कि
व्यज्ञासिष्म इति=हम सब ऐसासमझे कि
दत्त इति=दान करो ऐसा
नः=हम से
आत्थ=आप कहते हैं
ह=तब
इति=ऐसा
+ प्रजापतिः=प्रजापति
उवाच=मनुष्यों से कहता भया कि
ॐ=ठीक
व्यज्ञासिष्ट=तुम सब समझ गये हो

भावार्थ ।

देवताओं के पश्चात् मनुष्यगण प्रजापति के पास पहुँचे और कहा हे भगवन् ! हमको भी आप उपदेश दें, इनको भी इसी अक्षर "द" का उपदेश प्रजापति ने दिया, और फिर उनसे पूंछा कि क्या तुमने "द" अक्षर का अर्थ समझ लिया है, इस पर मनुष्यों ने कहा हे पितामह ! जो आपने "द" अक्षर का उपदेश किया है उससे आपने हमलोगों से कहा है कि तुम सब कोई दान किया करो, ऐसा हमारे समझ में आया है, सो ठीक है या नहीं इस पर प्रजापति ने कहा कि तुम सब लोगों ने हमारे आशय को भली प्रकार समझ लिया है, जाव ऐसाही किया करो ॥ २ ॥

मन्त्रः ३

अथ हैनमसुरा ऊचुर्ब्रवीतु नो भवानिति तेभ्यो हैतदेवाक्षरमुवाच द इति व्यज्ञासिष्टा इति व्यज्ञासिष्मेति होचुर्दयध्वमिति न

आत्थेत्योमिति होवाच व्यज्ञासिष्टेति तदेतदेवैषा दैवी वागनुवदति स्तनयित्नुर्ददद इति दाम्यत दत्त दयध्वमिति तदेतत्त्रयꣳ शिक्षेद्दमं दानं दयामिति ॥

इति द्वितीयं ब्राह्मणम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, एनम्, असुराः, ऊचुः, ब्रवीतु, नः, भवान्, इति, तेभ्यः, ह, एतत्, एव, अक्षरम्, उवाच, द, इति, व्यज्ञासिष्टाः, इति, व्यज्ञासिष्म, इति, ह, ऊचुः, दयध्वम्, इति, नः, आत्थ, इति, ॐ, इति, ह, उवाच, व्यज्ञासिष्ट, इति, तत्, एतत्, एव, एषा, दैवी, वाक्, अनुवदति, स्तनयित्नुः, ददद, इति, दाम्यत, दत्त, दयध्वम्, इति, तत्, एतत्, त्रयम्, शिक्षेत्, दमम्, दानम्, दयाम्, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
अथ ह	मनुष्यगण के पीछे	+ पुनः	फिर
एनम्	प्रजापति से	इति	ऐसा
असुराः	दैत्यलोग	पप्रच्छ	पूछता भया कि
इति	ऐसा	व्यज्ञासिष्टाः	क्या तुम सब समझ गये
ऊचुः	बोलते भये कि	इति	इस पर
नः	हमारे लिये भी	ऊचुः इति	असुर ऐसा बोले कि
भवान्	हे भगवन् ! आप	नः	हम से
+अनुशासनम्	उपदेश	आत्थ	आप कहते हैं कि
ब्रवीतु	देवें	दयध्वम्	दया करो
इति	ऐसा	इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	सुन कर	व्यज्ञासिष्म	हम लोग समझे हैं
द	द	+ प्रजापतिः	प्रजापति
इति	ऐसे	इति	तब
एतत् एव	इस	उवाच ह	बोले कि
अक्षरम्	एक अक्षर को	व्यज्ञासिष्ट	तुम सब ठीक समझ गये हो
तेभ्यः	असुरों के लिये भी	तदेव	वही
उवाच	प्रजापति कहता भया		
+ च	और		

एतत्=यह प्रजापति का अनुशासन है
तत्=इसी को
एषा=यह
दैवी=देवसम्बन्धी
स्तनयित्नुः=मेघस्थ
वाक्=वाणी
ददद्=ददद शब्द
इति=करके
अनुवदति=अनुवाद करती है यानी
दाम्यत=इन्द्रियों को दमन करो
दत्त=दान करो
दयध्वम्=दया करो
इति=इस प्रकार
एतत्=यह
त्रयम्=तीन प्रकार का अनुशासन है
+ अतः=इसलिये
मनुष्यमात्रम्=मनुष्यमात्र
दमम्=इन्द्रियदमन
दानम्=दान
दयाम्=दया को
शिक्षेत्=सीखे यानी करे

भावार्थ ।

मनुष्यगण के पीछे असुरगण भी प्रजापति के पास गये, और उनसे इच्छा प्रकट की कि आप हम लोगों को यथाउचित उपदेश करें, उनको भी प्रजापति ने "द" अक्षर का उपदेश किया और फिर उनसे पूछा कि क्या तुम समझेहो, असुरों ने कहा हे भगवन् ! आपने कहा है कि तुम सब लोग सब जीवों पर दया किया करो, प्रजापति ने कहा हां तुमने हमारे अर्थ को ठीक समझ लिया है, संसार में जाकर ऐसाही किया करो, इसी उपदेश को दैवी मेघस्थ वाणी भी अनुवादित करती है, यानी जो मेघ में गर्जना ददद की होती है, वह भी तीन दकारों के भाव को बताती है यानी इन्द्रियदमन करो, दान दो और दया करो, आज कलभी सबको उचित है कि इन तीनों शिक्षा को, यानी इन्द्रियदमन, दान, और दया को भलीप्रकार स्वीकार करें ॥ ३ ॥

इति द्वितीयं ब्राह्मणम् ॥ २ ॥

अथ तृतीयं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

एष प्रजापतिर्यद्धृदयमेतद्ब्रह्मैतत्सर्वं तदेतत्त्र्यक्षरꣳ हृदयमिति हृ इत्येकमक्षरमभिहरन्त्यस्मै स्वाश्चान्ये च य एवं वेद द इत्येकमक्षरं ददत्यस्मै स्वाश्चान्ये च य एवं वेद यमित्येकमक्षरमेति स्वर्गं लोकं य एवं वेद ॥

इति तृतीयं ब्राह्मणम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

एषः, प्रजापतिः, यत्, हृदयम्, एतत्, ब्रह्म, एतत्, सर्वम्, तत्, एतत्, त्र्यक्षरम्, हृदयम्, इति, हृ, इति, एकम्, अक्षरम्, अभिहरन्ति, अस्मै, स्वाः, च, अन्ये, च, यः, एवम्, वेद, द, इति, एकम्, अक्षरम्, ददति, अस्मै, स्वाः, च, अन्ये, च, यः, एवम्, वेद, यम्, इति, एकम्, अक्षरम्, एति, स्वर्गम्, लोकम्, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः पदार्थाः

यत्=जो
हृदयम्=हृदय है
एषः=यही
प्रजापतिः=प्रजापति है
एतत्=यही
ब्रह्म=ब्रह्म है
एतत्=यही
सर्वम्=सब कुछ है
तत्=सोई
त्र्यक्षरम्=तीन अक्षरवाला
एतत्=यह
हृदयम्=हृदयब्रह्म
+ उपास्यम्=सेवनीय है
यः=जो
एवम्=इस प्रकार

अन्वयः पदार्थाः

हृ इति एकं अक्षरम्=‘हृ’ ऐसे एक अक्षरको
वेद=जानता है
अस्मै=उस पुरुष के लिये
स्वाः=इन्द्रिय
च=और
अन्ये=शब्दादि विषय
अभिहरन्ति एवम्=अपने अपने कार्य को करते हैं यानी इन्द्रियां विषय ग्रहण करती हैं और विषय अपने को अर्पण करते हैं इसी प्रकार
च=और
द इति=द ऐसे
एकम्=एक

अक्षरम्=अक्षर को	यम्=य
यः=जो	इति=ऐसे
वेद=जानता है	एकम्=एक
अस्मै=उस पुरुष के लिये	अक्षरम्=अक्षर को
स्वाः=अपने ज्ञाति	यः=जो
च=और	वेद=जानता है
अन्ये=गैर ज्ञाति के लोग	सः=वह पुरुष
ददति=सेवा सत्कार करते हैं	स्वर्गम्=स्वर्ग
च=और	लोकम्=लोक को
एवम्=इसी प्रकार	एति=प्राप्त होता है

भावार्थ ।

हे शिष्य ! हृदय प्रजापति है, और कोई अन्य पुरुष प्रजापति नहीं है, यही हृदय महान् अनन्त ब्रह्म है, जो कुछ ब्रह्माण्ड विषे स्थित है, वह यही ब्रह्म है, हृदय में तीन अक्षर हैं, उनमें से एक अक्षर 'हृ' है, जो 'हृञ्' धातु से बना है, क्योंकि इसमें सब विषयों का भोग इन्द्रिय द्वारा प्राप्त होता है, और इसीमें इन्द्रियगण और शब्दादि विषय अपने अपने कार्य को करते हैं, यानी इन्द्रिय विषयों को ग्रहण करती हैं और शब्द, स्पर्श, रूपादि विषय अपने को अर्पण करते हैं, जो उपासक इस हृदय ब्रह्मको ऐसा जानता है उसके बान्धव और अन्य पुरुष उसकी सेवा सत्कार करते हैं, और जो हृदय में दूसरा अक्षर "द" है, वह दा धातु से निकला है, जिसका अर्थ दमन करना है, यानी इन्द्रियों और विषयों को दमन करना चाहिये जो उपासक ऐसा "द" का अर्थ समझता है, उसको भी निज ज्ञाति और पर ज्ञाति के लोग धन आदि समर्पण करते हैं, और प्रतिष्ठा देते हैं, हृदय में तीसरा अक्षर "य" है जो इण धातु से निकला है, जिसके माने गमन के हैं, जो उपासक हृदय में य अक्षर को ऐसा जानता है वह हृदय द्वारा स्वर्ग को प्राप्त होता है, इसी हृदय की ओर ज्ञानी पुरुष जाते

हैं, सब कार्य के करने में हृदयही मुख्य है, जिसका हृदय दुर्बल है, वह पुरुषार्थ के करने में असमर्थ है, सोई यह हृदय निश्चय करके प्रजापति है, हृदय में तीन अक्षर हैं, हृ., द., य., हृ—का अर्थ ग्रहण करना है, यानी जो कुछ ग्रहण करने में आता है वह सब ब्रह्मही है, "द" का अर्थ दान का देना है, इन्द्रियों का दमन करना है और जीवों पर दया करना है, जिस शक्ति करके जीवमात्र पर दया की जाती है, या इन्द्रियों का या शत्रुओं का दमन किया जाता है, या कुछ जिस किसी को दिया जाता है वह सब ब्रह्म है. जो उपासक हृदय को ऐसा गुणवाला भावना करता है, वह देह त्यागानन्तर ब्रह्म कोही प्राप्त होता है, और यावत् संसार विषे जीता है बड़ा पराक्रमी, तेजस्वी, बलवान्, सबका नियामक होता है ॥ १ ॥

इति तृतीयं ब्राह्मणम् ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

तद्वै तदेतदेव तदास सत्यमेव स यो हैतं महद्यक्षं प्रथमजं वेद सत्यं ब्रह्मेति जयतीमाँल्लोकाञ्जित इन्वसावसद्य एवमेतन्महद्यक्षं प्रथमजं वेद सत्यं ब्रह्मेति सत्यꣳ ह्येव ब्रह्म ॥

इति चतुर्थं ब्राह्मणम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, वै, तत्, एतत्, एव, तत्, आस, सत्यम्, एव, सः, यः, ह, एतम्, महत्, यक्षम्, प्रथमजम्, वेद, सत्यम्, ब्रह्म, इति, जयति, इमान्, लोकान्, जितः, इनु, असौ, असत्, यः, एवम्, एतत्, महत्, यक्षम्, प्रथमजम्, वेद, सत्यम्, ब्रह्म, इति, सत्यम्, हि, एव, ब्रह्म ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
तत् वै=वही पूर्वोक्त हृदय		एतत् एव=यही	
तत्=अन्य प्रकार से		+ तत्=वह ब्रह्म	
+ कथ्यते=वर्णन किया जाता है		सत्यम् एव=सत्य निश्चय करके	

आस=होता भया
य:=जो कोई
प्रथमजम्=पहिले उत्पन्न हुये
महत्=बड़े
यक्षम्=पूज्य
एतम्=इस हृदयरूपी ब्रह्मको
ह=स्पष्ट
एव=निश्चय करके
वेद=जानता है
+ स:=वही पुरुष
सत्यम्=सत्य
ब्रह्म=ब्रह्म
+ भवति=होता है
+ च=और
इति=इसी कारण
स:=वह
इमान्=इन सब
लोकान्=लोकों को
जयति=जीतता है
इनु=इसके विपरीत
असौ=वह
+ अज्ञानी + पुरुषः } =अज्ञानी पुरुष
ज्ञानिना=ज्ञानी पुरुष करके
जितः=पराजित
+ भवति=होता है

य:=जो
एवम्=ऊपर कहे हुये प्रकार
एतत्=इस
महत्=बड़े
यक्षम्=पूज्य
प्रथमजम्=प्रथम उत्पन्न हुये ब्रह्म को
असत्=असत्
वेद=जानता है
य:=जो कोई उपासक
+ एवम्=इस प्रकार
एतत्=इस हृदय को
महत्=महान्
यक्षम्=पूज्य
प्रथमजम्=अग्रज
सत्यम्=सत्य
ब्रह्म=ब्रह्म
इति=करके
वेद=जानता है
+ स:=वह
+ विजयी=विजयी
+ भवति=होता है
हि=क्योंकि
ब्रह्म=ब्रह्म
सत्यम्=सत्य है

भावार्थ ।

हे शिष्य ! इस हृदय को अन्य प्रकार से वर्णन करते हैं, यही सत्यरूप है, यह सदा आत्मा के साथ विद्यमान रहता है, जो कोई इस हृदय को महान् पूज्य प्रथमज और अत्यन्त सत्य मानता है, वह

इन सब लोकों को जीतता है, और इसके विपरीत इस हृदय को जो असत्य मानता है, वह अज्ञानी पुरुष ज्ञानी करके सदा जीता जाता है, अर्थात् जो हृदय को असत्य माननेवाला है वह बारबार मृत्यु भगवान् के मुख में गिरा करता है. आशय इस मन्त्र का यह है कि यह हृदय सत्य है, और अतिशय महान् है, इस हृदय के स्वरूप का ज्ञान न होने से पुरुष अज्ञानी बना रहता है, इसलिये ऋषि कहते हैं हे शिष्यो ! इस हृदय कोही सत्य पूज्य महान् समझो, इसीसे तुम्हारा कल्याण होगा ॥ १ ॥

इति चतुर्थं ब्राह्मणम् ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

आप एवेदमग्र आसुस्ता आपः सत्यमसृजन्त सत्यं ब्रह्म प्रजापतिं प्रजापतिर्देवाꣳस्ते देवाः सत्यमेवोपासते तदेतत्त्र्यक्षरꣳ सत्यमिति स इत्येकमक्षरं तीत्येकमक्षरं यमित्येकमक्षरं प्रथमोत्तमे अक्षरे सत्यं मध्यतोऽनृतं तदेतदनृतमुभयतः सत्येन परिगृहीतꣳ सत्यभूयमेव भवति नैवं विद्वाꣳसमनृतꣳ हिनस्ति ॥

पदच्छेदः ।

आपः, एव, इदम्, अग्रे, आसुः, ताः, आपः, सत्यम्, असृजन्त, सत्यम्, ब्रह्म, प्रजापतिम्, प्रजापतिः, देवान्, ते, देवाः, सत्यम्, एव, उपासते, तत्, एतत्, त्र्यक्षरम्, सत्यम्, इति, सः, इति, एकम्, अक्षरम्, ति, इति, एकम्, अक्षरम्, यम्, इति, एकम्, अक्षरम्, प्रथमोत्तमे, अक्षरे, सत्यम्, मध्यतः, अनृतम्, तत्, एतत्, अनृतम्, उभयतः, सत्येन, परिगृहीतम्, सत्यभूयम्, एव, भवति, न, एवम्, विद्वांसम्, अनृतम्, हिनस्ति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
आपः=यज्ञादिकर्म	
एव=ही	
इदम्=यह नाम रूपात्मक जगत्	
अग्रे=पहिले	
आसुः=होता भया	
ताः=वे	
आपः=कर्म	
सत्यम्=सत्य ज्ञान को	
असृजन्त=उत्पन्न करते भये	
+ तत्=वही	
सत्यम्=सत्य	
ब्रह्म=ब्रह्म	
प्रजापतिम्=प्रजापति विराट् को	
+ असृजत=उत्पन्न करता भया	
प्रजापतिः=प्रजापति	
देवान्=देवों को	
+ असृजत=उत्पन्न करता भया	
तत्=इस लिये	
ते=वे	
देवाः=देवता	
सत्यम्=सत्य की	
एव=ही	
उपासते=उपासना करते हैं	
एतत्=यही	
सत्यम्=सत्य	
त्र्यक्षरम्=तीन अक्षर	
इति=करके	
विख्यातम्=विख्यात है	
+ तेषु=तिनमें	
सः=स	

अन्वयः	पदार्थाः
इति=ऐसा	
एकम्=एक	
अक्षरम्=अक्षर है	
ति=त	
इति=ऐसा	
एकम्=एक	
अक्षरम्=अक्षर है	
यम्=य	
इति=ऐसा	
एकम्=एक	
अक्षरम्=अक्षर है	
+ तत्र=तिनमें	
प्रथमोत्तमे=पहिला और तीसरा	
अक्षरे=अक्षर	
सत्यम्=सत्य है	
मध्यतः=बीचवाला	
अनृतम्=तकार असत् है	
तत्=वही	
एतत्=यह	
अनृतम्=तकार	
उभयतः=दोनों तरफ से	
सत्येन=सकार यकार करके	
परिगृहीतम्=व्याप्त है	
+ अतः=इसी से	
+ तत्=वह	
+ अनृतम्=तकार	
सत्यभूयम्=सत्य के लगभग	
एव=ही	
भवति=होता है	
एवम्=ऐसे	

विद्वांसम्=विद्वान् को	न एव=कभी नहीं
अनृतम्=असत्य	हिनस्ति=संसार में गिराता है

भावार्थ ।

हे शिष्य ! यज्ञादि जो कर्म हैं वही यह नामरूपात्मक जगत् है, उसी यज्ञादि कर्म करके सत्यज्ञान की उत्पत्ति होती भई. वही सत्य-ज्ञान से विराट्रूप प्रजापति उत्पन्न होताभया, और प्रजापति से देवता लोग उत्पन्न होते भये, इसीलिये देवता लोग सत्यब्रह्मकी ही उपासना करते हैं, यह सत्य तीन अक्षरवाला संसार में विख्यात है, इस सत्य शब्द में एक पहिला अक्षर " स " है, दूसरा अक्षर मध्य का " त " है और तीसरा अक्षर अन्त का " य " है. पहिला और तीसरा अक्षर सत्य है, क्योंकि सा में " अ " और या में " अ " स्वरहोने के कारण विना सहायता के बोले जाते हैं, और दोनों के मध्य में जो " त " अक्षर है वह व्यञ्जन है, वह वगैर सहायता स्वर के नहीं बोला जाता है, इस कारण " स—य " सत्य है. और " त " असत्य है. " स" अक्षर से मतलब ब्रह्मसे है, और " य " से मतलब जीव से है, और " त " से मतलब माया से है, यानी जीव और ब्रह्म के मध्य में सत् असत् से विलक्षण माया स्थित है, सोई आगे पीछे ब्रह्म करके व्याप्त है, जो विद्वान् ऐसा जानता है उसको माया नहीं सताती है ॥ १ ॥

मन्त्रः २

तद्यत्तत्सत्यमसौ स आदित्यो य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषो यश्चायं दक्षिणेऽक्षन्पुरुषस्तावेतावन्योन्यस्मिन्प्रतिष्ठितौ रश्मिभिरेषो-स्मिन्प्रतिष्ठितः प्राणैरयममुष्मिन्स यदोत्क्रमिष्यन्भवति शुद्धमेवैत-न्मण्डलं पश्यति नैनमेते रश्मयः प्रत्यायन्ति ॥

पदच्छेदः ।

तत्, यत्, तत्, सत्यम्, असौ, सः, आदित्यः, यः, एषः, एत-स्मिन्, मण्डले, पुरुषः, यः, च, अयम्, दक्षिणे, अक्षन्, पुरुषः, तौ, एतौ, अन्योन्यस्मिन्, प्रतिष्ठितौ, रश्मिभिः, एषः, अस्मिन्, प्रतिष्ठितः,

प्राणैः, अयम्, अमुष्मिन्, सः, यदा, उत्क्रमिष्यन्, भवति, शुद्धम्, एव, एतत्, मण्डलम्, पश्यति, न, एनम्, एते, रश्मयः, प्रति, आयन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
यत्	जो
तत्	वह
सत्यम्	सत्य है
तत्	वही
असौ	यह
आदित्यः	आदित्य है
यः	जो
एषः	यह
पुरुषः	पुरुष
एतस्मिन्	इस
मण्डले	सूर्यमण्डल में
+ अस्ति	है
च	और
यः	जो
अयम्	यह
+ पुरुषः	पुरुष
दक्षिणे	दहिने
अक्षन्	नेत्र में
+ अस्ति	है
सः	वही
सत्यम्	सत्यब्रह्म है
ततः	इस लिये
तौ	वही
एतौ	ये दोनों सूर्यस्थ पुरुष और नेत्रस्थ पुरुष
अन्योन्यस्मिन्	एक दूसरे में
प्रतिष्ठितौ	स्थित हैं
एषः	यह सूर्यस्थ पुरुष
रश्मिभिः	किरणों करके
अस्मिन्	नेत्र में
प्रतिष्ठितः	स्थित है
+ च	और
अयम्	यह नेत्रस्थ पुरुष
प्राणैः	प्राणों करके
अमुष्मिन्	सूर्य विषे
+ प्रतिष्ठितः	स्थित है
सः	वह ऐसा विज्ञानमय पुरुष
यदा	जब
उत्क्रमिष्यन्	मरने पर
भवति	होता है
+ तदा	तब वह
शुद्धम् एव	किरणरहित यानी तापरहित
एतत्	इस
मण्डलम्	सूर्यमण्डल को
पश्यति	देखता है
+ च	और
एते	ये
रश्मयः	किरणें
एनम्	चक्षुविषे स्थित पुरुष के
प्रति	पास
न	नहीं
आयन्ति	आती हैं यानी उसको नहीं सताती हैं

भावार्थ ।

जो सत्य है वही आदित्य है, जो पुरुष सूर्यमण्डल विषे स्थित है, वही पुरुष मनुष्य के दहिने नेत्र विषे है, सोई सत्य ब्रह्म है, इस लिये वे दोनों यानी सूर्यस्थ पुरुष और नेत्रस्थ पुरुष एक दूसरे में स्थित हैं, यह सूर्यस्थ पुरुष किरणों करके नेत्र में स्थित है और नेत्रस्थ पुरुष प्राणों करके सूर्यविषे स्थित है, जब ऐसा वह विज्ञानमय पुरुष शरीर त्यागने पर होता है तब वह किरणरहित यानी तापरहित इस सूर्यमण्डल को देखता है, और ये किरणें चक्षुविषे स्थित पुरुष के पास नहीं आती हैं, यानी उसको नहीं सताती हैं, अथवा वे किरणें चन्द्रमा के किरणों की तरह सुखदायी होती हैं ॥ २ ॥

मन्त्रः ३

य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषस्तस्य भूरिति शिर एकꣳ शिर एकमेतदक्षरं भुव इति बाहू द्वौ बाहू द्वे एते अक्षरे स्वरिति प्रतिष्ठा द्वे प्रतिष्ठे द्वे एते अक्षरे तस्योपनिषदहरिति हन्ति पाप्मानं जहाति च य एवं वेद ॥

पदच्छेदः ।

यः, एषः, एतस्मिन्, मण्डले, पुरुषः, तस्य, भूः, इति, शिरः, एकम्, शिरः, एकम्, एतत्, अक्षरम्, भुवः, इति, बाहू, द्वौ, बाहू, द्वे, एते, अक्षरे, स्वः, इति, प्रतिष्ठा, द्वे, प्रतिष्ठे, द्वे, एते, अक्षरे, तस्य, उपनिषद्, अहः, इति, हन्ति, पाप्मानम्, जहाति, च, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
एतस्मिन्	इस	शिरः	शिर
मण्डले	सूर्यमण्डल में	भूः इति	यह पृथ्वी है
एषः	यह	+ यथा	जैसे
यः	जो सत्य यानी व्यापक	एकम्	एक संख्यावाला
पुरुषः	पुरुष है	शिरः	शिर है
तस्य	उसका	+ तथा	तैसेही

एकम्=एक संख्यावाला
एतत्=यह–भू
अक्षरम्=अक्षर भी है
तस्य=उस सत्यपुरुष का
बाहू=बाहु
इति=यह
भुवः=भुवः हैं
यथा=जैसे
द्वौ=दो संख्यावाला
बाहू=बाहु हैं
+ तथा=वैसेही
द्वे=दो संख्यावाला
एते=यह " भुवः "
अक्षरे=अक्षर हैं
च=और
तस्य=उस पुरुष का
प्रतिष्ठा=पैर
इति=यह
स्वः=स्वः हैं
+ यथा=जैसे
द्वे=दो संख्यावाला
प्रतिष्ठे=पैर हैं
+ तथा=वैसेही
द्वे=दो संख्यावाला
एते=यह
अक्षरे="स्वः" अक्षर भी हैं
तस्य=उस सत्यव्यापक पुरुष का
+ अभिधानम्=नाम
उपनिषद्=उपनिषद् है
यः=जो
एतत्=इसको
अहः इति=अहः करके
एवम्=इस प्रकार
वेद=जानता है
+ सः=वह
+ पाप्मानम्=पाप को
हन्ति=नष्ट करता है
+ च=और
जहाति=त्यागता है

भावार्थ ।

हे शिष्य ! इस सूर्यमण्डल विषे जो पुरुष स्थित है उसका शिर पृथिवी है, जैसे शिर एक होता है वैसेही ये " भू " एक अक्षरवाला है, उस सत्यपुरुष का बाहु ये " भुवः " हैं, जैसे दो भुजा होते हैं वैसेही भुवः में दो अक्षर हैं, और उस सत्यपुरुष का पाद " स्वः " है जैसे पैर दो संख्यावाला होता है वैसे " स्वः " भी दो अक्षरवाला है, उस सत्यव्यापक पुरुष का नाम उपनिषद् है यानी ज्ञान है, जो उपासक उसको " अहः करके " यानी प्रकाशस्वरूप करके जानता है, वह पाप को नष्ट और त्याग करता है ॥ ३ ॥

मन्त्रः ४

योऽयं दक्षिणेऽक्षन्पुरुषस्तस्य भूरिति शिरएकꣳ शिरएकमेतदक्षरं भुव इति बाहू द्वौ बाहू द्वे एते अक्षरे स्वरिति प्रतिष्ठा द्वे प्रतिष्ठे द्वे एते अक्षरे तस्योपनिषदहमिति हन्ति पाप्मानं जहाति य एवं वेद ॥

इति पंचमं ब्राह्मणम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

यः, अयम्, दक्षिणे, अक्षन्, पुरुषः, तस्य, भूः, इति, शिरः, एकम्, शिरः, एकम्, एतत्, अक्षरम्, भुवः, इति, बाहू, द्वौ, बाहू, द्वे, एते, अक्षरे, स्वः, इति, प्रतिष्ठा, द्वे, प्रतिष्ठे, द्वे, एते, अक्षरे, तस्य, उपनिषद्, अहम्, इति, हन्ति, पाप्मानम्, जहाति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थाः
यः	जो
अयम्	यह
पुरुषः	पुरुष
दक्षिणे	दाहिने
अक्षन्	नेत्र में
+ दृश्यते	दिखाई देता है
तस्य	उसका
शिरः	सिर
भूः	भू
इति	ऐसा प्रसिद्ध है
+ हि	क्योंकि
+ यथा	जैसे
एकम्	एक संख्यावाला
शिरः	सिर है
+ तथा	वैसाही
एतत्	यह "भू"
अक्षरम्	अक्षर भी
एकम्	एक संख्यावाला है
तस्य	उसका
बाहू	बाहु

अन्वयः	पदार्थाः
भुवः	भुवः
इति	ऐसा प्रसिद्ध है
+ हि	क्योंकि
+ यथा	जैसे
बाहू	बाहु
द्वौ	दो हैं
तथा	वैसेही
एते	यह "भुवः" भी
द्वे	दो
अक्षरे	अक्षरवाला है
तस्य	उसका
प्रतिष्ठा	पैर
स्वः	स्वः
इति	ऐसा प्रसिद्ध है
+ हि	क्योंकि
+ यथा	जैसे
द्वे	दो संख्यावाला
प्रतिष्ठे	पैर है
+ तथा	वैसेही
एते	यह स्वः यानी सुवः

द्वे=दो
अक्षरे=अक्षरवाला है
तस्य=उस सत्यव्यापक पुरुष का
+ नाम=नाम
उपनिषद्=ज्ञान है
यः=जो
एतत्=इस को
अहः इति=अहः करके इसरूप को
एवम्=इस प्रकार
वेद=जानता है
+ सः=वह
पाप्मानम्=पाप को
हन्ति=नष्ट करता है
च=और
जहाति=त्याग देता है

भावार्थ ।

जो पुरुष प्राणीमात्र के दहिने नेत्र में दिखाई देता है, इसका सिर "भू" है क्योंकि जैसे सिर एक होता है वैसेही यह भू अक्षर एक संख्यावाला है, उस व्यापक पुरुष का बाहु भुवः है जैसे बाहु दो संख्यावाला होता है वैसेही भुवः भी दो अक्षरवाला है, उसका पाद स्वः (भुवः) है क्योंकि जैसे पाद दो संख्यावाला है वैसेही स्वः दो अक्षरवाला है, उस सत्य व्यापक पुरुष का नाम उपनिषद् यानी ज्ञान है, जो उपासक उस व्यापक परमात्मा को अहः * करके यानी प्रकाशस्वरूप करके जानता है, वह पापको नष्ट और त्याग देता है ॥ ४ ॥

इति पञ्चमं ब्राह्मणम् ॥ ५ ॥

अथ षष्ठं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

मनोमयोऽयं पुरुषो भाःसत्यस्तस्मिन्नन्तर्हृदये यथा व्रीहिर्वा यवो वा स एष सर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिः सर्वमिदं प्रशास्ति यदिदं किंच ॥

इति षष्ठं ब्राह्मणम् ॥ ६ ॥

---

* अहः दो शब्दों से यानी 'हन्' और 'हा' से निकल सकता है, हन् का अर्थ नाश करना है और हा—का अर्थ छोड़ना है, तात्पर्य इसका यह है कि उपासक पाप को नाश कर देता है, और त्यागता है ।

पदच्छेदः ।

मनोमयः, अयम्, पुरुषः, भाःसत्यः, तस्मिन्, अन्तर्हृदये, यथा, व्रीहिः, वा, यवः, वा, सः, एषः, सर्वस्य, ईशानः, सर्वस्य, अधिपतिः, सर्वम्, इदम्, प्रशास्ति, यत्, इदम्, किंच ॥

अन्वयः	पदार्थाः
अयम्=	यह महान्
पुरुषः=	परमात्मा पुरुष
मनोमयः=	मनोमय है यानी ज्ञान विज्ञानमय है
भाःसत्यः=	प्रकाश सत्य स्वरूप है
सः=	वही पुरुष
तस्मिन् अन्तर्हृदये=	उस हृदय विषे
यथा व्रीहिः=	धान के समान
वा=	अथवा
यवो वा=	यव के समान स्थित है
एषः=	यही
सः=	वह
सर्वस्य=	सब का
ईशानः=	ईश्वर है
सर्वस्य=	सब का
अधिपतिः=	स्वतन्त्र पालक है
यत्=	जो
किंच=	कुछ है
इदम्=	यह
सर्वम्=	सब है
तत्=	उस सब को
प्रशास्ति=	वह अपनी आज्ञा में रखता है

भावार्थ ।

यह महान् परमात्मा पुरुष ज्ञानविज्ञानप्रकाशस्वरूप है, वही प्राणी के हृदय विषे धान और यव के बराबर स्थित है, यही सब का ईश्वर है, सब का अधिपति है, सब का पालन करनेवाला है, सब को अपनी आज्ञा में नियमबद्ध रखता है, और जो कुछ स्थावर जङ्गम संसार भासता है उन सब का वह कर्त्ता, धर्त्ता और हर्त्ता है ॥ १ ॥

इति षष्ठं ब्राह्मणम् ॥ ६ ॥

अथ सप्तमं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

विद्युद्ब्रह्मेत्याहुर्विदानाद्विद्युद्विद्यत्येनं पाप्मनो य एवं वेद विद्युद्ब्रह्मेति विद्युद्ध्येव ब्रह्म ॥

इति सप्तमं ब्राह्मणम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

विद्युत्, ब्रह्म, इति, आहुः, विदानात्, विद्युत्, विद्यति, एनम्, पाप्मनः, यः, एवम्, वेद, विद्युत्, ब्रह्म, इति, विद्युत्, हि, एव, ब्रह्म ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
विदानात्	पाप अथवा अन्धकार के नाश कर डालने के कारण	वेद	जानता है
ब्रह्म	ब्रह्म	+ सः	वह
विद्युत्	विद्युत् है	एनम्	उसके यानी अपने
इति	ऐसा	पाप्मनः	पापों को
आहुः	लोग कहते हैं	विद्यति	नाश करदेता है
विद्युत्	विद्युत्	हि	क्योंकि
ब्रह्म	ब्रह्म है	एव	निश्चय करके
इति एवम्	ऐसा इस प्रकार	ब्रह्म	ब्रह्म
यः	जो	विद्युत्	विद्युत् है यानी पापविदारक है

भावार्थ ।

हे शिष्य ! सत्यस्वरूप ब्रह्म का वर्णन फिर करते हैं, ब्रह्मको विद्वान् लोग विद्युत् कहते हैं, कारण इसका यह है कि वह पाप और अन्धकार को नाश करता है, जो उपासक ऐसा जानता है वह अपने पापों को नाश करता है, क्योंकि ब्रह्म निश्चय करके पापविदारक है ॥ १ ॥

इति सप्तमं ब्राह्मणम् ॥ ७ ॥

अथ अष्टमं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

वाचं धेनुमुपासीत तस्याश्चत्वारः स्तनाः स्वाहाकारो वषट्कारो हन्तकारः स्वधाकारस्तस्यै द्वौ स्तनौ देवा उपजीवन्ति स्वाहाकारं च वषट्कारं च हन्तकारं मनुष्याः स्वधाकारं पितरस्तस्याः प्राण ऋषभो मनो वत्सः ॥

इत्यष्टमं ब्राह्मणम् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

वाचम्, धेनुम्, उपासीत, तस्याः, चत्वारः, स्तनाः, स्वाहाकारः, वषट्कारः, हन्तकारः, स्वधाकारः, तस्यै, द्वौ, स्तनौ, देवाः, उपजीवन्ति, स्वाहाकारम्, च, वषट्कारम्, च, हन्तकारम्, मनुष्याः, स्वधाकारम्, पितरः, तस्याः, प्राणः, ऋषभः, मनः, वत्सः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
वाचम्	वेदवाणी को
धेनुम्	कामधेनु के समान
उपासीत	उपासना करे
तस्याः	उस गौके
चत्वारः	चार
स्तनाः	स्तन
स्वाहाकारः	स्वाहाकार
वषट्कारः	वषट्कार
हन्तकारः	हन्तकार
स्वधाकारः	स्वधाकार हैं
तस्याः	उस धेनु के
द्वौ	दो
स्तनौ	स्तन
स्वाहाकारम्	स्वाहाकार
च	और
वषट्कारम्	वषट्कार के आश्रय
देवाः	देवता
उपजीवन्ति	जीते हैं
मनुष्याः	मनुष्य
हन्तकारम्	हन्तकार स्तन के आश्रय
+ उपजीवन्ति	जीते हैं
च	और
पितरः	पितर लोग
स्वधाकारम्	स्वधाकार स्तन के आश्रय
उपजीवन्ति	जीते हैं
तस्याः	उस गौ का
ऋषभः	बैल यानी स्वामी
प्राणः	प्राण है
+ च	और
वत्सः	बच्चा
मनः	मन है

भावार्थ ।

हे शिष्य ! सत्यब्रह्म की प्राप्ति का उपाय दिखलाते हैं, सो सावधान होकर सुनो, पुरुष वेदवाणी की कामधेनु गौ के समान उपासना करे, जैसे गौके चार स्तन होते हैं वैसेही वेदरूपी गौके चार स्तन स्वाहाकार, वषट्कार, हंतकार और स्वधाकार हैं, उनमें से दो स्तन स्वाहाकार और वषट्कार के आश्रय देवता जीते हैं, मनुष्य हंतकार के आश्रय

जीते हैं, और पितरलोग स्वधाकार स्तन के आश्रय जीते हैं, ऐसे गौ का पति प्राण है, और बच्चा मन है ॥ १ ॥

इति अष्टमं ब्राह्मणम् ॥ ८ ॥

अथ नवमं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

अयमग्निर्वैश्वानरो योऽयमन्तःपुरुषे येनेदमन्नं पच्यते यदिद-मद्यते तस्यैष घोषो भवति यमेतत्कर्णावपिधाय शृणोति स यदो-त्क्रमिष्यन्भवति नैनं घोषं शृणोति ॥

इति नवमं ब्राह्मणम् ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

अयम्, अग्निः, वैश्वानरः, यः, अयम्, अन्तःपुरुषे, येन, इदम्, अन्नम्, पच्यते, यत्, इदम्, अद्यते, तस्य, एषः, घोषः, भवति, यम्, एतत्, कर्णौ, अपिधाय, शृणोति, सः, यदा, उत्क्रमिष्यन्, भवति, न, एनम्, घोषम्, शृणोति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
अयम्=यह	
अग्निः=जठर अग्नि	
वैश्वानरः=वैश्वानर अग्नि है	
यः=जो	
अयम्=यह	
अन्तःपुरुषे=पुरुष के भीतर	
+ स्थितः=स्थित है	
+ च=और	
येन=जिस करके	
तत्=जो	
इदम्=यह	
अन्नम्=अन्न	
अद्यते=खायाजाता है	
+ च=और	

अन्वयः	पदार्थाः
पच्यते=पचजाता है	
तस्य=इस अग्नि का	
एषः=यह	
घोषः=शब्द	
+ तस्मिन्=उस	
+ शरीरे=शरीर में	
भवति=होता है	
यम्=जिस	
एतत्=इसको	
कर्णौ अपिधाय=कानों के ढांकने पर	
शृणोति=पुरुष सुनता है	
यदा=जब	
सः=वह उपासक	

उत्क्रमिष्यन्=मरनेपर	घोषम्=शब्द को
भवति=होता है	न=नहीं
+ तदा=तब	शृणोति=सुनता है
एनम्=इस	

भावार्थ ।

हे शिष्य ! जो जठराग्नि सब शरीरों के भीतर विद्यमान है, सोई वैश्वानरनामक अग्नि है, उसीकी सहायता करके भक्षित अन्न पच जाता है, इस वैश्वानर अग्नि का घोरशब्द शरीर में हुआ करता है, जब पुरुष हाथ लगाकर दोनों कानों को ढकता है, तब उसके अन्तर के शब्द को सुनता है, और जब वह मरनेपर होता है तब नहीं सुनता है, वैश्वानर अग्नि एक प्रकार का सामर्थ्य है, जिस करके शरीर की स्थिति बनी रहती है, जैसे इस शरीर में वैश्वानर अग्नि रहता है, वैसेही इस ब्रह्माण्डरूपी महान् शरीर विषे वैश्वानर सर्वव्यापी परमात्मा होकर संपूर्ण जगत् की स्थिति का कारण होता है ॥ १ ॥

इति नवमं ब्राह्मणम् ॥ ६ ॥

अथ दशमं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

यदा वै पुरुषोऽस्माल्लोकात्प्रैति स वायुमागच्छति तस्मै स तत्र विजिहीते यथा रथचक्रस्य खं तेन स ऊर्ध्वमाक्रमते स आदित्यमागच्छति तस्मै स तत्र विजिहीते यथा लम्बरस्य खं तेन स ऊर्ध्वमाक्रमते स चन्द्रमसमागच्छति तस्मै स तत्र विजिहीते यथा दुन्दुभेः खं तेन स ऊर्ध्वमाक्रमते स लोकमागच्छत्यशोकमहिमं तस्मिन्वसति शाश्वतीः समाः ॥

इति दशमं ब्राह्मणम् ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

यदा, वै, पुरुषः, अस्मात्, लोकात्, प्रैति, सः, वायुम्, आगच्छति, तस्मै, सः, तत्र, विजिहीते, यथा, रथचक्रस्य, खम्, तेन, सः, ऊर्ध्वम्,

आक्रमते, सः, आदित्यम्, आगच्छति, तस्मै, सः, तत्र, विजिहीते, यथा, लम्बरस्य, खम्, तेन, सः, ऊर्ध्वम्, आक्रमते, सः, चन्द्रमसम्, आगच्छति, तस्मै, सः, तत्र, विजिहीते, यथा, दुन्दुभेः, खम्, तेन, सः, ऊर्ध्वम्, आक्रमते, सः, लोकम्, आगच्छति, अशोकम्, अहिमम्, तस्मिन्, वसति, शाश्वतीः, समाः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
यदा	जब
वै	निश्चय करके
पुरुषः	पुरुष
अस्मात्	इस
लोकात्	लोक से
प्रैति	मरकर चला जाता है
+ तदा	तब
सः	वह पुरुष
वायुम्	वायु लोक को
आगच्छति	प्राप्त होता है
तत्र	वहां
सः	वह वायु
तस्मै	उस पुरुष को
रथचक्रस्य खम् यथा	पहिया के छिद्र के समान
विजिहीते	मार्ग देता है
तेन	उस छिद्र करके
सः	वह पुरुष
ऊर्ध्वम्	ऊपर को
आक्रमते	जाता है
+ च	और फिर
सः	वह
आदित्यम्	सूर्यलोक को
आगच्छति	प्राप्त होता है
तस्मै	उस पुरुष के लिये
सः	वह सूर्य
तत्र	उस अवस्था में
लम्बरस्य	बाजे के
खम्	छिद्र की
यथा	तरह अतिसूक्ष्म
विजिहीते	मार्ग देता है
तेन	उस छेद के द्वारा
सः	वह पुरुष
ऊर्ध्वम्	ऊपर को
आक्रमते	जाता है
+ पुनः	फिर
सः	वह पुरुष
चन्द्रमसम्	चन्द्रमा को
आगच्छति	प्राप्त होता है
तस्मै	उस पुरुष के लिये
सः	वह चन्द्र
तत्र	उस अवस्था में
दुन्दुभेः	डमरू बाजे के
खम्	छिद्र के
यथा	समान
विजिहीते	मार्ग देता है
+ पुनः	फिर
तेन	उस छिद्र के द्वारा
सः	वह पुरुष
ऊर्ध्वम्	ऊपर को

आक्रमते=जाता है	आगच्छति=प्राप्त होता है
+ च=और	तस्मिन्=वहां
अशोकम्=शोकरहित	शाश्वतीः=निरन्तर
अहिमम्=मानसिक दुःखरहित	समाः=वर्षोंतक
लोकम्=ब्रह्मा के लोक को	वसति=वास करता है

भावार्थ ।

जब पुरुष इस लोक से मर कर चला जाता है, तब वह प्रथम वायुलोक में जाता है, वहां पर वायु उस पुरुष को उस अवस्था में पहिये के छिद्र के समान मार्ग देता है, उस छिद्र के द्वारा वह पुरुष ऊपर को जाता है, और सूर्यलोक में पहुँचता है, वहां पर उस पुरुष के लिये वाजे के छिद्र की तरह मार्ग देता है, उस मार्ग के द्वारा फिर ऊपर को जाता है, और चन्द्रलोक में पहुँचता है, वहां पर उस पुरुष को चन्द्रमा डमरू वाजे के छिद्र के समान मार्ग देता है, और फिर उस मार्ग द्वारा वह पुरुष ऊपर को जाता है, और अन्त में शोकरहित मानसिक दुःखरहित प्रजापति के लोक को प्राप्त होता है, वहां पर वरसों तक निरन्तर वास करता है ॥ १ ॥

इति दशमं ब्राह्मणम् ॥ १० ॥

अथ एकादशं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

एतद्वै परमं तपो यद्व्याहितस्तप्यते परमꣳ हैव लोकं जयति य एवं वेदैतद्वै परमं तपो यं प्रेतमरण्यꣳ हरन्ति परमꣳ हैव लोकं जयति य एवं वेदैतद्वै परमं तपो यं प्रेतमग्नावभ्यादधति परमꣳ हैव लोकं जयति य एवं वेद ॥

इत्येकादशं ब्राह्मणम् ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ।

एतत्, वै, परमम्, तपः, यत्, व्याहितः, तप्यते, परमम्, ह, एव, लोकम्, जयति, यः, एवम्, वेद, एतत्, वै, परमम्, तपः, यम्, प्रेतम्,

अरण्यम्, हरन्ति, परमम्, ह, एव, लोकम्, जयति, यः, एवम्, वेद, एतत्, वै, परमम्, तपः, यम्, प्रेतम्, अग्नौ, अभ्यादधति, परमम्, ह, एव, लोकम्, जयति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थाः
एतत्	वही
वै	निस्सन्देह
परमम्	श्रेष्ठ
तपः	तप है
यत्	जब
व्याहितः	रोगग्रसित पुरुष
तप्यते	ईश्वरसम्बन्धी विचार करता है
यः	जो
एवम्	इस प्रकार
वेद	जानता है
+ सः एव	वही
परमम्	श्रेष्ठ
लोकम्	लोक को
जयति	जीतता है यानी प्राप्त होता है
एतत्	यही
वै	निश्चय करके
परमम्	परम
तपः	तप है
+ यदा	जब
+ व्याहितः	रोगग्रसित पुरुष
+ तप्यते	ईश्वरविचार में परायण है
+ च	और
+ तस्यैवं विचारः	उसको ऐसा ख्याल भी है कि

अन्वयः	पदार्थाः
+ यम्	जिस
+ माम्	मुझ
प्रेतम्	मरे हुये को
अरण्यम्	अरण्य में
+ दीपनार्थम्	जलाने के लिये
हरन्ति	लोग ले जायँगे
यः	जो
एवम्	इस प्रकार
वेद	जानता है
+ सः	वह
परमम्	श्रेष्ठ
लोकम्	लोक को
ह एव	निश्चय करके
जयति	जीतता है यानी प्राप्त होता है
एतत्	यही
वै	निस्सन्देह
परमम्	परम
तपः	तप है
+ यदा	जिस काल में
+ व्याहितः	रोगग्रसित पुरुष
+ तप्यते	ईश्वर के विचार में तत्पर है
च	और
+ तस्यैवं विचारः	उसका ख्याल है कि
माम्	मुझ

प्रेतम्=मरे हुये को
अग्नौ=अग्नि में
अभ्यादधति=रक्खेंगे
यः=जो
एवम्=इस प्रकार
वेद=जानता है
सः एव=वही
परमम्=श्रेष्ठ
लोकम्=लोक को
जयति=जीतता है यानी प्राप्त होता है

भावार्थ ।

जो पुरुष रोगग्रसित है, और मृत्यु उसके निकट खड़ा है, पर उसका चित्त ईश्वर में लगा है, और इस अपने विचाररूपी तप को भलीप्रकार जानता है, वह देह त्यागने के पश्चात् श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त होता है, उस पुरुष का भी यह श्रेष्ठ तप है जो रोगों से तो ग्रसित है, और मृत्यु जिसके समीप आन पहुंचा है परन्तु वह अपने विचार में तत्पर है, और यहभी उसको ख्याल होरहा है कि मुझको मेरे मरने के पीछे मेरे ज्ञाति के लोग अरण्य में मेरे मृतक शरीर को जलाने के लिये ले जायेंगे ऐसा ज्ञानी पुरुष श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त होता है यह उस ज्ञानी का भी श्रेष्ठ तप है जो रोग से तो ग्रसित है और जिसके निकट मृत्यु आपहुँचा है, परन्तु उस हालत में भी वह ईश्वरके विचार से शून्य नहीं है, और उस हालत में उसको चिन्ता होरही है कि मेरे मृतक शरीर को लोग थोड़े काल पीछे अग्नि में रक्खेंगे, ऐसा दृढ़ ज्ञानी पुरुष अवश्य श्रेष्ठ लोकों को जीतता है, जैसे श्रेष्ठकर्मी पुरुष जब गृहस्थाश्रम को त्याग कर वानप्रस्थ अवस्था को धारण कर अरण्य को जाता है और उसी अवस्था में शरीर को त्याग करता है तो जिन श्रेष्ठ लोकों को वह प्राप्त होता है वैसेही उन्हीं उन्हीं लोकों को ज्ञानी घरमें ही मरने के पश्चात् ईश्वरसम्बन्धी विचार करने के कारण प्राप्त होता है, और जैसे शुभकर्मी शरीरत्यागानन्तर अग्नि में प्रवेश करके पापों से निर्मल होकर जिन जिन लोकों को प्राप्त होता है वैसेही उन्हीं लोकों को वह ज्ञानी भी अपने घरमें ही शरीर त्याग

के पश्चात् प्राप्त होता है, जो रोगग्रसित है और जिसको मृत्यु ने आनकर घेर लिया है, परन्तु अपने दृढ़विचार से हटा नहीं है और यहभी उसको मालूम है कि थोड़ेही काल पीछे मेरे मृतक शरीर को मेरे सम्बन्धी अग्नि में दाह करेंगे ॥ १ ॥

इति एकादशं ब्राह्मणम् ॥ ११ ॥

अथ द्वादशं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

अन्नं ब्रह्मेत्येक आहुस्तन्न तथा पूयति वा अन्नमृते प्राणात्प्राणो ब्रह्मेत्येक आहुस्तन्न तथा शुष्यति वै प्राण ऋतेऽन्नादेते ह त्वेव देवते एकधाभूयं भूत्वा परमतां गच्छतस्तद्धस्माऽऽह प्रातृदः पितरं किंस्विदेवैवं विदुषे साधु कुर्यां किमेवास्मा असाधु कुर्यामिति स ह स्माऽऽह पाणिना मा प्रातृद कस्त्वनयोरेकधाभूयं भूत्वा परमतां गच्छतीति तस्मा उ हैतदुवाच वीत्यन्नं वै व्यन्ने हीमानि सर्वाणि भूतानि विष्टानि रमिति प्राणो वै रं प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि रमन्ते सर्वाणि ह वा अस्मिन्भूतानि विशन्ति सर्वाणि भूतानि रमन्ते य एवं वेद ॥

इति द्वादशं ब्राह्मणम् ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ।

अन्नम्, ब्रह्म, इति, एके, आहुः, तत्, न, तथा, पूयति, वा, अन्नम्, ऋते, प्राणात्, प्राणः, ब्रह्म, इति, एके, आहुः, तत्, न, तथा, शुष्यति, वै, प्राणः, ऋते, अन्नात्, एते, ह, तु, एव, देवते, एकधाभूयम्, भूत्वा, परमताम्, गच्छतः, तत्, ह, स्म, आह, प्रातृदः, पितरम्, किम्, स्वित्, एव, एवम्, विदुषे, साधु, कुर्याम्, किम्, एव, अस्मै, असाधु, कुर्याम्, इति, सः, ह, स्म, आह, पाणिना, मा, प्रातृद, कः, तु, अनयोः, एकधाभूयम्, भूत्वा, परमताम्, गच्छति, इति, तस्मै, उ, ह, एतत्, उवाच, वि, इति, अन्नम्, वै, व्यन्ने, हि, इमानि, सर्वाणि, भूतानि, विष्टानि, रम्, इति, प्राणः, वै, रम्, प्राणे, हि, इमानि, सर्वाणि, भूतानि, रमन्ते,

सर्वाणि, ह, वा, अस्मिन्, भूतानि, विशन्ति, सर्वाणि, भूतानि, रमन्ते, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
अन्नम्=अन्न		ऋते=विना	
ब्रह्म=ब्रह्म है		शुष्यति=सूख जाता है	
इति=ऐसा		ह तु एव=इस पर	
एके=कोई आचार्य		+ एके=कोई आचार्य	
ह=स्पष्ट		ह इति=ऐसा निश्चय करके	
आहुः=कहते हैं		आह=कहता है कि	
किन्तु=किन्तु		देवते=ये दोनों देवता यानी अन्न और प्राण	
तत्=वह		एकधाभूयम्=एक	
तथा=ऐसा		भूत्वा=होकर	
न=नहीं है		परमताम्=बड़े महत्त्व को	
+ हि=क्योंकि		गच्छतः=प्राप्त होते हैं या प्राप्त करते हैं	
अन्नम्=अन्न		तत् ह=इस पर	
ऋते=विना		प्रातृदः=प्रातृद ऋषि	
प्राणात्=प्राण		पितरम्=अपने पिता से	
पूयति=दुर्गन्ध को प्राप्त होता है		आह स्म=पूछता है कि	
एके=कोई आचार्य		एवम्=ऐसे माननेवाले	
इति=ऐसा		विदुषे=विद्वान् के लिये	
आहुः=कहते हैं कि		किं स्वित्=क्या	
प्राणः=प्राण ही		साधु=सत्कार	
ह=निश्चय करके		कुर्याम्=मैं करूं	
ब्रह्म=ब्रह्म है		च=और	
+ किन्तु=किन्तु		किमेव=क्या	
तत्=वह		अस्मै=इस विद्वान् के लिये	
तथा=ऐसा		असाधु=तिरस्कार	
न=नहीं है		कुर्याम्=करूं	
+ हि=क्योंकि		ह=तब	
प्राणः=प्राण			
अन्नात्=अन्न			

सः=वह पिता
पाणिना=हाथ से
+ वारयन्=निषेध करता हुआ
इति=ऐसा
आह स्म=कहता भया कि
प्रातृद्=हे प्रातृद !
मा=मत
वोचः=ऐसा कहो
अनयोः=अन्न और प्राण में
एकधाभूयम्=एकताभाव
भूत्वा=मान कर
कः=कौन पुरुष
परमताम्=श्रेष्ठता को
गच्छति=प्राप्त होता है अर्थात् कोई नहीं
+ पुनः=फिर अपने
तस्मै=उस पुत्र से
उ ह=स्पष्ट
इति=ऐसा
उ ह एतत्=यह बात
उवाच=कहा कि
अन्नम्=अन्न
इति=ही
वि=वि है
वै=निश्चय करके
हि=क्योंकि
व्यन्ने=विरूप अन्न में ही
इमानि=यह
सर्वाणि=सब
भूतानि=प्राणी
विष्टानि=प्रविष्ट हैं
रम्=र रूपी
इति=निश्चय करके
प्राणः=प्राण है
वै हि=क्योंकि
रम्=र रूपी
प्राणे=प्राण में ही
इमानि=ये
सर्वाणि=सब
भूतानि=प्राणी
रमन्ते=रमण करते हैं
यः=जो
एवम्=ऐसा
वेद=जानता है
अस्मिन्=उसमें
सर्वाणि=सब जीव
ह वा=निश्चय करके
विशन्ति=प्रवेश करते हैं
+ च=और
अस्मिन्=इसी में
सर्वाणि=सब
भूतानि=प्राणी
रमन्ते=रमण करते हैं यानी वह ब्रह्मरूप होजाता है

भावार्थ ।

प्रातृद ऋषि अपने पिता से कहता है कि कोई आचार्य कहते हैं कि अन्नही ब्रह्म है, यानी ब्रह्म की तरह यह भी पूज्य है, सो ऐसा नहीं है, क्योंकि प्राण के विना अन्न सड़जाता है, और उसमें दुर्गन्ध

आने लगती है, ब्रह्म न सड़ता है और न उसमें दुर्गन्ध आती है, कोई आचार्य कहते हैं कि प्राणही ब्रह्म है, सो भी ठीक नहीं कहते हैं, क्योंकि अन्न के विना प्राण सूख जाता है, ब्रह्म सूखता नहीं है, इस लिये न केवल अन्न ब्रह्म करके मन्तव्य है, न केवल प्राण ब्रह्म करके मन्तव्य है, पर जब ये दोनों एकता को प्राप्त होते हैं तब दोनों मिल कर ब्रह्मभाव को प्राप्त होते हैं, जो कोई अन्न और प्राण को इस प्रकार जानता है उस विद्वान् के लिये न कोई सत्कार है, न कोई असत्कार है, क्योंकि ऐसे पुरुष नित्यतृप्त और कृतकृत्य होते हैं. पुत्र के इस सिद्धान्त को जान कर हाथ से निषेध करता हुआ पिता कहने लगा कि हे पुत्र, प्रातृद ! तुम ऐसा मत कहो कौन पुरुष अन्न और प्राण को एक मानकर महत्त्व को प्राप्त होता है, यानी कोई नहीं प्राप्त होता है, फिर पुत्र से पिता ने कहा कि हे पुत्र ! निश्चय करके अन्नही "वि" है, क्योंकि "वि" का अर्थ वेश यानी प्रवेश है. इस लिये "वि" अन्न को कहते हैं कारण इसका यह है कि अन्न में ही सब प्राणी प्रविष्ट हैं, हे पुत्र ! "र" को प्राण कहते हैं क्योंकि सब प्राणियों का रमण प्राण में ही होता है. जो विद्वान् पुरुष ऐसा जानता है उसी में सब जीव रमण करते हैं यानी वह ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

इति द्वादशं ब्राह्मणम् ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

उक्थं प्राणो वा उक्थं प्राणो हीदꣳ सर्वमुत्थापयत्युद्धास्मादुक्थविद्वीरस्तिष्ठत्युक्थस्य सायुज्यꣳ सलोकतां जयति य एवं वेद ॥

पदच्छेदः ।

उक्थम्, प्राणः, वा, उक्थम्, प्राणः, हि, इदम्, सर्वम्, उत्थापयति, उत्, ह, अस्मात्, उक्थवित्, वीरः, तिष्ठति, उक्थस्य, सायुज्यम्, सलोकताम्, जयति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
प्राणः=प्राण		वीरः=वीर	
वै=ही		+ पुत्रः=पुत्र	
उक्थम्=उक्थ है		उत्तिष्ठति=उत्पन्न होता है	
+ इति=इस प्रकार		यः=जो	
उक्थम्=उक्थ की		एवम्=इस प्रकार इसको	
+ उपासीत=उपासना करे		ह=स्पष्ट	
हि=क्योंकि		वेद=जानता है	
प्राणः=प्राण		सः=वह	
इदम्=इस		उक्थस्य=उक्थ के	
सर्वम्=सबको		सायुज्यम्=सायुज्यता को	
उत्थापयति=उठाता है		+ च=और	
अस्मात् +उपासकात् = ऐसे उक्थ के जानने वाले पुरुष से		सालोक्यताम्=सालोक्यता को	
उक्थवित्=प्राण का जाननेवाला		जयति=प्राप्त होता है	

भावार्थ ।

हे शिष्य ! प्राणही उक्थ है, उक्थशब्द उत् और स्था से बना है, जिसका अर्थ उठना है, यज्ञ में उक्थ शस्त्र पढ़ने से ऋत्विज् उठ बैठते हैं, और अपना अपना कार्य करने लगते हैं, इसी प्रकार शरीर में प्राण जबतक चला करता है तबतक ऋत्विज्रूप सब इन्द्रियां अपना अपना कार्य किया करती हैं, यह उक्थ और प्राण की सादृश्यता है, यानी जैसे प्राण के सहारे से सब इन्द्रियां अथवा प्राणीमात्र अपना अपना कार्य करते हैं तैसेही उक्थशस्त्र के यज्ञ में पढ़ने से सब ऋत्विज् उठकर अपना अपना कार्य करने लगते हैं, इस प्रकार उक्थोपासना कर्त्तव्य है, क्योंकि प्राणही सब को उठाता है, जो उक्थ का अर्थ ऐसा समझता है, वह वीर पुत्र को उत्पन्न करता है, इस कारण उक्थ प्राण कहा गया है, और जो इसको जानता है, वह उक्थ सायुज्यता और सालोकता को पाता है ॥ १ ॥

मन्त्रः २

यजुः प्राणो वै यजुः प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि युज्यन्ते युज्यन्ते हास्मै सर्वाणि भूतानि श्रैष्ठ्याय यजुषः सायुज्यꣳ सलोकतां जयति य एवं वेद ॥

पदच्छेदः ।

यजुः, प्राणः, वै, यजुः, प्राणे, हि, इमानि, सर्वाणि, भूतानि, युज्यन्ते, युज्यन्ते, ह, अस्मै, सर्वाणि, भूतानि, श्रैष्ठ्याय, यजुषः, सायुज्यम्, सलोकताम्, जयति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थः ।	अन्वयः	पदार्थः ।
प्राणः	प्राण	सर्वाणि	सब
वै	ही	भूतानि	प्राणी
यजुः	यजु है	श्रैष्ठ्याय	श्रेष्ठता के वास्ते
+ प्राणम्	प्राण को	युज्यन्ते	उद्यत होते हैं
इति	इस प्रकार	यः	जो पुरुष
+ उपासीत	उपासना करे	एवम्	ऐसा
हि	क्योंकि	वेद	जानता है
इमानि	ये	+ सः	वह
सर्वाणि	सब	यजुषः	यजु के
भूतानि	प्राणी	सायुज्यम्	सायुज्यता को
प्राणे	प्राण में ही	च	और
युज्यन्ते	संमेलन करते हैं	सलोकताम्	सलोकता को
+ अतः	इसी से	जयति	प्राप्त होता है
अस्मै	इस पुरुष के निमित्त		

भावार्थ ।

हे शिष्य ! प्राणही यजु है, यानी देह संघात से सम्बन्ध करने वाला है, यजुसे मतलब यहां यजुर्वेद से नहीं है, किन्तु इसका अर्थ 'युजिर योगे' धातु से है, क्योंकि शरीर और इन्द्रिय में कार्य करने की शक्ति जभी होती है जब प्राण का सम्बन्ध इनके साथ होता है ऐसा

समझकर पुरुष प्राण की उपासना करे, क्योंकि सब प्राणीमात्र प्राण में ही संमेलन करते हैं, और इसी कारण इस पुरुष को श्रेष्ठ पदवी देने के लिये तय्यार होते हैं, जो ऐसा जानता है, वह यजु यानी प्राण के सायुज्यता और सलोकता को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

मन्त्रः ३

साम प्राणो वै साम प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि सम्यञ्चि सम्यञ्चि हास्मै सर्वाणि भूतानि श्रैष्ठ्याय कल्पन्ते साम्नः सायुज्यꣳ सलोकतां जयति य एवं वेद ॥

पदच्छेदः ।

साम, प्राणः, वै, साम, प्राणे, हि, इमानि, सर्वाणि, भूतानि, सम्यञ्चि, सम्यञ्चि, ह, अस्मै, सर्वाणि, भूतानि, श्रैष्ठ्याय, कल्पन्ते, साम्नः, सायुज्यम्, सलोकताम्, जयति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
हि	क्योंकि	भूतानि	प्राणी
इमानि	ये	सम्यञ्चि	उद्यत होते हैं
सर्वाणि	सब	+ च	और
भूतानि	प्राणी	ह	निश्चय करके
वै	निश्चय करके	+ तस्य	उस उपासक की
प्राणे	प्राण मेंही	श्रैष्ठ्याय	श्रेष्ठता के लिये
सम्यञ्चि	संयुक्त होते हैं	कल्पन्ते	तय्यार होते हैं
+ अतः	इसी कारण	यः	जो उपासक
प्राणः	प्राणही	एवम्	ऐसा
साम	साम है	वेद	जानता है
साम	साम को	सः	वह
यः	जो	साम्नः	साम के
+ उपासीत	उपासना प्राण जान कर करे	सायुज्यम्	सायुज्यता को
अस्मै	उस उपासक की सेवा के लिये	+ च	और
सर्वाणि	सब	सलोकताम्	सालोक्यता को
		जयति	प्राप्त होता है

भावार्थ ।

प्राणही साम है, सामपद का अर्थ सामवेद नहीं है, किन्तु सामका अर्थ संमेलन या सम्बन्ध से है, क्योंकि सब प्राणी प्राण में प्रविष्ट होते हैं, जो सामरूपी प्राण की उपासना इस प्रकार करता है उस उपासक को महत्त्व पदवी देने के लिये प्राणीमात्र उद्यत होते हैं ॥ ३ ॥

मन्त्रः ४

क्षत्रं प्राणो वै क्षत्रं प्राणो हि वै क्षत्रं त्रायते हैनं प्राणः क्षणितोः प्रक्षत्रमत्रमाप्नोति क्षत्रस्य सायुज्यꣳ सलोकतां जयति य एवं वेद ॥

इति त्रयोदशं ब्राह्मणम् ॥ १३ ॥

पदच्छेदः ।

क्षत्रम्, प्राणः, वै, क्षत्रम्, प्राणः, हि, वै, क्षत्रम्, त्रायते, ह, एनम्, प्राणः, क्षणितोः, प्र, क्षत्रम्, अत्रम्, आप्नोति, क्षत्रस्य, सायुज्यम्, सलोकताम्, जयति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
प्राणः=प्राण		आप्नोति=प्राप्त होता है यानी जीवन योग्य होता है	
वै=ही		इति=इस प्रकार	
क्षत्रम्=क्षत्र है		क्षत्रम्=क्षत्र को	
हि=क्योंकि		ज्ञात्वा=जान कर	
प्राणः=प्राण		+ उपासीत=उपासना करै	
वै=ही		यः=जो	
एनम्=इस देह को		एवम्=इस तरह	
ह=निश्चय करके		वेद=जानता है	
क्षणितोः=शस्त्र के घाव से बचाता है		+ सः=वह	
अतः=इसी कारण		क्षत्रस्य=क्षत्र के	
अत्रम्=औरों करके नहीं रक्षा किया हुआ		सायुज्यम्=सायुज्यता को	
क्षत्रम्=क्षत्रिय		+ च=और	
प्राणम्=जीवन को		सलोकताम्=सालोक्यता को	
		जयति=प्राप्त होता है	

भावार्थ ।

प्राणही क्षत्र है, क्योंकि प्राणही देह को शस्त्र के घाव से बचाता है, यानी जब कोई शस्त्र किसी के शरीर में लगजाता है और उससे घाव पैदा होजाता है तब प्राण के होने के कारण औषधी करके घाव भर जाता है, और पुरुष अच्छा होजाता है, प्राण को क्षत्र इस कारण कहा है कि जैसे क्षत्रिय किसी का सहारा न करके अपने वीर्य पराक्रम से अपनी और दूसरे की रक्षा करता है, उसी तरह प्राण भी किसी इन्द्रिय का सहारा न लेकर अपनी और दूसरे की रक्षा करता है, इस प्रकार प्राण को क्षत्र जानकर प्राण की उपासना करे, जो पुरुष ऐसा जानता है, वह क्षत्ररूपी प्राण के सायुज्यता और सालोक्यता को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

इति त्रयोदशं ब्राह्मणम् ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

भूमिरन्तरिक्षं द्यौरित्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षरꣳ ह वा एकं गायत्र्यै पद-मेतदु हैवास्या एतत्स यावदेषु त्रिषु लोकेषु तावद्ध जयति योऽस्या एतदेवं पदं वेद ॥

पदच्छेदः ।

भूमिः, अन्तरिक्षम्, द्यौः, इति, अष्टौ, अक्षराणि, अष्टाक्षरम्, ह, वा, एकम्, गायत्र्यै, पदम्, एतत्, उ, ह, एव, अस्याः, एतत्, सः, यावत्, एषु, त्रिषु, लोकेषु, तावत्, ह, जयति, यः, अस्याः, एतत्, एवम्, पदम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
भूमिः=भू, मि,		इति=इस प्रकार	
अन्तरिक्षम्=अ, न्त, रि, क्ष,		अष्टौ=आठ	
द्यौः=दि, औ,		अक्षराणि=अक्षर हैं	

उ=और	एतत्=इस
एतत्=सोई	पदम्=एक पाद को
अष्टाक्षरम्=आठ अक्षर वाला	एवम्=कहे हुये प्रकार
गायत्र्यै=गायत्री का	ह=भली प्रकार
एकम् पदम्=एक यानी "तत्, स, वि, तु, र्व, रे, (ण्यम्) णि, यम्" ‡ पाद है	वेद=जानता है
यः=जो	सः=वह
अस्याः=इसके यानी गायत्री के	एषु=इन
एतत्=इस एक पाद को	त्रिषु=तीनों
ह=भली प्रकार	लोकेषु=लोकों में
वेद=जानता है	यावत्=जितना
यः=जो	प्राप्तव्यम्=प्राप्तव्य है
अस्याः=इस गायत्री के	तावत् ह=उतने सब को
	जयति=जीतता है यानी पाता है

भावार्थ ।

हे शिष्य ! भूमि में दो अक्षर भू, मि, और अन्तरिक्ष में चार अक्षर अ, न्त, रि, क्ष, और द्यौ में दो अक्षर द्यि, और औ, इस प्रकार सब मिलाकर आठ अक्षर होते हैं, और गायत्री के प्रथम पद में भी आठ अक्षर "तत्, स, वि, तु, र्व, रे, (ण्यम्) णि, यम्" होते हैं, इस लिये गायत्री का प्रथम चरण आठ अक्षर वाला आठ अक्षर वाले भूमि (पृथिवी) अन्तरिक्ष (आकाश) और द्यौ (स्वर्ग) के बराबर है. अब आगे इस पद की उपासना के फल को कहते हैं, जो कोई उपासक गायत्री के इस एक पद को इस प्रकार उपासना करता है, वह तीनों लोक में जो कुछ प्राप्तव्य है उसको जीतता है ॥ १ ॥

मन्त्रः २

ऋचो यजूंषि सामानीत्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षरꣳ ह वा एकं गायत्र्यै पदमेतदु हैवास्या एतत्स यावतीयं त्रयी विद्या तावद्ध जयति योऽस्या एतदेवं पदं वेद ॥

‡ वरेण्यं विरलं कुर्याद्गायत्रीजपमाचरेदित्यापस्तम्बः ॥

पदच्छेदः ।

ऋचः, यजूंषि, सामानि, इति, अष्टौ, अक्षराणि, अष्टाक्षरम्, ह, वा, एकम्, गायत्र्यै, पदम्, एतत्, उ, ह, एव, अस्याः, एतत्, सः, यावती, इयम्, त्रयी, विद्या, तावत्, ह, जयति, यः, अस्याः, एतत्, एवम्, पदम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थाः
ऋचः=	ऋ, च,
यजूंषि=	य, जूं, षि,
सामानि=	सा, मा, नि,
इति=	इस प्रकार
अष्टौ=	आठ
अक्षराणि=	अक्षर हैं
एतत् उ=	सोई
गायत्र्यै=	गायत्री का
अष्टाक्षरम्=	आठ अक्षर वाला
एकम्=	एक
पदम्=	"भ, र्गो, दे, व, स्य, धी, म, हि" पाद है
यः=	जो
अस्याः=	इस गायत्री के
पदम्=	इस एक पाद को
ह=	भली प्रकार
वेद=	जानता है
यः=	जो
अस्याः=	इस गायत्री के
एतत्=	इस
पदम्=	पाद को
ह=	भली प्रकार
एवम्=	कहे हुये प्रकार
वेद=	जानता है यानी उपासना करता है
सः=	वह
यावती=	जितनी
इयम्=	यह
त्रयी=	तीनों
विद्या=	विद्या हैं
तावत् ह=	उतनी इन विद्याओं के फल को
जयति=	पाता है यानी जो तीनोंवेदों करकेप्राप्त होने योग्य है उस सबको वह उपासक पाता है

भावार्थ ।

ऋचः में दो अक्षर ऋ, च, यजूंषि में तीन अक्षर य, जूं, षि, सामानि में तीन अक्षर सा, मा, नि, इस प्रकार ये आठ अक्षर बराबर हैं गायत्री के दूसरे पाद आठ अक्षर वाले "भ, र्गो, दे, व, स्य, धी, म, हि" के और इसी कारण दोनों की समता है, यानी गायत्री का दूसरा पाद तीनों वेद के बराबर है. अब आगे गायत्री के दूसरे पाद की

उपासना का फल दिखलाते हैं. जो उपासक गायत्री के इस एक पाद को ऐसा समझकर उपासना करता है तो वह उन सब वस्तुओं को पाता है जो तीन वेदों की उपासना करके पाया जाता है ॥ २ ॥

मन्त्रः ३

प्राणोऽपानो व्यान इत्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षरꣳ ह वा एकं गायत्र्यै पदमेतदु हैवास्या एतत्स यावदिदं प्राणि तावद्ध जयति योऽस्या एतदेवं पदं वेदाथास्य एतदेव तुरीयं दर्शतं पदं परोरजा य एष तपति यद्वै चतुर्थं तत्तुरीयं दर्शतं पदमिति ददृश इव ह्येष परोरजा इति सर्वमु ह्येवैष रज उपर्युपरि तपत्येवꣳ हैव श्रिया यशसा तपति योऽस्या एतदेवं पदं वेद ॥

पदच्छेदः ।

प्राणः, अपानः, व्यानः, इति, अष्टौ, अक्षराणि, अष्टाक्षरम्, ह, वा, एकम्, गायत्र्यै, पदम्, एतत्, उ, ह, एव, अस्याः, एतत्, सः, यावत्, इदम्, प्राणि, तावत्, ह, जयति, यः, अस्याः, एतत्, एवम्, पदम्, वेद, अथ, अस्य, एतत्, एव, तुरीयम्, दर्शतम्, पदम्, परोरजाः, यः, एषः, तपति, यत्, वै, चतुर्थम्, तत्, तुरीयम्, दर्शतम्, पदम्, इति, ददृशे, इव, हि, एषः, परोरजाः, इति, सर्वम्, उ, हि, एव, एषः, रजः, उपरि, उपरि, तपति, एवम्, ह, एव, श्रिया, यशसा, तपति, यः, अस्याः, एतत्, एवम्, पदम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थाः
प्राणः=प्रा, ण,	
अपानः=अ, पा, न,	
व्यानः=वि, आ, न,	
इति=इस प्रकार	
अष्टौ=आठ	
अक्षराणि=अक्षर हैं	

अन्वयः	पदार्थाः
एतत् उ=सोई	
गायत्र्यै=गायत्री का	
अष्टाक्षरम्=आठअक्षरवाला "धि,यो, यो,नः, प्र,चो,द,यात्"	
एकम्=एक	
पदम्=पाद है	

यः=जो
अस्याः=इस गायत्री के
एतत्=इस पाद को
वेद=जानता है
यः=जो
अस्याः=इस गायत्री के
एतत्=इस
पदम्=एक पाद को
एवम्=कहे हुये प्रकार
वेद=जानता है
सः=वह
यावत्=जितने
इदम्=यह सब
प्राणी=जीवमात्र हैं
तावत् ह=उन सब को
जयति=जीतता है यानी अपने वश में करता है
अथ=इसके उपरान्त
अस्य=इस गायत्री मन्त्र का
एतत् एव=यह निश्चय करके
तुरीयम्=चौथा
पदम्=पाद
दर्शतम्=दर्शत नामवाला है
यः=जो
एषः=यह
परोरजाः=परोरजा है यानी प्रकृति से परे है
एषः=सोई
तपति=सबको प्रकाश करता है
यत् तत्=जो यह
वै=निश्चय करके
चतुर्थम्=चौथा
तुरीयम्=तुरीया
दर्शतम्=दर्शत नामवाला
पदम् इति=गायत्री का पाद प्रसिद्ध है
च=और
+ यः=जो
एषः=यह पुरुष
सूर्यमण्डले=सूर्यमण्डल विषे
हि=निश्चय करके
ददृशे इव=देखा सा
योगिना=योगियों करके प्रतीत होता है
सः=वही
परोरजाः इति=परोरजा है
एषः एव हि=यही सूर्यमण्डलस्थ पुरुष
सर्वम्=सब
रजः=लोकों को
उपरि उपरि=उत्तरोत्तर
तपति=प्रकाशता है
यः=जो पुरुष
अस्याः=इस गायत्री के
एतत्=इस चतुर्थ पाद को
एवम्=इस प्रकार
वेद=जानता है
सः=वह
एवम्=सूर्यमण्डलस्थ पुरुष की तरह
ह एव=अवश्य
श्रिया=संपत्ति करके
यशसा=यश करके
तपति=प्रकाशवान् होता है

भावार्थ।

प्राण में दो अक्षर प्रा, ण, अपान में तीन अक्षर अ, पा, न, व्यान में वि, आन, ये सब मिलाकर आठ अक्षर होते हैं, और गायत्री के तीसरे पाद में भी आठ अक्षर (धियो यो नः प्रचोदयात् ,) होते हैं इस लिये प्राण, अपान, व्यान की समता गायत्री के तीसरे पाद से है, अब गायत्री के तीसरे पाद की उपासना का फल आगे कहते हैं, जो कोई उपासक गायत्री के तीसरे पाद को प्राण-अपान-व्यान समझ कर उपासना करता है, वह सब प्राणियों को जीतता है, यानी अपने वश में रखता है, हे शिष्य ! इस गायत्री का चौथा पाद दर्शत नामवाला है, यही परोरजा है, दर्शत का अर्थ है, जो ऋषियों करके सूक्ष्म विचार द्वारा देखा गया है, और परोरजा का अर्थ सब से परे है यानी जो प्रकृति के परे होकर सबको सूर्यवत् प्रकाशता है, वही परोरजा है, अथवा दर्शत तुरीय है, जो पुरुष सूर्यमण्डल विषे योगियों को दिखाई देता है वही परोरजा है, यही सूर्यमण्डलस्थ पुरुष सब उत्तरोत्तर लोकों को प्रकाशता है, जो पुरुष इस गायत्री के चतुर्थपाद को इस प्रकार जानता है वह सूर्यमण्डलस्थ पुरुष की तरह अवश्य सब संपत्तियों करके और यश करके प्रकाशमान होता है ॥ ३ ॥

मन्त्रः ४

सैषा गायत्र्येतस्मिꣳस्तुरीये दर्शते पदे परोरजसि प्रतिष्ठिता तद्वैतत्सत्ये प्रतिष्ठितं चक्षुर्वै सत्यं चक्षुर्हि वै सत्यं तस्माद्यदिदानीं द्वौ विवदमानावेयातामहमदर्शमहमश्रौषमिति य एवं ब्रूयादहमदर्शमिति तस्मा एव श्रद्दध्याम तद्वै तत्सत्यं बले प्रतिष्ठितं प्राणो वै बलं तत्प्राणे प्रतिष्ठितं तस्मादाहुर्बलꣳ सत्यादोगीय इत्येवं वैषा गायत्र्यध्यात्मं प्रतिष्ठिता सा हैषा गयाꣳस्तत्रे प्राणा वै गयास्तत्प्राणाꣳस्तत्रे तद्यद्गयाꣳस्तत्रे तस्माद्गायत्री नाम स यामेवामूꣳ सावित्रीमन्वाहैवैष सा स यस्मा अन्वाह तस्य प्राणाꣳस्त्रायते ॥

पदच्छेदः ।

सा, एषा, गायत्री, एतस्मिन्, तुरीये, दर्शते, पदे, परोरजसि, प्रतिष्ठिता, तत्, वा, एतत्, सत्ये, प्रतिष्ठितम्, चक्षुः, वै, सत्यम्, चक्षुः, हि, वै, सत्यम्, तस्मात्, यत्, इदानीम्, द्वौ, विवदमानौ, एयाताम्, अहम्, अदर्शम्, अहम्, अश्रौषम्, इति, यः, एवम्, ब्रूयात्, अहम्, अदर्शम्, इति, तस्मै, एव, श्रद्दध्याम, तत्, वा, एतत्, सत्यम्, बले, प्रतिष्ठितम्, प्राणः, वै, बलम्, तत्, प्राणे, प्रतिष्ठितम्, तस्मात्, आहुः, बलम्, सत्यात्, ओगीयः, इति, एवम्, उ, एषा, गायत्री, अध्यात्मम्, प्रतिष्ठिता, सा, ह, एषा, गयान्, तत्रे, प्राणाः, वै, गयाः, तत्, प्राणान्, तत्रे, तत्, यत्, गयान्, तत्रे, तस्मात्, गायत्री, नाम, सः, याम्, एव, अमुम्, सावित्रीम्, अन्वाह, एव, एषः, सा, सः, यस्मै, अन्वाह, तस्य, प्राणान्, त्रायते ॥

अन्वयः	पदार्थाः
सा	वही
एषा	यह
गायत्री	गायत्री
एतस्मिन्	इस
तुरीये	तुरीय
परोरजसि	प्रकृति से परे
दर्शते पदे	दर्शत पाद में
प्रतिष्ठिता	स्थित है
तत् वै	सोई दर्शत पाद
सत्ये	सत्य में
प्रतिष्ठितम्	स्थित है
तत्	सोई
सत्यम्	सत्य
वै	निश्चय करके
चक्षुः	चक्षु है
हि	क्योंकि
चक्षुः	चक्षु
सत्यम्	सत्य
वै	प्रसिद्ध है
तस्मात्	इस लिये
यत्	जो कुछ
इदानीम्	इस काल में
अहम्	मैं
अदर्शम्	देख चुका हूं
अहम्	मैं
अश्रौषम्	सुन चुका हूं
इति	ऐसा
विवदमानौ	वाद करनेवाले
द्वौ	दो पुरुष
एयाताम्	आवें तो
+ तयोः	उनमें से
यः	जो

एवम्=ऐसा
ब्रूयात्=कहे कि
अहम्=मैं
अदर्शम् इति=देख चुका हूं
तस्मै एव=उसी को
श्रद्दध्याम=हम सत्य मानेंगे
तत्=तिसी कारण
तत्=वह सत्य
+ चक्षुषि=चक्षु में
+ प्रतिष्ठितम्=स्थित है
+ तत्=सोई
सत्यम्=सत्य
बले=बल बिषे
प्रतिष्ठितम्=स्थित है
हि=क्योंकि
प्राणः=प्राण
वै=ही
बलम्=बल है
तस्मात्=इस लिये
प्राणे=प्राण में
तत्=वह सत्य
प्रतिष्ठितम्=स्थित है
तस्मात्=इसी लिये
बलम्=प्राण को
सत्यात्=सत्य से
ओगीयः=अधिक बलवाला
आहुः=कहते हैं
एवम्=इस प्रकार प्राण बलवान् होने के कारण
एषा उ=यह
गायत्री=गायत्री
अध्यात्मम्=प्राण में
प्रतिष्ठिता=स्थित है
सा ह=वही
एषा=यह गायत्री
गयान्=गान करने वालों की यानी जप करने वालों की
तत्रे=रक्षा करती है
प्राणाः=प्राण यानी वागादि इन्द्रियां
वै=अवश्य
गयाः=गान करने वाले हैं
तत्=इसी लिये
तान्=उन वागादिकों की
त्रायते=गायत्री रक्षा करती है
तत्=और
यत्=जिस कारण
गयान्=जपने वालों की
तत्रे=रक्षा करती है
तस्मात्=तिसी कारण
गायत्री=गायत्री
नाम=नाम करके प्रसिद्ध है
याम्=जिस
असुम्=इस
सावित्रीम्=गायत्री को
अन्वाह=शिष्य से आचार्य कहता है
सा=वही
एव=निश्चय करके
एषा=यह गायत्री है
यस्मै=जिस शिष्य के लिये
सः=वह आचार्य
अन्वाह=कहता है

तस्य=उसके	+ एषा=यह
प्राणान्=प्राणों की	त्रायते=रक्षा करती है

भावार्थ ।

हे शिष्य ! गायत्री का चौथा पाद दर्शत है, यही परोरजा है, क्योंकि यह प्रकृति के परे है, और प्रकृति और उसके कार्य का प्रकाशक है, इसके आश्रय गायत्री है, यही दर्शतपाद सत्य विषे स्थित है, सोई सत्य निश्चय करके चक्षु है, क्योंकि और इन्द्रियों की अपेक्षा चक्षु सत्य प्रसिद्ध है, कारण यह है कि यह बली है, जैसे दो पुरुष एकही काल विषे आकर उपस्थित हों और उनमें से एक कहे मैंने देखा है और दूसरा कहे कि मैंने सुना है तो द्रष्टा का वाक्य श्रोता के वाक्य की अपेक्षा सत्य माना जायगा यानी देखने वाले का वाक्य सत्य समझा जायगा, सुनने वाले का वाक्य सच्चा नहीं समझा जायगा, इस कारण सत्य चक्षु विषे स्थित है, सोई सत्य बल विषे स्थित है, क्योंकि आंख से देखी हुई वस्तु का प्रमाण बली होता है, क्योंकि प्राणही बल है और उसी करके चक्षु विषयों को देखती है, इस लिये प्राणमें ही सत्य स्थित है, और यही कारण है कि प्राण को सत्य से अधिक बलवान् माना है, और प्राण बलवान् होने के कारण यह गायत्री भी बलवान् है, क्योंकि प्राण के आश्रय है, और इस लिये यह गायत्री गायत्री जपने वालों की रक्षा करती है, और गायत्री के गान करने वाले वागादि इन्द्रियां हैं, इस लिये उनकी भी रक्षा गायत्री करती है, और जिस कारण यह गायत्री जपने वालों की रक्षा करती है, तिसी कारण इसका नाम गायत्री पड़ा है ॥ ४ ॥

मन्त्रः ५

ताᳬं हैतामेके सावित्रीमनुष्टुभमन्वाहुर्वागनुष्टुबेतद्वाचमनुब्रूम इति न तथा कुर्याद्गायत्रीमेवᳬं सावित्रीमनुब्रूयाद्यदि ह वा अप्येवंविद्बह्विव प्रतिगृह्णाति न हैव तद्गायत्र्या एकं चन पदं प्रति ॥

पदच्छेदः ।

ताम्, ह, एताम्, एके, सावित्रीम्, अनुष्टुभम्, अन्वाहुः, वाक्, अनुष्टुब्, एतत्, वाचम्, अनुब्रूमः, इति, न, तथा, कुर्यात्, गायत्रीम्, एवं, सावित्रीम्, अनुब्रूयात्, यदि, ह, वा, अपि, एवंवित्, बहु, इव, प्रतिगृह्णाति, न, ह, एव, तत्, गायत्र्याः, एकम्, चन, पदम्, प्रति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
एके	कोई आचार्य
ताम्	उसी
एताम्	इस
अनुष्टुभम् सावित्रीम्	अनुष्टुप्छन्द वाली गायत्री "तत्सवितुर्वरेणीमहे" को
अन्वाहुः	उपनयन के समय उपदेश करते हैं
एतत्	ऐसा
+ वदन्तः	कहते हुये कि
इयम्	यह अनुष्टुप्छन्दवाली गायत्री
वाक्	सरस्वतीरूप है
तथा	उस प्रकार
न	न
कुर्यात्	उपदेश करे
किंतु	किंतु
एतत्	इस
सावित्रीम्	सावित्रीरूप
गायत्रीम्	गायत्री (तत्सवितुः) को
अनुब्रूयात्	उपनयन के समय शिष्य से कहे
इति	ऐसा
अनुब्रूमः	हम लोग कहते हैं
यदि	अगर
एवंविद्	ऐसा ज्ञाता पुरुष
बहु इव	बहुतसा
प्रतिगृह्णाति	भोग्य वस्तु को ग्रहण करता है
+ तु	तो
तत् ह वा अपि	उस भोग्य वस्तु का लेना निःसंदेह
गायत्र्याः	गायत्री के
एकम्	एक
चन	भी
पदम्	पाद के
ह एव	निश्चय करके
+ समम्	बराबर
न	नहीं है

भावार्थ ।

हे शिष्य ! कोई कोई आचार्य ऐसा कहते हैं कि अनुष्टुप्छन्द वाली गायत्री (तत् सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् । श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि) को उपनयन के समय पढ़ना चाहिये क्योंकि ये अनुष्टुप्

छन्दवाली गायत्री सरस्वतीरूप है, ऐसा उनका कहना ठीक नहीं है, और न उनको ऐसा उपदेश करना चाहिये, सबको इसी सावित्री-रूप गायत्री छन्द "ॐ तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्" का उपनयन के समय उपदेश करना चाहिये अब आगे इसी के फल को ऐसा कहते हैं अगर इस गायत्री का ज्ञाता पुरुष अगणित भोग वस्तुओं को परिग्रह में ग्रहण करता है तो वह कुल भोग वस्तु उसको किसी प्रकार की हानि नहीं देसकते हैं, क्योंकि जो गायत्री के एक पद के उपासना करने से फल होता है उस फल के बराबर प्राप्त हुये कुल भोगवस्तु होते हैं ॥ ५ ॥

मन्त्रः ६

स य इमाँल्लोकान्पूर्णान्प्रतिगृह्णीयात्सोऽस्या एतत्प्रथमं पदमाप्नुयादथ यावतीयं त्रयी विद्या यस्तावत्प्रतिगृह्णीयात्सोऽस्या एतद्द्वितीयं पदमाप्नुयादथ यावदिदं प्राणी यस्तावत्प्रतिगृह्णीयात्सोऽस्या एतत्तृतीयं पदमाप्नुयादथास्या एतदेव तुरीयं पदं दर्शतं परोरजा य एष तपति नैव केन चनाप्यं कुत उ एतावत्प्रतिगृह्णीयात् ॥

पदच्छेदः ।

सः, यः, इमान्, लोकान्, पूर्णान्, प्रतिगृह्णीयात्, सः, अस्याः, एतत्, प्रथमम्, पदम्, आप्नुयात्, अथ, यावती, इयम्, त्रयी, विद्या, यः, तावत्, प्रतिगृह्णीयात्, सः, अस्याः, एतत्, द्वितीयम्, पदम्, आप्नुयात्, अथ, यावत्, इदम्, प्राणी, यः, तावत्, प्रतिगृह्णीयात्, सः, अस्याः, एतत्, तृतीयम्, पदम्, आप्नुयात्, अथ, अस्याः, एतत्, एव, तुरीयम्, पदम्, दर्शतम्, परोरजाः, यः, एषः, तपति, न, एव, केन, चन, आप्यम्, कुतः, उ, एतावत्, प्रतिगृह्णीयात् ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
सः=वह विद्वान्		इमान्=इन	
यः=जो		पूर्णान्=धन-धान्यसम्पन्न	

त्रीन्=तीनों
लोकान्=लोकों को
प्रतिगृह्णीयात्=ग्रहण करे तो उसका
सः=वह लेना
अस्याः=इस गायत्री के
एतत्=इस
प्रथमम्=पहिले
पदम् + समम्=पादके फलके बराबर
आप्नुयात्=पावे
अथ=और
यावती=जितनी
त्रयी=तीनों
विद्या=विद्या हैं
तत्=उनके फल को
तावत्=पूर्वरीति से
यः=जो विद्वान्
प्रतिगृह्णीयात्=पावे
सः=वह फल
अस्याः=इस गायत्री के
एतत्=इस
द्वितीयम्=दूसरे
पदम् + समम्=पाद के फलके बराबर
आप्नुयात्=पावे
अथ=और
यावत्=जितना
इदम्=यह
प्राणी=प्राणीमात्र है
तावत्=इन सबको
यः=जो विद्वान्
प्रतिगृह्णीयात्=ग्रहण करे यानी अपने वश में करे
सः=उसका वह वश करना
अस्याः=गायत्री के
एतत्=इस
तृतीयम्=तीसरे
पदम्=पाद के फल को
आप्नुयात्=प्राप्त होवे
अथ=और
यः=जो
परोरजाः=लोकोत्तरवर्ती
एषः=सूर्यस्थ पुरुष
तपति=प्रकाशता है
एतत् एव=वही
तुरीयम्=चौथा
दर्शतम्=दर्शत नामवाला
पदम्=गायत्री का पाद है
+ इदम्=यह पाद
केन चन=किसी प्रतिग्रह करके
न एव=नहीं
आप्यम्=प्राप्य है, यानी उसके बराबर कोई वस्तु नहीं है
+ पुनः=तब
उ=इतना बड़ा
एतावत्=फल
कुतः=कहां से
प्रतिगृह्णीयात्=कोई पावे

भावार्थ।

हे शिष्य ! वह विद्वान् जो धनधान्य से सम्पन्न हुये इन तीनों

लोकों को प्रतिग्रह में ग्रहण करता है, तो उसको उन सबका लेना उसके योग्यता से अधिक नहीं है, यानी वह किसी प्रकार से भी ऐसा प्रतिग्रह लेने पर दूषित नहीं होता है, क्योंकि उसका लिया हुआ प्रतिग्रह इस गायत्री यानी (तत् सवितुर्वरेण्यम्) के प्रथम पद के फल के बराबर होता है, और जो कुछ फल तीनों वेदों यानी ऋग्-यजुः-साम के जानने और उपासना करने से फल होता है, सोई प्रतिग्रह इस मन्त्र के द्वितीयपाद (भर्गो देवस्य धीमहि) की उपासना के फल के बराबर होता है, और जितने प्राणीसमूह हैं यानी जितने प्राणी हैं, उनको अपने वशमें करने का जो प्रतिग्रह में मिले तो वह सब इस गायत्री के तृतीय पाद (धियो यो नः प्रचोदयात्) की उपासना के फल के बराबर है, और जो इस गायत्री का चौथा पाद दर्शत परोरजा है, और जो सर्वत्र प्रकाशित होरहा है इस चतुर्थपाद की उपासना के फल के बराबर कौन दान संसार में होसकता है ॥ ६ ॥

मन्त्रः ७

तस्या उपस्थानं गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यपदसि न हि पद्यसे । नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरजसेऽसावदो मा प्रापदिति यं द्विष्यादसावस्मै कामो मा समृद्धीति वा न हैवास्मै स कामः समृध्यते यस्मा एवमुपतिष्ठतेऽहमदः प्रापमिति वा ॥

पदच्छेदः ।

तस्याः, उपस्थानम्, गायत्रि, असि, एकपदी, द्विपदी, त्रिपदी, चतुष्पदी, अपत्, असि, न, हि, पद्यसे, नमः, ते, तुरीयाय, दर्शताय, पदाय, परोरजसे, असौ, अदः, मा, प्रापत्, इति, यम्, द्विष्यात्, असौ, अस्मै, कामः, मा, समृद्धी, इति, वा, न, ह, एव, अस्मै, सः, कामः, समृध्यते, यस्मै, एवम्, उपतिष्ठते, अहम्, अदः, प्रापम्, इति, वा ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
तस्याः	=इस गायत्री का	उपस्थानम्	=उपस्थान यानी प्रशंसा

इति=ऐसी
+ अथ=अब
+ कथ्यते=कही जाती है
गायत्रि=हे गायत्रि !
एकपदी=त्रैलोक्यरूप एक चरणवाली
असि=तू है यानी, तीनों लोक तेरा प्रथमपाद है
द्विपदी=त्रैविद्यारूप द्वितीय चरणवाली
+ असि=तू है यानी तीनों वेद तेरा द्वितीय चरण है
त्रिपदी=प्राणादिरूप तीन चरणवाली
+ असि=तू है यानी प्राणीमात्र तेरा तृतीयचरण है
चतुष्पदी=दर्शतरूप चौथी चरणवाली
+ असि= { तू है यानी सबका प्रकाशक तेरा चतुर्थ चरण है }
+यद्यपि + एवम् + असि } =यद्यपि तू ऐसी है
+ परन्तु=परन्तु
अपद्=वास्तव में तू पदरहित
+ असि=है
+ हि=क्योंकि
त्वम् न=तू नहीं
पद्यसे= { किसी करके जानी जाती है यानी तेरा ज्ञान किसी को नहीं होता है }
ते=तेरे
तुरीयाय=चौथे
परोरजसे=प्रकाशमान
दर्शताय=दर्शत नामवाले
पदाय=पाद के लिये
नमः=नमस्कार
अस्तु=होवे
+ यः=जो
असौ=यह मेरा
पाप्मा=पापिष्ठ शत्रु है
+ अस्य=उसका
+ अदः=अभिलाषा
समृद्धि इति न=पूर्णता को न प्राप्त होवे
वा=इस कारण
अस्मै=उस पापी की
सः=वह
कामः=कामना
ह एव न=किसी तरह नहीं
समृध्यते=पूरी होती है
यस्मै=जिसके लिये
एवम्=इस प्रकार
उपतिष्ठते=ज्ञानी शाप देता है
वा=और
+ शत्रोः=शत्रु के
अदः=उत्तम अभीष्ट को
अहम्=मैं
प्रापम्=प्राप्त होऊं
इति=ऐसा
+ यः=जो उपासक
उपतिष्ठते=कहता है
+ तस्य=उसके
कामाः=सब मनोरथ
समृध्यन्ते=सिद्ध होवे हैं

भावार्थ ।

हे शिष्य ! अब गायत्री के उपस्थान यानी प्रशंसा को कहते हैं हे गायत्रि ! त्रैलोक्यरूप तेरा प्रथम चरण है, त्रैविद्यारूप तेरा द्वितीय चरण है, प्राणादिरूप तेरा तृतीय चरण है, और दर्शतरूप सबका प्रकाश करने वाला तेरा चतुर्थ चरण है, यद्यपि तू इन सब गुणों करके परिपूर्ण है, तथापि वास्तव में तू पदरहित यानी निर्गुण है, क्योंकि तू किसी करके नहीं जानी जाती है, तेरे चौथे दर्शत प्रकाशमान पाद के लिये मेरा नमस्कार है, जो कोई मेरा पापिष्ठ शत्रु है उसकी अभिलाषा पूर्ण न हो किसी तरह से उसकी कामना पूर्ण न हो इस गायत्री के उपासक के शाप देने से शत्रुकी कामना सिद्ध नहीं होती है, और जब उपासक कहता है कि शत्रु के उत्तम अभीष्ट फल उसको न मिलकर मुझको मिलें तब उस उपासक के वे सब मनोरथ इच्छानुसार सिद्ध होते हैं ॥ ७ ॥

मन्त्रः ८

एतद्ध वै तज्जनको वैदेहो बुडिलमाश्वतराश्विमुवाच यन्नु हो तद्गायत्रीविद्ब्रूथा अथ कथꣳ हस्तिभूतो वहसीति मुखꣳह्यस्याः सम्राण्न विदांचकारेति होवाच तस्या अग्निरेव मुखं यदि हवा अपि बह्विवाग्नावभ्यादधति सर्वमेव तत्संदहत्येवꣳ हैवैवं विद्यद्यपि बह्विव पापं कुरुते सर्वमेव तत्संप्साय शुद्धः पूतोऽजरोऽमृतः संभवति ॥

इति चतुर्दशं ब्राह्मणम् ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ।

एतत्, ह, वै, तत्, जनकः, वैदेहः, बुडिलम्, आश्वतराश्विम्, उवाच, यत्, नु, हो, तत्, गायत्रीविद्, अब्रूथाः, अथ, कथम्, हस्तिभूतः, वहसि, इति, मुखम्, हि, अस्याः, सम्राट्, न, विदांचकार, इति, ह, उवाच, तस्याः, अग्निः, एव, मुखम्, यदि, ह, वा, अपि, बहु, इव, अग्नौ, अभ्यादधति, सर्वम्, एव, तत्, संदहति, एवम्, ह, एव, एवं, विद्, यद्यपि, बहु, इव, पापम्, कुरुते, सर्वम्, एव, तत्, संप्साय, शुद्धः, पूतः, अजरः, अमृतः, संभवति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थ
वैदेहः	विदेह देश का राजा	+ जनकः	राजा जनक ने
+ जनकः	जनक	आह	कहा
आश्वत-राश्विम	आश्वतराश्व का पुत्र	बुडिल	हे बुडिल !
बुडिलम्	बुडिल से	+ शृणु	सुन
एतत्	इस	तस्याः	गायत्री का
तत्	गायत्री विषय में	मुखम्	मुख
ह वै	निश्चय करके	अग्निः	अग्नि
नु हो	आश्चर्य के साथ प्रश्न	एव	निश्चय करके है
उवाच	कहता भया	इव	जैसे
यत्	जो	यदि ह	जब
त्वम्	तू	लोकाः	लोग
गायत्रीविद्	गायत्री जाननेवाला है	अग्नौ	अग्नि में
इति	ऐसा	बहु	बहुत इन्धन
अब्रूथा	अपने को कहता है	अभ्यादधति	डालते हैं
अथ	तो	वा अपि	तब
कथम्	कैसे	तत्	उस
हस्तिभूतः	हस्ती होता हुआ	सर्वम्	सबको
वहसि	प्रतिग्रह के दोष रूपभार को लिये हुये फिरता है	संदहति एव	अग्नि अवश्य जला देता है
इति	ऐसा सुन कर	एवम्विद्	तैसे गायत्री का ज्ञाता पुरुष
सः	वह बुडिल	यद्यपि	यद्यपि
ह	स्पष्ट	बहु	बहुत
उवाच	कहता भया कि	पापम् इव	पाप को भी
सम्राट्	हे राजा जनक !	कुरुते	करता है
अस्याः	इस गायत्री के	+ तथापि	तो भी
मुखम्	मुख को	तत्	उस
हि	निश्चय करके	सर्वम्	सबको
न विदांचकार	मैं नहीं जानता हूं	एव	अवश्य
इति	इस पर	संप्साय	नाश करके
		शुद्धः	शुद्ध

पूतः=पापरहित	अमृतः=मुक्त
अजरः=जरारहित	संभवति=होजाता है

भावार्थ ।

हे शिष्य ! किसी समय विदेह देश का राजा जनक आश्वतराश्वि के पुत्र बुडिल से बड़े आश्चर्य के साथ इस गायत्री के विषय में प्रश्न किया ऐसा कहता हुआ कि हे बुडिल ! तू कहता है कि मैं गायत्री का ज्ञाता हूं पर मैं तुझको देखता हूं कि तू हस्ती के ऐसा बल रखता हुआ भी प्रतिग्रह के भार को लिये हुये फिरा करता है इसका क्या कारण है ? इस प्रश्न को सुनकर बुडिल ने कहा हे राजा जनक ! मैं इस गायत्री के मुखको नहीं जानता हूं और यही कारण है कि मैं हस्ती के सदृश प्रतिग्रहरूप भार को लिये हुये फिरता रहता हूं इस पर राजा जनक ने कहा हे बुडिल ! सुन गायत्री का मुख अग्नि है, जैसे लकड़ी अग्नि में डालने से भस्म होजाती है वैसेही गायत्री के ज्ञाता पुरुष के सब पाप नष्ट होजाते हैं और वह शुद्ध पापरहित जरारहित मुक्त होजाता है ॥ ८ ॥

इति चतुर्दशं ब्राह्मणम् ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखं तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि। वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम् ॐ क्रतो स्मर कृतꣳ स्मर क्रतो स्मर कृतꣳ स्मर अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥

इति पञ्चदशं ब्राह्मणम् ॥ १५ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

हिरण्मयेन, पात्रेण, सत्यस्य, अपिहितम्, मुखम्, तत्, त्वम्, पूषन्, अपावृणु, सत्यधर्माय, दृष्टये, पूषन्, एकर्षे, यम्, सूर्य, प्राजापत्य, व्यूह, रश्मीन्, समूह, तेजः, यत्, ते, रूपम्, कल्याणतमम्, तत्, ते, पश्यामि, यः, असौ, असौ, पुरुषः, सः, अहम्, अस्मि, वायुः, अनिलम्, अमृतम्, अथ, इदम्, भस्मान्तम्, शरीरम्, ॐ, क्रतो, स्मर, कृतम्, स्मर, क्रतो, स्मर, कृतम्, स्मर, अग्ने, नय, सुपथा, राये, अस्मान्, विश्वानि, देव, वयुनानि, विद्वान्, युयोधि, अस्मत्, जुहुराणम्, एनः, भूयिष्ठाम्, ते, नमउक्तिम्, विधेम ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ आदित्य-प्रार्थना	सूर्य की प्रार्थना है
हिरण्मयेन	सोने की तरह प्रकाशमान
पात्रेण	पात्र करके
सत्यस्य	तुझ सत्य का
मुखम्	द्वार
अपिहितम्	ढका है
पूषन्	हे सूर्य !
तत्	उस ढक्कन को
त्वम्	तू
सत्यधर्माय दर्शनाय	मुझ सत्यधर्मावलम्बी के दर्शन के लिये
अपावृणु	हटा दे
पूषन्	हे पोषणकर्त्ता सूर्य !
एकर्षे	हे अकेला चलनेवाला !
यम	हे जगत्नियन्ता !
सूर्य	हे आकाशचारी !
प्राजापत्य	हे प्रजापति के पुत्र !
रश्मीन्	अपने किरणों को

अन्वयः	पदार्थाः
व्यूह	हटाले
तेजः	अपने तेज को
समूह	कम करले ताकि
यत्	जो
ते	तेरा
कल्याणतमम्	अत्यन्त कल्याण
रूपम्	रूप है
तत्	उस
ते	तेरे
+ रूपम्	रूप को
पश्यामि	मैं देखूं
असौ	वह तेरे विषे
यः	जो
पुरुषः	पुरुष है
असौ	सोई
सः	वह पुरुष
अहम्	मैं
अस्मि	हूं
अमृतम्	मुझ सत्यधर्मावलम्बी का

वायुः=प्राणवायु
अनिलम्=बाह्यवायु को
प्रतिगच्छतु=मिले यानी प्राप्त होवे
अथ=और
इदम्=यह
भस्मान्तम्=दग्ध
शरीरम्=मेरा देह
+ पृथ्वीम्=पृथ्वी को
+ गच्छतु=प्राप्त होवे
ॐ=हे ॐकार !
क्रतो=हे क्रतो, हे मन !
कृतम्=अपने किये हुये कर्म को
स्मर=याद कर
स्मर=याद कर
क्रतो=हे क्रतो !
कृतम्=अपने किये हुये कर्मको
स्मर=याद कर
स्मर=याद कर
अग्ने=हे अग्निदेव !
अस्मान्=हम लोगों को
राये=कर्मफल भोगार्थ
सुपथा=अच्छे रास्ते से
नय=लेचल
+ हि=क्योंकि
देव=हे अग्निदेव !
विश्वानि वयुनानि } =सब कर्म को
विद्वान्=तू जानने वाला है यानी साक्षी है
अस्मत्=हमसे
जुहुराणम्=कुटिल
एनः=पाप को
युयोधि अपनय } =अलग करदे
ते=तेरे
भूयिष्ठाम्=बहुतसा
नमउक्तिम्=नमस्कार
विधेम=हम करते हैं

भावार्थ ।

कोई सूर्य और अग्नि का उपासक सूर्य और अग्नि की प्रार्थना नीचे लिखे प्रकार करता है, हे सूर्य, भगवन् ! सोने की तरह प्रकाशमान पात्र करके तुम्ह सत्य का द्वार ढका हुआ है, हे भगवन् ! उस ढकन को तू मुझ सत्यधर्मावलम्बी के लिये हटादे, हे जगत् का पालन पोषण कर्ता सूर्य, हे अकेला चलनेवाला, हे जगत्नियन्ता, हे प्रजापति के पुत्र ! तू अपने किरणों को हटाले, अथवा अपने तेज को कम करदे ताकि मैं तेरे अत्यन्त कल्याणरूप को देखूं, हे भगवन् ! जो पुरुष तेरे विषे दिखाई देता है सोई मैं हूं, जब मैं तेरे विषे स्थित पुरुष को प्राप्त हो जाऊं तब मुझ सत्यधर्मावलम्बी का प्राणवायु

समष्टि बाह्य वायु को प्राप्त होवे, और यह मेरा देह दग्ध होकर पृथिवी को प्राप्त होवे, हे ॐकार, हे क्रतो, हे मन ! अपने किये हुये कर्मों को यादकर, हे मन ! अपने किये हुये कर्मों को यादकर, हे अग्निदेवता ! हम लोगों को कर्मफल भोगार्थ अच्छे रास्ते से ले चल, हे अग्नि देवता ! तू हमारे सब कर्मों को जानता है, यानी उनका साक्षी है, हमारे कुटिल पापों को दूर करदे, हम तेरे लिये बहुतसा नमस्कार करते हैं ॥ १ ॥

इति पञ्चदशं ब्राह्मणम् ॥ १५ ॥

इति श्रीबृहदारण्यकोपनिषदि भाषानुवादे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः ।

अथ प्रथमं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

ॐ यो ह वै ज्येष्ठं च श्रेष्ठं च वेद ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च स्वानां भवति प्राणो वै ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च स्वानां भवत्यपि च येषां बुभूषति य एवं वेद ॥

पदच्छेदः ।

ॐ, यः, ह, वै, ज्येष्ठम्, च, श्रेष्ठम्, च, वेद, ज्येष्ठः, च, श्रेष्ठः, च, स्वानाम्, भवति, प्राणः, वै, ज्येष्ठः, च, श्रेष्ठः, च, ज्येष्ठः, च, श्रेष्ठः, च, स्वानाम्, भवति, अपि, च, येषां, बुभूषति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थाः
यः=जो कोई	
ज्येष्ठम्=ज्येष्ठ को	
च=और	
श्रेष्ठम् च=श्रेष्ठ को	
वेद=जानता है	
+ सः=वह	

अन्वयः	पदार्थाः
ह=ही	
वै च=निश्चय करके	
ज्येष्ठः=ज्येष्ठ	
च=और	
श्रेष्ठः च=श्रेष्ठ	
स्वानाम्=अपने भाई बन्धुओं में	

भवति=होता है
प्राणः=शरीरस्थ प्राण
वै=अवश्य
+ इन्द्रियाणाम्=इन्द्रियों में
ज्येष्ठः=ज्येष्ठ
च=और
श्रेष्ठः च=श्रेष्ठ है
+ अतः=इसी कारण
+ उपासकः=प्राण का उपासक
स्वानाम्=अपनी ज्ञातिके बीच में
ज्येष्ठः=ज्येष्ठ
च=और
श्रेष्ठः च=श्रेष्ठ
भवति=होता है
च=और
अपि=इसके सिवाय
यः=जो पुरुष
एवम्=कहे हुये प्रकार
वेद=जानता है
+ सः=वह
येषाम्=जिस किसी लोगों के मध्य में
बुभूषति=ज्येष्ठ श्रेष्ठ होने की इच्छा करता है
सः=वह
+ तेषाम्=उनमें
भवति=ज्येष्ठ श्रेष्ठ होजाता है

भावार्थ ।

जो कोई पुरुष ज्येष्ठ और श्रेष्ठ को जानता है, यानी उपासना करता है, वह भी निश्चय करके अपने भाई बन्धुवों में ज्येष्ठ और श्रेष्ठ होता है, शरीरस्थ प्राण अवश्यही इन्द्रियों विषे ज्येष्ठ और श्रेष्ठ है, इस कारण प्राण का उपासक अपनी जाति में ज्येष्ठ और श्रेष्ठ होता है, और इनके सिवाय जो पुरुष कहे हुये प्रकार प्राण की उपासना करता है वह जिस किसी लोगों में ज्येष्ठ और श्रेष्ठ होने की इच्छा करता है, वह उनके मध्य में भी ज्येष्ठ श्रेष्ठ होता है ॥ १ ॥

मन्त्रः २

यो ह वै वसिष्ठां वेद वसिष्ठः स्वानां भवति वाग् वै वसिष्ठा वसिष्ठः स्वानां भवत्यपि च येषां बुभूषति य एवं वेद ॥

पदच्छेदः ।

यः, ह, वै, वसिष्ठाम्, वेद, वसिष्ठः, स्वानाम्, भवति, वाक्, वै, वसिष्ठा, वसिष्ठः, स्वानाम्, भवति, अपि, च, येषाम्, बुभूषति, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः पदार्थाः

यः=जो पुरुष
वसिष्ठाम्=रहनेवालों में से अतिश्रेष्ठ को
वेद=जानता है
सः=वह
स्वानाम्=अपने सम्बन्धियों के बीच में
वसिष्ठः=अतिश्रेष्ठ
भवति=होता है
वाक्=वाणी
वै=निस्सन्देह
वसिष्ठा=शरीर के अन्दर रहनेवाली इन्द्रियों में से अतिश्रेष्ठ है
\+ अतः=इस लिये
यः=जो पुरुष
एवम्=इस प्रकार

अन्वयः पदार्थाः

वेद=जानता है
सः=वह पुरुष
स्वानाम्=अपने सम्बन्धियों में
वसिष्ठः=श्रेष्ठ
भवति=होता है
च=और
अपि=सिवाय इसके
येषाम्=और जिन लोगों के मध्य में
\+ सः=वह पुरुष
बुभूषति=श्रेष्ठ होने की इच्छा करता है
\+ तेषाम्=उन लोगोंके मध्यमें भी
\+ सः=वह पुरुष
\+ वसिष्ठः=श्रेष्ठ
भवति=होता है

भावार्थ ।

जो पुरुष रहनेवालों में से श्रेष्ठ को जानता है वह अपने सम्बन्धियों के बिचे ज्येष्ठ श्रेष्ठ होता है, वाणी शरीर के अन्दर रहनेवाली इन्द्रियों में से अति श्रेष्ठ है, इस लिये जो पुरुष वाणी को इस प्रकार जानता है वह भी अपने सम्बन्धियों में अतिश्रेष्ठ होता है, इतनाही नहीं किन्तु इनके सिवाय जिन लोगों के मध्य में वह पुरुष श्रेष्ठ होने की इच्छा करता है उन लोगों के मध्य में भी अतिश्रेष्ठ होता है ॥ २ ॥

मन्त्रः ३

यो ह वै प्रतिष्ठां वेद प्रतितिष्ठति समे प्रतितिष्ठति दुर्गे चक्षुर्वै प्रतिष्ठा चक्षुषा हि समे च दुर्गे च प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति समे प्रतितिष्ठति दुर्गे य एवं वेद ॥

पदच्छेदः ।

यः, ह, वै, प्रतिष्ठाम्, वेद, प्रतितिष्ठति, समे, प्रतितिष्ठति, दुर्गे, चक्षुः, वै, प्रतिष्ठा, चक्षुषा, हि, समे, च, दुर्गे, च, प्रतितिष्ठति, प्रतीतिष्ठति, समे, प्रतितिष्ठति, दुर्गे, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थाः
यः	जो पुरुष
ह-वै	निश्चय के साथ
प्रतिष्ठाम्	प्रतिष्ठा को
वेद	जानता है
सः	वह
समे	समभूमि में
वै	अच्छी तरह
प्रतितिष्ठति	प्रतिष्ठित होता है
च	और
दुर्गे	नीच ऊंच भूमि में भी
प्रतितिष्ठति	प्रतिष्ठित होता है
+ प्रश्नः	प्रश्न
+ प्रतिष्ठा	प्रतिष्ठा
+ का	क्या वस्तु है
+ उत्तरम्	उत्तर
चक्षुः	नेत्रही
प्रतिष्ठा	प्रतिष्ठा है
हि	क्योंकि
चक्षुषा	नेत्र करके भी
समे	समभूमि में
च	और
दुर्गे	नीच ऊंच भूमि में
च	भी
प्रतितिष्ठति	पुरुष स्थित होता है
यः	जो
एवम्	इस प्रकार
वेद	जानता है
+ सः	वह
समे	समभूमि पर
प्रतितिष्ठति	स्थित होता है
+ च	और
दुर्गे	नीच ऊंच भूमि पर
+ अपि	भी
प्रतितिष्ठति	ठहरता है

भावार्थ ।

जो पुरुष प्रतिष्ठा को जानता है वह समभूमि और विषमभूमि दोनों में प्रतिष्ठित होता है. प्रश्न—प्रतिष्ठा क्या वस्तु है ?. उत्तर—नेत्रही प्रतिष्ठा है, क्योंकि नेत्र करकेही पुरुष समभूमि और विषमभूमि में स्थित होता है, जो पुरुष इस प्रकार जानता है वह समभूमि और विषमभूमि में स्थित होता है ॥ ३ ॥

मन्त्रः ४

यो ह वै संपदं वेद सꣳहास्मै पद्यते यं कामं कामयते श्रोत्रं वै

संपच्छ्रोत्रे हीमे सर्वे वेदा अभिसंपन्नाः सꣳहास्मै पद्यते यं कामं कामयते य एवं वेद ॥

पदच्छेदः।

यः, ह, वै, संपदम्, वेद, सम्, ह, अस्मै, पद्यते, यम्, कामम्, कामयते, श्रोत्रम्, वै, संपत्, श्रोत्रे, हि, इमे, सर्वे, वेदाः, अभिसंपन्नाः, सम्, ह, अस्मै, पद्यते, यम्, कामम्, कामयते, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
यः ह	जो पुरुष	वै	ही
वै	निश्चय करके	संपत्	संपदा है
संपदम्	संपदा को	हि	क्योंकि
वेद	जानता है	श्रोत्रे	श्रोत्रमेंही
+ सः	वह	सर्वे	सब
यम्	जिस	वेदाः	वेद
कामम्	मनोरथ को	अभिसंपन्नाः	संपन्न रहते हैं
ह	निश्चय करके	यः	जो
कामयते	चाहता है	एवम्	कहे हुये प्रकार
अस्मै	उसके लिये	वेद	जानता है
संपद्यते ह	वह मनोरथ अवश्य प्राप्त होता है	अस्मै	उसके लिये
+ प्रश्नः	प्रश्न	संपद्यते	वह मनोरथ प्राप्त होता है
+ संपत्	संपदा	यम्	जिस
का	क्या वस्तु है ?	कामम्	मनोरथ को
+ उत्तरम्	उत्तर	+ सः	वह
श्रोत्रम्	श्रोत्रेन्द्रिय	कामयते	चाहता है

भावार्थ।

जो पुरुष भलीप्रकार संपदा को जानता है वह जिस मनोरथ को चाहता है वह मनोरथ उसको प्राप्त होता है. प्रश्न—संपत् क्या वस्तु है ?. उत्तर—श्रोत्र इन्द्रियही संपत् है, क्योंकि श्रोत्रमेंही सब वेद संपन्न होते हैं जो पुरुष कहे हुये प्रकार जानता है उसके लिये वह मनोरथ प्राप्त होता है जिसको वह चाहता है ॥ ४ ॥

मन्त्रः ५

यो ह वा आयतनं वेदाऽऽयतनꣳ स्वानां भवत्यायतनं जनानां मनो वा आयतनमायतनꣳ स्वानां भवत्यायतनं जनानां य एवं वेद ॥

पदच्छेदः ।

यः, ह, वा, आयतनम्, वेद, आयतनम्, स्वानाम्, भवति, आयतनम्, जनानाम्, मनः, वा, आयतनम्, आयतनम्, स्वानाम्, भवति, आयतनम्, जनानाम्, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
यः ह	जो	+ उत्तरम्	उत्तर
आयतनम्	आश्रय को	मनः	मन
वै	निश्चय करके	वै	ही
वेद	जानता है	आयतनम्	आश्रय है
+ सः	वह	एवम्	इस प्रकार
स्वानाम् जनानाम्	अपने ज्ञातियों का	यः	जो पुरुष
आयतनम्	आश्रय	वेद	जानता है
भवति	होता है	+ सः	वह
+ प्रश्नः	प्रश्न	स्वानाम्	अपने
आयतनम्	आश्रय	जनानाम्	ज्ञातियों का
+ किम्	क्या वस्तु है ?	आयतनम्	आश्रय
		भवति	होता है

भावार्थ ।

जो पुरुष आश्रय को अच्छीतरह जानता है वह अपने ज्ञातियों का आश्रयभूत होता है, प्रश्न—आश्रय क्या वस्तु है ? उत्तर—मनही आश्रय है. इस प्रकार जो पुरुष जानता है वह अपने ज्ञातियों का आश्रय होता है ॥ ५ ॥

मन्त्रः ६

यो ह वै प्रजातिं वेद प्रजायते ह प्रजया पशुभी रेतो वै प्रजातिः प्रजायते ह प्रजया पशुभिर्य एवं वेद ॥

पदच्छेदः ।

यः, ह, वै, प्रजातिम्, वेद, प्रजायते, ह, प्रजया, पशुभिः, रेतः, वै, प्रजातिः, प्रजायते, ह, प्रजया, पशुभिः, यः, एवम्, वेद ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
यः ह=जो पुरुष		+ का=क्या वस्तु है ?	
वै=निश्चय करके		उत्तरम्=उत्तर	
प्रजातिम्=प्रजाति को		रेतः=वीर्य	
ह=भलीप्रकार		प्रजातिः=प्रजाति है	
वेद=जानता है		यः=जो पुरुष	
+ सः=वह पुरुष		एवम्=इस प्रकार	
ह=अवश्य		वेद=जानता है	
प्रजया=संतान करके		+ सः=वह	
पशुभिः=पशुओं करके		प्रजया=संतान करके	
+ संपन्नः=संपत्तिवाला		पशुभिः=पशुओं करके	
प्रजायते=होता है		+ संपन्नः=संपत्तिवाला	
+ प्रश्नः=प्रश्न		प्रजायते=होता है	
+ प्रजातिः=प्रजाति			

भावार्थ ।

जो पुरुष प्रजाति को अच्छीतरह जानता है वह संतान करके, पशुओं करके संपत्तिवाला यानी धनाढ्य होता है. प्रश्न—प्रजाति क्या वस्तु है ?. उत्तर—वीर्य प्रजाति है. जो पुरुष इस प्रकार जानता है वह संतान करके, पशुओं करके संपत्तिवाला होता है ॥ ६ ॥

मन्त्रः ७

ते हेमे प्राणा अहᳬश्रेयसे विवदमाना ब्रह्मजग्मुस्तद्धोचुः कोनो वसिष्ठ इति तद्धोवाच यस्मिन्वउत्क्रान्ते इदᳬ शरीरं पापीयो मन्यते स वोवसिष्ठ इति ॥

पदच्छेदः ।

ते, ह, इमे, प्राणाः, अहं, श्रेयसे, विवदमानाः, ब्रह्म, जग्मुः, तत्, ह, ऊचुः, कः, नः, वसिष्ठः, इति, तत्, ह, उवाच, यस्मिन्, वः,

उत्क्रान्ते, इदम्, शरीरम्, पापीयः, मन्यते, सः, वः, वसिष्ठः, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
ते ह	वे वाणी श्रोत्र मन आदि इन्द्रियां	कः	कौन
+ च	और	वसिष्ठः इति	श्रेष्ठ है इस पर
इमे प्राणाः	ये पांचो प्राण	तत्	वह प्रजापति
अहंश्रेयसे	आपस में कहने लगे "हमही श्रेष्ठ हैं हमही श्रेष्ठ हैं"	ह	स्पष्ट
विवदमानाः + सन्तः	ऐसा वाद विवाद करते हुये	उवाच	कहता भया कि
ब्रह्म	ब्रह्मा के पास	वः	तुम लोगों के मध्य में
जग्मुः	गये	यस्मिन्	जिसके
ह	और	उत्क्रान्ते + सति	निकल जाने पर
+ गत्वा	जाकर	इदम्	इस
तत्	उस ब्रह्मा से यानी प्रजापति से	शरीरम्	शरीर को
ऊचुः	कहा कि	पापीयः	पापिष्ठ
नः	हम लोगों में	+ लोकः	लोक
		मन्यते	मानै
		सः	वहही
		वः	तुम लोगों म
		वसिष्ठः इति	श्रेष्ठ है

भावार्थ ।

हे सौम्य ! इन्द्रियों में कौन श्रेष्ठ है ? इस बात के जानने के लिये आगे कहते हैं कि किसी समय में वाणी, श्रोत्र, नेत्र, मन, प्राण आदि इन्द्रियों में झगड़ा पैदा हुआ, और आपस में एक दूसरे से कहने लगे कि हमी श्रेष्ठ हैं, हमी श्रेष्ठ हैं ऐसा वाद विवाद करते हुये ब्रह्माजी के पास गये और वहां जाकर कहा कि आप निर्णय करदें कि हम लोगों में कौन श्रेष्ठ है ? इस पर प्रजापति ने कहा कि तुम लोगों के मध्य में वही श्रेष्ठ है जिसके निकलजाने पर यह शरीर पापिष्ठ कहलाता है ॥ ७ ॥

मन्त्रः ८

वाग्घोच्चक्राम सा संवत्सरं प्रोष्याऽऽगत्योवाच कथमशकत मद्दते

जीवितुमिति ते होचुर्यथाऽकला अवदन्तो वाचा प्राणन्तः प्राणेन पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः। श्रोत्रेण विद्वांसो मनसा प्रजायमाना रेतसैवमजीविष्मेति प्रविवेश ह वाक् ॥

पदच्छेदः।

वाक्, ह, उच्चक्राम, सा, संवत्सरं, प्रोष्य, आगत्य, उवाच, कथम्, अशकत, मत्, ऋते, जीवितुम्, इति, ते, ह, ऊचुः, यथा, अकलाः, अवदन्तः, वाचा, प्राणन्तः, प्राणेन, पश्यन्तः, चक्षुषा, शृण्वन्तः, श्रोत्रेण, विद्वांसः, मनसा, प्रजायमानाः, रेतसा, एवम्, अजीविष्म, इति, प्रविवेश, ह, वाक् ॥

अन्वयः	पदार्थाः
वाक् ह	तिसके पीछे वाणी
उच्चक्राम	शरीर से निकली
+ च	और
तत्	वह
संवत्सरम्	एक वर्षतक
प्रोष्य	बाहर रहकर
आगत्य	फिर वापस आकर
उवाच	इन्द्रियों से बोली कि
मत्	मेरे
ऋते	विना
जीवितुम्	तुम सब जीवन में
कथम्	कैसे
अशकत	समर्थ होते भये ?
इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	सुनकर
ते	वे सब इन्द्रियां
ह	स्पष्टवाणी से
ऊचुः	कहने लगीं कि
यथा	जैसे
अकलाः	गूंगे पुरुष
वाचा	वाणी करके
अवदन्तः	न बोलते हुये
प्राणेन	प्राण करके
प्राणन्तः	जीते हुये
चक्षुषा	नेत्र करके
पश्यन्तः	देखते हुये
श्रोत्रेण	कान करके
शृण्वन्तः	सुनते हुये
मनसा	मन करके
विद्वांसः	जानते हुये
रेतसा	वीर्य करके
प्रजायमानाः	संतान उत्पन्न करते हुये
+ जीवन्ति	जीते हैं
एवम्	वैसेही
त्वाम् ऋते	तेरे विना
+ वयम्	हमलोग
अजीविष्म	जीते रहे हैं
इति	इस प्रकार
+ श्रुत्वा	उत्तर सुनकर

वाणी=वाणी
ह=भी

प्रविवेश=शरीर में प्रवेश करती भई

भावार्थ ।

तिसके पश्चात् वाणी शरीर से निकली; और एक वर्षतक वाहर रहकर फिर वापस आई, और अपने साथी इन्द्रियों से बोली कि तुम बगैर मेरे कैसे जीते रहे, इस पर सब इन्द्रियों ने उस वाणी से कहा कि जैसे गूंगे पुरुष वाणी से न बोलते हुये, नेत्र से देखते हुये, कानसे सुनते हुये, मन से जानते हुये, वीर्य से संतान उत्पन्न करते हुये, प्राण करके जीते हैं वैसेही हमलोग विना तेरे प्राण करके जीते रहे, ऐसा सुनकर वाणी हार मानकर शरीर में फिर प्रवेश करती भई ॥ ८ ॥

मन्त्रः ६

चक्षुर्होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्याऽऽगत्योवाच कथमशकत मदृते जीवितुमिति ते होचुर्यथान्धा अपश्यन्तश्चक्षुषा प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा शृण्वन्तः श्रोत्रेण विद्वाꣳसो मनसा प्रजायमाना रेतसैवमजीविष्मेति प्रविवेश ह चक्षुः ॥

पदच्छेदः ।

चक्षुः, ह, उच्चक्राम, तत्, संवत्सरम्, प्रोष्य, आगत्य, उवाच, कथम्, अशकत, मत्, ऋते, जीवितुम्, इति, ते, ह, ऊचुः, यथा, अन्धाः, अपश्यन्तः, चक्षुषा, प्राणन्तः, प्राणेन, वदन्तः, वाचा, शृण्वन्तः, श्रोत्रेण, विद्वांसः, मनसा, प्रजायमानाः, रेतसा, एवम्, अजीविष्म, इति, प्रविवेश, ह, चक्षुः ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
ह=इसके पीछे		प्रोष्य=बाहर रह करके	
चक्षुः=नेत्रेन्द्रिय		+ च=और	
उच्चक्राम=शरीर से निकली		आगत्य=फिर वापस आकर	
+ च=और		उवाच=कहती भई कि	
तत्=वह		+ यूयम्=तुम लोग	
संवत्सरम्=एक वर्षतक		मत्=मेरे	

ऋते=विना	श्रोत्रेण=कान करके
जीवितुम्=जीने में	अशृण्वन्तः=सुनते हुये
कथम्=कैसे	मनसा=मन करके
अशकत=समर्थ होते भये ?	विद्वांसः=जानते हुये
इति=ऐसा	रेतसा=वीर्य से
+ श्रुत्वा=सुन कर	प्रजायमानाः=संतान उत्पन्न करतेहुये
ते=वे सबवागादि इन्द्रियां	+ जीवन्ति=जीते हैं
ह=स्पष्ट	एवम्=वैसेही
ऊचुः=कहती भईं कि	+ वयम्=हमलोग
यथा=जैसे	+ त्वाम्ऋते=विना तेरे
अन्धाः=अन्धेलोग	अजीविष्म=जीते रहे
चक्षुषा=नेत्र करके	इति=ऐसा
अपश्यन्तः=न देखते हुये	+ श्रुत्वा=उत्तर सुनकर
प्राणेन=प्राण करके	चक्षुः=नेत्रेन्द्रिय
प्राणन्तः=जीते हुये	प्रविवेश ह=शरीर में फिर प्रवेश करती भई
वाचा=वाणी करके	
वदन्तः=कहते हुये	

भावार्थ ।

तत्पश्चात् नेत्रेन्द्रिय शरीर से निकली, और एक वर्षतक बाहर रह कर फिर वापस आकर बोली कि, हे मनादि इन्द्रियो ! विना मेरे तुमलोग कैसे जीते रहे ? ऐसा सुनकर वागादि इन्द्रियों ने कहा कि जैसे अन्धेलोग नेत्र से न देखते हुये, वाणी से बोलते हुये, कान से सुनते हुये, मनसे जानते हुये, वीर्य से संतान उत्पन्न करते हुये जीते हैं, वैसेही हमलोग तुम्हारे विना प्राणों करके जीते रहे, ऐसा उत्तर पाकर चक्षु इन्द्रिय हार मानकर शरीर में फिर प्रवेश करती भई ॥ ९ ॥

मन्त्रः १०

श्रोत्रꣳ होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्याऽऽगत्योवाच कथमशकत मदृते जीवितुमिति ते होचुर्यथा बधिरा अशृण्वन्तः श्रोत्रेण प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा विद्वाꣳसो

मनसा प्रजायमानाः रेतसैवमजीविष्मेति प्रविवेश ह श्रोत्रम् ॥

पदच्छेदः ।

श्रोत्रम्, ह, उच्चक्राम, तत्, संवत्सरम्, प्रोष्य, आगत्य, उवाच, कथम्, अशकत, मत्, ऋते, जीवितुम्, इति, ते, ह, ऊचुः, यथा, बधिराः, अशृण्वन्तः, श्रोत्रेण, प्राणन्तः, प्राणेन, वदन्तः, वाचा, पश्यन्तः, चक्षुषा, विद्वांसः, मनसा, प्रजायमानाः, रेतसा, एवम्, अजीविष्म, इति, प्रविवेश, ह, श्रोत्रम् ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
ह	तत्पश्चात्	अशृण्वन्तः	न सुनते हुये
श्रोत्रम्	कर्णेन्द्रिय	प्राणेन	प्राण करके
उच्चक्राम	शरीर से निकली	प्राणन्तः	जीवन निर्वाह करते हुये
+ च	और	वाचा	वाणी से
तत्	वह	वदन्तः	कहते हुये
संवत्सरम्	एक सालतक	चक्षुषा	नेत्र से
प्रोष्य	बाहर रहकर	पश्यन्तः	देखते हुये
आगत्य	वापस आनकर	मनसा	मन से
उवाच	बोली कि	विद्वांसः	जानते हुये
मत्	मेरे	रेतसा	वीर्य से
ऋते	विना	प्रजायमानाः	संतान उत्पन्न करते हुये
जीवितुम्	जीने को	+ जीवन्ति	जीते हैं
कथम्	कैसे	एवम्	वैसेही
अशकत	तुम सब समर्थ हुये ?	+ वयम्	हमलोग
इति	ऐसा	+ त्वामृते	तेरे विना
+ श्रुत्वा	सुनकर	अजीविष्म	जीते रहे
ते	वे वागादि इन्द्रियां	इति	ऐसा
ह	स्पष्ट	+ श्रुत्वा	सुनकर
ऊचुः	बोलीं कि	श्रोत्रम्	कर्णेन्द्रिय
यथा	जैसे	प्रविवेश ह	फिर शरीर में प्रवेश करती भई
बधिराः	बहिरे		
श्रोत्रेण	कान से		

भावार्थ ।

इसके पीछे कर्ण इन्द्रिय शरीर से निकली, और वह एक सालतक बाहर रहकर और वापस आनकर बोली कि हे वागादि इन्द्रियो ! मेरे विना तुम कैसे जीते रहे ? इस पर सबों ने कहा कि जैसे बहिरे कानसे न सुनते हुये, नेत्रसे देखते हुये, मनसे जानते हुये, वाणी से कहते हुये, वीर्य से संतान पैदा करते हुये जीते हैं, वैसेही हमलोग भी तुम्हारे विना प्राण करके जीते हैं, ऐसा सुनकर कर्ण इन्द्रिय अपने को हारी मानकर शरीर में फिर प्रवेश होती भई ॥ १० ॥

मन्त्रः ११

मनो होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्याऽऽगत्योवाच कथमशकत मदृते जीवितुमिति ते होचुर्यथा मुग्धा अविद्वांसो मनसा प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेण प्रजायमाना रेतसैवमजीविष्मेति प्रविवेश ह मनः ॥

पदच्छेदः ।

मनः, ह, उच्चक्राम, तत्, संवत्सरम्, प्रोष्य, आगत्य, उवाच, कथम्, अशकत, मत्, ऋते, जीवितुम्, इति, ते, ह, ऊचुः, यथा, मुग्धाः, अविद्वांसः, मनसा, प्राणन्तः, प्राणेन, वदन्तः, वाचा, पश्यन्तः, चक्षुषा, शृण्वन्तः, श्रोत्रेण, प्रजायमानाः, रेतसा, एवम्, अजीविष्म, इति, प्रविवेश, ह, मनः ॥

अन्वयः पदार्थाः	अन्वयः पदार्थाः
ह=तिसके पीछे	उवाच=कहता भया कि
मनः=मन	मत्=मेरे
उच्चक्राम=शरीरसे निकला	ऋते=विना
+ च=और	जीवितुम्=जीने में
तत्=वह	कथम्=कैसे
संवत्सरम्=एक वर्षतक	अशकत=तुम सब समर्थ होते भये ?
प्रोष्य=बाहर रहकर	
आगत्य=फिर वापस आनकर	इति=ऐसा

+ श्रुत्वा=सुनकर
ते=वे वागादि इन्द्रियां
ह=स्पष्ट
ऊचुः=कहने लगीं कि
यथा=जैसे
मुग्धाः=मूढ़लोग
मनसा=मन करके
अविद्वांसः=न जानते हुये
प्राणेन=प्राण करके
प्राणन्तः=जीते हुये
वाचा=वाणी करके
वदन्तः=बोलते हुये
चक्षुषा=नेत्र करके
पश्यन्तः=देखते हुये
श्रोत्रेण=कान करके
शृण्वन्तः=सुनते हुये
रेतसा=वीर्य करके
प्रजायमानाः=संतान उत्पन्न करतेहुये
+ जीवन्ति=जीते हैं
एवम्=वैसेही
+ वयम्=हमलोग
अजीविष्म=जीते रहे
इति=इस प्रकार
+ श्रुत्वा=उत्तर सुनकर
मनः=मन
ह=भी
प्रविवेश=शरीर में प्रवेश करता भया

भावार्थ ।

इसके पीछे मन शरीर से निकला, और एक वर्ष पर्यन्त बाहर रहा, और फिर वापस आनकर कहने लगा कि तुम सब मुझ विना कैसे जीते रहे ? यह सुनकर वे सब वागादि इन्द्रियां कहने लगीं कि, जैसे मूढ़ पुरुष मन करके न जानते हुये, पर वाणी करके बोलते हुये, नेत्र करके देखते हुये, कान करके सुनते हुये, वीर्य करके संतान को उत्पन्न करते हुये जीते हैं, वैसेही हम सब प्राण करके जीते रहे हैं, ऐसा सुनकर मन भी अपने को हारी मानकर शरीर में प्रवेश करगया ॥ ११ ॥

मन्त्रः १२

रेतो होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्याऽऽगत्योवाच कथमशकत मदृते जीवितुमिति ते होचुर्यथा क्लीवा अप्रजायमाना रेतसा प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेण विद्वांꣳसो मनसैवमजीविष्मेति प्रविवेश ह रेतः ॥

पदच्छेदः ।

रेतः, ह, उच्चक्राम, तत्, संवत्सरम्, प्रोष्य, आगत्य, उवाच, कथम्, अशकत, मत्, ऋते, जीवितुम्, इति, ते, ह, ऊचुः, यथा, क्लीवाः, अप्रजायमानाः, रेतसा, प्राणन्तः, प्राणेन, वदन्तः, वाचा, पश्यन्तः, चक्षुषा, शृण्वन्तः, श्रोत्रेण, विद्वांसः, मनसा, एवम्, अजीविष्म, इति, प्रविवेश, ह, रेतः ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ अथ	इसके पीछे
रेतः	वीर्य
ह	भी
उच्चक्राम	शरीर से निकलगया
+ च	और
तत्	वह
संवत्सरम्	एक वर्षतक
प्रोष्य	बाहर रहकर
आगत्य	फिर वापस आनकर
उवाच	कहता भया कि
+ यूयम्	तुमलोग
मत्	मेरे
ऋते	विना
जीवितुम्	जीने में
कथम्	कैसे
अशकत	समर्थ होते भये ?
इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	सुनकर
ते	वे सब
ह	स्पष्ट
ऊचुः	कहते भये कि
यथा	जैसे
क्लीवाः	नपुंसक लोग
रेतसा	वीर्य करके
अप्रजायमानाः	संतान न उत्पन्न करते हुये
प्राणेन	प्राण करके
प्राणन्तः	जीते हुये
वाचा	वाणी करके
वदन्तः	कहते हुये
चक्षुषा	नेत्र करके
पश्यन्तः	देखते हुये
श्रोत्रेण	कान करके
शृण्वन्तः	सुनते हुये
मनसा	मन करके
विद्वांसः	जानते हुये
+ जीवन्ति	जीते हैं
एवम्	इसी तरह
+ वयम्	हमलोग
अजीविष्म	जीते हैं
इति	ऐसा
+ श्रुत्वा	उत्तर सुनकर
रेतः	वीर्य
ह	भी
प्रविवेश	शरीर में प्रवेश करता भया

भावार्थ ।

इसके पीछे वीर्य शरीर से निकला, और वह एक वर्षतक बाहर रहा, फिर वापस आनकर पूछता भया कि हे वागादि इन्द्रियो ! तुम लोग मेरे विना कैसे जीते रहे ? उन सबों ने उत्तर दिया कि जैसे नपुंसक पुरुष वीर्य करके संतान न उत्पन्न करते हुये वाणी से कहते हुये, नेत्र से देखते हुये, कानसे सुनते हुये, मनसे जानते हुये जीते हैं, वैसेही हमलोग भी प्राण करके जीते रहे, ऐसा सुनकर वीर्य भी अपने को हारी मानकर शरीर में प्रवेश करता भया ॥ १२ ॥

मन्त्रः १३

अथ ह प्राण उत्क्रमिष्यन्यथा महासुहयः सैन्धवः पड्वीशशंकून्संवृहेदेवꣳ हैवेमान्प्राणान्संववर्ह ते होचुर्मा भगव उत्क्रमीर्न वै शक्ष्यामस्त्वदृते जीवितुमिति तस्यो मे बलिं कुरुतेति तथेति ॥

पदच्छेदः ।

अथ, ह, प्राणः, उत्क्रमिष्यन्, यथा, महासुहयः, सैन्धवः, पड्वीशशंकून्, संवृहेत्, एवम्, ह, एव, इमान्, प्राणान्, संववर्ह, ते, ह, ऊचुः, मा, भगवः, उत्क्रमीः, न, वै, शक्ष्यामः, त्वत्, ऋते, जीवितुम्, इति, तस्य, उ, मे, बलिम्, कुरुत, इति, तथा, इति ॥

अन्वयः	पदार्थाः
अथ ह	तिसके पीछे
यथा	जैसे
सैन्धवः	सिन्धुदेश का
महासुहयः	महाबलिष्ठ सुन्दर घोड़ा
पड्वीशशंकून्	अपने मेखों को
संवृहेत्	उखाड़ डाले
एवम्	तैसेही
प्राणान्	वागादि इन्द्रियों को
ह वै	निश्चय करके
प्राणः	प्राणवायु
संववर्ह	उनके उनके स्थानों से उखाड़कर
उत्क्रमिष्यन्	संग लेचलने लगा
ह	तब
ते	वे वागादि इन्द्रियां
ऊचुः	कहनेलगीं कि
भगवः	हे पूज्यप्राण !
मा	मत तू
उत्क्रमीः	शरीर से बाहर निकल
त्वत्	तेरे

ऋते=विना	मे=मेरे को
जीवितुम्=जीने के लिये	बलिम्=बलि
न वै=कभी नहीं	कुरुत=दो
शक्ष्यामः=हम सब समर्थ होंगे	इति=ऐसा
+ तदा=तब	+ श्रुत्वा=सुनकर
+ प्राणः=प्राण ने	+ ते=वे वागादि इन्द्रियां
+ उवाच=उत्तर दिया कि	तथा=वैसाही
तस्य=तिस	+ अकुर्वन्=करती भई

भावार्थ ।

सबके पीछे जैसे सिन्धुदेश का महाबलिष्ठ सुन्दर घोड़ा अपने मेखों को उखाड़ डाले तैसेही वागादि इन्द्रियों को प्राणवायु उनके उनके स्थानों से उखाड़कर अपने संग ले चलने लगा तब वे वागादि इन्द्रियां कहने लगीं कि हे पूज्यप्राण ! तू शरीर से बाहर मत निकल तुझ विना हमलोग जीने में असमर्थ होंगे तब प्राणने उत्तर दिया कि मेरे को तुम सब बलि दो ऐसा सुनकर वागादि इन्द्रियां वैसेही करती भई ॥ १३॥

मन्त्रः १४

सा ह वागुवाच यद्वा अहं वसिष्ठास्मि त्वं तद्वसिष्ठोऽसीति यद्वा अहं प्रतिष्ठाऽस्मि त्वं तत्प्रतिष्ठोऽसीति चक्षुर्यद्वा अहꣳ संपदस्मि त्वं तत्संपदसीति श्रोत्रं यद्वा अहमायतनमस्मि त्वं तदायतनमसीति मनो यद्वा अहं प्रजातिरस्मि त्वं तत्प्रजातिरसीति रेतस्तस्यो मे किमन्नं किं वास इति यदिदं किंचाऽऽश्वभ्य आकृमिभ्य आकीटपतङ्गेभ्यस्तत्तेऽन्नमापोवास इति न ह वा अस्यानन्नं जग्धं भवति नानन्नं प्रतिगृहीतं य एवमेतदनस्यान्नं वेद तद्विद्वाꣳसः श्रोत्रिया अशिष्यन्त आचामन्त्यशित्वाचामन्त्येतमेव तदनग्नं कुर्वन्तो मन्यन्ते ॥

इति प्रथमं ब्राह्मणम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

स, ह, वाग्, उवाच, यत्, वै, अहम्, वसिष्ठा, अस्मि, त्वम्, तत्, वसिष्ठः, असि, इति, यत्, वै, अहम्, प्रतिष्ठा, अस्मि, त्वम्, तत्, प्रतिष्ठः,

असि, इति, चक्षुः, यत्, वै, अहम्, संपत्, अस्मि, त्वम्, तत्संपत्, असि, इति, श्रोत्रम्, यत्, वै, अहम्, आयतनम्, अस्मि, त्वम्, तदायतनम्, असि, इति, मनः, यत्, वै, अहम्, प्रजातिः, अस्मि, त्वम्, तत्प्रजातिः, असि, इति, रेतः, तस्य, उ, मे, किम्, अन्नम्, किम्, वासः, इति, यत्, इदम्, किंच, आ, श्वभ्यः, आ, कृमिभ्यः, आ, कीटपतङ्गेभ्यः, तत्, ते, अन्नम्, आपः, वासः, इति, न, ह, वा, अस्य, अनन्नम्, जग्धम्, भवति, न, अनन्नम्, प्रतिगृहीतम्, यः, एवम्, एतत्, अनस्य, अन्नम्, वेद, तत्, विद्वांसः, श्रोत्रियाः, अशिष्यन्तः, आचामन्ति, अशित्वा, आचामन्ति, एतम्, एव, तत्, अनग्नम्, कुर्वन्तः, मन्यन्ते ॥

अन्वयः	पदार्थाः
+ तेषु	उन सब में से
+ बलिदानाय	बलि देने के लिये
+ प्रथमम्	सब के पहिले
सा	वह
वाक्	वाणी
ह	स्पष्ट
उवाच	बोली कि
यत् वै	यद्यपि
अहम्	मैं
वसिष्ठा	औरों से श्रेष्ठ
अस्मि	हूं
तथापि	पर
+ प्राण	हे प्राण !
त्वम्	तू
तद्वसिष्ठः	उससे यानी मेरे से भी श्रेष्ठ
असि	है
इति	इसी प्रकार

अन्वयः	पदार्थाः
+ चक्षुः	नेत्र ने
+ उवाच	कहा
यत् वा	यद्यपि
अहम्	मैं
चक्षुः	नेत्र
प्रतिष्ठा	औरों की प्रतिष्ठा
अस्मि	हूं
+ तथापि	पर
+ प्राण	हे प्राण !
त्वम्	तू
तत्प्रतिष्ठः	उसकी यानी मेरी भी प्रतिष्ठा
असि	है
इति	इस प्रकार
+ श्रोत्रम् उवाच	कर्ण बोला कि
यत् वै	यद्यपि
अहम्	मैं

ओम्=कर्ण

संपत्=संपत्स्वरूप हूं यानी अपने द्वारा पुरुषों को वेद ग्रहण करने की शक्ति देनेवाला

अस्मि=हूं
+ तथापि=पर
+ प्राण=हे प्राण !
त्वम्=तू
तत्संपत्=स्वतः वेद ग्रहण शक्तिवाला
असि=है
इति=इसी प्रकार
+ मनः=मन
+ उवाच=बोला कि
यत् वै=यद्यपि
अहम्=मैं
मनः=मन
आयतनम् अस्मि=सबका आश्रय हूं
+ तथापि=पर
+ प्राण=हे प्राण !
त्वम्=तू
तदायतनम्=उसका यानी मेरा भी आयतन
असि=है
इति=ऐसेही
+ रेतः=वीर्य
+ उवाच=बोला कि
यत् वै=यद्यपि
अहम्=मैं
रेतः=वीर्य

प्रजातिः=प्रजनन शक्तिवाला
अस्मि=हूं
+ तथापि=पर
+ प्राण=हे प्राण !
त्वम्=तू
तत्प्रजातिः=उसका यानी मेरा भी प्रजनन शक्तिवाला
असि इति=है
+ प्राणः=प्राण
+ उवाच=बोला कि
+ यदि=यदि
+ एवम्=तुम्हारा ऐसा कहना
+ साधु=ठीक है तो
+ ब्रूत=तुम लोग कहो कि
तस्य उ=उस
मे=मुझ प्राण का
अन्नम्=भोजन
किम्=क्या है ?
+ च=और
वासः=वस्त्र
किम्=क्या है ?
इति=यह सुनकर
ते=वे सब वागादि
+ आहुः=बोले कि
+ लोके=लोक में
यत्=जो
किंच=कुछ
इदम्=यह यानी
आश्वभ्यः=कुत्तों तक
आकृमिभ्यः=कृमियों तक
आकीटपतंगेभ्यः=कीट पतंगों तक

+ अस्ति=है
तत्=वह सब
ते भोगः=तेराही भोग
+ अस्ति=है
+ च=और
आपः=जल
वासः=तेरा वस्त्र है
यः=जो उपासक
एवम्=इस प्रकार
अनस्य=प्राण के
एतत्=इस
अन्नम्=अन्न यानी भोग को
वेद=जानता है
+ तस्य=उसको
प्रतिगृहीतम्=प्रतिग्रह यानी गजादि दान
अनन्नम्=अन्नसे भिन्न यानी भोग वस्तु से पृथक्
न=नहीं है यानी उस में कोई दोष नहीं है
+ च=और
तत्=वैसेही
अस्य=इस प्राण का
जग्धम्=खाया हुआ
अनन्नम्=अन्नसे भिन्न यानी भोज्य वस्तु से भिन्न
न ह वै=निश्चय करके नहीं है यानी सब अन्नरूपही है
+ तस्मात्=इस लिये
श्रोत्रियाः=वेदपाठी
विद्वांसः=ब्राह्मण
अशिष्यन्तः=भोजन करने की इच्छा करते हुये यानी भोजन करने से पहिले
आचामन्ति=जलसे आचमन करते हैं
+ च=और
अशित्वा=भोजन करके
आचामन्ति=जलसे आचमन करते हैं
तत्=ऐसा करने में
विद्वांसः=विद्वान् लोग
मन्यन्ते=समझते हैं कि
+ वयम्=हम लोग
एतम्=इस
अनम्=प्राण को
अनग्नम्=वस्त्रसहित
कुर्वन्तः=करते हुए
मन्यामहे=समझते हैं

भावार्थ ।

हे सौम्य ! तिसके पीछे वाणी बोली कि, हे प्राण ! यद्यपि मैं औरों से श्रेष्ठ हूं परन्तु आप मेरे भी आयतन हैं फिर नेत्र बोला कि यद्यपि मैं औरों के लिये प्रतिष्ठा हूं परन्तु हे प्राण ! तू मेरी भी प्रतिष्ठा है, तेरेही कृपा करके मैं प्रतिष्ठासंपन्न हूं इसके पीछे मन बोला कि हे प्राण ! यद्यपि मैं

औरों के लिये आयतन हूं परन्तु तूही मेरा आयतन है, कर्ण ने भी ऐसाही कहा यद्यपि मैं औरों के लिये संपत्तिरूप हूं यानी और पुरुषों को वेदग्रहण करने की शक्ति देनेवाला हूं, पर हे प्राण ! तू स्वतः वेदग्रहण शक्तिवाला है, मनने कहा हे प्राण ! यद्यपि मैं सबको आश्रय देता हूं पर तू मेरा भी आश्रय है, ऐसेही वीर्य ने कहा यद्यपि मैं प्रजनन शक्तिवाला हूं पर तू हे प्राण ! मेरा भी उत्पादक है, इस प्रकार सब इन्द्रियों की विनतियां सुनकर प्राण ने कहा हे इन्द्रियगण ! बतावो मेरा अन्न और वस्त्र क्या होगा ? तब इन्द्रियों ने उत्तर दिया कि हे प्राण ! हे स्वामिन् ! कुत्तों से, कृमियों से, कीट-पतंगा से लेकर जो कुछ इस पृथ्वी पर प्राणीमात्र हैं उनका जो भोग है वही भोग तुम्हारा भी होगा, और जल तुम्हारा वस्त्र होगा जो उपासक इस प्रकार प्राण की महिमा को जानता है वह कभी अन्न से शून्य नहीं होता है, और न प्रतिग्रह का कोई दोष उसको लगता है ऐसे जानते हुये श्रोत्रियगण भोजन करने के पहिले और पीछे जल का आचमन करते हैं, ऐसा उनका करना मानो प्राणको अन्न जल देना है, और नग्न नहीं करते हैं यानी सेवा सत्कार करते हैं ॥ १४ ॥

इति प्रथमं ब्राह्मणम् ॥ १ ॥

अथ द्वितीयं ब्राह्मणम् ।

मन्त्रः १

श्वेतकेतुर्ह वा आरुणेयः पञ्चालानां परिषदमाजगाम स आजगाम जैवलिं प्रवाहणं परिचारयमाणं तमुदीक्ष्याभ्युवाद कुमारा ३ इति स भो ३ इति प्रतिशुश्रावानुशिष्टोन्वसि पित्रेत्योमिति होवाच ॥

पदच्छेदः ।

श्वेतकेतुः, ह, वा, आरुणेयः, पञ्चालानाम्, परिषदम्, आजगाम, सः, आजगाम, जैवलिम्, प्रवाहणम्, परिचारयमाणम्, तम्, उदीक्ष्य,

अभ्युवाद, कुमार, इति, सः, भोः, इति, प्रतिशुश्राव, अनुशिष्टः, अन्वसि, पित्रा, इति, ॐ, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
आरुणेयः	आरुणिका पुत्र	इति	ऐसा
श्वेतकेतुः	श्वेतकेतु	अभ्युवाद	कहता भया
ह वै	निश्चय करके	+ च	और
पञ्चालानाम् परिषदम्	पञ्चालदेश के विद्वानों की सभा में	सः	वह श्वेतकेतु
आजगाम	जाता भया	भोः	हे भगवन् !
+ तत्र	वहां	इति	ऐसा सम्बोधनकरके
+ जित्वा	सभाको जीतकर फिर	प्रतिशुश्राव	उत्तर दिया
सः	वह श्वेतकेतु	इति	तिस पर
जैवलिम्	जीवलके पुत्र	+ प्रवाहणः	प्रवाहण राजा
परिचारयमाणम्	अपने नौकरों करके सेव्यमान	उवाच	पूछता भया
प्रवाहणम्	प्रवाहण राजा के पास	+ नु	क्या
आजगाम	जाता भया	पित्रा	तू पिता करके
+ तदा	तब	अनुशिष्टः अन्वसि	शिक्षित किया गयाहै ?
+ सः	वह राजा	ह	तब
तम्	उसको	+ श्वेतकेतुः	श्वेतकेतु ने
उदीक्ष्य	देखकर	इति	ऐसा सुनकर
कुमारा	हे कुमार !	उवाच	उत्तर दिया कि
		ॐ	हां

भावार्थ ।

हे सौम्य ! किसी समय आरुणिका पुत्र श्वेतकेतु पञ्चालदेश के विद्वानों की सभा में जाता भया और उस सभा को जीतकर वह जैवलि के पुत्र राजा प्रवाहण के पास भी गया जो अनेक सेवकों करके सेवित होरहा था, राजकुमार श्वेतकेतु को एक तुच्छ दृष्टि से देखकर सम्बोधन किया, अरे लड़के ! इसके जवाब में श्वेतकेतु ने तन्जन कहा हे भगवन् ! इस पर राजा प्रवाहण ने पूछा हे श्वेतकेतु ! क्या तू पिता करके सुशिक्षित हुआ है ? उसने उत्तर दिया हां हुआ हूं पूछिये ॥ १ ॥

मन्त्रः २

वेत्थ यथेमाः प्रजाः प्रयत्यो विप्रतिपद्यन्ता ३ इति नेति नेति होवाच वेत्थो यथेमं लोकं पुनरापद्यन्ता ३ इति नेति हैवोवाच वेत्थो यथाऽसौ लोक एवं बहुभिः पुनः पुनः प्रयद्भिर्न संपूर्यता ३ इति नेति हैवोवाच वेत्थोयतिथ्यामाहुत्यां हुतायामापः पुरुषवाचो भूत्वा समुत्थाय वदन्ती ३ इति नेति हैवोवाच वेत्थो देवयानस्य वा पथः प्रतिपदं पितृयाणस्य वा यत्कृत्वा देवयानं वा पन्थानं प्रतिपद्यन्ते पितृयाणं वाऽपि हि न ऋषेर्वचः श्रुतं द्वेसृती अशृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानां ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं चेति नाहमत एकं च न वेदेति होवाच ॥

पदच्छेदः ।

वेत्थ, यथा, इमाः, प्रजाः, प्रयत्यः, विप्रतिपद्यन्ते, इति, न, इति, न, इति, ह, उवाच, वेत्थ, उ, यथा, इमम्, लोकम्, पुनः, आपद्यन्ते, इति, न, इति, ह, एव, उवाच, वेत्थ, उ, यथा, असौ, लोकः, एवम्, बहुभिः, पुनः, पुनः, प्रयद्भिः, न, संपूर्यते, इति, न, इति, ह, एव, उवाच, वेत्थ, उ, यतिथ्याम्, आहुत्याम्, हुतायाम्, आपः, पुरुषवाचः, भूत्वा, समुत्थाय, वदन्ती, इति, न, इति, ह, एव, उवाच, वेत्थ, उ, देवयानस्य, वा, पथः, प्रतिपदम्, पितृयाणस्य, वा, यत्, कृत्वा, देवयानम्, वा, पन्थानम्, प्रतिपद्यन्ते, पितृयाणम्, वा, अपि, हि, न, ऋषेः, वचः, श्रुतम्, द्वे, सृती, अशृणवम्, पितृणाम्, अहम्, देवानाम्, उत, मर्त्यानाम्, ताभ्याम्, इदम्, विश्वम्, एजत्, समेति, यदन्तरा, पितरम्, मातरम्, च, इति, न, अहम्, अतः, एकम्, चन, वेद, इति, ह, उवाच ॥

अन्वयः	पदार्थाः	अन्वयः	पदार्थाः
+ प्रवाहणः=प्रवाहण राजा		+ यदि=यदि	
+ उवाच=श्वेतकेतुसे पूछताहै कि		वेत्थ=तू जानता है तो	

यथा=जिस प्रकार
इमाः=ये
प्रजाः=प्रजायें
प्रयत्यः=मरकर जानेवाली
विप्रतिपद्यन्ते=भिन्न भिन्न लोकों को अपने कर्मानुसार जाती हैं
+ ब्रवीतु=कह
+ सः उवाच=उसने उत्तर दिया कि
न इति=नहीं ऐसा
न इति=नहीं ऐसा
+ वेद्मि=जानता हूं मैं
+ पुनः=फिर
+ प्रवाहणः=प्रवाहण राजा
+ उवाच=पूछता भया कि
यथा=क्यों
प्रजाः=ये प्रजा
इमम्=इस
लोकम्=लोक को
पुनः=फिर
आपद्यन्ते इति=लौट आती हैं
उ=क्या
वेत्थ=तू जानता है
ह=तव
+ श्वेतकेतुः=श्वेतकेतु
ह=स्पष्ट
+ उवाच=बोला कि
एव न=नहीं
इति=ऐसा
+ वेद्मि=जानता हूं मैं
पुनः=फिर
+ प्रवाहणः=प्रवाहण राजा
+ पप्रच्छ=पूछता भया कि
यथा=क्यों
न=नहीं
असौ=वह
लोकः=लोक
बहुभिः=बहुतसी
पुनः पुनः=बार बार
एवम्=इस प्रकार
प्रयद्भिः=मरनेवाली प्रजा करके
संपूर्यते=पूर्ण होता है
उ=क्या
वेत्थ=तू जानता है ?
+ श्वेतकेतुः=श्वेतकेतु ने
ह=स्पष्ट
उवाच=उत्तर दिया कि
इति=ऐसा
न=नहीं
+ वेद्मि=जानता हूं मैं
+ प्रवाहणः=प्रवाहण राजा ने
पुनः=फिर
+ उवाच=पूछा कि
यतिथ्याम्=कितनी
आहुत्याम्=आहुतियों के
हुतायाम्=देने पर
आपः=जलरूपी जीव
पुरुषवाचः=पुरुषवाचक
भूत्वा=होकर
+ च=और
समुत्थाय=उठकर
वदन्ति=बोलने लगता है
उ=क्या

इति=ऐसा
वेत्थ=तू जानता है
इति=इस पर
+ श्वेतकेतुः=श्वेतकेतु
उवाच=बोला कि
ह एव=निश्चय करके
इति=ऐसा
न=नहीं
+ वेद्मि=जानता हूं मैं
+ प्रवाहणः=प्रवाहण राजा
+ पप्रच्छ=फिर पूछता भया कि
उ=क्या
देवयानस्य=देवयान
पथः=मार्ग के
प्रतिपदम्=साधन को
वा=अथवा
पितृयानस्य=पितृयान
पथः=मार्ग के
+ प्रतिपदम्=साधन को
यत्=जिसको
कृत्वा=ग्रहण करके
देवयानम्=देवयान
पन्थानम्=मार्ग को
वा=अथवा
पितृयाणम्=पितृयान
पन्थानम्=मार्ग को
प्रतिपद्यन्ते=लोक प्राप्त होते हैं
वेत्थ=तू जानता है
+ अत्र=इस विषय में
अपि वा=क्या
त्वम्=तुमने

ऋषेः=ऋषि के
वचः=वाक्य को
न=नहीं
श्रुतम्=सुना हुआ है
अहम्=मैं
इति=ऐसे
द्वे=दो
सृती=मार्गों को
अशृणवम्=सुन चुका हूं
+ एका=एक मार्ग
पितॄणाम्=पितरों का
+ अस्ति=है यानी उस मार्ग से
पितरलोक को जाते हैं
च=और
द्वितीया=दूसरी मार्ग
देवानाम्=देवों का
+ अस्ति=है यानी उस मार्ग से
देवलोक को जाते हैं
उत=परन्तु
+ इमे=ये
सृती=दोनों मार्ग
मर्त्यानाम्=जीवों के हैं
ताभ्याम्=इन्हीं करके
इदम्=यह
विश्वम्=सारा संसार
समेति=जाता है
+ ते=ये
द्वे=दोनों
सृती=मार्ग
मातरम्=माता यानी पृथ्वी
पितरम्=पिता यानी स्वर्ग